शक्ति और शान्ति का जमाना था; लेकिन् विदेशी सभ्यता इसके बिल्कुल विरुद्ध थी। ऊपरी दिखावट, स्वार्थान्धता, चालाकी, अहंकार और अशान्ति की उसमें भरमार थी।

महाभारत का युद्ध केवल मनुष्यों और मनुष्यों के ही बीच का युद्ध नहीं था, बल्कि यह भिन्न भिन्न आदर्शों के बीच का युद्ध था। महाभारत के युद्ध के बाद जो जमाना आया उसमें दो मुख्य बातें उल्लेख योग्य हैं। पहिली बात तो यह है कि अब प्रभावशाली आदमी भारतवर्षमें बहु कम पाये जाते थे; क्यों कि भारतवर्षके महापुरुष तो पहिले ही इ युद्धमें मारे जा चुके थे और दूसरी बात यह है कि इसी जमानेमें भारत वर्षके कितनेही प्रसिद्ध प्रसिद्ध आदमी विदेशों को चले गये। इन दोनों बातों का भारतवर्ष पर बहुतही बुरा प्रभाव पड़ा, क्यों कि कितनी ही जातियाँ युद्धाग्निमें जलमरी थीं और कितनी ही जातियाँ दूसरे शोंको चली गईं।

यह बात हम मानते हैं कि कई भारतीय जातियाँ महाभारत के पहिले दूसरे देशों को गईं; लेकिन अब की बार जिन जातियोंने विदेश स किया वह बड़ी महत्त्व पूर्ण और शक्तिशाली थीं। उन का जान था, मानों भारतवर्ष के शरीरसे सञ्जीवनी शक्ति का ही निकल जान इन आदमियों के चले जाने से हमारी राष्ट्रीयता, स्वतंत्रता, समाज धर्म को बड़ा भारी धक्का पहुँचा। लेकिन जो बात हमारे लिये नाश करनेवाली हुई उससे शेष सारे संसार का फायदा हुआ। र्ष की इस हानि से ही सारे संसार का लाभ हुआ। भारतवर्ष से हुए भारतीय फारिस से लेकर यूरोपके देशों तक चले गये या ग्रीस (यूनान) इत्यादि की जो उन्नति आगे चलकर। बीज बोनेवाले यह ही भारतवासी थे। इस प्रकार महाभारत केवल भारतवर्ष तक ही परिमित नहीं रहा, बल्कि इस ने स

संसार की गतिमें एक प्रकार का महान परिवर्तन कर दिया। मिस्टर Pecocke पीकोक साहब अपनी पुस्तक India in Greece नामक में लिखते हैं:—

"But, perhaps, in no similar instance have events occured fraught with consequences of such magnitude, as those flowing from the great religious war which, for a long series of years, raged throughout the length and breadth of India. That contest ended by the expulsion of vast bodies of men, many of them skilled in the arts of early civilization, and still greater numbers, warriors by profession. Driven beyond the Himalayan mountains in the north, and to Ceylon, their last stronghold in the south, swept across the valley of the Indus on the west, this persecuted people carried with them the germs of the European arts and sciences. The mighty tide that passed the barrier of the Punjab, rolled onward towards its destined Channel in Europe and in Asia, to fulfil its beneficent office in the moral fertilization of the world."

अर्थात् " महाभारत के युद्धके परिणाम में जैसी महत्त्वपूर्ण घटनायें हुई वैसी घटनायें शायद कभी भी इस प्रकार के उदाहरण के परिणाम में नहीं हुई थीं। महाभारत का युद्ध कई वर्ष तक सारे हिन्दुस्थान में होता रहा था। इस युद्ध का नतीजा यह हुआ कि कितनी ही भारतीय जातियों को जो कि प्राचीन सभ्यता के कला व शिल्पोंमें निपुण थीं, और बहु संख्यक योद्धा जातियों को भारतवर्ष से बाहर जाना पड़ा। इन जाति ं ने हिमालय पर्वत के उत्तर की ओर को और सिंहलद्वीप को जो कि न का अन्तिम दुर्ग था, तथा सिंध नदीके पश्चिमकी ओर को प्रवास केया। यह अत्याचारपीड़ित जातियाँ ही यूरोपियन कला और विज्ञा ा के बीज अपने साथ लेती गई थीं। यह प्रबल मनुष्य समूह समुद्र की ज़ोरदार लहर की तरह, पंजाब को पार करता हुआ यूरोप और एशि-

धार्मे फैल गया, और इसी मनुष्यसमुदायने संसार की नैतिक उन्न करनेका शुभकार्य किया।"

इस बात में कोई भी सन्देह नहीं कि अत्यन्त प्राचीन क लिखा कि हमें कुछ भी पता नहीं, भारतवासी दूसरे देशों को रहे थे। यद्यपि भारतवर्ष की भूमि अत्यन्त उर्वरा थी और उद्योग व्यवसाय भी अच्छी हालत में थे, तथापि भारतवासियों अपने उपनिवेश बनाने पड़े; इसका कारण यह था कि, यहां आबादी बहुत ज्यादा थी। प्रोफेसर हीरन साहब लिखते हैं:—

"How could such a thickly-peopled, and in some pa overpeopled country as India, have disposed of her supe abundant population except by planting colonies; eve though intestine broils (witness the expusion of the Bu ddhists) had not obliged her to have recourse to such a expedient?"*

अर्थात्—"अगर घरेलू झगड़ोंनें, जिस का कि एक उदाहरण बौद्ध लोगों का भारतवर्ष से निकाला जाना है, भारतवासियों को विदेशों को जानेके लिये बाध्य न भी किया होता तो भी भारतवर्ष जैसे घनी आबादीवाले देश के लिये यह किस तरह सम्भव हो सकता था कि अपनी अत्यधिक मनुष्यसंख्या का गुजारा किसी दूसरी तरह पर कर दे, सिवाय इसके कि विदेशोंमें भारतीय उपनिवेश कायम किये जावें।"

हमारा अनुमान है कि, मनु महाराज के समय में भारतवासी पहिले पहल भारतवर्ष से बाहिर गये और उन्होंने मिश्र देश को अपना उपनिवेश बनाया।

इन सब बातों को पढ़कर सम्भवत: कुछ लोग शंका कर सकते हैं, कि यदि भारतवासी इतने प्राचीन काल से देश देशान्तरों को प्रवास

* Historical researches, Vol. II page 310.

करते थे, तो फिर उन्होंने इसका वर्णन किसी इतिहास में क्यों नहीं किया ?

प्राचीन काल के प्रवासी भारतवासियों का इतिहास क्यों नहीं मिलता इस प्रश्नका उत्तर यही है कि वह विधर्मियों द्वारा नष्ट कर दिया गया हम इस बात को कदापि नहीं मान सकते कि भारतवासी प्राचीन काले इतिहास लिखना जानते ही नहीं थे । बहुतसे पाश्चात्य लेखकों यह कुछ आदतसी पड़ गई है कि वे मौके बे मौके यही लिख मारते "Ancient Indians did not know the art of writing History अर्थात्–प्राचीन कालके भारतवासी इतिहास लिखना जानते ही न थे । इन हठधर्मियों की इस बात का उत्तर कर्नल टाड साहबने अप 'राजस्थान' की भूमिकामें इस प्रकार लिखा है:—

"If we consider the political changes and convulsi which have happened in Hindustan since Mahmud's in sion, and the intolerant bigotry of many of his successo we shall be able to account for the paucity of its Natio works on History, without being driven to the improba conclusion, that the Hindus were ignorant of an art wh was cultivated in other countries from almost the earli ages. Is it to be imagined that a nation so highly cultiva as the Hindus amongst whom the exact sciences flouris in perfection, by whom the fine arts, architecture, sculpt poetry and music were not only cultivated, but taught defined by the nicest and most elaborate rules were tot unacquainted with the simple art of recording the event their history, the characters of their princes and the of their reigns"

अर्थात्–"यदि हम इस बात पर ख्याल करें कि, महमूद के भा र्ष पर आक्रमण करने के बाद हिन्दुस्तान में क्या क्या राजनै

रिवर्तन और विप्लव हुये, और महमूद के बाद जिन मुसलमान बाद- शाहोंने भारतवर्ष में सल्तनत की वह कैसे धर्मान्ध और अनुदार थे, तो इस बात का कारण ज्ञात हो सकता है कि भारतवर्ष में राष्ट्रीय इतिहास के ग्रन्थ इतने कम क्यों पाये जाते हैं। यदि हम उपर्युक्त बातपर ध्यान दें तो फिर हम इस असंभव नतीजे पर कभी नहीं पहुँच सके कि हिन्दू लोग इतिहास लिखने की विद्या से—जो दूसरे देशों में बिल्कुल प्रारम्भसे ही प्रचलित थी—अनभिज्ञ थे। क्या यह बात किसी की कल्पनामें आ स- कती है कि हिन्दू लोग जो कि इतने अधिक सभ्य थे, जिनके यहाँ इतने ही सत्य विज्ञानोंका पूर्णतया प्रचार था, जिन्होंने नाना प्रकार की कलाओं और शिल्पविद्या, मूर्तिविद्या, कविता और गानविद्या आदि विद्याओंका केवल अनुशीलन ही नहीं किया था, बल्कि दूस- रे सर्वोत्तम और बहुश्रमसिद्ध नियमोंके साथ पढ़ाया भी था और शिक्षा भी दी थी, वह ही हिन्दू लोग अपने इतिहास लिखने की साधारण कलासे अपरिचित थे और अपने इतिहास की सत्य घटनाओं और अपने राजाओं के चरित्रों और उनके राज्यकाल की बातोंको लिखना भी नहीं जानते थे?"

निःसन्देह कर्नल टाड साहबका कथन अक्षरशः सत्य है। कितने मुसलमान बादशाहोंने धर्मान्धता और अनुदारता के कारण हमारे यहाँ कितने ही अमूल्य ग्रन्थोंको नष्ट करवा डाला था। कौन नहीं जानता कि औरंगजेब ऐतिहासिक ग्रन्थोंका घोर विरोधी था? लोग कहते हैं, कि मिश्र देशके एलेग्जेण्ड्रिया के पुस्तकालय के जला देनेके कारण मनुष्य जाति की उन्नति एक सहस्र वर्ष पीछे फेंक दी गई; कौन अनुमान कर सकता है उस महान् और भयंकर हानि का जो मनुष्य जाति को भारतवर्षके पुस्तकालयोंके जलानेसे हुई! हा! अरब निवासियों, तातारों, और अफगानोंकी धर्मान्धताने मनुष्य

जातिके सैंकड़ों वर्षोंके प्रयत्न को, जो पुस्तकों के रूपमें मौजूद था, रातमें मिला दिया !! राय बहादुर शरतचन्द्र दास ने मार्च सन् १९०६ के 'हिन्दुस्तान रिव्यूमें' लिखा था:—

"The temple of Odantpuri Vihara, which is said to have been loftier than either of the two (Buddha Gaya and Naland) contained a vast collection of Buddhist and Brahmanical works, which, after the manner of the great Alexandrian Library was burnt under the orders of Mohamed Ben Sam, general of Bakhtiyar Khilji, in 1212 A. D."

"ओदन्तपुरी विहारके मन्दिरमें, जो कि नालन्द और बुद्ध गया दोनोंके मन्दिरोंसे अधिकतर ऊँचा था, हजारों बौद्ध और पौराणिक ग्रन्थ एकत्रित किये हुये रक्खे थे। जिस प्रकार कि एलैग्जैण्ड्रियाका पुस्तकालय नष्ट कर दिया गया था, उसी प्रकार बख्तियार खिलजी के जनरल मोहम्मद बेनसामकी आज्ञासे यह पुस्तकालय भी जला दिया गया।" और भी दृष्टान्त लीजिए, सुल्तान अल्लाउद्दीन खिलजीने अन्हलवाड़ा पाटनका प्रसिद्ध पुस्तकालय जलवा दिया था। तारीख फीरोजशाहीमें लिखा है कि, फीरोजशाह तुगलकने कोहन के एक बड़े भारी संस्कृत पुस्तकालय को अग्निद्वारा भस्म करा दिया था। सैयद गुलाम हुसैन अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सैर मुतखरीन' (जिल्द १ पृष्ट १४०) में लिखते हैं कि औरंगजेब बड़ा ही कट्टर मुसलमान था और जहाँ कहीं और जब कभी उसे हिन्दुओं की पुस्तकें मिलतीं तो वह उन्हें जला देता था !

इस प्रकारके और भी कितने ही दृष्टान्त दिये जा सकते हैं, लेकिन स्थानाभावके कारण हम अधिक दृष्टांत नहीं दे सकते; इन्हीं से पाठक यवनधर्मान्धता का अनुमान कर सकते हैं। ऐसी दशामें जो लोग यह प्रश्न करते हैं कि 'प्रवासी भारतवासियों का प्राचीन इति-

हास क्यों नहीं मिलता !' उन्हें उपर्युक्त बातों पर ध्यान देना चाहि
हमारा दृढ़ विश्वास है कि हमारे धार्मिक ग्रन्थों के साथ कितने ही ऐ
हासिक ग्रन्थ भी विरोधियोंके द्वारा भस्म कर दिये गये।

यद्यपि किसी विशेष पुस्तक में इस बातका वर्णन नहीं मिलता कि
प्राचीन काल के भारतवासियोंने किस किस समय में और कहां कहा
प्रवास किया, लेकिन इस बात के प्रमाण तो भिन्न भिन्न पुस्तकों में
कितने ही पाये जाते हैं कि भारतवासियों ने बहुतसे देशोंमें अपने
धर्मका प्रचार किया था और वहाँ अपने उपनिवेश स्थापित किये थे।

हमारे प्राचीन उपनिवेश

मिश्र देश

मिश्र देशमें भारतवासियोंने अपना सबसे पहिला उपनिवेश
बनाया। अनुमानतः सात आठ हज़ार वर्ष व्यतीत हुये होंगे,
व कि बहुतसे भारतीय अपने देशसे निकलकर मिश्रमें जा बसे।
वे नामक, एक साहब जिनका ज्ञान कि प्राचीन मिश्रके विषयमें
ते अधिक बढ़ा हुआ है, एक जगह लिखते हैं:—

Indians migrated from India long before historic me-
, and crossed that bridge of nations, the Isthmus of
to find a new fatherland on the banks of the Nile"

र्थात्—'भारतवासियोंने उस ज़मानेमें जिसका कि इतिहास
पता नहीं, विदेशप्रवास किया और स्वेज़के मुहानेको प
होंने नील नदीके तटस्थ देशको अपनी नवीन मातृभूमि बनाया।

कई वर्ष हुये, न्यूयार्क (अमेरीका) के ए. डी. मार साहबने 'इण्डियन रिव्यू' में एक लेख लिखा था। इस लेखमें उन्होंने सिद्ध किया था कि साढ़े तीन हज़ार वर्ष पूर्व भारतवासी, व्यापार आदि के लिये विदेशों को केवल जाते ही न थे, बल्कि वह मिश्र देशमें जाकर बस भी गये थे। इस बात के कितने ही प्रमाण मिलते हैं कि मिश्र में पहिले पहिल लंकानिवासी समुद्र के मार्ग से अरब, ऐबीसीनिया या एथिओपिया होकर गये; तदनन्तर वहाँ मालवा, कच्छ, उड़ीसा और बंगाल की खाड़ी के आसपास के रहने वाले पहुँचे। मिश्रवाले अपने पहिले राजा और धर्मशास्त्रप्रणेता का नाम 'मेनिस' बतलाते हैं। यह शब्द मनु का अपभ्रंश है। केवल मिश्रवालों ने ही नहीं, बल्कि उस समय की अन्य जातियों ने भी मनु को मानिस, मनस, मनः, मने, मन्नु इत्यादि नामों से अपना व्यवस्थापक माना है।

भारत और मिश्र के प्राचीन सम्बन्ध के बहुतसे प्रमाण पाये जाते हैं। मिश्र की एक प्राचीन जाति का नाम दानव है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि 'दानव' शब्द पुराणों में सैकड़ों जगह आया है। मिश्र की इमारतें गुफा और मन्दिर सब हिन्दुस्तानी ढङ्ग के हैं। मिश्र की लगभग साढ़े तीन हज़ार वर्ष पुरानी कबरों में नील, इमली की लकड़ी और ऐसी ही अन्य कई चीजें मिली हैं, जो केवल भारतवर्ष-में ही पैदा होती हैं।

हमारे यहाँके सिक्कोंके नाम भी मिश्रमें प्रचलित थे। यथा माशा, सिकल (सिक्का), दीनारस (दीनार)। वहाँके नाप तोल इत्यादिके माप भी हिन्दुस्तानकेही समान थे। मार्टन नामक एक साहबने लिखा है कि मसाला लगे हुए मुर्दोंकी सैंकड़े पीछे अस्सी खोपड़ियाँ आर्य जातिकी थीं। मिश्रमें बहुतसी जगहोंके नाम जैसे नील, शिव और मेरु इत्यादि भारतीय नामोंकी नकल हैं।

श्रीयुत काशीप्रसादजी जायसवाल एम. ए. बेरिस्टर एट. ला. ने 'माडर्न रिव्यूमें' एक लेख लिखा था, जिस में उन्होंने प्रमाणित किया था कि, नील नदी का नाम प्राचीन काल में भारतवासियों को ज्ञात था और नील नदी की उत्पत्ति का आविष्कार उन्होंने ही किया था। हमारे पुराणोंमें जिस पवित्रसलिला काली वा कृष्णा (अथवा नीला) नदी का वर्णन है वह ईजिप्ट की नील नदी ही है; और बर्बर देश तथा कुशाद्वीपस्थ मिश्र देश, जहाँ होकर यह नदी बही है, आजकल ऐबीसीनिया और ईजिप्ट के नाम से पुकारे जाते हैं।

इन सब बातों से यह स्पष्टतया सिद्ध होता है कि, भारतवासी उ प्राचीन काल में मिश्र देश में जाकर बसे थे।

जावा द्वीप

मिश्र के अतिरिक्त हमार पूर्वजोंने विदेशों में कितने ही और उपनिवेश भी स्थापित किये थे। आज कल जिसे जावा कहते हैं हमारा प्राचीन यवद्वीप नामक उपनिवेश है। रामायणमें जावा जिक्र करते हुए हमारे आदि कवि महात्मा वाल्मीकि लिखते हैं:—

"यत्नवन्तो यवद्वीपः सप्तराज्योपशोभितः।
सुवर्णरूप्यकद्वीपं सुवर्णकरमण्डितम्॥
यवद्वीपमतिक्रम्य शिशिरो नाम पर्वतः।
ततो रक्तजलं प्राप्य शोणाख्यं शीघ्रवाहिनम्
गत्वा पारं समुद्रस्य सिद्धचारणसेवितम्॥
पर्वतःप्रभवाः नद्यः सुभीमबहुनिष्कराः।
ततः समुद्रद्वीपांश्च सुभीमान्द्रष्टुमर्हथ॥"

इस द्वीप का नाम यवद्वीप इस लिये पड़ा कि पहिले यहाँ के जौ बहुत अच्छे होते थे। भारतवासियों ने जावा को कब अपना उपनिवेश बनाया इस बात का पता लगाना अत्यन्त ही कठिन है। कुछ लोगों का अनुमान है कि, आन्ध्र राजाओं ने कितने ही आदमियों को मलाया द्वीपसमूह में रहनेके लिये भेजा। ख्रीष्ट शताब्दी के प्रारंभमें भारतवर्षमें आन्ध्र राजाओं का सिक्का जमा हुआ था; उन दिनों मगध का राज्य भी इन्हीं लोगों के हाथ में था, अतएव यह बहुत सम्भव है कि इन महत्त्वाकांक्षी राजाओं को यह बात सूझी हो कि समुद्रयात्रा कर के दूसरे स्थानों पर भी अपना आधिपत्य जमाना चाहिये। जेम्स फर्गुसन साहबने लिखा है कि हिन्दू लोगोंने जावा को सन् ईसवी की पहिली शताब्दी में भारतीय उपनिवेश बना लिया था। माउण्ट स्टुआर्ट ऐलफिस्टन साहबने लिखा है:—

"But whatever gave the impulse to inhabitants of the coast of Coromandal, it is from the north part of that tract that we first hear of Indians who sailed bodily into the open sea. The histories of Java give a distinct account of the numerous bodies of Hindus from Oling (Calinga) who landed on their Island, civilised the inhabitants and who fixed the date of their arrival by establishing the era still subsisting, the first year of which fell in the 75th year before Christ."

अर्थात्—"कारोमंडल के किनारे के निवासियों को भारत से दूर के देशों में प्रवास करने के लिये चाहे किसीने ही उत्तेजना क्यों न दी हो पर यह निर्विवाद सिद्ध है कि, कारोमंडल के उत्तरीय भाग के लोगोंने ही पहिले पहिल एक झुंड बनाकर समुद्रमें यात्रा की। जावा के इतिहासों में कितनी ही जगह यह स्पष्टतया लिखा है कि हिन्दुओंके अनेक समूह क्लिङ्ग (कलिङ्ग) देश से आकर इस द्वीप में बसे, यहाँके निवासियों को सभ्य बनाया और अपने आने की यादगार में उन्होंने एक सन् स्थापित

किया जो कि अब तक प्रचलित है। इस सनका पहिला साल, सन् ईसवीके ७५ वर्ष पहिले प्रारम्भ हुआ था।"

J. F. schellend साहब ने लिखा है कि 'पश्चिमीय जावा में जो वेङ्गीके शिलालेख पाये जाते हैं वे पाँचवी या छटवीं शताब्दी के हैं अं उन में लिखे हुये कलिङ्ग शब्दका अभिप्राय हिन्दुस्तान के उस भाग है, जिस से कि पहिले पहिल हिन्दू लोग इस द्वीप में आकर बसे।'

ऐलफिस्टन साहबने लिखा है कि, फाहियान नामक चीनी यात्री जब सन् ४१२ में जावा को गया था, तो उसे ज्ञात हुआ कि जावामें बिल्कुल हिन्दू ही हिन्दू रहते हैं। फाहियानने लिखा है कि गंगा से सीलोन तक और सीलोन से जावा तक में जिन नावों में बैठ कर ग था उनके खेनेवाले सब ब्राह्मणधर्म के थे।

जावामें कितनी ही वस्तुयें ऐसी पाई जाती हैं, जो इस बात की अकाट्य प्रमाण हैं कि अतीत काल में इस देश के निवासी भारतवासियों द्वारा शिक्षित और सभ्य बनाये गये थे। यद्यपि जावा में सर्व साधारण की भाषा 'मलाया' है, लेकिन 'पवित्र भाषा' जिसमें कि इतिहास और कविता के ग्रन्थ पाये जाते हैं और जो कि शिलालेखों में लिखी हुई है, संस्कृत की एक शाखा है। इस भाषामें व्रतयुद्ध (भारतीय युद्ध) है। इस में कौरव पाण्डवों के युद्ध का वृत्तान्त है। 'अर्जुन विवाह' नामक एक ग्रन्थ अत्यन्त प्राचीन है फिस्टन साहब ने लिखा है कि जावाके प्राचीन कवियों ने महाभ राजाओं, देशों और नायकोंके नाम अपने यहाँके ग्रन्थों में खूब हैं। यही कारण है कि जावा के आदिम निवासी अब भी यही स हैं कि महाभारत का घोर युद्ध जावा में हुआ था, भारतवर्ष में न जावामें हिन्दू और बौद्ध मन्दिरोंके कितने ही खण्डहर पाये जाते ...दिरों के नाम यह हैं:—चण्डी शिव, चण्डी विष्णु, चण्डी बु

अर्जुन, चण्डी भीम, चण्डी घटोत्कच, चण्डी सरस्वती, चण्डी
। जावा की भाषा में चण्डी के मानी मन्दिर के हैं। जावा के
हाड़ों और नदियों के नाम भी सुन लीजिये; अर्जुन, सुमेरु, रावण
ागवन्ता, सरयू, प्रागा, और वृन्दा इत्यादि । प्रान्तोंके नाम भी
शब्दों के अपभ्रंश हैं; यथा जो कजाकर्ता (योग्यकर्ता), मेदिन
ी), केदिरी (केदारि)।

वा के प्राचीन इतिहास के अन्वेषकों ने पता लगाया है कि आदित्य-
ामक राजाने जावा को पहिले पहिल भारतीय उपनिवेश बनाया।
यधर्म हिन्दू मत का अनुयायी था। तदनन्तर पूर्णवर्मा, शिव-
र्णप्रभु, कीर्तिनागर, जयश्री, विष्णुवर्द्धिनी, हयवर्द्धन, अभ्र-
और उदयन इत्यादि राजाओंने राज्य किया। जावा के राज्यों
ोपहित नामक राज्य सबसे बड़ा हिन्दू राज्य था।

ावा हिन्दुओं के हाथसे कैसे जाता रहा ?

यह द्वीप मुसलमानों के भी हाथ में बहुत दिनों तक नहीं रहा। सन् १५५४ ई. में पुर्तगाल वालों ने इस द्वीप में प्रवेश किया। इस के कुछ साल बाद ही डच लोगों ने जावा में डेरा आजमाया। डच लोग तिजारत करने के बहाने जावा में आये थे और तिजारत करते करते सारे द्वीप को हड़प कर गये! ऐसा करने में उन्हें लगभग सौ वर्ष लगे। आजकल जावा डच लोगों के ही हाथ में है। उँगली पकड़ते पकड़ते पहुँचा पकड़ने की नीति यूरोपवालों के लिये कोई नवीन नहीं है।

इस प्रकार हमारे पूर्वजों का १५ शताब्दियों का किया कराया सारा काम चौपट हो गया। जिस जावा को हमारे पूर्वज हिन्दुओं ने सभ्य बनाया था, जहाँ कि उन्होंने सैकड़ों और हजारों मन्दिर स्थापित किये थे और जहाँ कि एक दिन हम लोगों का डंका बज रहा था, उसी जावा में जाकर यदि आप किसी भारतवासी हिन्दू को तलाश करोगे तो उसे आप किसी 'कुलीकम्पनी' में कुलीगिरी का काम करते हुये पायेंगे! इस अधःपतन का भी कुछ ठिकाना है?

जावा के मन्दिरों के खण्डहरों को देखकर स्वदेशभक्त भारतवासियों की आँखों में आँसू आये बिना नहीं रह सकते। Boro Budur बोरो बुदूर के हिन्दू मन्दिरों को देखकर विदेशी लोग दाँतों तले उँगली दबाते हैं। Encyclopaedia Britannica [illegible] "Of all the Hindu temples of Java the largest and most magnificent is Boro Budur which ranks among the architectural marvels of the world. If the statues of Boro Budur were placed side by side they would extend for three miles."

अर्थात्—जावा में जो हिन्दू मन्दिर हैं उन में बोरोबुदूर का मन्दिर सब से बड़ा और सब से अधिक शानदार है। यह मन्दिर संसार के शिल्प-सम्बन्धी करिश्मों में एक है। यदि बोरोबुदूर की मूर्तियाँ एक के पास एक [illegible] तो तीन मील की लम्बाई में आवेंगी।

के निवासी मुसलमानी कानून को नहीं मानते थे बल्कि 'कुठार मानव' अर्थात् मनुस्मृति की एक टीका में लिखे हुये नियमों को मानते थे। सुमात्रा में राम, सीता, हनुमान्, सुग्रीव, रुद्र, शिव, महादेव, महेश, बिवानी (भवानी) और दुर्ग (दुर्गा) के मन्दिर पाये जाते हैं।

हयम वरूक (हयवर्द्धन) ने, जो जावा की सर्वोत्तम रियासत माजोपहित का राजा था, १४ वीं सदी में सुमात्रा के भिन्न भिन्न प्रान्तोंके राजाओं को हराया और उनपर अपना कब्जा कर लिया।

एक दूसरे इतिहासलेखक ने लिखा है कि मैनाङ्कबन नामक सुमात्राके एक प्रान्त पर भारतीय सभ्यता का बड़ा असर पड़ा था। मलाया के निवासियोंके यहाँ एक दन्तकथा है, जिससे प्रगट होता है कि श्री तुरीबमन (श्री त्रिभुवन) नामक राजाने सन् ११६० ई. में सिंगापुर को अपने राज्य का केन्द्र बनाया और मलाका में अपने देश के आदमियों को बसाया। सिंगापुर सुमात्रा का एक उपनिवेश था।

माजोपहित के हिन्दू राजाने इसको विजय किया था। 'श्रीभोज' नामका प्रान्त सन् ८५० व सन् ९०० के दर्मियान में कायम हुआ था; यह संस्कृत और पाली भाषाओं के साहित्यके लिये प्रसिद्ध था। पन्द्रहवीं सदी तक सुमात्रामें हिन्दू लोगोंका अधिकार रहा; तत्पश्चात् मुसलमानों के प्रवेश के साथ ही साथ हिन्दुओंकी अवनति शुरू हो गई। मुसलमानोंने "आर्य्य दामर" नामक राजा को जो सुमात्रामें राज्य करता था, मुसलमान बना लिया। इसके कुछ वर्षों बाद सारी प्रजा इस्लामके झंडे के नीचे आ गई। सुमात्रा अब यूरोपियन लोगोंके हाथ में है।

कम्बोडिया (कम्बुज देश)

सन् ईस्वी के कितने ही वर्ष पूर्व भारतके पूर्वीय किनारेके कितने ही निवासी कम्बोडिया में पहुँचे। इन लोगों का वहाँ पर बड़ा प्रभाव पड़ा और इन्होंने वहाँ हिन्दूधर्म और संस्कृत भाषा का खूब प्रचार किया। अँग्रेजी विश्वकोष में लिखा है:—

"The Hinduizing process became more marked about the 5th century A. D, when under Srutvarman, the Khamers as a nation rose into prominence. The name Kambuja, whence the European form Cambodia, is derived from the Hindu Kambu, the name of the mythical founder of the Khamer race."

अर्थात्—"५ वीं शताब्दी में हिन्दूमतका प्रचार जोर शोर के साथ होने लगा और सब बातें हिन्दू ढङ्ग में ढाली जाने लगीं। श्रुतवर्मा के आधिपत्य में खमेर लोगों की जाति ने बड़ी उन्नति की। कम्बुज शब्द संस्कृत के कम्बु शब्दसे निकला हुआ है। कम्बु पौराणिक आख्यानों के अनुसार खमेर जाति के संस्थापक थे। कम्बुज से ही अँग्रेजी नाम कम्बोडिया बन गया है।"

सातवीं शताब्दी के अन्त में श्रुतवर्मा के वंश का अधिकार कम्बोडिया पर से जाता रहा। आठवीं शताब्दी में कम्बोडिया दो भागों में विभक्त हो गया और उन दोनों भागों पर भिन्न भिन्न दो राजा राज्य करने लगे। नवीं शताब्दी में तृतीय जयवर्मा के समय में खमेर जाति अपनी उन्नति की उच्चतम शिखर को प्राप्त हुई। इसी वंशके जमाने में बड़े बड़े हिन्दू मन्दिरों और भवनों का निर्माण हुआ। अङ्कोर नामक नगर यशोवर्मा के राज्यकाल में सन् ९०० ईस्वी के लगभग बनवाया गया। दसवीं शताब्दी में बौद्धधर्म का प्रचार कम्बोडिया में बढ़ने लगा।

बारहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें 'अङ्कोर वट' नामक एक हिन्दू मन्दिर ब्रह्माकी उपासनाके लिये, दिवाकर नामक एक ब्राह्मणकी देखभालमें बनवाया गया। दिवाकर उन दिनों एक अत्यन्त ही प्रभावशाली आदमी था और तत्कालीन राजा लोग उसकी बड़ी इज्जत करते थे। यह मन्दिर जो पहिले हिन्दूधर्मवालों का था, बौद्धों का प्रभाव बढ़ने पर बौद्धमतवालों का होगया।

कम्बुज देश के हिन्दू राजा आठवें जयवर्माने चम्पाराज्य को जीतकर अपनी सल्तनत में मिला लिया। जिन देशोंको आजकल कोचीन, चाइना और अनाम कहते हैं, वह पहिले चम्पाराज्य के नाम-से पुकारे जाते थे।

दुर्भाग्यवश न हमारे हाथ में कम्बोडिया रहा और न कोचीन चाइना व अनाम; अब तो हमारे हाथ में 'कुलीगीरी' रह गई है। इस बातको सोचकर सहसा हमारे मुँहसे यही वाक्य निकल पड़ता है।

'From what great heights to what pit fallen'!

अर्थात्—'कितने उच्च स्थान से अधोपतित होकर हम कितने नीचे गढ़ेमें आ पड़े हैं!' हरेरिच्छा बलीयसी!!

बाली और लम्बक द्वीप

हम लिख चुके हैं कि जावा में हिन्दू धर्मका किस तरह लोप हुआ। जावा के अधिकांश हिन्दू मुसलमान बना लिये गये थे। न कुछ लोग ऐसे भी थे, जिन्होंने इस्लाम मत को स्वीकृत नहीं और इस कारण यह लोग बड़े बड़े द्वीपों को जहाँकि मुसलमानी ज्य हो गया था छोड़कर छोटे छोटे टापुओं में जा बसे। बाली

और लम्बक द्वीप इसी प्रकार के छोटे टापुओं में से हैं। यह द्वीप जावाके पूर्व में स्थित हैं और इन पर डच लोगों का अधिकार है। बहुत से लोगों का यह भी मत है कि पहिली शताब्दी में हिन्दू लोग यहाँ आकर बसे थे। अँग्रेजी विश्वकोष में लिखा है:—

"It has been supposed that there must have been Indian settlers here before the middle of the 1st century, by whom the present name Probably cognate with Balin (strong), in all likelihood was imposed."

अर्थात्—"यह अनुमान किया गया है कि, पहिली शताब्दी के प्रथम अर्द्धभाग में हिन्दू लोग यहाँ आ बसे थे। बाली शब्द संस्कृत के 'बलिन्' से बहुत मिलता जुलता है। सम्भवतः इन्हीं लोगोंने इस द्वीप का नाम बाली रक्खा होगा।"

बाली और लम्बक के आस पास बीसियों द्वीप हैं। लेकिन हिन्दू लोग केवल इन्हीं दोनों द्वीपों में रह गये हैं। इन द्वीपों के आदिम-निवासियों को शशक कहते हैं। इन्हीं को हरा कर हिन्दुओं ने अपना राज्य स्थापित किया था। यहाँ के अधिकांश निवासी हिन्दू हैं। यह सब शैव धर्म के अनुयायी हैं। शैव लोग चार भागों में बँटे हुये हैं, ब्राह्मण, सत्रिय, विशिय और शूद्र। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि विशिय शब्द वैश्य और सत्रिय शब्द क्षत्रिय का परिवर्तित रूप है। इन द्वीपों की शासनपद्धति हमारे यहाँ के पुराने ढङ्ग की पद्धति से बहुत मिलती जुलती है। यहाँ कई हिन्दू राजा हैं। चोरों को यहाँ प्राणदण्ड दिया जाता है। व्यभिचारी (स्त्री पुरुष दोनों ही) बाँध कर समुद्रमें फेंक दिये जाते हैं, और सतीत्व की इतनी इज्जत की जाती है कि व्यभिचारिणी स्त्री का पता लगते ही वह फौरन मार डाली जाती है। यहाँ के वैश्य और शूद्र लोग मूर्तिपूजा करते हैं, लेकिन ब्राह्मण और

क्षत्रिय मूर्तिपूजा नहीं करते। मन्त्रों का उच्चारण करते हुये यह
‘ ओंग ’ कहते हैं, जो ‘ ओ३म् ’ का अशुद्ध रूप है। शिवजी
आराधना करते हुये यह ‘ ओंग शिवचतुर्भुज ’ कहते हैं, जो ‘ ओ३म्
शिव चतुर्भुज ’ का अपभ्रंश है। सती होने की प्रथा यहाँ अब तक
प्रचलित है। यहाँ पर शालिवाहन का शकाब्द व्यवहार में लाया
जाता है। यहाँ पर कितने ही संस्कृत ग्रन्थ पाये जाते हैं।

इन दोनों द्वीपों का इतिहास तिमिराच्छन्न है। हाँ इतना अवश्य
ज्ञात हुआ है, कि बहुबाहु नामक राजा मुसलमानों के भय से कितने
ही शैवमतावलम्बी हिन्दुओं को लेकर जावा से यहाँ आया था।

आज भी यह द्वीप हमारे पूर्वजों के अदम्य उत्साह और असाधारण
रिश्रम की कीर्ति को प्रकट कर रहे हैं और उनके गौरव के चिन्ह हैं।
न्तु खेद की बात है कि हम लोगों ने इन द्वीपों की ओर बिल्कुल
ध्यान नहीं दिया! यदि यही दशा रही तो वह दिन दूर नहीं है, जब
इन द्वीपों के निवासी, जो इस समय हिन्दू या यों कहिये अर्द्ध-हिन्दू हैं,
मुसलमान या ईसाई बन जावेंगे! इस समय भी उनके रीति रिवाजोंमें
आश्चर्यजनक परिवर्तन हो गया है। यहाँ के ब्राह्मण लोग यज्ञोपवीत
धारण नहीं करते। पहिले यहाँ संस्कृत का प्रचार था, लेकिन अब
यहाँ की संस्कृत में इन द्वीपों की तथा आस पास के द्वीपों की असभ्य
भाषायें मिल गई हैं और एक नवीन खिचड़ी भाषा बन गई है। यहाँ
के हिन्दुओं के आचार-व्यवहारों में भी बड़ी तब्दीली हो गई है। य
के क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र सब के सब मांसभक्षी बन गये हैं; और त
और वह गोमांस तक खाते हैं! मुर्गी और सुअर का माँस तो इन
लोगों को अत्यन्त प्रिय है!

यदि कोई हमसे पूँछे कि इस परिवर्तन के लिये अधिक दोषके भागी
ौन हैं? तो हम एक साथ यही उत्तर देंगे “ हम ही लोग ”। जब

से हम लोगों ने समुद्रयात्रा को घोर पाप समझना शुरू किया बस तभीसे प्रवासी भारतीयों का सत्यानाश शुरू हुआ। यदि बाली तथा लम्बक को हमारे यहाँ से धर्मप्रचारक जाते रहते और हमारा उनका सम्बन्ध बराबर बना रहता तो क्या आज हमें इन द्वीपों में बचे बचाये हिन्दू धर्म के लोप होने का भय होता ? कदापि नहीं। क्या कोई माई के लाल ऐसे हैं जो अपने पूर्वजों के, जिन्होंने हजारों मील दूर जाकर और सैकड़ो कष्ट सहकर भारतीय उपनिवेश स्थापित किये थे, कीर्तिचिन्हों को नष्ट होने से बचावें ?

भिन्न भिन्न स्थानोंमें हमारे पूर्वजोंका प्रवास

प्राचीन कालमें भारतमहासागर के अधिकांश द्वीपसमूह भारतवर्षमें ही परिगणित थे। वायु पुराण में लिखा है:—

"अङ्गद्वीपं यवद्वीपं मलयद्वीपमेव च।
शंखद्वीपं कुशद्वीपं वराहद्वीपमेव च।
एवं षडेते कथिता अनुद्वीपाः समन्ततः।
[illegible]"

influence was at one time widespread throughout Malayan lands, and of whose religious teaching remnants still linger in the superstitions of the Malayas and are preserved in some purity in Lombok and Bali."

अर्थात्—"कुछ लोगों का सिद्धान्त है कि यह खानें भारतवर्ष के निवासियों की खोदी हुई हैं, जिनकी सभ्यता के प्राचीन चिन्ह जावा तथा अन्य स्थानोंमें पाये जाते हैं, जिनका प्रभाव एक समय सारे मलाया देशों में था, और जिनकी धार्मिक शिक्षाओं के बचे खुचे चिन्ह मलाया लोगों के अन्ध विश्वासों में पाये जातेहैं। हिन्दू सभ्यता के यह चिन्ह बाली और लम्बक द्वीपोंमें अब भी स्पष्टतया दीख पड़ते हैं।"

हमारे यहाँ भी इस तरह के प्रमाण मिलते हैं कि रामचन्द्रजी लङ्काको विजय करके लौट आनेके अनन्तर भारतवासी सुवर्ण ...ने के लिये बराबर वहाँ (लङ्का को) जाया करते थे और लङ्का मलाया द्वीप के निकट ही थी। स्कन्द पुराण (नागर खण्ड ९४ अध्याय) में लिखा भी हैः—

"भविष्यन्ति कलौ काले दरिद्रा नृप मानवाः।
सेऽत्र स्वर्णस्य लोभेन देवतादर्शनाय च।
नित्यं चैवागमिष्यन्ति त्यक्त्वा रक्षःकृतं भयम् ॥"

बोर्नियोः—बोर्नियों में भी कभी हमारे पूर्वजों का प्रभुत्व था। बोर्नियों में प्राचीन शिल्पकला के जो चिन्ह पाये जाते हैं, उनसे प्रगट होता है कि यहाँ अवश्य कभी न कभी हिन्दुओं का राज्य रहा होगा। अँग्रेजी विश्वकोष का लेखक बोर्नियो के इतिहास के विषय में लिखता हैः—

"The only archaeological remains are a few Hindu temples, and it is probable that the early settlement of the south-eastern portion of the island by the Hindus dates from sometime during the first six centuries of our era."

श्याम

श्याम देश की रीति रिवाज और भाषा इत्यादि को देखकर यह स्पष्टतया ज्ञात हो सकता है कि यहाँ पहिले हिन्दू धर्म के प्रचारक आये थे। श्याम की भाषा संस्कृत की सहायता से परिपुष्ट हुई है और उनके धार्मिक और राजकीय क्रियाकाण्ड भी अधिकांश में हिन्दूधर्म के अनुकरण हैं। वहाँ के मन्दिरों में शचीपति इन्द्र, ब्रह्मा और अन्यान्य हिन्दू देवी देवताओं की मूर्तियाँ विद्यमान हैं। वहाँ जो प्राचीन कथायें पाई जाती हैं वह सब हमारे ही यहाँ से ली गई हैं। अँग्रेजी विश्वकोष में लिखा है:—

"The prose literature of Siam consists largely of mythological and historical fables, almost all of which are of Indian origin though many of them have come to Siam through Cambodia."

अर्थात्—"श्याम का गद्य साहित्य अधिकांशमें पौराणिक और ऐतिहासिक कथाओंसे भरा हुआ है; यह सब कथायें भारतवर्ष के साहित्य से ली गई हैं, यद्यपि इनका प्रचार श्याम में कम्बोडियाके द्वारा हुआ है।"

श्याम की भाषा में एक अति प्राचीन पुस्तक है, जिस का नाम 'रामाकीन' है; यह रामायण के आधार पर लिखी हुई है।

एक दूसरी पुस्तक 'उनारुद' नाम की है, जिसमें 'अनुरुद्ध' का जीवनचरित्र वर्णित है। श्यामवासियों के धर्मग्रन्थों और ऐतिहासिक पुस्तकों में हिन्दू शास्त्रोंका पुनः पुनः उल्लेख किया गया है। श्याम की भाषामें तीन वेदों को 'त्रेफेत' और शास्त्रों को 'सात' कहते हैं। इस भाषा में धर्मशास्त्रपर जो पुस्तकें हैं, वे सब मनुस्मृति के आधारपर लिखी गई हैं। 'देवता' को उनके यहाँ 'देउदा' के

सिंहल द्वीप में भारतवासी कब गये ?

इस में शक नहीं कि बहुत पुराने ज़माने से हमारा सम्बन्ध सिंह
द्वीप से चला आ रहा है । महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ
सिंहलद्वीप के निवासियों ने बहुत से मोती उपहार में भेजे थे, यथा-

समुद्रसारं वैदूर्य्य मुक्तासंघास्तथैव च ।
शतशश्च कुथांस्तत्र सिंहलाः समुपाहरन् ॥ (म० सभापर्व)

बौद्धों के अति प्राचीन ग्रन्थ 'महावंश' में लिखा है कि विजय
नामक एक भारतीय वीर ने सन् ईस्वी के ५४३ वर्ष पूर्व सि
द्वीप को विजय किया था । विजयसिंह एक बंगाली था; अपने दे
से निकाले जाने के पश्चात् वह अपने साथियों के संग जहाज़ प
चढ़ा और समुद्र में बड़ी बड़ी आफतों के झेलने के बाद सिंहलद्वी
में पहुँचा । विजयसिंह ने सिंहलद्वीप के एक राजा की कन्या के
साथ विवाह किया और फिर उस राजा की मदद से सारे सिंहल द्वीप
पर अपना अधिकार कर लिया । सन् ईस्वी के ३०० वर्ष पहिले अशोक
का पुत्र महेन्द्रसिंह सिंहलद्वीप को गया और उसने वहाँ के निव
को बौद्ध बनाया । इसके बाद लगभग डेढ़ हजार वर्ष तक किसी वि
जाति का आक्रमण सिंहलद्वीप पर नहीं हुआ । तदनन्तर यहाँ प
पहिले पुर्तगालवाले आये, फिर यह डच लोगों के अधिकार में आ
आज कल यह हमारी अँग्रेज सरकार के शासनाधीन है ।

यह सब तो हुई प्राचीन काल की बातें, अब आज कल भारत
वासियों की सीलोन में क्या स्थिति है और वहाँ के प्लाण्टर लोग
भारतीय मजदूरों के साथ कैसा बर्ताव करते हैं, इसका वर्णन हम
आगे चलकर करेंगे । सीलोन के अतिरिक्त लक्षद्वीप और मालद्वीप में
भी भारतवासी जाकर बसे थे ।

In Du Perron's Zind Dictionary, six or seven were pure Sanskrit."

अर्थात्–"मुझे इस बात को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि डू पैरन साहब के जिन्द कोषमें साठ या सत्तर फीसदी शब्द शुद्ध संस्कृत के हैं।"

यह तो सब जानते ही हैं कि बौद्ध लोग ब्रह्मा, चीन, जापान, तुर्किस्तान, एशिया माइनर और काबुल इत्यादि कितने ही देशों को अपने धर्म का प्रचार करने गये थे। अमेरीका के "हार्पर्स मैगज़ीन" नामक मासिकपत्र में अध्यापक जान फ्रायर ने एक गवेषणापूर्ण लेख लिखकर यह सिद्ध किया था कि अमेरीका का पता बौद्ध लोगोंने ही लगाया था। सुनते हैं कि मेक्सिको में गणेश और राहु की कितनी ही मूर्तियाँ मिली हैं।

फिजी द्वीप के निवासियों के विषयमें मि. जे. डबल्यू बर्टन अपनी पुस्तक 'फिजी आफ टुडे' में ४१ वें पृष्ठपर लिखते हैं कि 'कुछ ऐसे चिन्ह पाये जाते हैं, जिन से यह सिद्ध होता है कि फिजीद्वीप के आदिमनिवासी एशीया की किसी जाति के वंशज हैं। यह लोग कुछ खड़े पत्थरों की पूजा करते हैं, यह बात हिन्दू धर्म की शिवलिङ्गपूजा से मिलती जुलती है। भारतवासियों की तरह यह सांपको पवित्र मानते हैं। तैमिल और तेलङ्ग लोगों में जो मानजे को अधिक सम्मान की दृष्टि से देखने की प्रथा है, वह फिजी के आदिम निवासियोंमें भी प्रचलित है।' इसके आगे बर्टन साहब ने लिखा है:–

"The Fijian language bears marks of Aryan formation, and, strangest of all, quite a respectable list of words can be drawn up in which may be traced, by the ordinary rules of mutation, relationship to the Sanskrit tongue."

अर्थात्–"फिजियन भाषा में ऐसे कितने ही चिन्ह विद्यमान हैं, जिन से यह सिद्ध होता है कि, यह किसी आर्य्य भाषा से निकली हुई

नामसे पुकारते हैं। श्यामवासी कहते हैं कि, इन्द्र के उद्यान में ए
'काम फ़ुक' नामक वृक्ष है। यह शब्द कामवृक्ष का अपभ्रंश ज्ञात
होता है। वह लोग विष्णु, गरुड़, नाग, वायु, वरुण और वीणापाणि
की भी पूजा करते हैं। श्यामवासियों में कितने ही शैव भी दीख प
हैं। शिव के त्रिशूल को श्याम की भाषा में 'त्रि' कहते हैं।

किम्बहुना इन सब बातोंपर ध्यान देते हुये हम दृढ़तापूर्वक क
सकते हैं, कि श्याम में बौद्ध धर्मके प्रचार के पहिले हिन्दूधर्म का प्रचार
था और हिन्दू लोगोंने ही श्यामवासियों को सभ्यताका पाठ पहि
पहिल पढ़ाया था।

इन के सिवाय और भी कितने ही स्थान ऐसे हैं, जहाँ भारतीय
सभ्यता के चिह्न पाये जाते हैं, जो इस बात के प्रमाण हैं कि भारतवासी
वहाँ गये थे। अपनी Science of language 'भाषाविज्ञान' नामक
पुस्तकमें प्रोफेसर मेक्समूलर साहब एक जगह लिखते हैं:—

"But the word '*Arya*' was more faithfully preserved
the Zoroastrians, who migrated from India to the North
west and whose religion has been preserved to us in
Avesta, though in fragments only .. .. The Zoro
were a colony from Northern India."

अर्थात्—"आर्य्य शब्द को ज़ोरास्ट्रियन (पारसी) लोगों ने
त्परता के साथ रक्षित रक्खा था। यह ज़ोरास्ट्रियन लोग भारतवर्ष से
श्चिम के कोने की ओर को गये, यह और इनके धर्म के कु
न्दावस्ता में पाये जाते हैं...... ज़ोरास्ट्रियन लोग पारसि में
त से आकर बसे थे।

सर विलियम जोन्स ने एक स्थानमें लिखा है:—

"I was not a little surprised to find that out of ten wo

In Du Perron's Zind Dictionary, six or seven were pure sanskrit."

अर्थात्—"मुझे इस बात को देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि डू पैरन साहब के जिन्द कोषमें साठ या सत्तर फीसदी शब्द शुद्ध संस्कृत के हैं।"

यह तो सब जानते ही हैं कि बौद्ध लोग ब्रह्मा, चीन, जापान, तुर्किस्तान, एशिया माइनर और काबुल इत्यादि कितने ही देशों को अपने धर्म का प्रचार करने गये थे। अमेरीका के "हार्पर्स मैगज़ीन" नामक मासिकपत्र में अध्यापक जान फ्रायर ने एक गवेषणापूर्ण लेख लिखकर यह सिद्ध किया था कि अमेरीका का पता बौद्ध लोगोंने ही लगाया था। सुनते हैं कि मेक्सिको में गणेश और राहु की कितनी ही मूर्तियाँ मिली हैं।

फिजी द्वीप के निवासियों के विषयमें मि. जे. डबल्यू बर्टन अपनी पुस्तक 'फिजी आफ टुडे' में ४१ वें पृष्ठपर लिखते हैं कि 'कुछ ऐसे चिन्ह पाये जाते हैं, जिन से यह सिद्ध होता है कि फिजीद्वीप के आदिमनिवासी एशिया की किसी जाति के वंशज हैं। यह लोग कुछ खड़े पत्थरों की पूजा करते हैं, यह बात हिन्दू धर्म की शिवलिङ्गपूजा से मिलती जुलती है। भारतवासियों की तरह यह सांपको पवित्र मानते हैं। तैमिल और तेलङ्ग लोगों में जो मानजे को अधिक सम्मान की दृष्टि से देखने की प्रथा है, वह फिजी के आदिम निवासियोंमें भी प्रचलित है।' इसके आगे बर्टन साहब ने लिखा है:—

"The Fijian language bears marks of Aryan formation, and, strangest of all, quite a respectable list of words can be drawn up in which may be traced, by the ordinary rules of mutation, relationship to the Sanskrit tongue."

अर्थात्—"फिजियन भाषा में ऐसे कितने ही चिन्ह विद्यमान हैं, जिन से यह सिद्ध होता है कि, यह किसी आर्य्यभाषा से निकली हुई

है, और सब से अधिक आश्चर्य्य की बात तो यह है कि फ़िजियन भाषा के ऐसे अनेक शब्दों की सूची तैय्यार की जा सकती है, जो कि व्यवच्छेद के साधारण नियमों के अनुसार संस्कृत भाषा से निकले हुये सिद्ध किये जा सकते हैं।"

इस अध्याय से पाठकों को पता लग गया होगा कि, प्राचीन में हमारे पूर्वजों का कितना महत्त्व था और उन्होंने दूसरे देशों अपने उपनिवेश कैसे स्थापित किये थे। अगले अध्याय में हम दिखाने का प्रयत्न करेंगे कि, आधुनिक काल में विदेशों में हमा जाना किस प्रकार प्रारम्भ हुआ।

द्वितीय अध्याय

आधुनिक काल में हमारा जाना कैसे प्रारम्भ हुआ

दासत्व प्रथाः—सभ्यता की डींग मारनेवाली श्वेताङ्ग जातियों ने कृष्णवर्ण मनुष्यों पर जो जो अत्याचार और अन्याय किये हैं, उनसे गोरे लोगोंका इतिहास सर्वदा के लिये कलङ्कित हो गया है। इन अमानुषिक अत्याचारों की कथा बड़ी हृदयभेदक है। पूर्वकाल में यूरोपीय वणिकगण अफ्रिका के किनारे से हबशियों को बलपूर्वक पकड़कर अथवा उन्हें कोई प्रलोभन देकर गुलाम बना दूसरे देशों को लाते थे और वहाँ के बाजारों में इन हतभाग्यों को भिन्न भिन्न प्रदेशों में बेचते थे। यह अर्द्ध-पिशाच वणिक्-गण प्रायः पति और स्त्री को, कन्या और पिता को, माता और पुत्र को, एक दूसरे से अलग करके भिन्न भिन्न खरीददारोंको मोल देते थे और वे बिचारे फिर जीवन पर्यन्त एक दूसरे का मुँह भी नहीं देखने पाते थे। इन लोगों को यह अधिकार भी था कि यह अपने कृष्णवर्ण दासदासियों को यदि चाहें तो मार डालें, और इस अपराध के लिये उनके देश के कानून के मुताबिक उन्हें कोई दण्ड नहीं मिलता था।

इन लोगों ने मनुष्य जातिको दासत्वशृंखलामें किस तरहसे बाँधा इस बात के जानने के लिये यहाँ दासत्वप्रथा का कुछ इतिहास देना अप्रासङ्गिक न होगा। यद्यपि गुलामी की प्रथा बहुत पुराने जमाने

पकड़ कर उन्हें दूसरे देशों में बेचने का व्यापार करने लगे। पहिले तो यह काम कुछ खास खास कम्पनियों के हाथ में था, लेकिन विलियम और मेरी के राज्यकाल में यह अधिकार सब को दे दिया गया कि जो चाहे सो हवशी पकड़े और बेचे! सन् १७०० ई. से लेकर १७८६ तक यानी ८६ वर्ष में ६ लाख १० हजार हवशी अकेले जमैका को (जो कि ब्रिटिश के आधीन था और अब भी है) भेजे गये। अमेरीका और वैस्ट इण्डीज (पश्चिमीय द्वीपसमूह) के ब्रिटिश उपनिवेशों ने सन् १६८० से १७८६ तक यानी लगभग १०० वर्ष के भीतर २१ लाख ३० हजार हवशी खरीदे! लिवरपूल, लन्दन ब्रिटिश और लेंकास्टर के बन्दरगाहों से १९२ अंग्रेजी जहाज गुलामों को लादने के लिये नियुक्त थे* । ऐडवर्डस नामक लेखक ने सन् १७९१ ई. में लिखा था कि अफ्रिका के किनारे यूरोपियन लोगोंने ४० फेक्टरी खोल रक्खी थीं। यह फेक्टरी रुई की नहीं थी, कपड़ों की नहीं थी, जूतों की नहीं थी, बल्कि यह फेक्टरी थीं गुलामों की !! इन चालीस फेक्टरियों में १५ डच लोगों की थीं, १४ अंग्रेज लोगों की, ४ पुर्तगाल वालों की, ४ डेनमार्कवालों की और ३ फ्रांसीसियों की थीं। इस प्रकार यूरोप की अर्थलोलुप जातियाँ दासत्व प्रथा की पृष्ठपोषक ही नहीं वरन् चलानेवाली भी थीं।

सन् १७९० ई. में ७४ हजार हवशी अफ्रिका से गुलाम बनाकर दूसरी जगहों को भेजे गये; इनमें से ३८ हजार अँग्रेज कम्पनियों ने, २० हजार फ्रांसीसी कम्पनियों ने, १० हजार पुर्तगाल की कम्पनियों ने, ४ हजार डच कम्पनियों ने, और २ हजार डेनमार्क की कम्पनियों ने भेजे।

---

* देखो Encyclopaedia Britanica. पृष्ट २२२.

दासत्व प्रथा के अत्याचार

दासत्व प्रथा में जो जो अत्याचार बिचारे कृष्णवर्ण लोगों किये गये वे असंख्य हैं। कितनी ही जगह तो यह हु कि यूरोपियन लोगों ने हवशियों के सरदारों और मुखियों को यूरो की तड़क भड़क की चीजें देकर बहका दिया और इन चीजों के परिवर्तन में बहुत से हवशी मोल ले लिये। यह सरदार और मुखिये गांवों में आग लगा देते थे और ज्यों ही गावों में से वे लोग बा भागते थे, त्यों ही पकड़ कर जहाजों में लादकर और दूसरी जगहों भेज दिये जाते थे। यूरोपियन लोग इन मुखियों को ऐसा करने के लि उत्तेजना और उत्साह देते थे। कितने ही हवशी तो जहाज में लादे जाने के पहिले ही मर जाते थे और १२½ फीसदीकी (यानी हर आठ आदमियों पीछे एक की) वेस्ट इंडीज़ तक पहुँचते पहुँचते ही संसारयात्र समाप्त हो जाती थी। कुछ आदमी द्वीपोंमें उतरते ही मर जाते थे इस प्रकार १०० हवशियों में लगभग ५० आदमी इस काबिल रहते थे कि जिनको उपनिवेशोंके गोरे खरीदें और जो खेतों पर काम कर सकें। खेतों में उन के साथ कैसा बर्ताव किया जाता था और ... सा जीवन व्यतीत करना पड़ता था, इस बात के बतलाने के केवल यह कहना पर्याप्त होगा कि सन् १६९० ई. में जमैका में हजार हवशी थे, इसके आगे २० वर्षोंमें वहाँ ८ लाख और ... लेकिन इन ३० वर्षोंके बाद जब इन हवशियों की गणना की गई तो कुल ३ लाख ४० हजार निकले, यानी ८ लाख ४० हजारमें से ५ लाख हवशी ३० वर्षके अन्दर यमलोकको सिधारे। साइक्लोपीडिया (विश्वकोष) की २५ वीं जिल्दके २२२ वें पृष्ठ में लिखा है—

"One cause which prevented the natural increase of population was the inequality in the numbers of the sexes; in Jamaica alone there was in 1789 an excess of 30,000 males."

अर्थात्–"एक मुख्य कारण हबशी संख्यामें प्राकृतिक वृद्धि न होने का यह था कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियाँ कम भेजी जाती थीं। अकेले जमैकामें ही हबशी पुरुषों की संख्या से हबशी स्त्रियों की संख्या ३० हजार कम थी।"

दासत्वप्रथा का उच्छेद

सब से पहिले डेनमार्क वालों ने अपने यहाँ से दासत्व प्रथा उठा दी। सन् १७९२ ई. में डेनमार्क में एक कानून बनाया गया, जिस का अभिप्राय यह था कि सन् १८०२ ई. से डेनमार्क के अधीन स्थानों में गुलामों की तिजारत बन्द हो जावे। इङ्गलेण्ड ने अपने यहाँ से दासत्व प्रथाको कैसे उठाया इसका वर्णन भी सुन लीजिये। जब उदारहृदय अंग्रेज़ों के कानों तक यह बातें पहुँचीं कि यह हबशी अफ्रिका में किस तरह पकड़े जाते हैं, जहाज़ों में किस तरह भेड़ बकरियों की तरह भरे जाते हैं, उनपर कैसे कैसे अत्याचार किये जाते हैं, तो उन के रोंगटे खड़े होने लगे और वह इस अन्यायसे मुक्त होने का प्रयत्न करने लगे। लार्ड मैन्सफील्ड ने सन् १७७२ ई. में एक हबशी के अभियोग में यह फैसला दिया था कि 'ज्यों ही एक दास ब्रिटिश भूमिपर पैर रक्खे त्यों ही वह स्वतंत्र हो जाता है'। जिन अंग्रेजोंने दासत्व प्रथा के उच्छेद के लिये तन मन धन से प्रयत्न किया उनमें थोमस क्लार्कसन, विलियम विल्बर फोर्स, सर थोमस फोवेल बक्सटन, शार्प मानविल और ब्रूहम साहब के नाम उल्लेख योग्य हैं। विलियम विल्बर फोर्स ने इस प्रथा

के विरुद्ध खूब आन्दोलन किया और जब कभी उन्हें मौका मिला, उन्हों
इस प्रथा के दोषों को House of Commons 'हाउस आफ़ कामन्स' में
प्रगट किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने सन् १७८८ ई. में पार्लीमेण्ट के
सामने एक प्रस्ताव उपस्थित किया था, पर गुलामों का व्यापार करने-
वालों के विरोध के कारण वह प्रस्ताव स्वीकृत न हुआ। इस कार्य
उन्होंने लगातार ४५ वर्ष तक परिश्रम किया और अन्त में गुलामों के
स्वाधीनता का नियम बन जाने पर-अर्थात् अपने जीवन का महान् कार्य
कर चुकनेपर-चौथे ही रोज़ ७५ वर्ष की उम्रमें आप स्वर्गवासी हुये।

थोमस क्लार्कसन-इनका जन्म सन् १७६०ई.में हुआ था। वि
अवस्था में एक बार उन की परीक्षा में एक निबन्ध लिखाया गया था
इस निबन्ध का विषय था, "क्या किसी मनुष्य को यह अधिकार
सकता है कि किसी दूसरे मनुष्य को उस की इच्छा के विरुद्ध गुलाम
बनावे ?" क्लार्कसन को यह विषय बहुत पसन्द था, इस लिए उन्होंने
इस प्रबन्धको बड़ी योग्यतापूर्वक लिखा। अफ्रिका के हबशियोंपर
अत्याचार होते थे, उनकी कथाओं को पुस्तकों में पढ़कर उनके हृद
पर इतना प्रभाव पड़ा कि उन्होंने अपने जीवन का उद्देश्य ही यह
बना लिया कि मैं 'गुलामों की तिजारत' को रोकने के लिये
तन मन धनसे प्रयत्न करूँगा। उन्होंने एक अत्यंत उपयोगी
अँग्रेजी पुस्तक छपवाई, जिसका नाम था "Essay on the slavery
and commerce of the human species" अर्थात् 'दासत्व प्रथा
मनुष्य जाति का क्रय विक्रय'। एक बार क्लार्कसन के मित्र को
ऐसा आदमी मिला था, जो कि हबशियों के पकड़ने में कितने
दिनों तक नियुक्त रहा था। क्लार्कसन को इस आदमी का नाम व पता
कुछ भी ज्ञात नहीं था पर तब भी वह उस की खोज में चल दिये और
उस का पता लगाके ही छोड़ा। उन्होंने सब स्थानों में दासत्व प्रथा

के विरुद्ध सभायें स्थापित कीं। उन्होंने कितने ही अनुभवी आदमियों से बहुत सी ऐसी बातें इकट्ठी कीं, जिनमें कि हवशियों पर किये गये अत्याचारों का वर्णन था और इस प्रकार के ९ आदमियों की गवाही उन्होंने प्रिवी कौंसिल के सामने कराई। सन् १८०८ ई. में उन्होंने 'दासत्व प्रथा के उच्छेद का इतिहास' नामक एक पुस्तक छपवाई। सन् १८२३ ई. में "Anti-slavery Society" दासत्वप्रथा विरोधक समाज की स्थापना हुई। सन् १८४६ ई. में क्लार्कसन की मृत्यु हुई। दीन दुखियों की सहायता करनेवाले ऐसे महापुरुष संसार में विरले ही उत्पन्न होते हैं।

सर थोमस फोवेल बक्सटन—इनका जन्म सन् १७८६ ई. में हुआ था। इन्होंने हाउस आफ् कामन्स में दासत्व प्रथा के विरुद्ध बहुत कुछ काम किया था। ब्रिटिश उपनिवेशों से गुलामी उठा देने और आफ्रिका के आदिम निवासियों की स्थिति सुधारने के लिये इन्होंने जीवन पर्यन्त यथाशक्ति परिश्रम किया, इसी कारण इनके बहुत से मित्र इनके शत्रु बन गये। इन्हें कितनी ही बार निराश होना पड़ा, पर यह अपनी बात पर से नहीं हटे। सन् १८४५ ई. में यह परलोक सिधारे।

शार्प ग्रानविल-इनका जन्म सन् १७३५ ई. में हुआ था, इन्होंने-दासत्व प्रथा के विरोध में कितने ही लेख लिखे थे और अदालतों में भी हवशियों की स्वतंत्रता के लिये इन्होंने बहुत प्रयत्न किया था।

सन् १७८८ ई. में इङ्गलेण्डमें एक कमेटी नियुक्त हुई, जिसका काम दासत्वप्रथा के विषय में रिपोर्ट लिखने का था। सन् १८०६ ई. में मि. फाक्स का यह प्रस्ताव कि 'गुलामी का व्यापार बन्द कर दिया जावे' स्वीकृत हुआ। सन् १८१५ ई. में पुर्तगाल वालों को Equator (भूकक्षा) के उत्तर की ओर के देशों में गुलामों की तिजारत करने की मनाई कर दी गई। इसी लिये सन् १८३० ई. में इङ्गलेण्डने पुर्तगाल

वालोंको ४५ लाख रुपये हर्जाने के लिये और इसी कारण सेनवालों
मी ६० लाख रुपये अंग्रेजों ने दिये। नेपोलियन बोनापार्ट ने फ्रांसीसि
के अधीनस्थ राज्यों से दासत्व प्रथा इसके पहिले ही उठा दी थी।
सन् १८३१ व १८३३ में इङ्गलैण्ड और फ्रान्स में इस प्रकार की सन्धि
हुई कि, यदि हम समुद्रमें जहाजों को गुलामों से भरा हुआ पावेंगे तो
उन गुलामों को स्वतंत्र कर देंगे। इस प्रकार सन् १८३३ ई. में यूरो-
पसे दासत्व प्रथा नष्ट हुई, लेकिन हबशियों को इस बन्धन से पूर्णतया
छुड़ानेमें ५ वर्ष और लगे। सन् १८३८ ई. में इस दुष्ट प्रथा से ह
शियों का उद्धार हुआ।

अमेरीका में जो दासों का व्यापार होता था, उस के बन्द होने के
विषय में भी कुछ सुन लीजिये। सबसे पहिले टामस पेन नामक एक
महात्मा ने ८ मार्च सन् १७७५ ई. के दिन गुलामी के विरुद्ध अपना
एक लेख प्रकाशित किया। इस के एक महीने बाद गुलामी मेटने का
उद्योग करनेके लिये पहिली सभा स्थापित हुई। सन् १८०९ ई. में
टामस पेन का देहान्त हो गया, लेकिन ईश्वर कृपा से इसी साल गुलामी
को जड़से उखाड़ डालनेवाले महात्मा अब्राह्म लिंकन का जन्म हुआ
सन् १८३० ई. में विलियम लायड गैरीसन नामक एक सज्जन
Liberator "स्वातंत्र्यदाता" नामक एक समाचारपत्र निकालना
आरम्भ किया, जिस का उद्देश गुलामी के अन्यायों को सर्व साधारण
र प्रगट करना था, परन्तु एक दिन कुछ दुष्टों ने उन के आफ़िस में
सकर गैरीसन तथा उन के कुछ नौकरों पर आक्रमण किया
में से कुछ को तो मारही डाला! बिचारे नीग्रो गुलामों पर जो
याचार अमेरीका में होते थे, उनका वृतान्त पढ़कर हृदय काँ
ा है। इन अत्याचारों का हाल श्रीमती स्टो नामक एक महि
ा ने Uncle Tom's Cabin (टामकाका की कुटिया) नाम

एक उपन्यास में बड़े हृदयभेदक ढङ्ग से लिखा था। इस उपन्यास की थोड़े ही दिनों में तीन लाख तेरह हज़ार प्रतियाँ बिक गई थीं और दस वर्ष में यह कम से कम एक हजार चार सौ चार पुनर्मुद्रित हुआ था। इस अमूल्य ग्रन्थ ने हज़ारों पाषाणहृदयों में दया का स्रोत बहा दिया और ग़ुलामी का विरोध चारों ओर फैला दिया। इस पुस्तक से लोकमत इतना जाग्रत हुआ कि, इसी के कारण संयुक्तराज्य अमेरीका की उत्तरी और दक्षिणी रियासतों में घोर युद्ध हुआ। उत्तरी राज्य दासत्व प्रथा के विरोधी थे और दक्षिणी राज्य उसके पक्ष में। इस युद्ध में बड़ा रक्तपात हुआ, हज़ारों ही आदमी मारे गये और लाखों रुपयों की हानि हुई। अन्त में 'सत्यमेव जयते, नानृतं' कहावत के अनुसार उत्तरी राज्यों की विजय हुई और सन् १८६५ ई. में यह ग़ुलामी संयुक्तराज्य अमेरीका से दूर हुई।

वास्तवमें वह दिन बड़े सौभाग्य का था, जब कि ग़ुलामी की प्रथा संसारसे उठ गई, पर हा! यह किसे ज्ञात था कि शीघ्र ही इस दासत्व-प्रथाका पुनर्जन्म होगा! और जो अत्याचार हबशियों पर होतेथे वही भारतवासियों पर प्लाण्टरों द्वारा किये जावेंगे? दासत्व प्रथा का पुनर्जन्म कैसे हुआ, यह हम अगले लेखमें दिखलावेंगे।

दासत्व प्रथाका द्वितीय संस्करण या पुनर्जन्म

जिस प्रकार आत्मा का पुनर्जन्म होता है, उसी तरह मनुष्यकृत कितनी ही संस्थाओंका भी पुनर्जन्म होता है। यद्यपि अमेरीका और इङ्गलैण्ड से दासत्व प्रथा उठा दी गई—अमेरीकामें एतदर्थ घोर संग्राम करना पड़ा और इङ्गलैण्डको इसी लिये लाखों रुपये दूसरों को जिनकी कि हानि दासत्वप्रथा के उठाने से हुई, देने पड़े—तथापि

इतना होने पर भी दासत्व प्रथा नष्ट न हुई । पाठक कहेंगे क्यों ! इसका उत्तर यही है कि उसका पुनर्जन्म शीघ ही ' शर्तबन्धी मजदूरी ' यानी ' कुली प्रथा के ' रूपमें हो गया । हाँ नाम का परिवर्तन अवश्य हो गया; पहिले जिसे Slavery गुलामी के नाम पुकारते थे, अब उसका नामकरणसंस्कार पाश्चात्य सभ्यता के अ सार हुआ और वह Indentore System ' शर्तबन्दी की प्रथा ' नाम से पुकारी जाने लगी । शर्तबन्दी की प्रथा गुलामी का रूपान्त मात्र है, यह बात आपको आगे चलकर विदित हो जावेगी ।

हम पहले लिख चुके हैं कि सन् १८३३ ई. में इङ्गलैण्ड में ' दासत्व प्रथा ' उठा दी गई । इसकी दूसरी साल ही सन् १८३४ ई. में ' कुली प्रथा ' के रूप में इसका पुनर्जन्म हुआ । अँग्रेजी विश्व-कोष में लिखा है:-

" After the abolition of slavery much difficulty was found in obtaining cheap labour for tropical plantation. The emancipated black was unwilling to engage in field labour, while the white man was physically incapable of so doing. Recourse was had to the overpeopled empires of China and India, as the most likely sources from which to obtain that supply of workers upon which the very existance of some colonies notably in the west Indies depended."

अर्थात्–' दासत्व प्रथा के बन्द हो जाने पर उष्ण कटिबन्ध में स्थित देशों में खेतों पर काम करने के लिये सस्ते मजदूर मिलना बहुत कठिन हो गया । स्वतन्त्रताप्राप्त हबशी खेतों पर काम करने के लिये राजी नहीं थे और गोरे लोग इतना शारीरिक परिश्रम करने के योग्य नहीं थे, इसी लिये चीन और भारत पर दृष्टि डाली गई; क्यों कि इन देशों में मनुष्यों की संख्या बहुत बढ़ी हुई थी और

इन्हीं देशोंसे मजदूर मिलना सम्भव था। उन दिनों उपनिवेशों का –और खास करके वैस्ट इण्डीज के उपनिवेशों का–अस्तित्व ही मजदूरों के आने पर निर्भर था'।

इस तरह 'हबशियों की मुक्ति और हमारा बंधन' हुआ। वास्तव में सन् १८३४ की साल भारत वासियों के लिये बड़ी अशुभ थी, जब कि पहिले पहिल भारतवासी कुली बनाकर भेजे जाने लगे। इसी साल कलकत्ते से ७००० मजदूर मारीशस को भेजे गये। चूँ कि दासत्व प्रथा हाल ही में बन्द हुई थी, इस लिये हमारी सरकार ने यह नियम बनाया कि जो मजदूर विदेश भेजे जावें, वह अपनी राजी से भेजे जावें; एतदर्थ सरकार ने अपनी ओर से यह प्रबन्ध किया कि जानेवाले मजदूरों को मजिस्ट्रेट के सामने यह स्वीकार करना होगा कि, हम अपनी राजी से जाते हैं और हम ने अपनी नौकरी की शर्तें समझ ली हैं। उस समय सरकार इस बात का बिल्कुल ख्याल नहीं करती थी कि नौकरी की शर्तें क्या क्या हैं। शर्तें चाहे जो हों, पहिले सरकार को इतने ही से समाधान हो जाता था कि, मजदूर ने शर्तें समझ ली हैं। बस फिर क्या था ? भर्ती के दलालों की खूब बन पड़ी; दस बीस आदमी बाजार के चौराहे से बहकाये, उन्हें मजिस्ट्रेट के सामने ले गये और उनसे कहलवा दिया "हुजूर मैं जाने को राजी हूँ, मैंने सब शर्तें समझ ली हैं"। इतना कहना था कि बिचारे मजदूरों को देश निकाला हो जाता; विदेश में अभागे काम करते करते मरते, लेकिन इससे दलालों को क्या मतलब ? उनकी तो जेब गरम होनी चाहिए ! जब सरकार को यह बात ज्ञात हुई तो सरकार ने सन् १८३७ में एक ऐक्ट बनाया, जिस का अभिप्राय यह था कि मजदूरों की नौकरी की शर्तें क्या क्या हैं, यह बात ध्यानपूर्वक जानना आवश्यक है।

मजदूरों के ऊपर अन्याय होने की आशङ्का हुई, तब तब सरकार ने उनकी रक्षा के लिये नियम बनाये, लेकिन यह सब नियम ताक में ही रक्खे रहे; इन नियमों का उल्लंघन बराबर होता रहा और अब तक होता है।

जब इङ्गलैण्ड के स्वतंत्रविचारवाले पुरुषों को इस बात का पता लगा तो उन्होंने साफ़ शब्दों में यही कहा कि यह 'कुलीप्रथा' गुलामी की प्रथा का "नया अवतार" है। लार्ड ब्रूहम, बक्सटन इत्यादिकोंने पार्लीमेण्ट में कुलीप्रथा की बहुत सी बुराइयाँ कीं। * इसका नतीजा यह हुआ कि सरकार को एक कमेटी नियुक्त करनी पड़ी जिसको 'कुली प्रथा' के विषय में अनुसन्धान करने का काम सौंपा गया। इसी लिये बंगाल सरकार ने कुछ दिनों के लिये कुली भेजना बन्द कर दिये। इस कमेटी ने सन् १८४० ई. में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की। कमेटी को यह बात माननी पड़ी कि, मजदूरों को इकत्र करने में अन्याय से काम लिया जाता है और जहाज़ों पर कप्तान इत्यादि उनके साथ प्रायः बड़ी निर्दयता का बर्ताव करते हैं। जब पार्लीमेण्ट में कुली प्रथा का प्रश्न पेश हुआ तो २४ आदमी इस के विरोधी निकले और ११४ इसके पक्ष में। इस प्रकार बहुमत से 'गुलामी की प्रथा' का यह द्वितीय संस्करण स्वीकृत हुआ! हा! स्वार्थ

* Brougham and the anti-Slavery party denounced the trade as a revival of slavery, and the Bengal Government suspended it in order to investigate its alleged abuses. The nature of these may be guessed when it is said that the enquiry condemned the fraudulent methods of recruiting then in vogue, and the brutal treatment which coolies often received from ship captains and masters.

(अँग्रेजी विश्वकोष)

बड़ी बुरी चीज़ है। स्वार्थी लोग नहीं समझते कि हमारी स्वार्थसिद्धि से दूसरों की कितनी भारी हानि हो सकती है। उन दिनों इङ्गलैण्ड के निवासियों को अपने उपनिवेशों की फिक्र पड़ी थी। वह यह चाहते थे कि किसी न किसी तरह हमारे उपनिवेशों की उन्नति हो, इसी लिये उन्होंने 'दासत्व प्रथा' के इस रूपान्तरका समर्थन किया!

फिर १८४२ का २१ वाँ ऐक्ट स्वीकृत हुआ और इस प्रकार गुलामी की प्रथा को एक नई पोशाक मिल गई। जब भारत सरकार ने कुली भेजने का कानून ही बना दिया तो फिर उपनिवेशवालों को और चाहिये ही क्या था? मारीशस की देखा देखी जमैका, ब्रिटिश-गायना, ट्रिनीडाड, सैण्टलूशिया, ग्रेनेडा, नैटाल इत्यादि ब्रिटिश उपनिवेशों ने अर्जी पर अर्जी भेजना शुरू किया कि हमको भी 'कुली' चाहिये। इन उपनिवेशवालोंने सोचा कि, भारतवर्षमें मज़दूरपेशा गुलामों की खान मिल गई है, इसलिये चलो हम भी कुछ भर लावें। सरकार ने इन लोगों की प्रार्थना स्वीकार करली और इस प्रकार कुली इकट्ठा करना यह एक 'राजमान्य धंधा' बन गया! ख़ैर यहाँ तक ही बात पहुँचती तब भी कुछ बात थी, लेकिन फ्रेञ्च और डच लोग भी कहने लगे कि हमें भी भारतीय कुली चाहिये। सरकार ने इन लोगोंके भी साथ उपकार करने में कोई कसर नहीं की! और ब्रिटिश उपनिवेशोंके सिवाय अन्य यूरोपीय देशों के भी उपनिवेशों को भारतीय मज़दूर जाने लगे। आज कल इन विदेश गये हुए मज़दूरों की संख्या लाखों पर पहुँच गई है, और हज़ारों ही प्रतिवर्ष जहाज़ों में लादकर उपनिवेशों को भेजे जाते हैं। इन निस्सहाय अभागे मजदूरों को आरकाटी-भर्तीके दलाल-किस तरह बहका कर विदेशोंको भेजते हैं, इसका वर्णन हम अगले अध्यायमें विस्तार पूर्वक करेंगे।

तृतीय अध्याय

आरकाटियों की करतूत
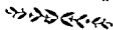
In too many instances the subordinate recruiting ag[illegible] resort to criminal means inducing these victims by m[illegible] presentation or by threats to accompany them to a con[illegible] ctor's depot or railway station where they are spirited aw[illegible] before their absence has been noticed by their friends [illegible] relatives. The records of the criminal courts teem with i[illegible] stances of fraud, abduction of married women and youn[illegible] persons, wrongful confinement, intimidation and actual vio[illegible] lence—in fact a tale of crime and outrage which would arouse a storm of public indignation in any civilised country. In India the facts are left to be recorded without notice by a few officials and missionaries * (The Late Sir Henry cotton.)

यह शब्द किसी ऐसे वैसे आदमी के नहीं है। यह है स्वर्गवासी सर हैनरी काटन के. सी. एस. आई. के शब्द। आप आसाम में कितने ही वर्ष चीफ़ कमिश्नर रहे थे, और आरकाटियों की करतूतों को आप बहुत ही अच्छी तरह से जानते थे। पाठक सुनिये आप अपने १५ [illegible] के अनुभवसे क्या कहते हैं:—

' बहुत ही जगहों पर आरकाटी लोग अपराधपूर्ण तरीके काम में लाकर धोखा देकर अथवा धमकी देकर इन अभागे मजदूरोंको कुली

* E. K. Lal[illegible] द्वारा प्रकाशित सर हैनरी काटन की Indian speeches & Addresses देखिये।

डिपोमें अथवा रेलवे स्टेशन पर ले जाते हैं, जहाँ से कि वह फुसलाये जाकर दूसरी जगहों को भेज दिये जाते हैं, पेश्तर इसके कि उनके मित्र या रिश्तेदारों को इस बातकी कुछ भी खबर हो। फौजदारी की अदालतों के पुराने विवरण ऐसे कितनेही अभियोगों से भरे पड़े हैं, जिनमें कि बिचारे मजदूरों को धोखा दिया गया था, युवा लड़के और विवाहिता स्त्रियाँ चुराकर दूसरी जगह रक्खी गई थीं, अन्याय के साथ उन्हें बन्द कर रक्खा गया था, उन्हें धमकी दी गई थी और उन पर सरासर अत्याचार किया गया था। इन बलात्कारों और अत्याचारों की कथाओं को सुनकर किसी भी सभ्य देश में जनसाधारण की क्रोधाग्नि प्रज्वलित हो जाती; लेकिन भारतवर्ष में दो एक इने गिने अफसरों और मिशनरियों को छोड़कर, इस ओर और कोई ध्यान ही नहीं देता है'।

यह स्मरणीय वाक्य बंगाल की नियमनिर्धारिणी सभा में स्वर्गीय सर हेनरी काटन ने ८ मार्च सन् १९०१ ई. को कहे थे। जिस दुष्टता और छल कपट के साथ आरकाटी लोग हमारे भोलेभाले भाइयों को बहकाते हैं, उसे पढ़कर किस मनुष्य के हृदय में क्रोध उत्पन्न न होगा?

जगज्जननी श्री सीताजी जब बन को साथ जाने के लिये हठ कर रहीं थीं, तो बन के दुःखों का वर्णन करते हुए मर्यादापुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी ने कहा था "ब्याल कराल विहग बन घोरा। निशिचर निकर नारिनर चोरा।" अर्थात् 'बन में बड़े बड़े भयंकर सांप और डरावने पक्षी रहते हैं, और स्त्रीपुरुषों के चुरानेवाले राक्षसों के झुंड भी वहाँ निवास करते हैं'। पुराने जमाने में तो स्त्रीपुरुषों को चुरानेवाले राक्षस चाहे थोड़े ही पाये जाते हों, लेकिन आजकल तो ऐसे 'निशिचर निकर नारिनर चोरा' बहुत पाये जाते हैं। प्राचीन काल के राक्षसों और आजकल के आरकाटियों–भर्ती के दलालों–में बस फर्क़

केवल इतना ही है कि यह वन में रहा करते थे और यह मूँछोंपर ताव देते हुये शहरों में रहते हैं; यह लोग सम्भवतः रात को मनुष्यों को दुःख देते थे और यह लोग दिन दहाड़े मनुष्यों की चोरी करते हैं; और उन्हें देवताओं और अवतारों का थोड़ा बहुत डर तो भी था, लेकिन यह निर्भय और निश्चिन्त होकर मनमाने अत्याचार करते हैं।

आरकाटी कैसे बहकाते हैं ?

हमारे निरक्षर भाईयों और भगिनियों को बहकाने के लिये आरकाटियों ने जो जो तरकीबें निकाली हैं उन्हें पढ़कर आश्चर्य हुये बिना नहीं रहता। आरकाटियों ने अपना एक "नया भूगोल" बना लिया है; उसके दो एक दृष्टान्त सुन लीजिये:—

(१) पार्लीवाड़ (ट्रिनीडाड) में एक चीनी छावनी पड़ी है, सो भी सवेरे के आठ बजे से लेकर दोपहर के बारह बजे तक। २२) रु. प्रतिमास मजदूरी के मिलते हैं। यह स्थान कलकत्ता से बहुत नजदीक है।

(२) फिजी में लोग रखे और केले आ खाकर चैन की वंशी बजाते हैं। यह स्थान कुछ दूर नहीं है। जब मन की इच्छा हो तभी यहाँ से लौट सकते हैं। फिजी तो यह यहीं है!

(३) डेमरारा (ब्रिटिश गायना) हिन्दुओं का एक तीर्थस्थान है, अयोध्यापुरी के निकट है। यहाँ हरी कोठियाँ हैं।

(४) जमैका, कलकत्तेके एक मुहल्ले का नाम है; यहाँ हमारे सेठों की धर्मशालायें बन रही हैं। आदमियों को बारह आना और स्त्रियों को नौ आना प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी मिलती है। जो जाता है मालामाल हो जाता है।

(५) सीलोन, मदरास के निकट के रबर और चाय के खेतों का नाम है। इसे रावण की लंका भी कहते हैं। सोना बहुत पाया जाता है और मोती तो मन चाहे जितने बटोर लाओ। यहाँ की पद्मिनी तो दुनियां में मशहूर ही हैं। जो वहाँ पहुँच जाता है, मौज करता है।

(६) मलाया, मदरास से थोड़ी ही दूर है। यहाँ पर मजदूरोंको कुछ काम ही नहीं करना पड़ता, हाँ थोड़ी सी पत्तियां तोड़नी पड़ती हैं जो चटपट टूट जाती हैं, अथवा एक सुन्दर वृक्षसे फूल तोड़ने पड़ते हैं। दिन भर धूप में पड़े रहो और सन्तोष के साथ मजे उड़ाते रहो।

यह सब बातें आरकाटियों की गढ़ी हुई हैं। हमारे पास ऐसे अनेक आदमियों के, जो इन स्थानों से लौट कर आये हैं Affidavits 'शपथ-पत्र' हैं और उन्हीं से छाँट कर यह बातें लिखी गई हैं।

गाँव के बेपढ़े आदमी, जो अपने गाँव या ज़िले के बाहिर कभी नहीं निकले, इन मनोहर बातों को सुनकर बहक जावें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? वह बिचारे क्या जानें कि फिजी, जमैका ट्रिनीडाड और सुरीनाम सात समुद्र पार दुनियां के उस छोर पर हैं।

किस तरह के आदमियों को आरकाटी बहकाते हैं, सोभी सुन लीजिये। सर हैनरी काटन ने कहा था:—

"The recruiter or arkati lies in wait for wives who have quarrelled with their husbands, young people who have left their homes in search of adventure, and insolvent peasants escaping from their creditors."

अर्थात्–'आरकाटी लोग ऐसी औरतों की ताक में रहते हैं, जिनका अपने पति से लड़ाई झगड़ा हो गया हो; ऐसे जवान आदमियों की तलाश करते हैं, जो देशविदेश में घूमने के लिये अपने घर बार छोड़ आये हों और ऐसे किसानों को ढूँढ़ा करते हैं जो कि साहूकारों के कर्ज़े से बचने के लिये इधर उधर चले जाते हैं।'

इसके आगे सर हेनरी काटन ने कहा था "अपने कार्य्य में–यानी मजदूरों को भर्ती करने में–आरकाटियों को बड़ा भारी उद्योग करना पड़ता है और बड़े बड़े उपाय सोचने पड़ते हैं। उन्हें कुछ ऐसे काम भी करने पड़ते हैं, जिनसे कि लोग उनसे बहुत नाराज़ हो जाते हैं और कभी कभी तो आरकाटियों को अपने ऊपर विपत्ति आने का खतरा भी रहता है। चौकीदारों, पुलिसवालों, और ज़मीन्दारों के नौकरों को रिश्वत देनी पड़ती है। जब कि ऐसे आदमी भर्ती किये जाते हैं, जो मज़दूरी करने के योग्य न हों, तो उनके नाम उनकी जाति के नाम बदल दिये जाते हैं। ………… बात में मज़दूरों के क्रयविक्रय का एक व्यापार ही स्थापित हो गया और आजकल प्लान्टर लोगों को प्रत्येक मज़दूर के लिये १२०) रु. से लेकर १५०) रु. तक देने पड़ते हैं, जहाँ पचीस वर्ष पहिले ५०) रु. से ६०) रु. तक देने पड़ते थे ………… मैं इस बात को बिना किसी संकोच के कह सकता हूँ कि, इस प्रथा में मज़दूरों के साथ शर्तनामे के नियम समझाते वक्त साफ़ कपट और छल किया जाता है। उन्हें यह बतलाया जाता है कि तुम्हें वहाँ मासिक वेतन मिलेगा और वे (मज़दूर) भी यही विश्वास करते हैं, लेकिन वहाँ पहुँचने पर उन्हें मासिक वेतन नहीं मिलता!"

और तो और बंगाल के 'दर्पण' ने भी, कई वर्ष हुए, इस विषय में जो कुछ लिखा था उसमें भी आरकाटियों की पूरी पोल

ता लग सकता है। 'पायोनियर' के इस लेख के एक अंश को डाक्टर
ासबिहारी घोष ने अपने 'Amendment of Inland Emigration act'
ामक एक स्पीच में उद्धृत किया था। 'पायोनियर' ने लिखा थाः—
'लड़के और लड़कियाँ बहकाये जाते हैं और नाम बदल कर अपने
र से आसाम को भेज दिये जाते हैं। ब्याही हुई स्त्रियाँ अपने पति
था लड़के लड़कियों से छुड़ाई जाकर, इस ढङ्ग से दूसरी जगहों को
वाना की जाती हैं कि उनका पता लगाना असम्भव हो जाता है।
ज़िले के अफ़सर, आम लोग, यूरोपियन, हिन्दुस्तानी, मिशनरी और
ानों के मालिक इस बात के साक्षी है कि किस तरह से अधिकाधिक
आदमी चुराये जाकर दूसरी जगहों को भेजे जाते हैं और इसका
कैसा पापपूर्ण और दुःखद परिणाम होता है। यह कहा जाता है कि
अगर मजिस्ट्रेट लोग और पुलिसवाले अपने कर्तव्य का पालन करें
तो यह बातें रुक सकती हैं, और जो लोग इस तरह दूसरों को धोखा
देकर भेजते हैं, उनको सजा दी जा सकती है। इसी बातको ध्यान
में रखते हुये बंगाल सरकारने पुलिस के एक खास अफ़सर को छोटा-
नागपुर में इस कार्य पर नियुक्त किया था कि इस तरह के मामलों
की जाँच करे। लेकिन इस बात से यह प्रश्न हल नहीं हो सकता।
पुलिस जो कुछ कर सकती है वह यह है कि किसी आदमी को
अपराध करने से रोके अथवा यदि कोई अपराध किया गया हो तो
अपराधी को सज़ा दे; लेकिन कितने ही मामलों में आरकाटियों का
काम— चाहे वह दुष्टतापूर्ण और पापयुक्त भले ही हो—कानून के
अनुसार कोई अपराध ही नहीं कहा जा सकता। किसी विवाहिता
स्त्री को फुसला कर अपने पति और बाल बच्चों से अलग करके ५
वर्ष या इस से अधिक के लिये आसाम में कुलीगीरी करने के लिये
भेज देना यह कोई अपराध ही नहीं समझा जाता! एक लड़के को

ा जाति और निवासस्थान के नाम बदल दिये। अब यदि उ
ड़के का पिता या अन्य कोई रिश्तेदार बनारस, कलकत्ता या मद्
में किसी कुली डिपो के अफ़सर से पूँछे कि "इस नाम क
ई लड़का तो यहाँ भर्ती नहीं हुआ ?" तो वह अफ़सर ह
वाब दे देगा कि इस नाम का लड़का हमारे यहाँ कोई आया है
हीं। बस विचारेको हताश होकर लौटना पड़ेगा।

यदि इस तरह का आदमी, जिसका नाम, पता तथा जाति
म बदल दिया गया हो, विदेश को भेज दिया जावे और व
त पन्द्रह वर्षमें दोसो चारसो रुपये इकट्ठा कर ले और फिर वह
कस्मात् उसकी मृत्यु हो जावे तो उसका धन व्यर्थ ही जाता है
चारे घर वालों को भी नहीं मिल सकता।

पं. तोताराम सनाढ्य एक जगह लिखते हैं "बनारस जिले के
ने वाले एक पंडितजी फिजी को शर्त बन्दी में भेज दिये गये थे
को ब्राह्मण जानकर अन्य जाति के लोग इनका काम बिना कु
ये ही कर दिया करते थे। ब्राह्मण होने के कारण दूसरे लोगों
हें कुछ सीधे वगैरा भी मिल जाया करते थे। थोड़े से रुपये बच
र इन्होंने कुछ खेत पट्टे पर लिया और खेती करने लगे। मज़
ग इतवार के दिन इनके खेत तर मुफ्त में ही काम कर दि
रते थे। इस तरह विचारे पंडितजी ने हज़ार डेढ़ हज़ार रुपये इक
ये। अकस्मात् फिजी में इनकी मृत्यु हो गई, अतएव इनका ध
शन आफिस द्वारा भारत गवर्नमेण्ट को भेजा गया और य
गया कि अमुक गाँव में इस नाम के मनुष्य का जो सम्बन्
यह धन दे दिया जावे। लेकिन आरकाटी ने इनके
का नाम बिल्कुल गलत लिखा दिया था, इस लिये कुछ प
चला। वह धन इमीग्रेशन आफिस में ही रहा। इस प्रक

पंडितजी की कठिन पसीने की कमाई व्यर्थ ही गई। पंडितजी के सम्बन्धियों के यहाँ चाहे रोज़ ही एकादशी व्रत होता रहा हो लेकिन आरकाटी की धूर्तता के कारण उन्हें वह हज़ार डेढ़ हज़ार रुपये न मिल सके!"

केवल एक दो मामलों में नहीं बल्कि बीसियों मामलों में ऐसा ही होता है। बंगाल की गवर्नमेण्ट ने, कलकत्ते के बन्दरगाह से कुली बन कर जाने वाले मजदूरों के विषय में सन् १९१४ ई. की जो वार्षिक विवरणी निकाली है, उसमें लिखा है:—

"One hundred and fifty estates of deceased emigrants valued at Rs. 21287 were administered by Government during the year. Of these the heirs of 84 were traced, 57 lapsed to the colonial and Indian Governments and the remainder were still under enquiry at the end of the year."

अर्थात्—'१५० प्रवासी भारतवासियों के, जो विदेश में मरगये थे, २१२८७) रु. भारत गवर्मेण्ट के इमीग्रेशन आफिस के पास आये। इनमें से ८४ आदमियों के उत्तराधिकारियों का पता लगा, ५७ आदमियोंके संबंधियोंका कुछ भी पता न चला इसलिये इनका धन औपनिवेशक तथा भारत सरकार को मिला, और बाकी ९ आदमियों के रिश्तेदारों का पता लगाया जा रहा है'।

इन ५७ आदमियों के घरवालों का पता न लगने का मुख्य कारण यही है कि आरकाटियों ने उनके गाँव, नाम, तथा जाति कुछ के कुछ लिखा दिये होंगे। ऐसी दशा में पता लगही कैसे सकता है?

पढ़े लिखों को कैसे बहकाते हैं?

The coolies however, are not all scum. Among them are to be found here and there, well educated men, of good caste and not without refinement. How they have come to mix themselves with such a crowd is a mystery (Fiji of to-day by Mr. J. W. Burton, page 277.)

तथा जाति और निवासस्थान के नाम बदल दिये। अब यदि उस लड़के का पिता या अन्य कोई रिश्तेदार बनारस, कलकत्ता या मदरास में किसी कुली डिपो के अफ़सर से पूँछे कि " इस नाम का कोई लड़का तो यहाँ भर्ती नहीं हुआ ? " तो वह अफ़सर साफ़ जवाब दे देगा कि इस नाम का लड़का हमारे यहाँ कोई आया ही नहीं। बस बिचारेको हताश होकर लौटना पड़ेगा।

यदि इस तरह का आदमी, जिसका नाम, पता तथा जातिका नाम बदल दिया गया हो, विदेश को भेज दिया जावे और वहाँ दस पन्द्रह वर्षमें दोसो चारसो रुपये इकट्ठा कर ले और फिर कहीं अकस्मात् उसकी मृत्यु हो जावे तो उसका धन व्यर्थ ही जाता है; बिचारे घर वालों को भी नहीं मिल सकता।

पं. तोताराम सनाढ्य एक जगह लिखते हैं " बनारस जिले के रहनेवाले एक पंडितजी फ़िजी को शर्त बन्दी में भेज दिये गये थे। इनको ब्राह्मण जानकर अन्य जाति के लोग इनका काम बिना कुछ लिये ही कर दिया करते थे। ब्राह्मण होने के कारण दूसरे लोगोंसे इन्हें कुछ सीधे वगैरा भी मिल जाया करते थे। थोड़े से रुपये बचाकर इन्होंने कुछ खेत पट्टे पर लिया और खेती करने लगे। मज़दूर लोग इतवार के दिन इनके खेत पर मुफ्त में ही काम कर दिया करते थे। इस तरह बिचारे पंडितजी ने हज़ार डेढ़ हज़ार रुपये कमा पाये। अकस्मात् फ़िजी में इनकी मृत्यु हो गई, अतएव इनका धन इमीग्रेशन आफिस द्वारा भारत गवर्नमेण्ट को भेजा गया और यह लिखा गया कि अमुक गाँव में इस नाम के मनुष्य का जो सम्बन्धी हो उसे यह धन दे दिया जावे। लेकिन आरकाटी ने इनके गाँव इत्यादि का नाम बिल्कुल गलत लिखा दिया था, इस लिये कुछ पता न चला। वह धन इमीग्रेशन आफिस में ही रहा। इस प्रकार

मिस्टर जे. डबल्यू बर्टन नामक एक अँग्रेज़ ने, जो फ़िजी में दस वर्ष तक रह चुके हैं, उपरोक्त शब्द अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक 'फ़िजी आफ टुडे' (वर्तमान फ़िजी) नामक पुस्तक में लिखे हैं। इनका अर्थ यह है कि "सब के सब कुली–गँवार–ही नहीं होते, उनमें कोई कोई सुशिक्षित, उच्च वर्णके और सभ्य भी होते हैं। यह लोग फ़िजी में कुली बनकर किस तरह आये, यह एक गूढ़ रहस्य है"

जो लोग आरकाटियों की बदमाशियों को नहीं जानते उन्हें बर्टन साहब के इस कथन को सुनकर कि फिजी में कुछ सुशिक्षित आदमी भी कुलीगीरी करते हैं, आश्चर्य होगा। बात वास्तव में आश्चर्य की है। हम यहाँ कुछ दृष्टान्त देते हैं जिनसे कि पाठकों को पता लग जावेगा कि पढ़े लिखे आदमी कुली कैसे बनते हैं।

चार आने रोज़ पर घास खोदने वाले एक ग्रेजुएट महाशय

हमारे यहाँ कभी कभी विद्यार्थी एक दूसरे से हँसी मजाक में कहा करते हैं 'बी. ए. पास करके क्या घास खोदोगे?' लेकिन जो कथा हम यहाँ लिखते हैं, वह कोई हँसी मज़ाक नहीं है, वह एक बिल्कुल सच्ची घटना है। मिस्टर बर्टन साहब ने अपनी किताब में एक ग्रेजुएट कुली और एक अँग्रेज पादरी की बातचीत लिखी है।* कुली का नाम था जान विल्सन बनर्जी। यह एक ईसाई था।

बर्टन साहब के लेख का अनुवाद यहाँ दिया जाता है।

"एक कुली शाम के वक्त अपनी कोठरी में बैठा है कि इतने में एक पादरी साहब वहाँ पहुँचते हैं।

बनर्जी—"सलाम साहब सलाम!"

* देखो 'फ़िजी आफ टुडे' २७७–२८२ पृष्ठ।

ह सलाम एक तीक्ष्णबुद्धि पढ़े लिखे हिन्दुस्तानी ने किया था
की उम्र लग भग ३५ वर्ष की थी।

ादरी—"सलाम। तुम अंग्रेज़ी जानते हो?"

नर्जी—"जी हाँ, मैंने अंग्रेज़ी की शिक्षा प्राप्त की है"

ादरी—"तो तुम यहाँ कुलीगीरी क्यों करते हो? यह जीवन
रे जैसे आदमियों के लिये ठीक नहीं है।"

बनर्जी—"जनाब मुझे धोखा दिया गया और कपटजाल में
ा कर यहाँ भेज दिया गया। हिन्दुस्तान से मेरा जी भी उकता
ा था। इसके सिवाय मेरे मन में देश विदेश घूमने की इच्छा रहा
ती है। मेरी इच्छा एक नया देश देखने की थी, सो मैं यहाँ
गया।"

पादरी—"हाँ आपका यह किस्सा तो ठीक है और बहुत से
ी ऐसा ही कहा करते हैं। लेकिन इससे यह बात समझ में नहीं
ती कि तुम कुली बनकर कैसे आये"

बनर्जी—"हिंदुस्तान में मुझे एक आदमी मिला। यह आदमी
लकुल यूरोपियनों की तरहके कपड़े पहिने हुये था। यह एक
ecruiting agent आरकाटी था। उसने मुझ से कहा:—

"उद्यमी हिन्दुस्तानियों को फिजी में बड़ी बड़ी नोकरियाँ मिल
कती हैं, और यहाँ पढ़े लिखे आदमियों की बहुत कमी है।" इस
आरकाटी ने मुझे एक दूसरे आदमी को दिखलाया और कहा "देखो
यह आदमी दस वर्ष फिजी में रह आया है"। उस आदमी ने फिजी
की बड़ी बड़ी तारीफें कीं और कहा "बाबू लोगों के लिये वहाँ
ातिमास की कितनी ही जगह खाली हैं।" पीछे से मुझे
आदमी बड़ा बना हुआ था और आरकाटी ने

उससे झूंठा कहलवा दिया था । मुझे इस बात में सन्देह है कि वह आदमी कभी फिजी आया भी था । उस समय उस आरकाटी ने मुझसे शर्तबन्दी की बाबत कुछ भी नहीं कहा था, और अपनी मूर्खता के कारण मैंने उससे कुछ पूँछा भी नहीं । उस समय कुछ कारण ऐसे भी थे कि जिनसे मेरा हिन्दुस्तान छोड़ना ज़रूरी था। इसलिये मैं कलकत्ता की कुली डिपो में आगया । यहाँ आकर मुझे शर्तबन्दी की बाबत पता लगा । लेकिन मैंने जाने का इरादा कर लिया था । मैले कुचैले कुलियों के साथ जहाज़ में मेरे दिन बड़ी बुरी तरह व्यतीत हुये, लेकिन अब जो हालत है वह जहाज़ पर की हालत से भी अधिक बुरी है । ....

......मेरा नाम जान विल्सन बनर्जी है । मेरा पिता एक मिशनरी सुसाइटी का पादरी है और कलकत्ता यूनीवर्सिटी का ग्रेजुएट है। मिशन स्कूलों में मैंने शिक्षा पाई थी, तत्पश्चात मैंने कलकत्ता विश्वविद्यालय से बी. ए. की डिग्री प्राप्त की । तदनन्तर मैंने कानून पढ़ा और विलायत गया । केम्ब्रिज विश्वविद्यालय में भी मैं कुछ दिन पढ़ा था । मैंने पढ़नेमें खूब परिश्रम किया था, अतएव मुझे कई मेडल (पदक) मिले थे जिन्हें कि मैं भारतवर्ष में छोड़ आया हूँ । मैंने बड़ी जल्दी में घर छोड़ा था लेकिन कुछ किताबें और पर्चे मैं अपने साथ लेता आया हूँ । अगर आप मेरे परीक्षापत्रों को देखना चाहें तो मैं दिखला सकता हूँ । " तत्पश्चात बनर्जी ने एक सन्दूक खोला और इम्तहान के पर्चे और सार्टीफिकेट निकाले । साहब ने उन पर्चों को देखा और इससे साहब को विश्वास होगया कि बनर्जी की कथा बिल्कुल ठीक है ।

फिर बनर्जी ने कहा " जब मैं भारतवर्ष को लौटा तो मैंने बर्नेट और ईगन नामक वकीलों की फर्म में नौकरी की । यह फर्म

(कोठी) कलकत्ते में है । मुझे कुछ रुपये सौंपे गये और लखनऊ को भेज दिया गया, क्योंकि मैं लखनऊ की तरफ़ का रहनेवाला हूँ और उर्दू मेरी मादरी जुबान है । मैं रुपयों के लालच में फँस गया और मैंने कुछ रुपये उड़ा दिये । एक दूसरे आदमी के कहने में आकर मैंने ऐसा किया । अगर भेद न खुलता तो कुछ बात नहीं थी, लेकिन भण्डा फूट गया । मेरे पिताजी की हिम्मत टूट गई, उन्होंने विशप से कह सुनकर मेरी सिफ़ारिश कराई । मेरे मालिकों ने यह वायदा कर लिया कि हम अभी अभियोग नहीं चलावेंगे, तब तक बनर्जी देश से बाहिर आ सकता है, इस तरह पिता के नाम पर कलङ्क नहीं आवेगा। इस प्रकार मैं यहाँ आगया । यह मेरी बद क़िस्मती थी ! क्या मेरा यह दुर्भाग्य नहीं था ? "

पादरी—" यहाँ पर तुम क्या करते हो ? "

बनर्जी—" मैं अब यहाँ रासौंके लिये घास काटा करता हूँ, और अब मैं एक शिलिङ्ग प्रतिदिनके हिसाब से कमाने लगा हूँ । पहिले मेरे हाथ इतने नरम थे कि घास काटते काटते उनमें कितनी ही बार फफोले पड़गये, और अगर यह नीच जातिवाला कुली, जिसे कि मैंने अभी हाल आप को दिखलाया है, न होता तो न जाने मैं कैसे जीवित रहता । मैं केवल चार पेंस (चार आना) रोज़ कमा सकता था । यह कुली सदा मेरा काम बटा लिया करता था, इसे यह काम करनेकी आदत पड़ी हुई थी, इसलिये यह एक शिलिङ्ग रोज़ कमा लेता था । चिट्ठियाँ लिखकर मैं थोड़ा बहुत और भी कमा लेता हूँ ।"

पादरी—" यह जीवन तो तुम्हें बड़ा दुःखमय ज्ञात होता होगा ?"

बनर्जी—" हाँ, पहिले तो बड़ा ही कष्टमय मालूम होता था, लेकिन अब काम करने की आदत पड़ गई है ।

"The first three months my overseer knocked me about good deal. I used to speak to him in English because I could not understand his Hindustani. This used to anger him very much. He struck me down once and kicked me in the mouth. I have now learnt his jargon, and we get on fairly well."

अर्थात—"पहिले तीन महीने तक तो मेरे ओवरासियर ने मुझे बड़ी ठोकरें लगाई। मैं उससे अँग्रेज़ी में बात चीत करता था, क्योंकि उसकी बोली हुई हिन्दुस्तानी मैं समझ ही नहीं सकता था। इसलिये वह मुझ से बहुत ही नाराज़ होता था। एक बार उसने मार के मुझे नीचे गिरादिया और मेरे मुँह में ठोकरें दीं। अब मैं उसकी ऊटपटाँग भाषा को सीख गया हूँ; अब हम लोगों में पट जाती है।"

पादरी—"अब तुम्हें शर्त बन्दी में कितने दिन और काम करना है ?"

बनर्जी—"दो वर्ष और तीन महीनेके बाद मैं स्वतंत्र हो जाऊँगा। इत्यादि।"

यह वार्तालाप 'फिजी आफ टुडे' से लिया गया है। हम यह मानते हैं कि जान विलसन बनर्जी का भी इसमें दोष है, क्योंकि उसने रुपये हज़म किये थे, लेकिन यदि बनर्जी को यह ज्ञात होता कि फिजी में हमें यह कष्ट सहने पड़ेंगे और ओवरासियर की ठोकरें खानी पड़ेगी तो वह फिजी जानेको कभी भी राज़ी न होता। रही आरकाटी की बदमाशी, सो तो इससे स्पष्ट है ही। पढ़े लिखे आदमियों को आरकाटी यही सुझाया करते हैं कि "अमुक टापूमें २००) रु. प्रति मास की कितनी ही जगहें खाली हैं, अगर तुम चार पाँच साल भी वहाँ रहगये तो आठ दस हज़ार रुपये कहीं नहीं गये। देखो अमुक आदमी उस टापूको गया था। पाँच वर्ष बाद पन्द्रह हज़ार

कर लौटा है । आने के बाद ही ऐसा घर बनवाया है जैसे हल। " इत्यादि। आजकल के समय में जब कि सैकड़ों, हजारों पढ़े लिखे नोकरियों की तलाशमें घूमा करते हैं और Wanted (आवश्यकता) के कालम पढ़ते पढ़ते तङ्ग होजाते हैं, दस बीस पढ़े लिखोंका आरकाटियों के फन्देमें फँस जाना बहुत सम्भव है:-

बर्टन साहब ने अपनी पुस्तक के २८२ वें पृष्ठ पर ठाकुर करनसिंह नामक एक दूसरे पढ़े लिखे मजदूर के विषय में इस प्रकार लिखा है:—

" इस आदमीने बरेली में Theological Seminary नामक ईसाईयों के एक धार्मिक स्कूल में शिक्षा पाई थी । स्कूल के प्रिन्सीपल ने इस आदमी के चालचलन की बहुत तारीफ़ की थी । ईसाई होजाने के कारण इसे बहुत से कष्ट उठाने पड़े थे, और अपने काम को यह आदमी बड़ी महनत और ईमानदारी के साथ किया करता था। जाति का यह ठाकुर था। जिस दिन से इसने ईसाई धर्म ग्रहण किया, उसी दिनसे इसके घरवालों ने इसे त्याग दिया । दुर्भाग्यवश इसने एक बार इम्तहान में नक़ल की, इसी कारण यह कालेज के नियमों के अनुसार कालेज से निकाल दिया गया । शर्म के मारे यह फ़िजी भाग आया "।

यद्यपि बर्टनसाहबने इस में यह नहीं लिखा कि ठाकुर करनसिंह आरकाटी द्वारा बहकाया गया था, लेकिन हम अनुमान करते हैं, और हमारा यह अनुमान सौमें से ९९ अंश में ठीक होगा-कि ठाकुर साहब को भर्तीवालों ने फुसलाकर और बड़ी बड़ी नोकरियों का लालच दिला कर फ़िजी भेज दिया था । इम्तहान में नकल करना, ऐसा अपराध नहीं है, जिसकी शर्म मिटाने के लिये कोई सात समुद्र पार फ़िजी को ५ वर्ष तक गुलामी करने के लिये चला जावे ! बात

नेपाली पंडित और पंडितानी

एक बार एक नेपाली पंडित अपनी स्त्री के साथ
फिजी भेज दिये गये थे। जब वह वहाँ पहुँचे तो इन
गन्ने काटने का काम दिया गया। गन्ने काटते काटते इनके
लुहान हो गये। एक दिन खेत में यह दोनों पति-पत्नी गर्दन
बैठे हुये रो रहे थे कि इतने में पं. तोताराम सनाढ्य उधर
निकले। पंडितजी ने इन दोनों से रोने का कारण पूँछा तब अश्रु
यनों से नेपाली पंडित कहने लगे:—

" मथुरा को हम दोनों तीर्थयात्रा करने आये थे। इसी नगर
गली में हमें एक आरकाटी मिला और उसने हम से कहा " क
पंडितजी क्या हालचाल है ? आप तो बड़े विद्वान् ज्ञात होते है !
हमने कहा " हाँ, पढ़े लिखे तो हम हैं। " तब वह आरकाटी बोला
" और आप की स्त्री भी पढ़ी लिखी ज्ञात होती है "। तब हमने कहा
" हाँ यह निरक्षरा नहीं है, यह भी कुछ कुछ पढ़ी लिखी है "। तब
वह आरकाटी बड़ा प्रसन्न हो कर बोला "

हमें ऐसे ही आदमियों की ज़रूरत थी। संस्कृत की पाठशाला में आप अध्यापक बनना और आप की स्त्री लड़कियों को भाषा पढ़ावेगी। सनाकेदार चालीस चालीस रुपये दोनों को नक़द मिलेंगे। आप भी सौभाग्य से खूब मिले। हम आप जैसे ही आदमियों की तलाश में थे।" तब हमने उससे पूंछा कि—"पाठशाला कहाँ पर है" तो उसने उत्तर दिया कि कलकत्ते के एक मुहल्ले में है। फिर हमने उससे कहा "अगर हम दोनों को आप यह नोकरी दिलवादें तो हम आप के जन्मभर गुण गाते रहेंगे और आशीर्वाद देते रहेंगे।" इस के बाद वह हमें कलकत्ते लेगया और वहाँ से हमें यहाँ भेज दिया। क्या करें? हमारा दुर्भाग्य! हमारे तथा हमारी स्त्री के कोमल हाथ इस कठिन कार्य्यको कदापि नहीं कर सकते! हमसे यह तास्क (Task) का काम खतम नहीं होता! हा! अब ओवरसियर हमें पीटेगा, हम दोनों अब इस गन्ने की छुरी से आत्महत्या करना चाहते हैं। हा परमात्मन् ऐसे कष्ट तू हमारे शत्रु को भी न देना!"

नैपाली पंडितजी की यह बातें सुनकर पंडित तोतारामजी का दिल पिघल गया और उन्होंने कहा "आप आत्मघात कदापि न करें; एक महीने तक जैसे काम चले चलावें। मैं प्रयत्न करके आप की गिरमिट कटवा दूँगा"। तब एक महीने में पं. तोताराम सनाढ्यने ज्यों त्यों करके आठसौ रुपये इकट्ठे किये और इन दोनों की गिरमिट (Agreement) को कटवाया। पं. तोतारामजी इन दोनोंके बारेमें लिखते हैं "दोनों ही बिचारे बड़े सरल स्वभावके आदमी थे। पंडिता-नीजी गीताका पाठ नित्यप्रति किया करती थीं और मोज़े बुनना, गुलूबन्द बुनना इत्यादि शिल्पकार्यों में बड़ी निपुण थीं। शर्तबन्दी के कटनेके बाद यह एक वर्ष फ़िजीमें अपनी राज़ी से स्वतंत्र होकर रहे, फिर

वहाँके भारतीयोंने चन्दा कर दिया और यह भारतवर्षको सकुशल लौट आये।"

पाठक! आरकाटीकी इस दुष्टता पर तो ख्याल कीजिए, जिसने कि शर्तबन्दीमें कुलीगीरी के काम को संस्कृत पाठशाला और कन्या पाठशाला की अध्यापकी बतला दिया!

मिस्टर एण्ड्रूज़ और मिस्टर पियर्सन साहब ने भी अपनी रिपोर्ट में एक मुसलमान मुंशीका ज़िक्र किया है, जो मदरसा पढ़ाने के लोभ में फँसा कर फिजी को भेज दिया गया था। उक्त रिपोर्टमें लिखा है "हमारी एक शिक्षित और बुद्धिमान् मुसलमानसे मुलाक़ात हुई जिसे कि मदरसे में पढ़ानेको कहकर फिजी लाया गया था। यहाँ इसे कुलियों का सरदार बनाया गया। इसने हमें बताया कि प्रत्येक कुली सरदार को कुछ घूँस देता है, अन्यथा सरदार कुलियों पर खूब अत्याचार करते हैं। साथ ही उसने हमें बताया कि इस घूँस की रकम को देखकर ही सरदार लोग विशेष स्त्री को विशेष पुरुष के साथ रहनेकी आज्ञा देते हैं।"

आरकाटी लोग मोटे ताज़े आदमियों को धोखा देनेके लिये एक बात और कहते हैं, वह यह 'कि तुम्हें वहाँ जाने पर पुलिसकी नोकरी मिलेगी'। मिस्टर एण्ड्रूज और मिस्टर पियर्सन लिखते हैं "डिपोवालों का काम केवल ग्रामीणों तक ही परिमित नहीं रहता, बल्कि वह सिक्खों और जाटों पर भी हाथ साफ़ करते हैं। जहाँ कहीं उन्हें कोई फँसने योग्य सिक्ख या जाट मिला कि वह उससे कहते हैं, 'फिजी फौज और पुलिस की नोकरी के लिये तो सबसे अच्छी जगह है, अगर तुम इस शर्तनामे पर अपने अँगूठे का निशान कर दो तो बस यह नोकरी तुम्हें मिल सकती है।' एक बार बहुत से पंजाबी झूंठे वायदोंसे बहकाये जाकर फिजी भेजदिये गये थे। वहाँ जाकर उन्हें मालूम हुआ कि

ने धोखा दिया गया है। तब तो उन्होंने गदर कर दिया और न्दूक वगैरह की सहायता से, जो कि कहीं से उनके हाथ लगगई ीं, सारे ज़िलेको अपने काबू में कर लिया। जब गवर्मेंटने इन ोगों को एक दूसरे से अलग करके भिन्न भिन्न कुली लेनों में बाँट देया तब कहीं यह मामला शान्त हुआ!"

आरकाटी लोग स्त्रियों को कैसे बहकाते हैं, यह बात भी सर्व-साधारणके लिये जानने योग्य है इसी लिये दो चार दृष्टान्त इस विषयके भी यहाँ दिये जाते हैं।

स्त्रियों को कैसे बहकाते हैं।

भोली भाली भारतीय स्त्रियोंको आरकाटी जिन ढँगों से बहकाते हैं उन्हें पढ़कर हमारे हृदय में दुःख उत्पन्न हुये बिना नहीं रहता। श्रीमती एच. डडले ने, जो आस्ट्रेलिया की निवासी हैं और फिजी में ईसाई धर्मका प्रचार करती हैं, एक बार एक चिट्ठी विलायतके 'इण्डिया' नामक पत्र में छपवाई थी। इस पत्र में उन्होंने बतलाया था कि भारतीय स्त्रियाँ कैसे बहकाई जाती हैं। श्रीमती डडले ने लिखा था:-*

वह आदमी मुझे डिपो में लेगया, और वहाँ से कुली बना कर यहाँ भेज दी गई'। एक दूसरी स्त्री ने कहा 'मेरा पति एक जगह काम करनेके लिये गया था, उसने मुझे खबर भेजी कि तू यहाँ चली आ। मैं उसके पास जा रही थी कि मार्ग में मुझे एक आदमी मिला। उसने मुझसे कहा कि–'चलो मैं तुम्हें तुम्हारे पति के पास ले चलूँ, मैं उसकी जगह जानता हूँ'। वह आदमी मुझे डिपोमें ले आया। जब मैं डिपो में थी तो एक दिन मैंने अपने पतिको वहाँसे जाते हुये देखा। मैं चिल्लाई परन्तु मुझे चुप करा दिया गया। डिपो से मैं फ़िजी भेज दी गई'। एक हिन्दुस्तानी लड़की से इसके पड़ोसिनें कहा 'जा मुहर्रम का मेला देख आ' मेले में वह लड़की बहका दी गई और डिपोमें भेज दी गई। एक और स्त्री ने मुझसे कहा 'मैं घाटपर स्नान करने जारही थी। रास्ते में एक स्त्रीने मुझे बहकाकर डिपोमें भेज दिया।'

यह उपर्युक्त शब्द किसी पक्षपाती मनुष्य के नहीं हैं, यह शब्द हैं एक मनुष्यजाति की प्रेमी निःस्वार्थ महिलाके, जो एक दो महीने नहीं बल्कि १५ वर्ष तक फिजी में भारतीय स्त्रियों की दुर्दशा देखती रही है।

मिस्टर सी. एफ. ऐण्ड्रूज़ और मिस्टर डब्ल्यु. डब्ल्यु. पियर्सन ने फ़िजी से लौटकर जो रिपोर्ट लिखी है, उसमें वह लिखते हैं:– "फ़िजी में कुलीगीरीका काम करनेवाली स्त्रियोंमें यह बात ध्यान देने योग्य थी, कि उनमें से अधिकांश तीर्थस्थानों में बहकाई गई थीं। इन स्त्रियों को उनके सम्बन्धियोंसे मिला देने का [illegible] दिखलाने का वचन देकर आरकाटियोंने [illegible] वृत्तान्तों से जो हमने फ़िजी में कुलियों

मुख से सुने, उपरोक्त कथन की पुष्टि होती है और सत्यता में कोई सन्देह नहीं रहता"। *

यहाँ पर हम कुछ दृष्टान्त देते हैं, जिनसे पाठकों की समझ में यह बात स्पष्टतया आजावेगी कि स्त्रियाँ किस ढङ्गसे बहकाई जाती हैं।

(१) मि. ऐण्ड्रूज़ और मिस्टर पियर्सन अपनी रिपोर्ट के ग्यारहवें पृष्ठ में लिखते हैं "एक उच्च घराने की स्त्री ने फिजी में हमें बताया था कि वह काशी की यात्रा पर जारही थी। मार्ग में मनुष्यसमूह में वह अपने सम्बन्धियों से पृथक् होगई। एक मनुष्यने उसे रोती देखकर सम्बन्धियों के पास पहुँचाने की प्रतिज्ञा की और इस प्रकार उसे डिपो में ला ठूँसा। जब उसे सच्ची बात मालूम हुई तो वह उसका विरोध न करसकी क्योंकि उसे बहुत डराया गया था। मजिस्ट्रेट के सामने भी वह यह न कह सकी कि मैं नहीं जाऊँगी क्योंकि वह इतनी धमकाई गई थी कि सिवाय "हाँ" के और कुछ कह ही नहीं सकती थी। उसे यह भी नहीं बताया गया था कि उसे जहाज़ पर सवार होकर समुद्र पार जाना होगा।"

(२) मारवाड़ी एसोसियेशन के मंत्रीने बंगाल की प्रान्तीय सरकार के पास जो आवेदन पत्र भेजा था उस के साथ उन्होंने कितने ही स्त्री पुरुषों के ऐफ़ैडेविट (शपथ पत्र) भी जोड़ दिये थे। इन एफ़ैडेविटों को पढ़कर आरकाटियों की चालाकी अच्छी तरह ज्ञात हो सकती है। एक प्रतिष्ठित घराने की स्त्री जिसका नाम लक्ष्मी था आरकाटियों द्वारा बहकाई जा कर डिपो में भेजी गई थी। इस स्त्री को मारवाड़ी समिति ने बड़ा प्रयत्न करके डिपो से छुटवा लिया था। इसने कहा था "मैं आगरे से अजमेर जा रही थी और मैंने माँगीलाल

*देखो Report on Indentured labour in Fiji. Part I. page 7th.

को, जो कि मेरी अजमेरवाली दुकान का गुमास्ता है,
दिया था कि तुम मुझे अजमेर के स्टेशन से ले जा
अजमेर स्टेशन पर पहुँची तो मैं अपने गुमास्ते माँगीलाल
करने लगी। इतने में एक आदमी आया और मुझसे आक
मुझे माँगीलाल ने तुम्हें लेनेके लिये भेजा है, वह खुद नहीं
चलो मैं तुम्हें घर ले चलूँ। तब उसने मुझे एक बन्द गाड़ी
लाया और एक तिमंजिले मकान में ले गया, वहाँ मुझे
लिये एक कमरा दे दिया। और मुझे से कहा कि माँगीलाल
जरूरी काम के लिये कहीं गये हुये हैं, वह एक सप्ताह में आ
जब माँगीलाल कई दिनों तक नहीं आये तो मैंने उससे इसका का
पूँछा। उसने कहा "देखो मेरे पास अभी एक चिट्ठी माँगीलाल
आई है, इसमें लिखा है कि मैं जमेका जाता हूं, तुम सेठानी जी को
लेकर यहीं चले आओ, सो मैं तुम्हें माँगीलाल के पास ले चलूँगा।
लेकिन एक बात है कि कहीं पुलिस को इस बात का शुबा शक न हो
जावे कि मैं दूसरे की औरत को भगाये लिये जाता हूँ, इस लिये
पहिले मजिस्ट्रेट से सार्टीफिकेट लेना ठीक होगा। अगर तुमसे म
पूँछे कि कहाँ जाती हो तो तुम यही कहना कि 'मैं जमेका जाती
मैं यहाँ अपनी इच्छा से जा रही हूँ।' अगर तुम से मजिस्ट्रेट और
सवाल पूँछे तो 'हाँ' कहना अगर 'ना' कहोगी तो सार्टीफिकेट न
मिलेगा। आरकाटी मुझे मजिस्ट्रेट के पास ले गया। जैसा कि आरकाटी
मुझसे कहा था वैसा ही मैंने कह दिया ..... जब हम कलकत्ते को
आने लगे तो हमारे साथ कितने ही आदमी और स्त्रियाँ थीं। मैंने
आरकाटी से पूँछा कि 'यह कौन हैं?' तो उस मुझसे आरकाटीने कहा
"माँगीलाल ने कुछ आदमी काम करने के लिये जमेका में बुलाये
सो मैं इन्हें साथ लिये जाता हूँ।" फिर उस आरकाटी ...

उसे यह कहकर कि कहीं यह रास्ते में खो न जावे, उतरवा
जो आदमी रेल गाड़ी में मेरे साथ बैठे हुये थे उनसे उस आरका-
की तरफ़ इशारा करके कह देते, 'यह तुम्हारी मालिकिन सेठानी
अब तक मैं यही विश्वास करती रही कि यह आदमी मुझे
सेठ के ही पास लिये जाता है। जब हम कलकत्ता में पहुँचे
हमें डिपो में ले आया; इत्यादि।"

रवाडी समितिके उत्साही सभासदों की कृपा से यह स्त्री अन्य
स्त्रियों के साथ १० अक्टूबर सन् १९१३ ई० को छुड़ाई गई।
यह स्त्री न छुड़ाई गई होती तो आज जमैका की कुली लेन में
ता का जीवन व्यतीत करती होती।

लड़कोंको कैसे बहकाते हैं

यद्यपि जो कुछ हम पिछले पृष्ठोंमें लिख चुके हैं उससे पाठकोंको
आरकाटियों की चालों का काफ़ी पता लग गया होगा; तथापि
चार बातें इस बारे में और [illegible] अत्यन्त आवश्यक
ीत होता है। [illegible] ल आरकाटी प्राय:
ड़कोंको बहकाया [illegible] कभी आश्चर्य-
क सफलता [illegible] अज्ञान स्त्रियोंको
[illegible], हाँ लड़कोंको
[illegible] है और भिन्न
[illegible] ते हैं। लेकिन इस
[illegible] प्राप्त कर ली है कि

साधारण बुद्धि के लडके को बहका देना तो उनके बायें हा
खेल है ।

मिस्टर ऐण्ड्रूज़ और मि. पियर्सन साहब अपनी रिपोर्टके ९
पृष्ठ में एक जगह लिखते हैं:—

"Sometimes the recruiting agent finds a raw youth fre
from school, with a smattering of English education, and
boyish desire for adventure. He pictures to him employmen
in Fiji, as a teacher, on fabulous rates of pay,—if only th
agreement is signed. We were startled every now and then
to find in the coolie 'lines' a young lad of high caste and
education, whose whole appearance showed that he had no
business at all in such a place. The condition of such lads
when they arrive and have to be lodged in the same quarter
with men of low morals and unclean habits of life, is pitiable
indeed."

अर्थात्—"कभी कभी आरकाटी लोग, किसी छोटी उम्रके लड़के को,
जो कि हालहीमें स्कूलसे थोड़ीसी अँग्रेजी की शिक्षा पाकर निकला
होता है और जिसके हृदयमें देशविदेशोंमें घूमनेका साहस होता है
अपने फन्देमें फाँस लेते हैं । फिर उसे कहते हैं कि तुमको फिजीमें
बड़ी ऊँची तनख्वाह मिलेगी यदि तुम वहाँ अध्यापकीके काम पर जाना
पसंद करो और इस प्रतिज्ञापत्र पर हस्ताक्षर करदो । हम बड़े आश्चर्य
में पड़ जाते हैं जब कि हमें फिजीकी कुली लेनोंमें कोई उच्चवंशीय और
शिक्षाप्राप्त बालक दीखपड़ता है, जिसके कि सारे चहरेसे यही प्रगट
होता है कि ऐसी जगहमें इस बालकके आनेका कोई मतलब नहीं ।
इस प्रकारके युवा विद्यार्थियोंकी दशा, जबकि उन्हें फिजी पहुँचने पर
नीच आचरणवाले और गन्दी आदतोंके आदमियोंके साथ एकही
जगह रहना पड़ता है, वस्तुतः करुणोत्पादक होती है ।

मिस्टर ऐण्ड्रूज़ और मि. पियर्सनने अपनी रिपोर्टमें एक बड़ाही करुणाजनक दृष्टान्त दिया है वह भी सुन लीजिये। जब यह लोग मथुरा को गये थे तो बहुतसे लोग इनसे मिलने आये। एक कुलीन जाट भी इनसे आकर मिला। उसने कहा "मेरा भाई अन्धा है, उसके एकही लड़का था, जिसे कि आरकाटियोंने बहका कर कहींको भेज दिया। यह लड़का १६ वर्ष का था। एक दूसरा लड़का भी इसी लड़केके साथ बहका कर भेज दिया गया था, लेकिन डाक्टरी परीक्षामें फेल होनेके कारण यह दूसरा लड़का वापिस भेज दिया गया। इस दूसरे लड़के ने लौटकर अन्धे पितासे उसके लड़केका हाल सुनाया। तब मैं मजिस्ट्रेटके पास गया और उनसे प्रार्थनाकी कि मेरे भतीजेको विदेश जानेसे रोक दीजिये। मजिस्ट्रेटने कहा तीस रुपये जमा करो; तीस रुपये जमा करने पर एक तार कलकत्ते भेजा गया। इस पर तार का उत्तर आया कि चूंकि लड़का अपनी राज़ीसे विदेशको जारहा है इस लिये उसे रोका नहीं जा सकता। तब मैं कलकत्ते गया और वहाँ के डिपोमें जाने की आज्ञा माँगी। बड़ी बड़ी कठिनाइयों के बाद मुझे आज्ञा मिली, अन्त में मुझे यह सूचना दीगई कि लड़का फिजी को भेज दिया गया है, अगर तुम उसे वापिस मँगाना चाहो तो ४६५) रु. जमा करो।" कौन ऐसा सहृदय मनुष्य होगा जिसकी आखोंसे इस दृष्टान्त को पढ़कर आसूँ न वह निकलें और जो दुष्ट आरकाटियों के लिये, जिन्होंने बिचारे उस अंधेके इकलौते पुत्र को फँसाकर भेज दिया, धिक्कार न दे।

इसी रिपोर्ट के ग्यारहवें पृष्ठमें लिखा है "दिल्ली के पास के किसी गाँव के एक विद्यार्थी को, जो कि अँग्रेजी खूब अच्छी तरह बोलता था, क्लार्की का लोभ देकर डिपो वालोंने फँसाया था। उसे यह बिल्कुल नहीं मालूम था कि मुझे कुलियोंके साथ रहना होगा। जब

हम उससे फिजी में मिले तब वह अत्यन्त उदास था। उसने अपनी रोज़की तनख्वाह में से बचा कर कुछ रुपया इकट्ठा करलिया था, और यह रुपया देकर वह अपने को छुड़ाना चाहता था पर वह उस समय न छोड़ा गया। यद्यपि उसका स्वामी उसपर महरबान था और उससे हलका काम लेता था तथापि वह कुलियोंके साथ एक मकान में रहने से बड़ा दुखी था।"

इसी रिपोर्टसे एक दृष्टान्त और लीजिये " एक कायस्थ को इलाहाबाद में शिखासूत्रधारी और अपनेको ब्राह्मण कहने वाले डिपो के एजेण्टने जगन्नाथपुरी में अध्यापकके काम पर जानेके लिए राज़ी किया, और उसे कलकत्ते के डिपो दफ़्तर में ला ठूँसा। अब यह शर्त से मुक्त हो चुका था। कुली लेन में रहने वाले मजदूरोंकी यह यथाशक्ति सहायता किया करता था। इसने हमें बड़ी सहायता दी और इसने जो जो बातें हमें बतलाईं वह लगभग सभी ठीक थीं। यद्यपि इस लड़केने अपनी मातृभाषामें शिक्षा प्राप्त की थी और बुद्धि में यह कुली लोगों से कहीं ज्यादा था तथापि यह बड़ा बहरा था और कभी कभी तो बिल्कुल बेवकूफ़ दीख पड़ता था। यह एक ऐसा लड़का था जिसको बहकाना आरकाटीके लिये बहुत ही सहल था। इस लड़केने हमसे कहा कि जब मैं डिपो में था तो मुझे अपनी भूल मालूम हो गई थी, लेकिन मुझे इतना डर लगता था कि मैं भाग नहीं सका। जो कुछ हमने उस लड़केसे सुना उससे हमें उसके कथन की सत्यता पर पूरा विश्वास हो गया।"

श्रीयुत पं० तोतारामजी सनाढ्य ने भी अपनी पुस्तक 'फिजी द्वीप में मेरे इक्कीस वर्ष' के प्रथम संस्करण के ९२ वें पृष्ठ में एक ऐग्रीमेंट तक पढ़े हुए ... में लिखा है जो ... कि बहका कर फिजी भेज दिया गया था ... तोताराम को लिखा था "मैं फाँसी लगाकर मर जाऊँ-

गा, नहीं, तो मेरे बचाने का कोई यत्न करो; मुझ से इतना कठिन परिश्रम नहीं होता।" बड़ी ही कोशिश के बाद दासत्व से इसे छुटकारा मिला। फिजी से लौटते समय पंडितजी इसे अपने साथ भारत को लेते आये थे।

यदि आप 'भारतमित्र' पढ़ें तो आपको ऐसे कितने ही दृष्टान्त ज्ञात हो जावेंगे। अभी कुछ दिन हुये मदारीलाल नामक एक महाशयने अपने इकलौते बेटेका आरकाटियों द्वारा बहकाये जाने का समाचार 'प्रताप' में छपवाया था। + इस बिचारे का लड़का ६ जून १९१४ ई० को जमरावाँ नामक स्थान से बहका दिया गया था। इस वृद्धने अपने पत्र के अन्त में जो वाक्य लिखे हैं, उन्हें पढ़कर हृदय करुणा से भर जाता है। श्रीयुत मदारीलाल जी लिखते हैं:—

"मेरे यही एक लड़का था। मुझ बुड्ढे और अन्धे गरीब को कोई ऐसी तदबीर नहीं जान पड़ती कि यह फर्य्याद गवर्नमेण्ट के कान तक पहुँचाऊँ, इस लिये तमाम 'एडिटर साहिबान' से प्रार्थना है कि इस गरीब की यह दुःसमय फर्याद गवर्नमेण्ट तक अपने पत्रों द्वारा पहुँचावें"।

हा! न जाने कितने वृद्धोंके दुलारे आखों के तारे इकलौते लड़कों को दुष्ट आरकाटी प्रतिमास द्वीप द्वीपान्तरोंमें भेज देते हैं!

+ देखो तीसरी जुलाई सन् १९१६ ई. का 'प्रताप.'

have known cases where recruitment has been only a thinly disguised excuse for immoral intrigue" (Fxtract from a letter of the Deputy Commissioner of Raipur, dated 11-12-1906.) *

अर्थात्—"आरकाटियों से सम्बन्ध रखनेवाली बातों में, जो मेरी दृष्टि में आई हैं, नियमों का कड़ापन बिल्कुल कम नहीं करना चाहिये, ऐसा मेरा मत है। मैंने ऐसे कितने ही दृष्टान्त सुने है, जिन में कि कितने ही घर उजड़ गये और बालबच्चे अपनी माँसे छूट गये और मैं ऐसी मिसालों को जानता हूँ जिनमें कि भर्ती की ओट में स्त्रियों से व्यभिचार करने के लिये प्रयत्न किये गये हैं।"

इस में ज़रा भी सन्देह नहीं कि प्रायः आरकाटी लोग अपने डिपो में फँसाई हुई स्त्रियों को दुश्चरित्र बनाने का पूरा पूरा उद्योग करते हैं। 'कामनवील' के ६ वीं अगस्त सन् १९१५ ई० के अङ्क में A chroniclir नामके एक लेखकने एक लेख छपाया था। लेखकने मलाबार से भर्ती किये हुये कुलियोंको कालीकटमें डाक गाड़ीमें बैठते हुये देखा था। इनमें बहुतसे कुली थे और एक बिचारी स्त्री थी। इनके विषयमें लेखक ने लिखा है:—

"उस स्त्री के चहरे और वर्ताव से यह प्रगट होता था कि वह स्त्री बदमाश नहीं है। और ठेकेदार का साथी आदमी यह प्रयत्न कर रहा था कि आसाम तक पहुँचते पहुँचते यह स्त्री भी ठीक वैसी ही (पुरुषों की भाँति) दुराचारी बन जावे। सम्भवतः इसी उद्देश्य से उस आदमीने अपने दो अत्यन्त अक्खड़ कुलियों से कहा कि उस स्त्री के निकट जाकर बैठो। और इसके बाद उस ठेकेदार के साथी ने जो इशारे उन कुलियों से किये, उनसे उन दोनों गुंडों को

*देखो महाराष्ट्र (नागपुर) का ३ नवम्बर सन् १९१५ ई. का अङ्क.

[illegible]ह शीघ्र ही विश्वास हो गया कि यह स्त्री हमारे अब बिल्कुल आधीन
[illegible]। इसका जो कुछ परिणाम हुआ वह अत्यन्त ही करुणाजनक था।
किसी भी स्त्री के लिये मैं इस प्रकार की अवांछनीय दुर्दशा की
कल्पना भी नहीं कर सकता। उस समय मैं यह आसानी के साथ
दृष्टिगत कर सका कि अभागी बेलजियम-निवासी स्त्रियोंकी जर्मन सिपा
हियों द्वारा कैसी दुर्दशा होती होगी; अगर फर्क था तो केवल इतना
था कि वहाँ अत्याचारी लोग और निस्सहाय स्त्रियाँ भिन्न भिन्न जातिकी
थीं, लेकिन यहाँ यह अत्याचारी जंगली उसी जाति के थे, जिसकी
कि वह विचारी स्त्री थी।"

ग्राम खगरौली डाकखाना मिसरौली जिला सुल्तानपुर के निवासी
जगतस्य मिश्र नामक एक ब्राह्मण सन् १९१४ ई. में कलकत्ते की
डिपोमें भण्डारे की चौकसी करने पर नोकर हुये थे। भण्डारे में
जहां खाना पकता है, सब कुलियों को आना पड़ता है। मिश्रजी बहु
तसे पुरुषों और स्त्रियोंसे पूंछा करते थे, कि 'तुम यहाँ कैसे और किस
मतलबसे आये हो?' तब कितने ही कुली उन्हें अपना वृत्तान्त
बतलाया करते थे। जिला गोरखपुरके चालान से आई हुई महारो
नामक एक कहारिन ने अपना हाल इस प्रकार वर्णन किया था:—

"मैं अपने पतिके घर से रूठकर नैहर (मांके घर) जा[illegible]
थी। रास्तेमें मुझे लँगड़े महाराज नामके एक मर्तीवाले मिले अ[illegible]
मुझ से पूँछा कि तुम कहाँ जाती हो? मैंने कहा मैं अपनी मा[illegible]
घर जा रही हूँ। उन्होंने मेरे गांव और मेरे नैहरका सब पता पूँछ[illegible]
और मेरी जाति भी पूछी; जो कुछ था सो मैंने सब बतादिया। तब
उन्होंने मुझसे कहा कि मैं भी उसी गांव को चल रहा हूँ। एक कुयें
के पास जाकर वह बोले कि, 'ज़रा ठहरो, जल पान कर लूँ तब
चलूँगा; तू हमारे ही साथ चलना'। मुझे भी कुछ खाने के लिये

दिया। लँगड़े महाराज बोले, 'तू हमारी लड़की के समान है; जो कुछ देते हैं बेटी तू उसे खा ले'। भूखी होने के कारण उनका दिया हुआ जलखावा मैं खागई। और फिर वहाँ से आगे चलकर उन्होंने मुझसे कहा 'हमारे एक दोस्त हैं, उनसे मिलना चाहता हूँ, तुम भी हमारे साथ ही साथ चलो, बेटी कोई डर की बात नहीं है'। मैंने पूछा, 'कि महाराज आपके दोस्त कहाँ रहते हैं!' उन्होंने कहा 'यहाँ से थोड़ी दूर गोरखपुर में।' मैंने कहा कि, 'महाराज! मैं गोरखपुर नहीं जाना चाहती हूँ, मैं नैहर जाती हूं, आप गोरखपुर जाते हैं तो जाइये।' फिर लँगड़े महाराजने कहा कि 'शहर के बाहर मेरे दोस्त का मकान थोड़ी ही दूर पर है, यहाँ से इक्के पर चलूँगा।' इतने ही में इक्के वाले से बातचीत कर मेरा हाथ पकड़कर कहा कि 'बेटी तुम पीछे बैठ जाओ।' लाचार मैं इक्केपर सवार हुई। कुछ देर बाद यह इक्का एक मकान के नज़दीक खड़ा हुआ। इक्के पर से उतर कर लँगड़े महाराजने कहा, 'बेटी तुम यहीं खड़ी रहो, मैं अभी अपने दोस्त से मिलकर आता हूँ।' थोड़ी देर बाद महाराज घर के अन्दर से लौट कर बोले कि, 'तुम भी घर में चली आओ, थोड़ी देर बाद ठहर कर चलेंगे; क्यों कि मेरा दोस्त घर में नहीं है।' उस मकान की सूब-सूरती देखते ही मुझे उस मकान के अन्दर जाने में डर मालूम हुआ, तब मैंने कहा, 'मैं मकान के अन्दर नहीं जाऊँगी,' और यह कह कर पीछे लौटने लगी। इतने ही में महाराज लपकते कूदते दौड़े आये और मेरा हाथ पकड़ कर बोले 'बेटी घर के अन्दर चलने में तुमको क्या भय है?' मैंने उत्तर दिया कि, 'महाराज! बस अब मैं घर के अन्दर नहीं जाऊंगी! नहीं जाऊंगी!!' यह सुनकर लँगड़े महाराज लाल लाल आँखें करके बोले 'कमबख्त जहन्नम में जा, ला मेरे इक्के का भाड़ा और जलपान की कीमत'। फिर मेरे दोनों

या को जबर्दस्ती पकड़ कर घर के अन्दर खींच लिया और दरवाज
बन्द कर दिया। दरवाजे के अन्दर पड़कर सिवाय रोने के और मैं
या कर सकती थी। फिर लँगड़े महाराज वहीं के एक आदमी से बोले
'देखो इसको बाहर न निकलने देना जब तक कि यह हमारा
ा न चुका दे'*। यह कहकर महाराज चलते हुये और तीन रोज
हमारे मकान के अन्दर न आये। हमारे ऐसे बदनसीब दस बारह
दमी और हमारे साथी मिले। एक दूसरी औरत भी इसी तरह विप-
ॉं फँस गई थी। हम दोनों ने सलाह की कि किसी न किसी सूरत
हम दोनों यहाँ से भाग निकलें, लेकिन कोई ढङ्ग भागने का दिखाई
दिया। जब तीन रोजके बाद लँगड़े महाराज जी आये तो हम और
दोनों औरतें भाग निकलीं किन्तु दो तीन आदमी उसी मकानके
वाले दौड़े आये और एक गठरी जिसमें कुछ कपड़ा और एक लोटा,
एक थाली थी मेरे सामने पटक कर बोले अरी लुच्ची चोट्टी यह
चुरा कर भाग रही है, चल तुझे पुलिसके आधीन करते हैं;
देखते दो चार मनुष्य और भी वहाँ आकर खड़े हो गये। लँगड़े
ाजने कहा कि तुम लोग बेफायदा यहाँ पर क्यों खड़े हो। क्या
त तक गवाही में चलना है। देखने वालोंने पुलिस का नाम सुनते
पनी अपनी राह ली और पुलिस के ही डरके मारे हम दोनोंको भी
घर की शरण लेनी पड़ी। घर के अन्दर महाराज लँगड़ेजी बोले

ऐसी बातें प्रायः हुआ करती हैं। मिस् डडले भी लिखती हैं:—"When in
epot these women are told that they can not go till they
or the food they have had and for other expenses. They
nable to do so." अर्थात्–जब यह स्त्रियाँ डिपोमें पहुँच जाती हैं तो
कहा जाता है कि जब तक तुम खाने का खर्चा न दे दोगी और अब
री चीजोंका व्यय न दे दोगी तब तक तुम यहाँसे अपने घर नहीं जा सकती।

'तुम घबराओ मत, हमारा चौका वर्तन किया करो और हमारे साथ रोटी भी खाया करो।'

लाचार होकर मैंने उनकी आज्ञा मान ली और जिस रोज मैंने उनकी आज्ञानुसार चौका वर्तन किया उसी रात को उन्होंने जबर्दस्ती हमारा पतिव्रत भंग किया। फिर वह बोले 'अब फिजी द्वीपकी भर्ती खुली है, अगर तुम्हारी इच्छा फिजी जानेकी होवे तो जाओ।' तब मैंने पूंछा 'फिजी क्या चीज है?' उन्होंने कहा कि फिजी एक टापू है, और उन्होंने वहाँकी बहुतसी बातें कहीं और कहा कि जो काम तुम्हें यहाँ करना पड़ता है वही सब वहाँ भी करना पड़ेगा। तब मैंने विचार किया कि अब तो मैं नैहर और सासुरे के योग्य रही नहीं, बस अब तो वहीं पर चलना अच्छा है। तब वह बोला कि अभी रजिस्ट्री करानी है; जब हाकिम तुमसे पूंछे 'फिजी जाने की तुम्हारी इच्छा है?' तब तुम बोल देना कि 'हां हमारी इच्छा फिजी जाने की है, क्यों कि हमारा कोई वारिस नहीं है और वहाँ पर जाऊँगी तो कमाकर अपना गुजर करूँगी।' इसके बाद एक रोज कई आदमियों की रजिस्ट्री करवाई और रजिस्ट्री करवाने के दो रोज बाद हम सबको लेकर गोरखपुर स्टेशन पर आया और फिर सबको रेल में बिठला कर यहाँ कलकत्ते ले आया और ६१ नं. डिपोमें रक्खा। जब यहाँपर डाक्टरी होने लगी तो डाक्टरने मुझ को छाँट दिया, फिर लौट कर गोरखपुर गई। जब श्रीराम (सुरिनाम) की भर्ती होने लगी तो वह बोला कि श्रीराम चलो और मुझको लेकर कलकत्ते इस डिपो में लेआया। यहाँ पर डाक्टर ने पास कर दिया।"

इस वृत्तान्त की स्वाभाविकता पर ध्यान देते हुये हमें यह स्पष्टतया प्रगट होता है कि इस स्त्रीका वृत्तान्त अक्षरशः सत्य है। इससे आरकाटियों की एक और बदमाशी जाहिर हो जाती है कि जिन

स्त्रियोंके वारिस होते हैं उनको यह बेवारिस लिखा देते हैं। मद्रास एमोसियेशनके आवेदन पत्रके तीसरे दृष्ठ में इस विषय में जो कुछ लिखा है उसका अनुवाद यह है:—

"स्त्रियों को भी आरकाटी उसी आजादी और बेफिक्री बहकाते हैं जिससे कि पुरुषों को, और उन्हें बेवारिस लिखवा दे यद्यपि इस देश में स्त्रियाँ उस हालत को छोड़ कर जब कि वह होती हैं, और कभी भी असहाय नहीं होतीं। इन स्त्रियों को अस लिखाने में आरकाटियों का उद्देश्य यह प्रगट करने का होता है यह स्त्रियाँ कार्य्य करने में स्वाधीन हैं। लेकिन इस बात को लो अच्छी तरह जानते हैं कि बहुत ही कम स्त्रियाँ इस देश में स्वा होती हैं, और वह सर्वदा अपने पति अथवा अन्य किसी रिश्तेदार आधीन होती हैं। सन् १९१२ में प्रोटेक्टर आफ़ ऐमीग्राण्ट्स (प्र सियों के रक्षक) ने जो रिपोर्ट लिखी थी, उसमें उन्होंने लिखा था कि कुल २२७५ स्त्रियों में, जो उपनिवेशों को भेजी गईं १५८० स्त्रि यानी ६९.४५ फीसदी स्त्रियाँ असहाय या बेवारिस थीं"।

इस प्रकार सैंकड़ों स्त्रियाँ बेवारिस लिखा दी जाती हैं, डिपो में जाकर वहाँ के रङ्ग ढङ्ग देखकर पहिले तो इन्हें आश्चर्य होता है और यह अपने धर्मकर्म की रक्षा करने का प्रयत्न करती हैं, लेकिन 'बकरे की माँ कबतक खैर मनावे,' इस कहावत के अनुसार अन्त में उन्हें अपना प्रण तोड़कर उसी दुर्दशा को भोगना पड़ता है; यदि एक दो दिन की बात हो तो उनका धर्मकर्म बचा भी रह सकता है पर जहाँ हीनों भ्रष्टाचारपतित मजदूरों के साथ रहना पड़े, वहाँ अपने धर्म-कर्मकी रक्षा करना लगभग असम्भव है। देखिये 'भारत मित्र' इस विषयमें क्या कहता है:—

"कलकत्ते या मद्रास के डिपो में, जहां से जहाज पर कुली चढ़ाये जाते हैं, स्त्री पुरुषों के एकत्र होने पर 'जोड़े' लिखाये जाते हैं, अर्थात् कौनसी स्त्री किस पुरुष के साथ पत्नीवत् रहेगी, इसका निश्चय कुली डिपो में किया जाता है। 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनबा जोड़ा।' यह कहावत अक्षरशः चरितार्थ होती है। जो मर्द कुली होकर जाता है वह तो अधिकतर वहाँ की दशा नहीं जानता इसलिये वह तो कुछ नहीं समझता, पर जो आरकाटी, लोगों को फँसाते हैं, उनके कुछ साथी कुलियों के कपड़े पहन कर नई आई हुई स्त्री से चाहे वह किसी की हो, कहते हैं 'मेरे साथ जोड़ा करेगी?' या 'मैं तेरे साथ जोड़ा करूँगा।' इसी प्रकार वह नये भर्ती हुये मनुष्यों को सिखला सिखला कर स्त्रियों के पास भेजते हैं, और वह इनसे ऐसी ही बातें करते हैं। स्त्री विचारी कुछ नहीं समझती और चुप रह जाती है। जब उसे अपनी अवस्था का पता लगता है तब रोना आरम्भ करती है, पर जिस तरह कसाई के घर में बँधी हुई गाय उसकी छुरी का शिकार हुये बिना नहीं रहती उसी प्रकार इनका रोना कलपना किसी काम नहीं आता।" +

'भारतमित्र' के इस कथन की सत्यता की पुष्टि करने के लिये केवल इतना कहना पर्य्याप्त है कि जितनी पोलें डिपो वालों की 'भारतमित्र' ने खोली हैं उतनी भारत के किसी एक समाचारपत्रने तो क्या, सब समाचारपत्रोंने मिलकर भी न खोली होंगी; इसके अतिरिक्त 'कुलीप्रथा' के प्रश्न पर 'भारतमित्र' Authority प्रमाण भी माना जाता है।

मारवाड़ी एसोसिएशन के आवेदनपत्र में महताब नामक एक स्त्री का बयान लिखा है जो डिपो में फांस ली गई थी। उसने कहा था

+ देखो ३ री मई सन् १९१४ ई. के 'भारतमित्र' का 'शर्तबंधे मजूर' शीर्षक सम्पादकीय लेख।

" डिपो में एक एक करके कितने ही कुली मेरे पास आये और मु
कहा 'जोड़ा करोगी?' लेकिन मैं उनका मतलब नहीं समझ सकी।
उन्होंने मुझे समझाया कि तुम्हें हममें से किसी एक की घरव
बनना पड़ेगा, तब मैंने उन्हें फटकारा और कहा कि मैं
ब्राह्मणी हूं और मेरा पति जीवित है। तब इन लोगों ने मुझे बतलाया
कि तुम्हारा पति तो तुम्हें अब कभी नहीं मिलने का; अब तो हम
लोगों में से किसी एक को पति बनाना होगा! यह सुनकर मुझे
अत्यन्त दुःख हुआ।" यह स्त्री मारवाड़ियों द्वारा डिपो से छुड़ाई
गई थी।

चौक लखनऊ के निवासी सीताराम हलवाई की स्त्री रामप्यारी
हलवाइन ने अपने बयान में लिखाया था। "जब मैं डिपो में थी, तो
एक मोटा ताजा मुसलमान, जिसे सब लोग पहलवान के नाम से
पुकारते थे, मेरे पास आया और मुझसे कहा 'अगर तुम शराब
पीओ तो मैं तुम्हें शराब ला सकता हूँ।' मैंने कहा कि मैं शराब,
भाँग वगैरह कुछ नहीं पीती।"

उपर्युक्त सब दृष्टान्तों से डिपो की दुर्दशा का पता लग सकता
है। हम यह नहीं कहते कि सरकार इन सब बातों के लिये उत्तरदायी
है, पर सरकार को इस बात पर ध्यान रखना चाहिये कि अशिक्षित
लोग—जिनकी संख्या भारत वर्ष में बहुत ज़्यादा है—सरकार को ही
इस दुर्दशा के लिये दोषी समझते हैं। कम से कम यह बात तो हम
भी बड़ी दृढ़तापूर्वक कहते हैं कि सरकारने आरकाटियों के साथ उतनी
सख़्ती का बर्ताव नहीं किया, जितना कि उसे करना चाहिये।
यह दुर्दशा दुष्ट आरकाटियों के कारण ही हमारे भाई बहिनों की
होती है। अब वह समय आ पहुँचा है, जब सरकार धूर्त विरोधियों के
प्रति कड़े से कड़े क़ानूनों का प्रयोग करे।

प्रतिज्ञा पत्रकी धोखे बाजी

जिन प्रतिज्ञापत्रों –इकरारनामों– पर आरकाटी स्त्री पुरुषोंके अँगूठे और हस्ताक्षर कराते हैं, उनकी त्रुटियों पर विचार करना यहाँ अप्रासङ्गिक न होगा। यह शर्तनामा कितना भ्रान्तिमूलक है यह बात पाठकों को उसके एक ही बार पढ़नेसे ज्ञात हो सकती है। जिस समय स्वर्गीय महात्मा गोखले ने कुली प्रथा के विरुद्ध व्यवस्थापक सभामें प्रस्ताव किया था तो उस समय सरकारी सदस्य माननीय क्लार्क साहब को यह स्वीकार करना पड़ा था कि शर्तबन्दी के असली नियम कुलियों को नहीं समझाये जाते। माननीय क्लार्क साहब ने कहा था:—

"It is perfectly true that terms of the contract do not explain to the Coolie the fact that if he does not carry out his contract or for other offences (like refusing to go to hospital when ill, breach of discipline etc) he is to incur imprisonment or fine."

अर्थात्–" यह बात बिल्कुल ठीक है कि शर्तबन्दी में जो नियम रक्खे जाते हैं उनमें से किसी नियम से कुली को यह बात ज्ञात नहीं होती कि अगर वह शर्त के अनुसार काम नहीं कर सकेगा अथवा कोई दूसरा अपराध करेगा (जैसे बीमार होने पर अस्पताल को न जाना, आज्ञाभङ्ग करना इत्यादि) तो उस पर जुर्माना होगा या उसे कैद होगी।"

इस प्रकार माननीय क्लार्क साहब के कथनानुसार सबसे पहिली त्रुटि जो " शर्तनामे " में है वह यह है कि उसमें दण्ड के नियमों की बाबत कुछ भी नहीं लिखा। दूसरी बड़ी भारी त्रुटि इस "शर्तनामे" में

यह है कि उसमें इस बात का कहीं भी जिक्र नहीं होता कि जि
उपनिवेशों में मजदूर लोग भेजे जा रहे हैं वहाँ खाद्य पदार्थों का भा
क्या है ? मिस्टर एण्ड्रूज और मि. पियर्सन अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं—

"The coolie is told in the agreement, that he will be paid at the minimum rate of twelve annas a day. But he is not told that the purchasing power of twelve annas in Fiji is scarcely equal to that of five annas in India. He is not told, also, that more is required in the way of clothing and other necessaries of life in Fiji than in India. So that the bare living expenses are nearly three times as high in Fiji as in India itself."

अर्थात्—"शर्तनामे" में कुलीकी जानकारी के लिये यह बात लिखी है कि उसे कम से कम बारह आना रोज मिलेंगे। लेकिन उसे यह बा नहीं बतलाई जाती कि फिजी के बारह आने हिन्दुस्तान के पाँच आ के बराबर हैं। अर्थात् फिजीमें बारह आने का उतनी ही सौदा आ है जितनी कि हिन्दुस्तान में पाँच आने का। वस्त्रों का दाम तथा अ खर्च भी भारत की अपेक्षा वहाँ बहुत अधिक हैं। वहां भारत का अपे तिगुने के लगभग खर्च होता है।" आगे चल कर मिस्टर एण्ड्र और मि. पियर्सन कहते हैं कि "भारतीय स्त्रियों की जो इस प्रथा बँधकर फिजी में जाती हैं, दशा बहुत ही शोचनीय है। ग्रामीण स्त्रि सीधी साधी होती हैं, उन्हें यह कहा जाता है कि फिजी में उन्हें से कम नो आने रोज मिलेंगे और खेतों पर काम करना होगा। समझती हैं कि फिजी में भी खेतों पर उन्हें वैसे ही काम करना है जैसे कि यह यहाँ करती हैं और उनके बालबच्चे उनके पास रहते हैं। पर फिजी में जाकर मामला कुछ और ही निकलता वहाँ इन बिचारी स्त्रियों को अपने बालबच्चों को कुठी लेन में ... दिन लगातार खेतों में काम करना पड़ता है, तनिकभी वि

नहीं मिलता। उन्हें इतना भी अवसर नहीं दिया जाता कि अपने बालबच्चों और पतियों के लिये भोजन बना सकें। उन्हें यह भी नहीं बतलाया जाता कि उन्हें पांच वर्ष तक कुली लैन में लज्जारहित और अशिष्ट स्थिति में रहना पड़ेगा और यहाँ से कहीं दूसरी जगह रहने के लिये जाना असम्भव होगा।"

उपर्युक्त अवतरणों से यह बात स्पष्ट है कि यह "शर्तनामा" बिल्कुल त्रुटिपूर्ण है। विचारे मजदूरको इससे क्या पता लग सकता है कि किन किन इमीग्रेशन कानूनों के आधीन रहते हुये मुझे यहाँ काम करना पड़ेगा? उसे क्या पता लग सकता है कि उपनिवेशों में हमारी सामाजिक स्थिति क्या होगी? उसे क्या ज्ञात हो सकता है कि मुझे किस मालिक के यहाँ, किस किस स्थितिमें काम करना पड़ेगा? जब वह मजदूर उपनिवेश में पहुँचता है तब उसे यह बातें बिल्कुल आश्चर्यजनक और खेदोत्पादक ज्ञात होती हैं, तब कहीं उसे पता लगता है कि यहाँ तो हालत ही कुछ और है! कहीं आबहवा खराब है, तो कहीं छोटी छोटी बातों के लिये बड़ी बड़ी सज़ायें दी जाती हैं, कहीं ओवरसियरों की ठोकरें सहनी पड़ती हैं, तो कहीं छोटेसे कुसूर पर तनख्वाह काट ली जाती है, कहीं आस पास की भ्रष्ट नैतिक स्थिति उसे पापकर्म का प्रलोभन देती है तो कहीं कौटुम्बिक जीवन का बिल्कुल ही अभाव है! जिस "शर्तनामे" में उपर्युक्त आवश्यक बातों का बिल्कुल नामोनिशान न हो क्या वह "शर्तनामा" कभी भी न्याय्य कहा जा सकता है?

चतुर्थ अध्याय

भयंकर दुर्दशा

जहाजों पर कष्ट

मांननीय पं. मदनमोहन जी मालवीयने 'शर्तबन्दी' के विरु प्रस्ताव करते हुये कहा था:—

"The conditions under which the labourers live when on board steamer are not good. There is no sufficient care for the modesty of women, and all caste and religious rules are being broken and it is no wonder that many commit suicide or else throw themselves into the Hoogli." *

अर्थात्–"जिस स्थिति में मजदूरों को जहाज़ पर रहना पड़ता है वह अच्छी नहीं होती। स्त्रियों की लज्जा की परवाह नहीं की जाती, जाति और धर्मसम्बन्धी सारे नियम तोड़ डाले जाते हैं, इसलिये यदि बहुत से आदमी आत्मघात कर लेते हैं और हुगली में कूद कर प्राण त्याग देते हैं तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?"

और भी सुनिये, मिस्टर रिचार्ड पाइपर (Mr. Richard Piper) पन्द्रह जनवरी सन १९१४ ई० के 'स्टेट्समेन' में क्या लिखते हैं:—

"All caste restrictions are ignored as soon as an immigrant leaves these shores. For the poor unfortunates who have some pride of birth, there is a bitter but struggle to retain theirself respect which generally listic acquiescence to all the immorality and

* सन् १९१६ ई० का 'लीडर' नामक पत्र देखिये।

obscenity of the coolie lines......The immigrants are allowed to herd together with no privacy or isolation for married people."

अर्थात्–"ज्यों ही एक अधिवासी अपने देश से दूसरे देशके लिये जहाज़ में बैठकर यात्रा करता है त्यों ही उसके सब जातिबन्धन टूट जाते हैं। जिन निस्सहाय अभागे आदमियोंको उच्च कुलमें उत्पन्न होने का कुछ भी अभिमान होता है, वह अपने आत्मसम्मान की रक्षा के लिये प्रयत्न करते हैं लेकिन उन विचारों का यह मर्मभेदी प्रयत्न प्राय: सफल नहीं होता और अन्त में उन्हें दैवाधीन होकर कुलीलेनों की अश्लील बातों और दुराचारोंके सामने माथा नवाना पड़ा है। यह सब प्रवासी लोग एक ही जगह एक साथ भर दिये जाते हैं और ब्याहे हुये आदमी तथा उसकी स्त्री के लिये कोई अलग जगह नहीं दी जाती।"

इस प्रकार की भ्रष्ट स्थितिमें जाने वाले यदि आचारभ्रष्ट हो जावें तो इसमें अचम्भे करने की कौन सी बात है ? मिस्टर ऐण्ड्रूज़ और मिस्टर पियर्सन अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं "फिजी में बहुत से हिन्दुस्तानियों ने हमसे कहा कि जबसे हम जहाज़ में चढ़े तभी से हमें अपने हिन्दू धर्मकी शाकभोजी होने की प्रतिज्ञा को तोड़ देना पड़ा। हम लोगों में से जो माँस खाने को पाप समझते थे उन्हें अत्यन्त कष्टों के डर के मारे यह काम करना पड़ा, क्यों कि उन्हें इस बात का डर था कि यद्यपि उन्हें भोजन के लिये माँस नहीं दिया जाता था, तब भी पकाने में शायद चर्बी का प्रयोग किया गया होगा।" जहाज़के इस भ्रष्टाचार का परिणाम उपनिवेश में पहुँचने पर क्या होता है सो भी मिस्टर ऐण्ड्रूज़ और मि. पियर्सन के ही शब्दों में सुन लीजिये। आप लिखते हैं:–

"The strict Hindu suffered accordingly. We were told in Fiji that a very large percentage of Hindus began to aban-

don their vegeterian habits from the time of the voyage out. It was a strange sight for us to see a butcher's shop in Suva, where beef as well as mutton was being sold, crowded with Hindus waiting eagerly to obtain their purchases of meat."

अर्थात्–" इसलिये कट्टर हिन्दुओं को बहुत कष्ट उठाना पड़ता है। फिजी में हम से बहुतसे लोगों ने कहा था कि हिन्दुओं में सैंकड़ा पीछे बहुत से आदमी समुद्रयात्रा आरम्भ करते ही माँसभक्षी बन जाते हैं। फिजी में एक अद्भुत दृश्य हमारे देखने में आया, वह यह कि हमने सुवा (फिजी की राजधानी) में एक कसाई की दुकान पर जिसपर कि गोमाँस और भेड़ का गोश्त बिक रहा था, हिन्दुओं का एक झुंड का झुंड खड़ा देखा जो कि माँस खरीदने के लिये बड़ी उत्सुकता के साथ ठहरे हुये थे"

गोमाताका माँस और हिन्दु खरीदें! हमारी आत्मा तो इसे पढ़ते ही काँप उठती है!! इस धार्मिक गिरावट का भी कुछ ठिकाना है। जब हम इस अवनति के कारणों पर विचार करते हैं तो यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि डिपो की दुर्दशा और जहाज़ पर का दुराचार पूर्ण जीवन हो इस का सबसे मुख्य कारण है।

जैसा कि माननीय मालवीय जी ने अपनी वक्तृता में कहा था, "कितने ही आदमी तो इन दुश्चरित्रों से तंग आकर हुगली या समुद्र में कूद कर मर जाते हैं। लक्षुआपुर जिला गोरखपुर के रहनेवाले जाठ नामक चमार ने अपने शपथपत्र में लिखाया था "जहाज़ पर चढ़ने के बाद हमारी पुरानी कुलियों से मुलाकात हुई, जिन्होंने असली हाल शर्तबन्दी के बतलाये, तब एक ब्राह्मण एक दिन शाम के समय समुद्र में कूद पड़ा मगर ज़िन्दा निकाल लिया गया और तीन चार घंटे के बाद वह मर गया। मरने से पहिले वह बहुत अच्छी तरह से

बैठा रहा और होश हवास से बातें करता रहा था। दूसरे दिन दो आदमी कूद कर मर गये, जिनमें एक कुर्मी था। ब्राह्मणोंने अपने जनेऊ तोड़ डाले और अपनी पोथियाँ गंगाजी में फेंक दीं। भर्ती-वालों ने उनसे यह कहा था कि फ़िजी में पुरोहिताई करके बहुत सा रुपया कमा सकते हो इसी लिये यह लोग गट्ठर के गट्ठर पोथियाँ बाँध कर लाये थे।"

मिस्टर ऐण्ड्रूज़ जिस समय नेटाल को गये थे तो उन्होंने जहाज़ पर कुलियों की दुर्दशा अपनी आखों देखी थी। ११ अगस्त सन् १९१५ ई. के 'बाम्बे क्रानिकल' में उन्होंने लिखा है:—

"So another set of Indian coolies was recruited at Calcutta, wretched specimens of humanity who ought never to have been tempted away for such work...... Before we had been out at sea for two days, in the stormy weather, one of the poor coolies was missing. He did not commit suicide, but for six days he remained, in a wretched condition, stowed away in the hold at last was dragged out almost more dead than alive."

अर्थात्-"इसलिये कलकत्ते में कुछ कुली और भर्ती किये गये। यह नये भर्ती हुये कुली क्या थे, मनुष्य जाति के निकृष्टतम नमूने थे और इस तरह के मनुष्य थे जिन्हें कि कभी भी इस काम के लिये लालच देकर नहीं बहकाना चाहिये था...... जब कि हम लोग तूफान के समय में दो दिन समुद्र में यात्रा कर चुके थे उन विचारे कुलियों में से एक कुली कहीं गायब होगया। उसने आत्मघात नहीं किया, लेकिन ६ रोज तक वह बड़ी बुरी हालत में जहाज के अधोभाग में जहाँ सामान भरा पड़ा रहता है, गिरा रहा। छः रोज के बाद जब वह उस जगह से खींच कर बाहिर निकाला गया तो उसकी हालत अधमरे से भी ज्यादा खराब थी।"

जो आदमी घर बार छोड़कर विदेश को अपने जीवन नि
लिये जाना चाहें वह बड़े साहसी और पक्के दिल के होने चा
कि इन विचारे बहकाये हुये कुलियों की तरह कच्चे दिलवाले
के बाद मि. ऐण्ड्रूज़ लिखते हैं:—

" जाने की इच्छा न करने वाले इन मनुष्यों को कानून के
पाँच वर्ष तक के लिये इस मानसिक दुर्दशा में डाल देना प
निर्दयता है, जब कि इन लोगों के चहरों से ही मालूम होता
भय के मारे ही इन की नाक में दम है और यह रात के
की तरह इन को भयंकर लगती है। अधिकांश मनुष्यों को तो ज्यों
यह जहाज पर चढ़ते हैं त्योंही यह मालूम होजाता है कि हमें
धोखा दिया गया है; और तब उस घोर दुर्दशा में उनकी ह
बच्चों की सी हो जाती है। यह घर लौटने के लिये तड़फड़ाते
रोते हैं और घर की याद से यह ऐसे व्यथित होजाते हैं कि कभी
आत्महत्या कर लेते हैं।"

मिस्टर ऐण्ड्रूज़ की यह बातें कोई अटकल पच्चू बातें नहीं हैं।
बातें उन्होंने अपनी आँखों से देखी हैं। जिस किसीको
बातों पर विश्वास न हो उन्हें चाहिये कि ज़रा सरकारी रिपोर्ट
ध्यान दें तो उन्हें मिस्टर ऐण्ड्रूज़ के कथन की सत्यता में पूर्ण विश्
हो जावेगा।

मिस्टर ऐण्ड्रूज़ और मि. पियर्सनने अपनी रिपोर्ट में सरकारी रि
पोर्टों से लेकर जो अङ्क लिखे हैं उनसे जहाज़ों पर के कष्टों
दृश्य बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है।

सन् १९१२ई. में ३४१२८ मज़दूर भारत वर्ष से त्रिनी को
रवाना हुये। इनमें २० तो समुद्रयात्रा में ही स्वर्ग सिधारे, इनमें

"Deaths, Desertions or Missing" के खाने में लिखा है अर्थात् या तो यह मरगये या छोड़ कर कहीं भाग गये अथवा कहीं लापता हो गये, और इनके अतिरिक्त २२ और जिनमें २० लड़के लड़कियाँ थीं पहुँचते ही सूवा के अस्पताल में मरगये और इनके सिवाय ९ आदमियों की पेश्तर इसके कि वह कहीं के काम पर लगाये जा सकें मृत्यु हो गई। इस प्रकार कुल ५६ की जीवनलीला समाप्त हो गई या औसत लगाकर यों कहिये कि हर साठ आदमी पीछे एक चल बसा।

सन् १९१३ ई. में ३३०६ आदमियों में जो फिजी को रवाना हुये थे ४७ मार्ग में अथवा वहाँ पहुँचते ही परम धाम को पधार गये! इन ४७ में से २१ तो जहाज़ पर से ही यात्रा के बीचमें लापता हो गये।

जिन लोगों को जहाज़ रवाना होनेके पहिले डाक्टरने दो बार जाँचा था और जिन्हें "Medically sound" 'डाक्टरी परीक्षामें पास' बतला दिया था उन्हीं लोगों की यह दशा हुई। यह अङ्क चिल्ला चिल्ला कर बतला रहे हैं कि "प्रतिज्ञाबद्ध कुलीप्रथा" गुलामी का रूपान्तर मात्र है। अगर हम जहाज़ों के कष्टों के बारे में कोई और बात न लिखते और सिर्फ यह अङ्क ही, जो सरकारी कागज़ों से लिये गये हैं पाठकों के सामने रख देते तो भी इन्हीं से जहाज़ों पर की दुर्दशा का काफ़ी पता लग सकता था।

हम पहिले लिख चुके हैं कि आरकाटी लोग भर्ती की हुई स्त्रियों का सतीत्व नष्ट करने की पूरी पूरी चेष्टा करते हैं। ईश्वरकृपासे जो स्त्रियाँ उनके हाथसे बच जाती हैं उन्हें जहाज़ में और भी अधिक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मिस्टर ऐण्ड्रूज़ ने लिखा है:—

"These (who are all chaste and honourable women) become mixed up almost from the first with the other class,

which is more easily recruited, viz. the prostitutes. Thus the number of forty women to hundred, men is made up. How many of them remain chaste, even upto the end of the voyage, it would be impossible to say."*

अर्थात्—"इनको जो सबकी सब सती और प्रतिष्ठित स्त्रियाँ होती हैं, प्रायः प्रारम्भसे ही दूसरी तरह की स्त्रियों के साथ रहना पड़ता है। यह दूसरी तरहकी स्त्रियाँ वेश्यायें होती हैं और यह आसानी से भर्ती कर ली जाती हैं। इस प्रकार १०० मर्द पीछे ४० ... का औसत पूरा कर दिया जाता है; इनमें से कितनी स्त्रि... समुद्रयात्राके समाप्त होने तक भी सतीत्व कायम रहता है यह ... असम्भव है!"

इस अवर्णनीय दुर्गति का पाठक स्वयं अनुमान कर लें, हमा... टीका टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं है।

यह तो हुआ जहाज़ों पर के कष्टों का हाल, अब इस के बाद उपनिवेशों में पहुँचने पर खेतों में स्त्री पुरुषों को क्या क्या दुःख भोगने पड़ते हैं, उन्हें अगले पृष्ठोंमें पढ़िये और हमारे साथ आसूँ बहाइये।

खेतों पर कठिन परिश्रम।

नियमबद्ध हम अधपेटों को खेत गोड़ने पड़ते
अवधि पूर्ण होने के पहिले प्राण छोड़ने पड़ते!
जड़ यन्त्रों को भी तैलादिक पूर्ण दिया जाता है
अर्द्धाशन में हमसे दूना काम लिया जाता है!

* देखो ११ आगस्त सन् १९१५ ई. का 'बाबे क्रानिकल'

हाथों में छाले पड़जावें तो भी धरती गोड़ो
रोगी क्यों न रहो जीतेजी काम कभी मत छोड़ो !

'भारतीय हृदय'—

भारतीय हृदय के उपर्युक्त उद्गार बिल्कुल ठीक हैं। भारतीय स्त्री पुरुषों को उपनिवेशों में खेतों पर जो काम करना पड़ता है वह उनकी शक्ति से कहीं अधिक होता है। बहुतसे आदमी तो ऐसे होते हैं जिन्होंने जिन्दगी भरमें कभी भी कुलीगीरी का काम नहीं किया और न जिनके बाप दादोंके यहाँ यह काम होता है। बड़े बड़े भारी औज़ारों को लेकर खेतों पर नो नो घंटे कठिन परिश्रम करना कोई हँसी खेल नहीं है। आदमी तो मर गिरकर आधा पौन काम करभी लेते हैं लेकिन लड़कों और स्त्रियों के लिये काम करना असम्भव सा हो जाता है। वह बहुत कम काम कर सकते हैं इसलिये तनख्वाह भी उन्हें उसी हिसाब से कम मिलती है। मिस्टर एण्ड्रूज़ और मि. पियर्सन अपनी रिपोर्ट में लिखते कि हैं "एक ब्राह्मण का लड़का जिसकी अवस्था कि १५ वर्ष की थी, सन् १९१५ ई. में फिजी को भेज दिया गया था। इस लड़के को आरकाटीने यह कहकर कि तुम्हें वहाँ बाग़ में काम करना पड़ेगा बहका दिया था। इस लड़केके हाथ बिल्कुल नर्म थे और इसकी दशा बहुत ही दुःखपूर्ण थी। अब भी इस लड़के की हरएक बातमें बहुत कुछ लड़कपन पाया जाता था। बड़ी दीनताके साथ हमसे यह प्रार्थना करने लगा कि मुझे मेरे घर हिन्दुस्तानको भजवादो।"

स्त्रियों की और भी अधिक दुर्दशा होती है। श्रीमती डडले ने इस दुर्दशा का बड़ा ही हृदयवेधक चित्र खींचा है। वह लिखती हैं, "यह भीरुहृदय और डरपोक स्त्रियाँ इस देश में भेजदी जाती हैं और उन्हें यह भी नहीं मालूम होता कि हम कहाँ भेजदी गई हैं। जो काम

उन्हें दिया जाता है, यदि वह उसे ठीक तरह से नहीं कर सकतीं वह पीटी जाती हैं और उन पर जुर्माना होता है, यहाँ तक कि वह जेल में भेज दी जाती हैं। खेतों पर काम करते करते उनकी शक्ल बदल जाती है और उनके चहरे भी बदल जाते हैं। कुछ अत्यन्त पीड़ित और विदीर्णहृदय दीख पड़ती हैं, कुछ उदास और उद्विग्न मालूम होती हैं और अन्य व्यथित और पीड़ित जान पड़ती हैं। बार बार उनके म्लीन मुखों की आकृति मुझे याद आ जाती है।"

मिस्टर मैकनील और मिस्टर चिम्मनलाल को भी अपनी रिपोर्ट में लिखना पड़ा है:—

"Especially in the case of women who cook for their husbands on return from the field 10½ hours day is unduly long." (देखो २५० वाँ पृष्ठ.)

अर्थात्—"खास करके स्त्रियों के लिये, जो कि काम पर से लौट कर अपने पति के लिये खाना बनाती हैं, १०॥ घंटे खेत पर रहना हद से ज्यादा है, और अनुचित है।"

इसके अतिरिक्त कुली लैनों से खेत प्रायः दो तीन मील पर होते हैं; इसलिये आने जाने में मिस्टर १॥ घंटा लग जाता है। इस तरह बारह घंटे तो योंही बीत जाते हैं। जो स्त्रियाँ बालबच्चेवाली होती हैं, उन्हें यह काम और भी ज्यादा भारी पड़ जाता है। कोठियों के नियमों के अनुसार उन्हें अपने बच्चों को कुली लैन में ही छोड़ आना पड़ता है। अगर कोई स्त्री चुप छिपा कर अपने बच्चे को देखने चली आवे तो उस पर मार पड़ती है। Mr. G. W. Burton ने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "फिजी आफ़ टुडे" में एक दृष्टान्त दिया है जिसे हम ज्यों का त्यों यहीं उद्धृत किये देते हैं। बर्टन साहब लिखते हैं—

" It is mid-day. A woman went to work in the morning, and [left] her infant, according to the rules of the estate, at the [pla]ntation creche. The little one had been ill during the night, [an]d the mother had become anxious about it. She stole from [her] work to see it, and found that it still had fever. She [det]ermined to bring it back with her to the field- which is [co]ntrary to rules.

She is doing this when her overseer, a big, burly Britisher, [com]es along on his chestnut horse. He sees her carrying the [chi]ld on her hip, and immmediately hurls off English and [Hi]ndustani oaths at her.

' Back you go ! Take back your kid to the creche, you—

The woman turns in fear, and puts her hands together in [en]treaty. The whip comes down upon her half-naked back [an]d legs. The child is struck also. Both are crying and [scr]eaming, and the mounted brute almost puts his horse's [ho]ofs upon her. A European happens to be passing.

' You coward ! Call yourself an Englishman to strike a [w]oman like that. ? '

He laughs uneasily.

' These d—d colies- especially the women must taste the [wh]ip. There is no keeping them under else. ' *

अर्थात्—"दो पहर का वक़्त है । एक स्त्री सवेरे काम करने के लिये [खे]त में गई और अपने छोटे से बच्चे को कुली लेन में छोड़ती गई, [क्यों]कि कोठी का ऐसा ही नियम है । उस स्त्री का बच्चा रात को [बी]मार होगया था और उसे बच्चे के बारे में बड़ी चिन्ता थी । वह [अप]ने काम पर से छुप कर कुली लेन को अपने बच्चे को देखने के [लि]ये चली गई । पहुँचने पर उसे ज्ञात हुआ कि, बच्चे को अब भी [बु]ख़ार है । उसने विचार किया कि चलो इस बच्चे को अपने साथ

* देखो Fiji of To-day पृष्ठ २८५-२८६.

खेत पर ले चलूँ, यद्यपि यह बात नियम के विरुद्ध है। वह अ
बच्चे को खेत पर ला ही रही थी कि इतने में एक ओवरसि
--एक बड़ा मोटा ताज़ा अँग्रेज़--अपने घोड़े पर चढ़ा हुआ आ पहुँच
उस ओवरसियर नें उस स्त्री को अपने बच्चे को लाते हुये देख
उसे हिन्दुस्थानी और अँग्रेज़ी में गालियाँ देना शुरु किया। वह ओ
सियर बोला 'जाओ, जाओ, वापिस जाओ। इस मेमने को कु
लैन को ले जाओ!'

डर के मारे वह स्त्री लोटने लगी और अपने दोनों हाथ जोड़
खड़ी होगई। उस बिचारी की अधनंगी पीठ और पैरों पर ओव
सियर ने कोड़े लगाये! उस लड़के के भी चोट लगी। दोनों
चीख़ने लगे और उस नरपशु ने जो घोड़ेपर सवार था, घोड़े के
उस स्त्री के ऊपर लगभग रख दिये।

इतने में एक यूरोपियन वहाँ से निकला और उस ओवरसियर
बोला 'तुम कायर आदमी! तुम अपने को अँग्रेज़ कहते हो अ
उस अबलाको इस तरह मारते हो?'

वह ओवरसियर बनी हुई हँसी हँसने लगा और बोला 'इन
ट्लियों को और ख़ास करके कुली औरतों को तो अवश्य ही को
ा मज़ा चखाना चाहिये। इनका और दूसरा इलाज कोई नहीं है।

भारतीय भगिनियों की यह दुर्दशा वस्तुतः खेदोत्पादक है। मा
नेह के कारण अपने ज्वर पीड़ित बच्चे को खेत पर ले जाने वा
ौर दोनों हाथ जोड़ कर खड़ी हुई निस्सहाया अबला की अधनं
ीठ पर कोड़े फटकारना! बेहद अत्याचार है।

शर्तनामे में, जिस पर मज़दूरों के हस्ताक्षर या अंगूठे के निशा
राये जाते हैं, यह लिखा रहता है कि उपनिवेश में पहुँचने पर खे

का अथवा इससे लगाव रखनेवाला कोई दूसरा काम कराया जावेगा। लेकिन जब यह मजदूर लोग वहाँ पहुँचते हैं, तो इनमें जो अधिक होशियार होते हैं उनसे Skill (कारीगरी) का काम मिलों (Mill) में लिया जाता है लेकिन तनख्वाह उन्हें बहुत ही कम दी जाती है। मिस्टर ऐण्ड्रूस् और मिस्टर पियर्सन अपनी रिपोर्ट के तेरहवें पृष्ठ पर लिखते हैं–"एक चतुर कुली ने जो मिल में काम करता था हम से कहा 'मुझे मिल में एक सप्ताह दिन में १२ घंटे और दूसरे सप्ताह रात में १२ घंटे काम करना पड़ता है, इसी प्रकार क्रम चलता रहता है, पर मुझे अधिक मजदूरी नहीं दी जाती, शर्तनामे में इस प्रकार की कोई शर्त नहीं कि रात को काम करना पड़ेगा। हमने देखा कि बहुत से चतुर मजदूरों से कारीगरी का काम कराया जाता था पर उन्हें तनख्वाह अत्यन्त कम दी जाती थी। मिलों के स्वामी उन्हें बाज़ार की दर से चोथाई तनख्वाह देते हैं। अगर मिलों और चक्कियों में काम करते करते किसी का कोई अंग हाथ या पैर कट जावे तो भी उसकी कोई रियायत नहीं की जाती और न उसके बदले में उसे कुछ दिया जाता है। हमारे पास तीन आदमी ऐसे आये, जिनका एक न एक अंग मिल में कट गया था और जिन्दगी भर के लिये यह विकृताङ्ग बन गये थे, लेकिन उन्हें इसके बदले में कुछ भी नहीं दिया गया था। सारे द्वीप में हमने केवल एक ही दृष्टान्त में और सो भी सरकार के दबाव पर, एक अङ्गकटे कुली को मालिक की ओर से सहायता मिलने की बात सुनी।"

'मिलों के कुलियों के साथ भी, जिन्हें बाज़ार की दर से चोथाई तनख्वाह दी जाती है और बारह बारह घंटे कारीगरी का काम लिया जाता है, अच्छा बर्ताव नहीं किया जाता। Mr. G. W. Burton साहब की पुस्तक 'फिजी आफ़ टुडे' के २८६–२८७ वें पृष्ट में

एक दृष्टान्त दिया है, उससे हमारे कथन की पुष्टि होती है। बर्टन साहब लिखते हैं:—

"A coolie comes out of the mill with his face cut and bleeding and some of his teeth knocked in. His blue dungaree clothes are heavily stained with blood. It looks like an accident caused by the machinery. It is not though. He is employed shovelling lime into a grinder, and he has been careless enough to spoil some. This fell upon an Englishman below, who came up in anger, and with a piece of wood, did-this. The coolie was a week before he went to work again."

अर्थात्—"एक कुली एक मिल से बाहिर आता है, उसका मुंह कट गया है और उससे खून निकलता है और उसके कुछ दाँत टूट गये हैं। उसके नीले कपड़े लोहू से लथपथ हैं। उसे देखकर यह अनुमान होता है कि अकस्मात् मशीन से उसके चोट आगई है, लेकिन यह अनुमान ठीक नहीं; बात यह थी कि वह एक चूने की चक्की में चूना डालने के काम पर नोकर था। बे परवाही से थोड़ा सा चूना उचट कर नीचे एक अँग्रेज़ के उपर गिर पड़ा। वह अँग्रेज़ गुस्से में भरा हुआ ऊपर चला आया और डंडे से कुली की यह दशा कर दी। एक सप्ताह तक वह कुली इस चोट को भुगतता रहा।"

बर्टन साहेब लिखते हैं कि इस प्रकारकी कितनी ही मिसालें दी जा सकती हैं। उपर्युक्त दृष्टान्तों से भारतीय मजदूरोंकी कठिनाइयों का पता लग सकता है। यह सब दृष्टान्त ख़ास तौर से फिजी के खेतों पर काम करनेवाले मजदूरों के दिये गये हैं, लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं है कि ट्रिनीडाड, जमैका, सुरिनाम या ब्रिटिश गायना में मजदूरों की दशा इस से कुछ अच्छी है।

मिस्टर मेकनील और मि. चिम्मनलाल अपनी रिपोर्ट के ३१८ वें में फिजी का ज़िक्र करते हुये लिखते हैं:—

" Wages (in Fiji) are higher than in any other colony d the standard of task is lower."

अर्थात्—" फिजी में दूसरे उपनिवेशों की बनिस्बत मजदूरों को यादा वेतन मिलता है और काम दूसरे उपनिवेशों के मजदूरों की पेक्षा कम करना पड़ता है। "

पाठक गण! जहाँ कार्य कम करना पड़ता है और वेतन अधिक मेलता है उस फ़िजी में जब भारतीय मजदूरों की यह दशा है तो फेर ब्रिटिश गायना, जमैका, सुरीनाम और ट्रिनीडाड़ में, जहाँ के कुलियों को फिजी के कुलियों की अपेक्षा वेतन कम मिलता है और काम अधिक करना पड़ता है, क्या हालत होगी इसका हिसाब आप पंचराशिक द्वारा लगा सकते हैं।

कुलीलैन की भयंकर स्थिति।

Here the Government of India for the first time received full information of certain details which showed that there must be something very wrong indeed with the conditions under which these men were living. (Lord Hardinge.)

श्रीमान् लार्ड हार्डिञ्ज ने इम्पीरियल कौंसिल में अपनी चिरस्मरणीय वक्तृता में कहा था " यहाँ भारत सरकार को पहिली ही बार विस्तारपूर्वक कुछ वृत्तान्त ऐसे ज्ञात हुये, जिनसे यह प्रगट होता था कि जिस दशा में इन मजदूरों को रहना पड़ता है उसमें अवश्य ही कोई

न कोई बड़ा भारी दोष है। " इसी स्पीच में उन्होंने एक जगह मज़दूरों की परिस्थिति के बारे में कहा था:—

"......The surroundings which, as I shall explain presently, are morally very undesirable......"

अर्थात्–"उनकी परिस्थिति नैतिक दृष्टि से अत्यन्त अवांछनीय है।"

वास्तव में श्रीमान् लार्ड हार्डिञ्ज का कथन बिल्कुल ठीक है। जिन लोगों ने कुलीलेनों को देखा है वह कह सकते हैं कि पृथ्वी पर यदि कहीं नरक हो सकता है तो वह शायद कुली लेनों में ही हो सकता है। मिस्टर जे. डबल्यू बर्टन साहब लिखते हैं:—

" One of the saddest and most depressing sights a man can behold, if he have any soul at all, is a 'coolie line' in Fiji. There is a look of abjectness and misery on almost every face that haunts him. Dirt, filth, and vile stench abound. Wickedness flaunts itself unashamedly. Loose evil faced women throw their jibes at criminal-looking men, or else quarrel with each other in high, strident voices made emphatic by wild, angry gestures. The beholder turns away, striving to discover whether pity or disgust is uppermost in his mind. There is much occassion for both."

अर्थात्–" यदि किसी आदमी में कुछ भी सहृदयता हो तो संसार का सबसे अधिक दुःखप्रद और विषादकारक दृश्य उसके लिये यह होगा कि वह फिजी की कुली लेन को देखे। प्रत्येक मनुष्य के चेहरे से नीचता और दुःख ही टपकती है। जहाँ देखो वहाँ से बदबू, मलीनता, मैलेपन की बदबू आती है। दुराचारिणी कामुकी स्त्रियाँ खूनी पुरुषों पर ताने मारते हुए दीख पड़ती हैं अथवा एक दूसरे से जोर जोर से लड़ती हैं और क्रोध से मुँह बनाती हुई दीख पड़ती हैं। दर्शक इस दृश्य को देखकर पीछे लौटता है और सोचता है कि

स दृश्य से मेरे हृदय में करुणा अधिक उत्पन्न होती है अथवा घृणा, वास्तवमें यह दृश्य बहुत ही करुणाजनक और घृणोत्पादक है। और भी उन्होंने लिखा है:—

"The life on the plantations to an ordinary indentured coolie is not of a very inviting character. The difference between the state he now finds himself in, and absolute slavery is merely in the name and terms of years. The chances are that as a slave he would be both better housed and better fed than he is to-day. The coolies themselves, for the most part, frankly call it Narak (hell)! Not only are the wages low, the tasks hard, and the food scant, but it is an entirely different life from that to which they have been accustomed, and they chafe especially at first, at the bondage."

अर्थात्—"एक साधारण प्रतिज्ञावद्ध कुली के लिये खेतों पर का जीवन विशेष आकर्षक नहीं होता। जिस दशा में कुली को रहना पड़ता है उसमें और पूर्ण दासत्व में फर्क केवल नाम और वर्षों की अवधि का है। एक दुर्भाग्य की बात और भी है वह यह कि यदि वह कहीं और गुलाम होता तो कुलीगीरी की दशा में जैसा घर रहने के लिये मिलता है और जैसा खाना मिलता है उस से कहीं अच्छा घर और खाना मिलता। ज्यादातर कुली स्पष्टतया इसे 'नरक' कहते हैं! तनख्वाह कम होती है, काम बहुत कड़ा होता है और खाना कम मिलता है, परन्तु इन कष्टों के अतिरिक्त उन्हें एक कष्ट यह भी होता है, कि उन्हें ऐसा जीवन व्यतीत करना पड़ता है जो कि उनके पहिले जीवनसे बिल्कुल भिन्न होता है और यह लोग जब पहिले पहिल बंधनमें डाले जाते हैं तो बड़े संतप्त और क्षुब्ध होते हैं।"

अब ज़रा यह भी सुन लीजिये कि कुली लेन कैसी बनी होती हैं। मि. बर्टन साहब ने इनका वर्णन अपनी पुस्तक के २७१–२७२ में

पृष्ठ में इस प्रकार लिखा है " यह लोग तारकोल से पुती
रियों में रहते हैं । हरएक कोठरी दस फीट लम्बी और
चोड़ी होती है । इनमें कोई फर्श बना हुआ नहीं होता ।
से लीप कर कुली लोग जो फर्श बना लेते हैं उसी को फर्श
चाहिये । इनमें टीन की छत होती हैं । इन छोटी छो
कोठरियों–यों भी कहिये कि सन्दूकों–में तीन कुली अथवा
अपने कुटुम्ब के साथ, खाते पीते और सोते हैं । इस गुफा
सारी सांसारिक धनसम्पत्ति रहती है । इसी में चूल्हे के
निकालनी होती है और यहीं शयनस्थान भी होता है । एक
और चिड़ियों को भी यहीं स्थान दिया जाता है अथवा दो
भी इसी में रहती हैं और इनके साथ दूसरे जो जानवर
भी यहीं रहते हैं । इस प्रकार एक दस फीट लम्बी और
चोड़ी कोठरी में, जो कम्पनी ने इन्हें कृपा करके दी है, स
और तीन आदमी मिलजुल कर रहते हैं । कम्पनीवाले
हैं कि, भारतवासियों को अपने घर भारतवर्ष में इन से भी
में रहना पड़ता है । ऐसे कितने ही बहाने वह बताया करते
चाहे कुछ हो हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि जिन
में कुलियों को रहना पड़ता है वह बिल्कुल ही छोटी औ
के लिये अत्यन्त ही हानिकारक होती हैं............
पीछे कुली लोग अपने छोटे छोटे घरों में उसी तरह ठूँस
हैं, जिस तरह कि एक बाड़े में जानवर ! यह स्थान तन्दुरु
बहुत ही खराब होते हैं और वहाँ अवर्णनीय और भयानक
होती है । यदि कोई आदमी इन लैनों के पास ही होकर
दुर्ग मारे उसे अपनी नाक बड़ी ज़ोर से दबानी होग
रहा । इस लिये यदि ऐसे स्थानों में रोग और

खूब फैलती हैं तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है ? यह स्थान सभ्यता और व्यापार के सिर पर कलंक का टीका लगानेवाले हैं । ”

जिस शर्तनामे पर आरकाटी लोग मजदूरों के हस्ताक्षर या अँगूठा कराते हैं उसमें लिखा रहता है “ परदेशी कुलियों को इकरारनामे के मुआफिक रहने के लायक घर (Suitable dwelling) बिना किराये के मिलेगा जिसकी मरम्मत मालिक की ओर से अच्छी तरह होगी । ”

यह तो हम नहीं जानते कि इन ‘ रहने के मुआफिक घरों ’ की मरम्मत मालिक की ओर से होती है या नहीं, लेकिन यह हम कह सकते हैं–और ऐसा कहनेके लिये हमारे पास बहुत से प्रमाण हैं— कि इन घरों के निवासियों की ‘ मालिक की ओर से मरम्मत अच्छी तरह ’ होती है ।

मिस्टर सी. एफ़. ऐण्ड्रूज़ और मिस्टर पियर्सन जो अभी थोड़े ही दिन हुये फ़िजी से लौटे हैं, इन कुली लैनोंके विषय में लिखते हैं:—

“ We cannot forget our first sight of the coolie ‘ lines ’ in Fiji. The looks on the faces of the men and the women alike told one unmistakable tale of vice. The sight of young children in such surroundings was unbearable to us. And, again and again as we went from one plantation to another, we saw the same unmistakable look. It told us of a moral disease which was eating into the heart and life of the people...... Lastly in Fiji itself, they are crowded again into the coolie ‘ lines ’ which are more like stables than human dwellings: and there they are forced by law to remain away from every restraint of custom or religion, during a period of five years. What else could be expected ? But, that little children should be born and brought up in this,—”

अर्थात्–" हमने पहिले ही पहिल कुली लेनोंका जो दृश्य देखा उसे हम नहीं भूल सकते हैं। स्त्री और पुरुष दोनों के ही चहरों से स्पष्ट रूप से यथार्थ में पाप की बातें टपकती थीं। इस स्थितिमें छोटे छोटे बच्चोंको देखना हमें असह्य हो जाता था। और फिर ज्यों ज्यों हम एक खेतसे दूसरे खेत को गये त्यों त्यों हमें वही असंदिग्ध दृश्य दीख पड़े। इससे हमें ज्ञात हो गया कि दुराचार का रोग इन लोगोंके हृदय और जीवन को खोखला करता जाता है......और फिजी में पहुँचने पर यह लोग फिर कुली लेनों में भर दिये जाते हैं। यह कुली लेनें आदमियों के घरों की अपेक्षा घोड़ों के अस्तबलों से अधिक मिलती जुलती होती हैं, और इन कुली लेनों में इन लोगों को पाँच वर्ष तक रहने के लिये बाध्य किया जाता है, जहाँ इनके ऊपर अपने रीतिरिवाजों या धर्मका कुछ भी दबाव नहीं रहता। सिवाय इसके (कि यह पापकर्म में प्रवृत्त हों) इन से और क्या आशा की जा सकती है? लेकिन जो छोटे छोटे बच्चे इन स्थिति में पैदा होते हैं और पाले जाते हैं उनके विषय में हम क्या करें?"

इसी रिपोर्ट में आगे चलकर लिखा है " एक बुद्धिमान लड़केने हमें कुलियों की अपनी वर्तमान स्थिति को दो शब्दों में हमें बतला दिया था। वह था " आनबट के मुसाफिर!" [illegible] कुलियों ने हमसे कहा कि 'हमारे पड़ोसी के घरों में जो बातें होती हैं, उनका प्रत्येक शब्द हम काठ की भीत में होकर हमें सुन पड़ता है। हम यहाँ दिन भर ठीक ठीक बतला सकते हैं कि हमारे पड़ोस के घर में कौन स्त्री अथवा कौन पुरुष क्या कर रहा है'। अगर कोई कुली अपनी कोठरी में एक सन्दूक पर भी खड़ा हो जाय तो वह पड़ोस के कमरे की सब बातें उस के बड़ी दीवार के ऊपर होकर देख सकता है, यहाँ कमरा [illegible]

सकतीं और लज्जा तथा शिष्टाचार का ज्ञान बिल्कुल जाता रहता है। हमें प्रायः कुलियों के रहने के कमरों में गये और हमने स्वयं कुलियों के कथन को सच्चा पाया। "

स्थानाभाव से हम फिजी की कुली लेनों के विषय में अधिक नहीं लिख सकते। पाठक हमसे प्रश्न कर सकते हैं कि केवल फिजी की ही कुलीलेनों का वर्णन क्यों किया गया है? अन्य उपनिवेशों की कुली लेनों के विषय में क्यों नहीं लिखा गया? इसका उत्तर यह है कि ट्रिनीडाड, जमैका इत्यादि की कुलीलेनों की दशा इस से भी अधिक खराब है। मिस्टर मैकनील और श्रीयुत चिम्मनलाल ने अपनी रिपोर्ट के २४७ वें पृष्ठ पर फिजी के विषय में लिखा है:—

" On all estates visited by us the houses were good "

अर्थात्—' जितनी कोठियाँ हमने देखीं, उन में कुलियों के रहने के मकान अच्छे पाये।' इसके सिवाय मिस्टर मैकनील और मिस्टर चिम्मनलालने फिजी की कुलीलेनों की और भी प्रशंसा की है। इसी लिये हमने यही उचित समझा कि हम पहिले फिजी के ही " Good houses " अच्छे घरों का हाल पाठकों को सुनावें; रहे ट्रिनीडाड और जमैका इत्यादि उपनिवेशों के "Suitable dwellings" ' रहने के मुआफिक मकान ' सो उनकी बुराई स्वयं मिस्टर मैकनील और मि. चिम्मनलालने अपनी रिपोर्ट में की है।

जिन कुलीलेनों की स्थिति ऐसी भयंकर है, उनके निवासी स्त्री पुरुषों की दशा का वर्णन हम अगले पृष्ठों करेंगे।

अवर्णनीय दुर्दशा

इस प्रकरण के प्रारम्भमें ही हम यह बतला देना चाहते हैं कि इसके लिखनेका उद्देश्य कुलीप्रथाके सबसे बुरे और कलुषित भाग पर प्रकाश डालना ही है। हम इन विषयोंका वर्णन नहीं करना चाहते थे, लेकिन कर्तव्यवश होकर हमें इन घृणित और अप्रिय विषयोंपर लिखना पडता है। एतदर्थ आशा है कि विज्ञ पाठक हमें क्षमा करेंगे।

स्त्रियोंकी कमी

दस नर पीछे तीन नारियाँ, थकीं और शङ्कितसी!
देखो, लोट रही हैं कैसी, पत्थरमें अङ्कितसी!
बुझे हुये दीपकसे मन हैं, नहीं निकलती वाणी,
हे भगवान्! मनुज हैं ये भी अथवा गूँगे प्राणी!

'भारतीय हृदय'

सरकारी नियम के अनुसार सौ पुरुष पीछे चालीस स्त्रियाँ भर्ती करके उपनिवेशों में भेजी जाती हैं। आरकाटी लोग कुली डिपो में कुत्तेकुत्तियों की तरह इनके जोडे मिला देने का प्रयत्न करते हैं। स्त्री सधवा हो या विधवा, हिन्दु पति की स्त्री मुसलमान हो अथवा मुसलमान पति की स्त्री हिन्दू, इन बातोंपर विचार करना आरकाटियों के 'विचार शास्त्र' में लिखा ही नहीं! यद्यपि बहुत कम स्त्रियां अपने पति के साथ उपनिवेशों को जाती हैं, तथापि तर्क के लिये यह मान भी लिया जावे कि इन चालीस स्त्रियोंमें से पन्द्रह अपने पति के साथ जा रही हैं, तो ८५ पुरुष और २५ स्त्रियां बाकी रहेंगी। एक तो स्त्रियों की संख्या का पुरुषों

की संख्या से आधी या तिहाई होना, दूसरे इन स्त्री पुरुषों की जाति रीति रिवाज और धर्म कर्म का नष्ट हो जाना, तीसरे इन सबका अशिक्षित होना और तिस पर भी कुली लेन जैसे भ्रष्ट स्थानोंमें निवास, अगर इस स्थिति में स्त्रियाँ व्यभिचारिणी और पुरुष परस्त्रीगामी भी बन जावें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? अब इन ८५ पुरुषोंमें २५ स्त्रियों के लिये लड़ाई झगड़ा होता है, सिर फूटते हैं, सजायें होती हैं, हत्यायें होती हैं और फांसियां लगती हैं। मिस्टर मैकनील और चिम्मनलाल अपनी रिपोर्ट के ३१३ वें पृष्ठ में लिखते हैं:—

"The women who come out consist as to one third of married women who accompany their husbands, the remainder being mostly widows and women who have run away from their husbands or been put away by them. A small percentage are ordinary prostitutes."

अर्थात्—"कुली बनकर विदेश जानेवाली स्त्रियोंमें लगभग तिहाई तो अपने पतियों के साथ जाती हैं और बाकी दो तिहाई में से अधिकांश विधवायें होती हैं अथवा ऐसी स्त्रियाँ होती हैं, जो अपने पतिके पास से भाग जाती हैं, अथवा जिन्हें उनके पति निकाल देते हैं। सैंकड़ा पीछे थोड़ीसी साधारण वेश्यायें भी होती हैं।"

इन विधवाओंके विदेशप्रवास का कारण मि. मैकनील और मि. चिम्मनलाल इसी पृष्ठ पर बतलाते हैं:—

"They are women who have got into trouble and apparently emigrate to escape from the life of promiscuous prostitution which seems to be the alternative to emigration."

अर्थात्—' यह वह स्त्रियाँ होती हैं, जो आपत्ति में फँस जानेके कारण और छिनालपन से बचनेके लिये विदेशोंको जाती हैं। उनके सामने दो बातें होती हैं या तो वह व्यभिचारपूर्ण जीवन व्यतीत करें अथवा

विदेशप्रवास करें, इन दोनोंमें वह विदेशप्रवास करना पसंद कर लेती हैं।" यद्यपि हम पहिले प्रकरणोंमें यह दिखला चुके हैं कि स्त्रियाँ आरकाटियों के फन्दे में कैसे फँस जाती हैं, तथापि तर्क के लिये (For the sake of argument) हम यहाँ मि. मेकनील और चिम्मनलाल का यह कहना माने लेते हैं कि विधवा स्त्रियाँ जिनाकारी से बचने के उद्देश्यसे विदेश प्रवास करती हैं। अब प्रश्न यह होता है कि क्या यह स्त्रियाँ उपनिवेशोंमें पहुँच कर अपने उद्देश्य में सफल होती हैं? हम इस प्रश्न का उत्तर अपनी तरफ़ से कुछ नहीं देते। मि. मेकनील और मिस्टर चिम्मनलाल की रिपोर्ट से ही एक अंश उद्धृत किये देते हैं। इस रिपोर्ट के ३१९ वें पृष्ठमें लिखा है:—

"The majority of women are not married to the men with whom they cohabit on estates Of these unmarried women a few live as prostitutes, whether nominally under the protection of a man or not. The majority remain with the man with whom they form an irregular union. They are, however, exposed to a good deal of temptation as there are on all estates a number of young unmarried men with much more money than is needed for their personal wants. A few women change their protectors and out of these desertions trouble not infrequently arises."

अर्थात्—"स्त्रियाँ जिन पुरुषों के साथ कोठियों में रहा करती हैं, उनके साथ साथ वह अविवाहित होती हैं। इन स्त्रियों में से कुछ रण्डियों की तरह रहती हैं, और कुछ नाम मात्र के लिये एक आदमी को चुन लेती हैं और अधिकांश उस पुरुष के साथ रहती हैं जिससे कि उनका अनुचित और नियमविरुद्ध संबंध हुआ है। लेकिन तो भी इन स्त्रियों को (कुमार्ग में फँस जाने के लिये) बहुत कुछ प्रलोभन रहता है, क्यों कि सब कोठियों पर कुछ ऐसे किस

ब्याहे जवान आदमी होते हैं जिनके पास निजकी आवश्यकता से बहुत अधिक रुपया होता है। कुछ औरतें अपने रक्षकों (अधर्म पतियों?) को छोड़कर दूसरे को अपना पति बना लेती हैं और इस प्रकार प्रायः बहुत से झगड़े पैदा हो जाते हैं।"

हमें तब भी कुछ सन्तोष होता यदि यह विधवा स्त्रियाँ, जो कि उक्त रिपोर्ट के अनुसार व्यभिचारपूर्ण जीवन से बचने के उद्देश्यसे विदेश प्रवास करती हैं, अपने उद्देश्य में सफल होतीं; लेकिन कुली लेनों में जाकर तो उन्हें और भी बुरा जीवन व्यतीत करना पड़ता है या यों कहिये कि 'गर्म कड़ाई में से निकल कर आग में गिर पड़ने' की कहावत वहाँ चरितार्थ हो जाती है!

अब रही रण्डियाँ जो कुली प्रथा के अनुसार भर्ती करके उपनिवेशों को भेजी जाती हैं, सो उनके बारे में हम क्या कहें? शायद उपनिवेशों के निवासियों का नैतिक उद्धार करना इनके भेजे जाने का उद्देश्य होगा! यदि यह नहीं तो फिर इनके भेजे जाने का क्या कारण है? लीजिये इन मंगलामुखियों के विदेशागमन का कारण भी मि. ऐण्ड्रूज़ और मिस्टर पियर्सन के शब्दों में सुन लीजिये। अपनी रिपोर्ट के २७ वें पृष्ठ में यह महाशय लिखते हैं:—

"With the method invariably adopted hitherto of recruiting individuals, rather than whole families, it has been found exceedingly difficult to obtain in India even as many as forty women for each hundred men, without drawing largely on the prostitute class. Out on the plantations, we have been told, it is this very class which is actually needed in order to make the indenture system work."

अर्थात्—"अब तक जो तरीका कुटुम्बों के बजाय अलग अलग ही पुरुषों के भर्ती करने का लगातार काम में लाया जा रहा है,

उसके कारण भारतवर्ष में १०० पुरुष पीछे ४० स्त्रियों को भर्ती करना अत्यन्त कठिन हो जाता है और इसी कारण बहुत सी रंडियें भर्ती कर दी जाती हैं । हमने उपनिवेशों में खेतों पर सुना था कि शर्तबन्दी की प्रथा को चलाने के लिये रण्डियों की बड़ी भारी आवश्यकता है ! ”

अब आगे चलिये और देखिये कि कुलीप्रथा को चलानेवाली रण्डियों और विधवा स्त्रियों की दशा उपनिवेशों में पहुँचने पर क्या होती है । मि. ऐण्ड्रूज़ और मि. पियर्सन इसी रिपोर्ट के ३० वें पृष्ठ में लिखते हैं:—

" It will easily be seen, that when the stronger men on an estate have taken to their own possession an equal number of women, the remainder of the adult women find themselves still more unequally matched in number. The disproportion rises as high as one woman to four or even to five, men. In these circumstances, the remark of one employer can be understood without comment,–when one of us spoke to him about recruiting no more abandoned women, he demurred and answered " Why ! The system couldn't go on without them. " We heard of one estate where the overseer made the regular practice, in order to keep peace in the 'lines', of alloting so many men to each single woman. This amounted *to regulated prostitution.* "

अर्थात्–"यह बात आसानीसे समझ में आ सकती है, कि जब किसी कोठीपर बलवान् आदमी एक एक औरत अपने कब्ज़े में कर लेते हैं तो बाकी जो जवान औरतें रह जाती हैं उन की संख्या में और इन पुरुषों की संख्यामें और भी ज्यादा फर्क होता है । कभी कभी तो इन ... 'एक औरत पीछे चार या पाँच मर्द ' तक पहुँच ... कोठीके स्वामी से हमने कहा कि ' अब बदचलन

औरतों को भर्ती नहीं करना चाहिये।' यह सुनकर वह कुछ गड़-बड़ाया और बोला 'क्यों! बिना बदमाश औरतों के तो प्रतिज्ञा-बद्ध कुली प्रथा चल ही नहीं सकती!' कोठीवालेके इस कथन को पाठक अपने आप समझ सकते हैं; हमें इस पर टीका करने की आव-श्यकता नहीं। हमने सुना कि एक कोठीपरओवर सियरने यह नियम ही बना लिया था कि प्रत्येक स्त्री पीछे कुछ आदमी नियुक्त कर दिये जाते थे, जिससे कि कुलीलैन में लड़ाई झगड़ा न हो। दूसरे शब्दों में इसके मानों नियमबद्ध व्यभिचारके हुये।"

स्वर्गीय सर हेनरी काटन के. सी. एस. आई. ने पार्लियामेण्ट के कागज़ पत्र देखकर हिसाब लगाया था और लिखा था कि ट्रिनीडाड में ३११८९ जवान मर्द और १७१५९ जवान स्त्रियाँ हैं, ब्रिटिश गायनामें ५३०८३ मर्द और ३४७७१ स्त्रियाँ हैं, जमैका में ७१३७ युवा पुरुष और ४७७५ युवती स्त्रियाँ हैं और फिजी में २००६२ पुरुष और ८७८५ स्त्रिया हैं। श्रीमान् लार्ड हार्डिञ्ज ने भी अपनी स्पीच में कहा था:—

"In a parliamentary report for march 1914 the sex proportion among the average Indian population of the various colonies showed that in Trinidad & Tobago there were nearly twice as many males as females. In British Guiana there were about 26 percent. More, while in Fiji there were nearly 2½ times as many males as females"

अर्थात्—"मार्च सन् ई. १९१४ की रिपोर्ट में, जो पार्लियामेण्ट से प्रकाशित हुई है, भिन्न भिन्न उपनिवेशों की भारतीय जन संख्या का, स्त्री-पुरुषों का औसत इस प्रकार दिया गया है। ट्रिनीडाड और टोबेगोमें पुरुषों की संख्या स्त्रियों की संख्या से लगभग दूनी है। ब्रिटिश गायना में पुरुषों की संख्या स्त्रियों की संख्या से २६ फीसदी ज्यादा है और फिजी में मर्द स्त्रियों से २॥ गुने हैं।"

यह भीषण अङ्क उपनिवेशों के भारतीयों की दुर्दशा को प्रगट कर रहे हैं । स्त्रियों की संख्या के कम होने से जो हत्यायें और आत्मघात होते हैं, उन का वर्णन हम अगले में करेंगे ।

दुराचार, हत्या और आत्मघात

As might be expected from these figures there unofficial evidence to show that the sexual immoralit ing among the coolies is appalling and that domestic are largely in abeyance. Such sordid and miserable may well predispose an unhappy man to suicid

Lord H

उपनिवेशोंमें स्त्रीपुरुषोंकी संख्या का औसत बतलाते लार्ड हार्डिञ्जने कहा था " इन अङ्कोंको देखकर अनुमान सकता है, और इसके सिवाय कितने ही गैर सरकारी आदमि इस विषयमें बड़ी प्रबल है कि कुली स्त्रीपुरुषोंकी दुश्चरि अत्यन्त भयंकर है और पारिवारिक सम्बन्धों का प्रायः नहीं किया जाता । इस प्रकार की कुत्सित, नीच और क यदि कोई दुखी आदमी आत्मघात कर ले तो इसमें क्या है । "

निस्सन्देह लार्ड हार्डिञ्जका कथन अक्षरशः सत्य है भारतीय कुलियों की नैतिक स्थिति दुराचारपूर्ण है । इस कारण कुलीप्रथा ही है । इसका एक दृष्टान्त हम श्रीयुत एम. ए., एल. एल. बी. (बैरिस्टर, फिजी) के एक लेख हैं । २२ और २३ जनवरी सन् १९१९ ई. के 'भारतमित्र

उन्होंने " कुली प्रथा से चरित्रभ्रष्टता " शीर्षक एक लेख छपवाया था उसका सारांश निम्नलिखित है:—

" सात वर्ष हुये, क्षत्रिय रामनिवास सिंह फिजी आया था, इससे दो वर्ष से वह स्वतंत्र है, क्यों कि ५ वर्ष का उसका गिरमिट पूरा हो गया। चतुर, साफ़ और सुथरा होने के कारण इस्टेट की एक मेम साहबाने इसे अपने यहाँ गोमांस और शूकरमाँस पकाने पर बावर्चीखाने में नोकर रख लिया। पहिले तो वह कुछ हिचकिचाया लेकिन जब पुराने गिरमिटियों ने उसे समझाया कि 'गोमांस या शूकरमांस हाथ से छूने से मुँह में थोड़े ही घुस जाता है, अरे यह तो फिजी है, जब कलकत्ते की डिपो में धर्म का नाश हो गया और जहाज़ पर भी धर्म नष्ट होता रहा, तो अब धर्म बच कैसे सकता है ?' तब उसने खेतीबाड़ी के कामसे बावर्चीगीरी का हलका काम पसंद कर लिया।

इस रामनिवास सिंह की धिरानी नाम की एक ब्राह्मण कन्या से फिजीमें भेंट हो गई। जब यह १० वर्ष की थी, तभी हिन्दुस्तान में इसका विवाह हो चुका था। और जब यह १३ साल की हुई तो इसकी एक बुढ़िया पड़ोसिन ने इसे मिठाई खिलाना शुरू किया और यह एक दिन उसे बहका कर कानपुर ले गई। कानपुर में बुढ़िया ने दिलदार नामके मुसलमान से इस कमसिन ब्राह्मणकन्या को मिला दिया और कलकत्ते में गराट साहब ने दिलदार और धिरानी का औपनिवेशिक रीति पर गठजोड़ा करा दिया और वह दोनों औपनिवेशिक पतिपत्नी ब्रिटिश इण्डिया नेवीगेशन कंपनी के एक जहाज़पर चढ़कर फिजी को चले।

फिजी पहुँचने पर इस ब्राह्मणकी लड़कीने साफ़, सुथरे और अच्छी मज़ूरी पानेवाले रामनिवास सिंह और बदसूरत दिलदारमें मिलान किया।

और फिर यह भी सोचा कि मैं ब्राह्मणकी लड़की हूँ, ऊँची [illegible] हिन्दू के साथ रहूँ तो बहतर होगा। यही सोचकर वह रामनिवास सिंह के घर बैठ गई। इन दोनोंने फिजीके इण्डियन मेरिज [illegible] नेन्स–हिन्दी विवाह प्रबंध–के अनुसार जिले के स्टाइपेंडियरी [illegible] के यहाँ ५ शिलिङ्ग दक्षिणा देकर अपने ब्याह की रजिस्ट्री करा ली।

जब विवाह हो गया तब पिरानी ने सोचा कि यदि रामनिवास की गैर हाजिरीमें दिलदार भी मुझसे मिल लिया करे तो बुरा क्या है। दिलदार उसके यहाँ आने लगा। जब रामनिवास को [illegible] आने की खबर मिली तो उसने अपने 'गवर्मेण्टी जोरू' [illegible] दिया। (अदालतमें एक मामले में एक सीधे सादे हिन्दुस्तानीने [illegible] यह समझ कर उसे 'गवर्मेण्टी जोरू' कहा था कि जब सब [illegible] गवर्मेण्टकी मनशाके माफिक [illegible] गवर्मेण्टी कहलाती हैं, तब जिन जोरुओंकी रजिस्ट्री सरकार करती है, वह हिन्दुस्थानी कानून और रिवाजके [illegible] जोरुओंके देखते, गवर्मेण्टी जोरू क्यों न कहलावें) जब रामनिवासने देखा कि पिरानी अपनी चाल नहीं छोड़ती तो उसने ओवरसियर के यहाँ दिलदार को ऐसा कड़ा काम दिलवाया कि उसकी [illegible] दिलदार ऐसे काम [illegible] करनेके कारण पिरानीके पास न आ सके लेकिन दिलदार हताश नहीं हुआ और अपनी [illegible] प्रेम करता रहा।

कुछ दिन बाद रामनिवास सिंह की 'बदली' हो गया। [illegible] ओवरसियर दिलदार का दोस्त था, इस लिए उसने [illegible] रामनिवास सिंह की [illegible] के अन्दर, जहाँ कि उसकी [illegible] [illegible] दिया। [illegible]

स चली जाती थी और इतवार की रात को भी उसी के पास हती थी।

कुछ दिनों बाद जिस ओवरसियरके यहाँ रामनिवास सिंहने पहिले नम किया था वह बदल गया और दूसरा ओवरसियर उसकी जगह र आ गया। इस ओवरसियर साहबने चिरानी पर मामला चलाया के इण्डियन इमीग्रेशन आर्डिनेन्स रूपी शास्त्रके अनुसार सप्ताहान्तमें चेरानी कुलीलाइन के शयनागार में नहीं रहती और रामनिवासपर मामला रला कि यह गिरमिटिया चिरानीको अपने यहाँ रखता है (यद्यपि ह उसकी गवर्मेण्टी या रजिस्टर्ड और पक्की 'जोरू' है।) एक बैरिस्टरसे रामनिवासने सलाह ली और उसने इमीग्रेशनके एजेण्ट जेनरलको उसकी ओरसे प्रार्थनापत्र भेजा, तब चिरानीके ऊपरसे मामला उठालिया गया और चिरानी अपने रजिस्टर्ड मर्दके यहाँ सप्ताहान्त बिताने लगी।

अब चिरानी और दिलदार की शर्तबन्दी खतम हो गई (यह याद रखना चाहिये कि दोनों "जहाजी" हैं, अर्थात् एकही जहाज़ पर आये हैं)। रामनिवास सिंह सूवाके एक होटेलमें बावर्चीका काम करता था और दिलदारकोभी एक बड़े यूरोपियन होटेलमें खान-सामागीरीकी नौकरी मिलगई। दोनोंकी ईर्षा अब और ज्यादा बढ़ने लगी; क्योंकि अब तीनोंके तीनों स्वतंत्र हैं और तीनों फिजीकी राजधानी सूवा में रहते हैं।

दिलदार ने एक हिन्दुस्थानी की सलाह ली जो कि एक बैरिस्टर के यहाँ हिन्दुस्थानी मुकद्दमे लाता था और दोनों ने यह विचारा कि, जिसमें और झगड़ा न बढ़े, इस लिये गवर्मेण्टी व्याह की पार्टियों में लिखापढ़ी हो जावे और मुहर करके कागज दे दिये जावें। निदान लिखापढ़ी हो गई। रामनिवास सिंह कहता है कि लिखापढ़ी की कुल

बातें समझे बिना मैंने उस काग़ज़ पर
जो पीछे मालूम हुआ कि मेरा घिरा
घिरानी दिलदारके पास रहने लगी।

एक बार गहने के मामले में घिरानी की
बिगड़ा, क्यों कि अब वह इसी के साथ रहती
नामा लिये हुये अपने रजिस्टर्ड मर्द रामनिवास
पश्चात्ताप करके उसके साथ रहने लगी और अ
के लिये बैरिस्टर साहब का लिखा लम्बा चौड़ा
४ पौण्ड अर्थात ६० रुपये से अधिक लगे थे)
के सुपुर्द कर दिया।

अब दिलदार की बारी आई और यह भी पछ
से हाथ जोड़ कर प्रार्थना करने लगा। घिरानी का
उसने उदारतापूर्वक दिलदार के दोष क्षमा कर
साथ रहने लगी ! अब रामनिवास सिंह ने बैरिस्टर
जब बारिस्टर साहब को मालूम हुआ कि तलाकनामा
गया और घिरानी का अपने मर्द से मेल हो गया तब
कि दिलदार पर दूसरे की जोरू रखने का मामला
चल सकता है और उससे हर्जाना मिल सकता है। इसी
कि बैरिस्टर की फ़ीस भी नहीं चुकाई गई थी और दूसरे
भी न होने पाई थी कि घिरानी अपने मन से दिलदार को
ठाकुर के पास आ गई और रोने लगी क्यों कि दिलदार की
ठाकुर का वर्ताव अच्छा ही था। घिरानी रामनिवास सिंह
रहने लगी।

इसके कुछ दिनों बाद दिलदार ने
रहा और जिसने

पर कुछ दिनों बाद दोनोंमें झगड़ा हो गया। दिलदार ने उसके सब गहने, जिसमें कुछ रामनिवास सिंह के दिये हुये भी हैं, ले लिये जिससे कि वह प्रेम के बन्धन में बँधी रहे।

मामला फिर अदालत को जाने वाला है। बैरिस्टर लोगों को सब बातें समझा दी गई हैं। फिजी के कानूनों के अनुसार जैसा न्यायसम्मत है वैसा होगा।"

इस उपर्युक्त घृणोत्पादक कथा को पढ़नेपर श्रीमान् लार्ड हार्डिञ्ज का यह कथन कि:—

"Sexual immorality prevailing among the coolie is appalling."

अर्थात्-" कुलियों में स्त्रीपुरुषों की दुश्चरित्रपूर्ण स्थिति अत्यन्त भयंकर है " सोलह आना सत्य मालूम होता है।

सारा संसार जानता है कि विवाह संस्कार हम लोगोंके यहाँ अत्यन्त ही पवित्र संस्कार है। इस पवित्र धार्मिक संस्कार की उपनिवेशों में ऐसी मिट्टी पलीत हुई है कि जिसे पढ़कर हिन्दू होने का अभिमान रखनेवाले प्रत्येक भारतवासी को महान् दुःख और आश्चर्य होगा।

हिन्दू धर्म के अनुसार किये हुये विवाह उपनिवेशोंमें जायज़ नहीं समझे जाते, इमीग्रेशन आफिस के द्वारा जो 'मेरिट' होती है वही ठीक समझी जाती है। पाठक कहेंगे कि यह 'मेरिट' क्या बला है?

अगर हम 'मेरिट' के अर्थ 'विवाह' बतलावें तो यह प्राचीन विवाह शब्द का अपमान करना होगा, मनु भगवान्ने जिसे धर्म-शास्त्र में राक्षस विवाह लिखा है, उसी की यह इमीग्रेशन नामक औपनिवेशिक धर्मशास्त्रानुमोदित नवीन शाखा है।

जाती थीं। जैसा कुछ उनके मन में आता वैसा ही वह करती थीं और अपनी इच्छानुसार जिन्दगी बिताती थीं। जाति और धर्म सब गड़बड़ होकर खिचड़ी बन गये थे। हिन्दू कन्यायें मुसलमानोंको और मुसलमान कन्यायें हिन्दुओंको बेची जाती थीं। भंगियोंके बच्चोंकी कभी कभी ब्राह्मणोंके साथ शादी होती थी।"

एक मिशनरीने अपनी फिजीमें ईसाई धर्म प्रचारसम्बन्धी सन् १९१० की रिपोर्टमें निम्न लिखित दृष्टान्त लिखा था:— *

"We are deeply grateful for having had the opportunity to rescue an orphan girl named Sukhiya from a life of cruel shame. She had fallen into the hands of a vile wretch who makes it his business to prey upon human flesh, and who had traded upon her person for some four years past among Indians and Fijians. The child had wasted away to a shadow, and was covered with filth and vermin. She is now a bright, happy, healthy girl, and beams with the new bight which has slowly dawned within her. Our hope is that she will grow to be a useful christian worker among her own people in this land."

अर्थात्—" हम ईश्वरके बड़े कृतज्ञ हैं कि उसने हमें सुखिया नामक एक अनाथ बालिकाको नृशंस और कलंकित जीवनसे बचाने का अवसर दिया। यह लड़की एक नीच दुरात्मा के हाथों पड़ गई थी जो कि मनुष्यों के चमड़ेका व्यापार करके अपनी रोजी कमाता है। इस दुष्टने चार वर्ष तक इस लड़की के द्वारा हिन्दुस्तानी और फिजी के जंगली पुरुषोंके साथ दुष्कर्म करवा करवा के रुपया कमाया था। इस बालिका का शरीर क्षीण होते होते बस ढाँचा रह गया था और वह दुर्गन्धि और जुओंसे भरी हुई थी। अब वह एक निर्मल

और हृष्ट पुष्ट बालिका बन गई है और उसका चेहरा उस भी प्रकाश से, जो कि उस के हृदयमें धीरे धीरे प्रकाशित हुआ उज्ज्वल है। हम आशा करते हैं कि यह बालिका बड़े होने फिजी के हिन्दुस्तानियों में ईसाई धर्म का प्रचार करने के लि उपयोगी होगी।"

हत्या।

इन सब दुराचारों का कारण कुली प्रथा ही है जिस के नियमों अनुसार सौ पुरुष पीछे चालीस स्त्रियाँ भेजी जाती हैं। स्त्रियों की इस कमी के कारण जो हत्यायें और आत्मघात होते हैं, उनका वृत्तान्त पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। मि. एण्डूज और मि. पियर्सन अपनी रिपोर्टमें लिखते हैं:—

"While the suicide rate is more than twenty times as high as that of the United Provinces and Madras, the murder rate is more than eighty times as high as that of those provinces from which the indentured coolies are taken."

अर्थात्—"फिजीमें आत्मघात करनेवालोंकी संख्या युक्त प्रान्त और मदरासमें आत्मघात करनेवालोंकी संख्यासे बीस गुनी है और [illegible] जो हत्यायें होती हैं उनकी संख्या युक्त प्रान्त और मदरासकी [illegible] की संख्याओं से ८० गुनी है। फिजी को जो कुली भेजे जाते हैं वह प्राय इन दोनों प्रान्तों से ही होते हैं।"

[illegible]

का हुआ। इन ४१ हत्याओं में २९ हत्यायें स्त्रियों की हुई थीं। इन अङ्कों से स्पष्टतया प्रगट होता है कि स्त्रियों की कमी के कारण पुरुषों में जो ईर्षा उत्पन्न होती है वही स्त्रियों की हत्याओं का मुख्य कारण है। मि. बर्टन साहब ने भी अपनी पुस्तक के ३१६ वें पृष्ठ पर लिखा है:—

"The shortage of women and the consequent immorality resulting therefrom, are a fruitful cause of quarrelling. Nearly all the violent assaults and murders are attributable to these troubles."

अर्थात्–"स्त्रियों की कमी से और इस कमी की वजह से जो दुश्चरित्र पैदा होते हैं उनसे बहुत से लड़ाई झगड़े हुआ करते हैं। जो प्रचंड चोट फेंट और हत्यायें हुआ करती हैं, लगभग उन सभी का कारण स्त्रियों की कमी है।"

आत्मघात

"But it is surely an inevitable deduction from the facts and figures I have just been placing before you that the ultimate force which drives to his death a cooly depressed by home sickness, jealousy, domestic unhappiness or any other cause is the feeling of being bound to serve for a fixed period and amidst surroundings which it is out of his power to change."

Lord Hardinge—

"लेकिन निस्सन्देह उन वृत्तान्तों और अङ्कों से जो मैंने अभी आप के सामने पेश किये हैं, अवश्यमेव यह नतीजा निकलता है

...वेश एक कुली को आत्मघा...
करता है वह उस कुलीके इस विचार से उत्पन्न...
ख़ास समय तक और इसी स्थिति में, जिसे ...
बाहिर है, काम करना पड़ेगा। इसी विचार के...
कुली लोग, जो कि घर की याद आने से, ख़ि...
में जो ईर्षा होती है उससे, घरके दुःखों से अथवा...
खिन्नचित्त होते हैं, आत्मघात कर लेते हैं।"

निस्सन्देह लार्ड हार्डिंजने इस एक वाक्य में श...
आत्मघात करने के मुख्य मुख्य कारण बतला दिये हैं...
आदमी जिनमें कि आत्मघात करने की आदत बहुत...
जाती है, उपर्युक्त कारणों से ही प्रेरित होकर अपने...
जीवनलीला समाप्त कर देते हैं।

मिस्टर पोलक ने हिसाब लगाकर अपनी पुस्तक "I...
...outh Africa" में लिखा है कि भारतवासी संसार में स...
...त्मघात करते हैं। उनके लिखे हुये निम्नलिखित अङ्क ...
...ये हैं:—

...ाम देश या नगर	प्रति १० लाख पीछे लगभग ... मनुष्य आत्मघात करते हैं
...रिस	
...लैण्ड और वेल्स	४००
...ल्ड	१०४
...म	५८
हिन्दुस्तान	४५
...तिये उपनिवेशों के भारतवासियों में ...	१०

...है।

नाम उपनिवेश.	दस लाख पीछे कितने आदमी आत्मघात करते है.	
	स्वतंत्र भारतवासियोंमें	शर्तबन्ध भारतवासियोंमें
सुरीनाम (डच गायना)	४९	९१
ब्रिटिश गायना	५२	१००
जमैका	अज्ञात	३९६
ट्रिनीडाड	१३४	४००
फिजी	१४७	९२६

इन्हीं अङ्कों को व्यवस्थापक सभा के सामने पेश करते हुये श्रीमान् लार्ड हार्डिञ्जने कहा था " The figures are truly startling " "सच मुच यह अङ्क बड़े भयंकर हैं।"

युक्त प्रान्त और मद्रास में, जहाँसे अधिकांश कुली भेजे जाते हैं, आत्मघात करनेवालों की संख्या दस लाख पीछे क्रमशः ६३ और ४५ है। सर हेनरी काटनने २८ मई सन् १९१५ ई. के 'इण्डिया' नामक पत्र में हिसाब लगाकर लिखा है कि मद्रास में २२८७३ आदमी पीछे १ भारतवासी आत्मघात करता है और फिजीके शर्तबन्धे भारतवासियोंमें ८५३ आदमी पीछे १ आदमी आत्मघात करता है।

क्या इन अङ्कोंसे प्रवासी भारतवासियोंके असह्य दुःख प्रकट नहीं

राष्ट्रीय सम्मान पर भयंकर आघात

"There are plenty of British colonists who know Indians but the debased products of this System and to wh[om] all Inians are but coolies. The Indian emigrant and free settler is despised because of his low standard of livi[ng]. The abject servility to which he is reduced during his t[erm] of indeture only tends to heighten that repugnance. T[he] white man comes to look upon the Indian as fit for no oth[er] position nor capable of improvement."

Mr. Richard Piper (Fiji)

फिजीनिवासी ईसाई धर्म प्रचारक मि. रिचार्ड पाइपर के उपर्युक्त कथन का तात्पर्य यह है कि " उपनिवेशों के निवासी कितने ही ब्रिटिश लोग ऐसे हैं जो कि सिवाय उन भारतवासियों के, जो कि कुली प्रथा के कारण अधोगति को प्राप्त हो जाते हैं, अन्य भारतवासियों को जानते ही नहीं और जो यह समझते हैं कि सब हिन्दुस्तानी कुली ही होते हैं। प्रवासी भारतीय और स्वतंत्र अधिवासी इस लिये निकृष्ट समझे जाते हैं कि वह बहुत थोड़े खर्च में जीवन निर्वाह करते हैं। शर्तबन्दी के कारण उन्हें जिस अपकृष्ट दासत्व में रहना पड़ता है, उसकी वजह से यह विद्वेष और बढ़ जाता है। गोरे लोग यह समझने लगते हैं कि, भारतवासी कुलीगीरी के सिवा और किसी काम के योग्य नहीं हैं और न इनकी हालत ही सुधर जा सकती है। "

लगभग ८० से कुली प्रथा रूपी कलंक का टीका भारत के मस्तक पर लग गया है; इससे जो हानि हमारे राष्ट्रीय सम्मान की हुई है, उसका [वर्णन] करना असम्भव है। घर पर बैठे बैठे हम भले ही अपनी [illegible]

भूमिको स्वर्ग के समान समझते रहें, लेकिन ज़रा आंखें खोलकर हम बाहिर निकलें तो हमें फ़ौरन ही ज्ञात हो सकता है कि दूसरे देशों के निवासी उसको ' कुलियों का घर ' समझते हैं।

'श्रीमद्भागवत' में एक जगह लिखा है कि 'स्वर्गके देवता लोग इस बातके लिये इच्छुक रहते हैं कि भारतवर्ष में हमारा जन्म हो।' जिस समय भागवतकी रचना हुई थी उस समय देवता लोग भलेही इस प्रकार की इच्छा रखते हों, लेकिन आजकल यदि उन्हें प्रवासी भारत-वासियों की दुर्दशा का कुछ भी पता हो, यदि उन्हें ज्ञात हो कि 'इण्डियन' और 'कुली' यह दोनों शब्द समानार्थवाची हैं, तो वह स्वर्ग के सुखों को छोड़ कर भारतवर्ष को, जिसे फिजी के जंगली भी 'मजूरा देश', 'मरघट', ' कुलियों रूपी मधुमक्खियों का देश' समझते हैं, आना कदापि पसंद न करेंगे। और तो और एक बार जनरल बोथा ने सब भारतवासियों को 'कुली' कह दिया था! स्वर्गीय माननीय श्रीमान् गोखले जब दक्षिण आफ्रिका को पधारे थे तब वहाँ के कितने ही बोअर तथा काफ़िर लोग और दैनिक समाचार पत्रोंके संपादक उन्हें 'कुली राजा, कुली सरदार ' कह कर पुकारते थे और इसी प्रकार आपस में उनका परिचय दिया करते थे।

ब्रिटिश गायना की मनुष्यगणना की रिपोर्ट के अनुसार वहाँ जो भिखारी हैं उनमें ९९ फीसदी हिंदुस्तानी हैं और एक फीसदी चीनी। पागलों की संख्या में ७८ फीसदी हिन्दुस्तानी, १० फीसदी हबशी और १२ फीसदी पुर्तगाल वाले हैं। अपराधियों में भी ७८ फीसदी हिन्दुस्तानी, १० फीसदी हबशी और शेष १२ फीसदी अन्य जाति वाले हैं। जब उपनिवेशों के निवासी इस बात पर ख्याल करते होंगे तो अवश्य ही भारतवर्ष के लिये उनके हृदय में घृणा का भाव उत्पन्न होता होगा।

मिस्टर ऐण्ड्रूज़ और मि. पियर्सन अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं–

"We were told again and again by barristers, who practised in the Law Courts, by Government officials and by merchants that the Indian had become the criminal of Fiji, that it would be no exaggeration to say that over 90 per cent *of the violent crime in the islands was 'Indian crime'*, that there was a real danger that this disease of Indian crime would spread to the aborigines. We found also that the Indians had got the reputation of being the greatest *gamblers in the colony, and from what we saw in the 'coolie lines'* there can be little doubt that this reputation was not unfounded."

अर्थात्–"फिजी की अदालतों में वकालत करने वाले बैरिस्टरों ने, सरकारी अफ़सरों ने और सौदागरों ने बार बार हमसे यह कहा था कि 'भारतवासी' फिजीके अपराधी' बन गये हैं, ऐसा कहनेमें अत्युक्ति न होगी कि फिजी में जो घोर अपराध होते हैं, उनमें ९० फीसदी हिंदुस्तानियों के किये हुये होते हैं और सचमुच इस बातका बड़ा डर है कि कहीं भारतवासियोंका अपराध करनेका यह रोग फिजीके आदिम निवासियों (जंगलियों) में भी न फैल जावे। 'हमको इस बात का भी पता लगा कि फिजी में सब से बड़े जुआरी होने की कीर्ति भी भारतवासियों को ही प्राप्त थी। कुलीलेनों में हमने जो कुछ देखा उससे हमारे हृदयमें बिल्कुल सन्देह नहीं रहा कि उनकी यह (जुआ खेलनेकी) कीर्ति निराधार नहीं है।"

मनु भगवान्ने कहा है कि सारे संसार के आदमी भारतवर्ष के इन मनुष्योंसे अपने अपने सुचरित्र सीखें लेकिन आज 'कुली प्रथा' के कारण वह ज़माना आ गया है कि लोगों को इस बातका भय है कि कहीं नरमाँसभक्षी असभ्य फिजियन लोग प्रवासी भारतीयोंके संसर्ग से

उनके दुश्चरित्रोंको न सीख लें। समयका यह परिवर्तन विचारणीय है। उन भारतीयों के लिये जो ' सुजला सुफला मलयजशीतला शस्य-श्यामला ' भारतमाताके सुपुत्र होने का अभिमान करते हैं, ' जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ' के मंत्र का जप करते हैं और ' बहुबलधारिणीं नमामि तारिणीं रिपुदलवारिणीं मातरम् ' के गीत गाया करते हैं!

जिस समय फिजी की गवर्नमेण्टने सन् १९१३ ई. में यह प्रस्ताव किया था कि फिजी में ऐसे मदरसे खोले जावें जिनमें सब बालक बिना किसी जाति या रंग के भेद के शिक्षा पावें तो फिजी के एक धनाढ्य प्लाण्टरने कहा था:—

" I can not tolerate the idea of my children sitting by the side of a coolie's child in the public School. "*

अर्थात्—" इस बातका विचार ही मेरे लिये असह्य है कि मेरे बच्चे एक पबलिक स्कूल में एक कुली के बच्चे के साथ बैठें।" इस पर आलोचना करते हुये ' अम्दे क्रानीकल ' ने लिखा था:—

"And the Indian is still necessarily a coolie in the eyes of some of the colonists ' "

अर्थात्—" और भारतवासी अब भी कितने ही औपनिवेशक आदमियों की निगाहमें अवश्यमेव सबके सब कुली ही हैं!"

तीन चार वर्ष पहिले केलीफ़ोर्नियाके प्रतिनिधि ने हिन्दुओं को वहाँ न आने देनेके लिये एक बिल सिनेटके सामने उपस्थित किया था। इस समय यह बिल विचाराधीन है। इसमें अमेरीका के किनारे पर उतरने के लिये नालायक ठहराये हुये लोगों की जो सूची दी है उसमें " वेश्या, मूर्ख, पागल, आधे पागल, योगी, भिखारी, हिन्दू "

---

* देखो ' Leader ता. २० अक्टूबर सन् १९१५ ई.

आदि लोगोंका एकही सूत्रमें समावेश किया गया है। अ
सूत्रके अनुसार केवल रोगग्रस्त दुराचारी अथवा भिखारी ही
रोके जाते, बल्कि सब दर्जेके हिन्दुओंके लिये भी प्रतिबन्ध है
है। या साफ़ साफ़ यों कहिये कि हिन्दू होना एक प्रकार का रोग
दुराचार है!

इन सबका कारण यही है कि ब्रिटिश उपनिवेशों में 'कुलीन'
के कारण भारतवासियों की बिलकुल कदर नहीं की जाती है औ
ब्रिटिश साम्राज्य में भी हमें उचित स्थान प्राप्त नहीं है, जब
रीका वगैरा अन्य देश देखते हैं कि इन हिन्दुओं (भारतवासि
का ब्रिटिश साम्राज्य में ही सब निरादर करते हैं तो हम भी इन
निरादर क्यों न करें? इसी कारण अमेरिकन लोग 'घरे तो
वो रोटी सेकने' की कहावत को चरितार्थ करते हैं! यदि भार
वासियों को अमेरीकनों से बदला लेने का अधिकार भारत को
होता तो क्या मजाल थी कि यह लोग 'वेश्या, पागल और भि
को एक सूत्रमें बाँधकर हिन्दुओंको—केवल इसी कारणसे कि वह हि
हैं—अमेरीका में उतरने से मना करसकते?

अमेरीका के बारे में तो हम आगे चलकर लिखेंगे। यहाँ दो
चार दृष्टान्त देकर हम यह बतला देना चाहते हैं कि भारतवासि
का केवल इसी कारण से कि वह भारतवासी हैं, कितना अपमान
होता है।

एक बार महात्मा गान्धीने दक्षिण अफ्रिका में एक स्टेशनसे
मुकदमे की पैरवी करने के लिये प्रिटोरिया जाने को पहिले दर्जे
टिकिट लिया। टिकिट के अनुसार आप फर्स्ट क्लास में बैठ। उस
में एक अंग्रेज साहब भी विराजमान थे। इन साहब ने गार्ड को बुला
और कहा कि इस हिन्दुस्तानी को इस कमरे से बाहिर करो। गा

ने गांधी जी को हुक्म दिया 'बाहर निकलो, जाओ माटगाड़ी में बैठ जाओ' (क्या खूब! टिकिट फर्स्ट क्लास का और बैठो माटगाड़ी में!) गांधीजी ने कहा 'हम क्यों हटें, फर्स्ट क्लास का टिकट लिया है' गार्ड ने जिद करके कहा 'निकलो' गांधी जी बैठे ही रहे। आखिर। लाल सिरवाला सिपाही बुलाया गया। रेल चलनेवाली ही थी। गांधी जी बाहर निकाले गये। पीछेसे सब असबाब भी बाहर फेंक दिया गया! ट्रेन चलती हुई। गांधी जी रातभर जाड़े में उसी स्टेशन पर ठिठरते रहे! यह दशा तो उन शिक्षित, सभ्य हिन्दुस्तानी बेरिस्टर की हुई, जो भारतवासियों के सर्वप्रिय और सर्वश्रेष्ठ नेता हैं! तो फिर साधारण आदमियों की दशा का क्या पूछना है!

जब सम्वत् १९५५ वि. में रङ्गून के बेरिस्टर डाक्टर पी. जे. मेहता महाशय विलायत से बेरिस्टरी इत्यादिकी उपाधि धारण कर अपनी मातृभूमि को आते हुये दक्षिण आफ्रिकामें उतरे तो उन्हें पहिले पहल क्या अनुभव हुआ, सो सुनिये—" केपटोन में पदार्पण किये मुझे केवल दोही घंटे हुये थे, कि इतने ही थोड़े समय में मुझे शोचनीय अनुभव प्राप्त हुआ कि मैं उस भूमि में आ पहुँचा हूँ जहाँ मनुष्य की शिक्षा और गुणों की ओर दृष्टि नहीं डाली जाती, केवल उसके काले या गोरे होने पर सब बात निर्भर है। जब मैं दोचार दिन के लिये होटलों में ठहरने के लिये स्थान ढूँढने गया, तो मेरी सूरत देखते ही होटलों के मालिक नाक सिकोड़ कर मुझे फटकार देते थे! पहिले तो मैं यह समझा कि शायद कुछ ही होटल ऐसे होंगे जो काले लोगों को न लें, वा स्थानाभाव के कारण मुझे स्थान न देते हों। किन्तु जब मैं पूरे एक दर्जन होटलों के दर्वाजों से निराश हो लौट आया तब मुझे यह विश्वास हुआ कि यह मेरे कृष्णवर्ण और हिन्दुस्तानी होने की सज़ा है।"*

* देखो श्रीयुत मुकुन्दीलालजी वर्मा लिखित 'कर्मवीर गान्धी'

यह दूसरे बैरिस्टर और डाक्टर मेहता की दशा हुई। अब तीसरे देशभक्त बैरिस्टर मि. मणिलाल एम. ए., एल. एल. बी. का हाल सुन लीजिये। यात्रा करते समय आपने एक बार अपना सामान एक स्टेशनसे दूसरे स्टेशन को बुक कराया था तब आपके सामान पर जो पर्चा लगाया गया था उसमें उन्हें 'कुली' लिख दिया गया था। एक बार एक जगह पर उनका इम्तहान अँग्रेजी लिखने और पढ़ने लिया गया था, यद्यपि परीक्षक को यह बात ज्ञात थी कि यह ऐम. ए. ऐल. ऐल. बी. और बैरिस्टर हैं।

और भी सुनिये! जब आप दक्षिण आफ्रिका से फिजी को रवाना हुये तब आपको स्टीमर बदलने के लिये आस्ट्रेलिया में सिडने नामक बन्दरगाह पर उतरना था और दैवयोगसे वहां पंद्रह दिन ठहरना था, जब कि फिजीका स्टीमर मिलने वाला था। सिडने के अधिकारियोंने यह जानते हुये भी कि आप बैरिस्टर हैं, और सीधे फिजी जा रहे हैं केवल आप भारतीय थे इसी कारणसे आपको बंदरगाह में उतरनेसे इनकार कर दिया और मामला औपनिवेशिक मंत्रीतक पहुँचा तब आप को बड़ी मुश्किलसे वहां उतरनेकी इजाजत मिली, और वह भी इस शर्तपर कि आप सब जगह न घूमें, केवल पूर्व निश्चित स्थानोंमें ही फिरा करें।

श्रीयुत मणिलाल जीने इनके अतिरिक्त और भी कई इसी तरह की बातों का वर्णन 'माडर्न रिव्यू' में बड़ी खूबी के साथ किया है। Lieunt Colonel Dantra M. D. I. M. S. लेफ्टीनेण्ट कर्नल दन्त्रा ऐम. डी., आई. एम. एस. ने जो कि युद्ध में 'हेल्थ आफिसर' थे आस्ट्रेलिया के 'वैदेशिक विभाग' से इस बात के लिये प्रार्थना की थी कि हमें आस्ट्रेलिया में थोड़ी सी ज़मीन मिल जावे, जहाँ मकान बना कर हम रहने लगें। यह महाशय हिन्दुस्तानी पारसी थे और इन्होंने एक अँग्रेज लेडी से विवाह किया था,

(२५) रु. मासिक पेंशन पाते थे और आप का विचार आस्ट्रेलिया में अपने बालबच्चों के साथ रहने का था। मि. दन्त्रा को आस्ट्रेलिया में रहने के लिये साफ़ मना कर दिया गया और 'वैदेशिक विभाग' के सेक्रेटरी ने उनसे कह दिया कि आस्ट्रेलिया के राज्यनियमों के अनुसार आप का बहिष्कार न्यायोचित है।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि मि. दन्त्रा लेफ्टीनेण्ट कर्नल थे, रंगून की जेल के सर्वोच्च सर्जन थे और वहाँ पर कितने ही अँग्रेज़ इनके आधीन काम करते थे। इस पर टिप्पणी करते हुये मेलबोर्न (Melbourne) से निकलनेवाले 'Argus' 'आर्गस' नामक पत्र ने लिखा थाः—

"The authorities may shut their eyes to the invidiousness of excluding from a portion of the king's Dominions an officer of high rank who holds the king's commission; but it is putting a severe strain on the Indian and Imperial Governments."

अर्थात्–"सम्राट्के साम्राज्य के भागसे एक उच्चपदाधिकारी अफ़सर को जिसे कि सम्राट की ओर से कमीशन मिल चुका हो, बहिष्कृत करना बड़ा द्वेषोत्पादक है; राज्यकर्मचारी इस द्वेषको देखते हुये भी भले ही अपनी आँखें मूँद लें, लेकिन इससे साम्राज्य सरकार और भारत सरकार पर कठोर दबाव पड़ता है।"

साम्राज्य सरकार और भारत सरकार पर इसका क्या दबाव पड़ता है, यह तो हम आगे चलकर 'साम्राज्य में भारत का स्थान' नामक प्रकरण में कहेंगे, पर यहाँ पर हम यह कहे बिना नहीं रह सकते कि इस प्रकार दुर्घटनायें भारतवर्ष के 'राष्ट्रीय सम्मान' पर भयंकर आघात पहुँचाती हैं।

पंचम अध्याय

क्या प्रतिज्ञाबद्ध कुलीप्रथा गुलामी से कुछ कम है?

No one who knows anything of Indian sentiment can remain ignorant of the deep and genuine disgust to which the continuance of the Indentured System has given rise. Educated Indians look on it as a badge of helotry, soon to be removed for ever.

Lord Hardinge—

"जो पुरुष भारतवासियों के विचारों को कुछ भी जानता हो, उससे यह बात छिपी नहीं रह सकती कि 'शर्तबन्दी की प्रथा' के प्रचार ने इन लोगों के हृदय में गहरी और अकृत्रिम घृणा उत्पन्न कर दी है। शिक्षित भारतवासी इसे गुलामी की छाप समझते हैं। इसका शीघ्र ही अन्त हो जायगा।" लार्ड हार्डिंञ्ज—

निस्सन्देह श्रीमान् लार्ड हार्डिञ्ज का कथन बिल्कुल ठीक है। हम लोग इसे 'गुलामी की छाप' समझते हैं और हमारा ऐसा समझना निराधार नहीं है। इस प्रकरण में हम दृष्टान्त देकर दिखलावेंगे कि 'प्रतिज्ञाबद्ध कुलीप्रथा' गुलामी से किसी हालत में कम नहीं है।

(१) हबशी लोग धोखे से, डरा धमकाकर अथवा उनके मुखियोंसे मोल लेकर भर्ती किये जाते थे।

(२) जहाजों पर कितने ही हबशी मर जाते थे और बहुतसे उपनिवेशों तक पहुँचते पहुँचते अधमरे हो जाते थे।

(३) हबशी स्त्रियां जो गुलाम बनाके भेजी जाती थीं, उनकी संख्या पुरुष गुलामों की अपेक्षा बहुत कम होती थी।

साइक्लोपेडिया (विश्वकोष) की २५ वीं जिल्द के २२२ वें पृष्ट में 'दासत्व प्रथाका इतिहास' नामक निबन्ध में लिखा है कि एक मुख्य कारण इनकी संख्या में प्राकृतिक वृद्धि न होने का यह था कि पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियां कम भेजी जाती थीं। अकेले जमैका में ही हबशी पुरुषों की संख्या से हबशी स्त्रियों की संख्या ३० हज़ार कम थी।

(४) अत्यन्त कडे नियमोंके आधीन रहकर इन लोगों को काम करना पडता था।

(५) छोटे छोटे अपराधों के लिये इन पर अभियोग चलते थे और इन्हें बडे कडे दण्ड दिये जाते थे।

(६) खेतों पर हबशी स्त्री पुरुषों पर बडे अत्याचार होते थे।

(७) अत्याचारों के कारण कितनेही आत्मघात कर लेते थे और हबशियोंकी मृत्युसंख्या का औसत भी बहुत ज्यादा था।

इन में से पहिले तीन अत्याचार तो 'गुलामी' और 'कुली प्रथा' में बिल्कुल एक से ही हैं। इनका हाल हम (१) 'आरकाटी कैसे बहकाते हैं' (२) 'जहाजों पर कष्ट' (३) 'अवर्णनीय दुर्दशा' शीर्षक प्रकरणों में कर चुके हैं, इसलिये उनके फिर दुहरानेकी आव-

श्यकता नहीं है। गुलामी बन्द होने पर जिन जिन देशोंके लोग 'शर्तबन्दी' में भेजे गये उन सबके साथ बर्ताव 'गुलामों' जैसा ही किया गया। हम लिख चुके हैं कि गुलामी बन्द होनेसे लोग काम करने को नहीं मिलते थे तो प्लाण्टरों की निगाह चीन और भारत वर्ष पर पड़ी थी और इन्हीं दोनों देशोंसे उन्होंने कुली भर्ती करना शुरू किया था। समय ने यह बात निस्सन्देह सिद्ध कर दी है कि "कुली प्रथा" गुलामी का रूपान्तर मात्र है। चीनी लोगोंको भी इस नवीन गुलामी के कारण बड़े कष्ट सहने पड़े थे। 'साइक्लोपेडि- ब्रिटेनिकामें' चीनी कुली (Chinese coolies) नामक जो निबन्ध उसे पढ़कर स्पष्टतया ज्ञात हो जाता है कि जैसे कष्ट भारतवासि को 'शर्तबन्दी की प्रथा' में सहने पड़ते हैं वह ही पहिले चीनियों ी सहने पड़े थे। एक जगह इस निबन्ध में लिखा है:—

"The transport ships were badly equipped and overcrowde nd many coolies died before the voyage. On arrival in lent r Peru the survivors, were sold by auction in the ope narket to the highest bidders, who held them virtually s aves for seven years instead of for life... .....In 1860 i was calculated that of the four thousand coolies who ha been fraudulently consigned to the guano pits of peru no one had survived."

अर्थात्—"जिन जहाजों में बिठलाकर कुली भेजे जाते थे उन पर सामान सामग्री इत्यादि का प्रबन्ध बुरा होता था, उनमें आदमी ठसा ठस भरे होते थे और बहुत से कुली यात्रा समाप्त होने के पहिले ही मर जाते थे। क्यूबा या पेरू में पहुँच जानेपर बाकी बचे बचाये कुलियोंको खुले बाजार नीलाम किया जाता था। जो ज्यादा रुपया बोलता वही खरीद ले जाता और उन्हें ७ वर्षतक वास्तवमें बिल्कुल ... तरह रखता...सन् १८६० ई. में यह हिसाब लगाया

गया था कि उन ४ हजार कुलियों में जो कोलम्बिया के देश के सिवाड़ी भाग के जंगलोंमें काम करने के लिये विदा किये गये थे, एक भी कुली जीवित नहीं रहा!"

चार हज़ार चीनी कुलियों में एक भी कुली जीवित नहीं रहा, इस एक ही दुर्घटना से स्पष्टतया प्रकट होता है कि 'शर्तबन्दी की प्रथा' गुलामीसे किसी तरह कम नहीं है।

अब एक ऐसा दृष्टान्त भारतीय कुलियों का भी लीजिये। दुर्भिक्ष के कारण और उन अत्याचारों की वजह से जो नेटालमें भारत-वासियों पर होते थे, कितने ही भारतवासी शर्तबन्द में नेटाल से पोर्तुगीज ईस्ट अफ्रीका में बेनगुएला रेलवे पर काम करने के लिये गये। इस रेलवे के ठेकेदारोंने भारत वासियोंसे जो शर्तनामा लिख-वाया था, उसमें एक शर्त थी:—

"And the said contractors undertake at the expiry of this contract, or any renewal there of entered into with the Immigrant, to return him, his wife, and family to the Colony of Natal, free of all cost to the immigrant." *

अर्थात्—यह ठेकेदार इस बातका वायदा करते हैं कि वह शर्तबन्दी की मियाद के खतम हो जाने पर मजदूर लोग स्त्री और बच्चोंके साथ नेटाल पहुंचा दिये जावेंगे और इसका खर्चा मजदूर को नहीं देना पड़ेगा।'

कितनेही भारतवासी बड़े होसले के साथ वहाँ गये, लेकिन वहाँ जाने पर उनकी जैसी दुर्गती हुई, परमात्मा करे वैसी दुर्गति हमारे किसी शत्रु की भी न हो। रेलकी लाइन बन रही थी, जंगलोंमें काम पड़ता था। जंगलों में रहने के लिये घर कहाँ से होंगे? तम्बू भी नहीं

*देखिये मि.पोलकृत 'The Indians of South Africa' पृष्ठ ५० और ५८.

थे। जिनसे हो सका उन्होंने घासफूस की कुटी बनाली और उन्हें
रहने लगे और बाकी जमीनके बिछौने या आसमान की चादर ओढ़कर
पड़े रहते थे। रातें इन भारतवासियोंके लिये नरक समान थी, क्योंकि
अंधेरेमें दोनों की राम और मच्छरों की गुनगुनाहटके मारे सबके सबे
कोरे थे। परन्तु इतनाही बस नहीं थी, सबेरे उठकर हाथ मुँह धोने
और स्नान करने आदिके लिये पानी भी नहीं मिलता था। महीनों
किसीने स्नान तक नहीं किया। या तो अपने हाथों से जमीन खोद
कर जल निकालो या जब दूर पुर्तगालियों के स्थान से ऊँटों की पि-
लदे जल के कुप्पे आवें तब जल मिले। रोज आधा बोतल जल मि
था। उनके कपड़े मैले हो गये थे और उनसे बदबू निकलती
चारों ओर बेरीबेरी और तरह तरह के दूसरे चर्मरोग फैल गये थे।
कोई डाक्टर नहीं था और न कोई दवा बतलानेवाला या देनेवा
ही था! पानी के विना भारतवासी मर रहे थे!! रोज आधा बोतल
पानी मिलता था, और वह भी कैसा? देखने में तो साफ था प
स्पर्श करने से तेल की सी चिकनाहट मालूम होती थी; सूंघने से
तबीयत घबरा जाती थी और पनिसे शरीर जर्जर हो जाता था।
इस दशामें कितने भारतवासी कितने दिनों तक जीवित रहे इसका
पता नहीं! १९०७ ई. के मार्च महीने में दो हजार या ढाई हजार भार-
तवासी नेटालसे रेल के काम को करने के लिये पोर्तुगीज वेस्ट अफ्रिका
भेजे गये थे। एक वर्ष बाद ६५८ नैटाल में लौट आये, ९४८ भ
जो अन्याय से भेज दिये गये, नेटाल में उन्हें वहाँ की सरक
नहीं घुसने दिया, बाकी रहे जो सात सौ आठसौ भारतवासी उनक
कुछ पता नहीं! उन्हें शेर खा गये या यमदूत उठा ले गये अथवा
पानी पानी करके मर गये या क्या हुआ कौन बतला सकता है!
यह हाल नेटाल के अन्य प्रवासी भारतीयों को ज्ञात हुआ तो

उन्होंने बहुत कुछ आन्दोलन किया, पर इस बातका कुछ भी पता न चला कि इन सातसौ आठसौ भारतवासियों का क्या हुआ !

इस प्रकार 'कुली प्रथा' की वेदीपर सैकड़ों भारतवासियों का बलिदान हो गया !

कड़े नियम

We do not hesitate to say that the Indian Immigration Laws, if they do not reduce indentured labour to a form of slavery, at least establish conditions more nearly approximating to servile conditions than did those which the British Parliament and people rejected in the case of the Rand chinese. 'Natal Advertiser.'

अर्थात्–"हमें ऐसा कहने में कोई शंका नहीं है कि इण्डियन इमीग्रेशन के कानून, यदि वह शर्तबन्दी की प्रथा को एक प्रकार की गुलामी नहीं बना देते, तो यह कानून कुलियों को कमसे कम ऐसी स्थिति में लेही आते हैं, जो चीनी कुलियों की स्थिति की अपेक्षा जिसका कि निराकरण ब्रिटिश पार्लियामेंट और लोगोंने किया था, दासत्व से अधिक मिलती जुलती है।" 'नेटाल एडवर्टाइज़र–'

इन्डियन इमीग्रेशन के कानून बड़े ही भयंकर और आश्चर्यजनक होते हैं। नेटाल की इण्डियन इमीग्रेशन की १०१ वीं धारा यह है "जब कोई शर्तबन्धा भारतवासी अथवा अनेक भारतवासी अपने मालिक की शिकायत करने या शिकायत करने के बहाने, अपने मालिकसे बिना छुट्टी लिये, अपने काम से ग़ैर हाज़िर हो तो चाहे जिस कोर्ट में उस पर अभियोग चलाया जा सकता है और अपराध साबित होने पर दो पाउण्ड जुर्माना होगा या दो महीने तक की

सादी या कठोर जेल होगी, फिर चाहे उनकी शिकायत ठीक चाहे न हो।" यह किसी पागल की बक बक नहीं है, बल्कि नेटा सरकार के कानून का शब्दशः अनुवाद है। इस पर टिप्पणी करते हुये 'नेटाल एडवर्टाइजर' ने लिखा था:—

"ब्रिटिश साम्राज्य में इस समय जितने दण्डशास्त्र प्रचलित हैं, उन सबमें से किसी में भी ऐसा निंद्य और कलंककर नियम न होगा। इन अभागे आदमियों को प्रोटेक्टर के पास जाने के लिये उसी आदमी से आज्ञा लेनी चाहिये जिसकी कि शिकायत करने वह जाना चाहते हैं। क्या कभी यह सम्भव हो सकता है कि वह मालिक अपने विरुद्ध शिकायत करने के लिये किसी कुली को आज्ञा दे दे? और अगर वह मालिक आज्ञा नहीं देता तो क्या इन अभागे कुलियों को सन्तोष के साथ सब कष्ट व अपमान सहने चाहिये? अकेली यही धारा सारे के सारे इन्डियन इमीग्रेशन कानून को अत्यन्त निंद्य बनानेके लिये पर्य्याप्त है।"

इण्डियन इमीग्रेशन के कड़े नियम अकेले नेटाल में ही प्रचलित नहीं हैं, बल्कि ब्रिटिश गायना, ट्रीनीडाड, फिजी आदिमें भी येही अथवा इसी प्रकार के कितने ही नियम प्रचलित रहे हैं।

मि. पियर्सनने अपनी दक्षिण आफ्रिकाकी रिपोर्ट में एक दृष्टान्त दिया है, जिससे कि इन नियमोंका कड़ापन बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है:

"न्यूकेसिल में जो दरबन से सौ मीलकी दूरी पर है मुस्तफा और दोस्त रसूल नामक दो शर्तबंधे हिन्दुस्तानी मजदूर काम करते थे। इन दोनों में कुछ रिश्तेदारी थी, इनमें से एक न्यूकेसिलके मजिस्ट्रेट के पास यह शिकायत करने गया कि 'मेरे मालिक के लड़के ने मेरे पर हमला किया है।' मजिस्ट्रेट साहब ने इस कुली पर अभियोग

लगाया कि तुम अपने मालिक से 'पास' लाये बिना ग़ैर हाज़िर रहे, और इसके कैद किये जाने की आज्ञा दी। मजिस्ट्रेट साहबने यह कार्य निम्नलिखित धारा के अनुसार किया "अगर कोई कुली मजिस्ट्रेट को इस बात का विश्वास न दिला सके कि मुझे मेरे मालिकने मुक्त कर दिया है अथवा मेरी कोठी के मालिक या मेनेजर ने मुझे अपने हाथ से लिखकर छुट्टी दे दी है, तो वह मेजिस्ट्रेट उस कुली पर दस शिलिंग तक जुर्माना कर सकता है अथवा सात दिनकी सख्त सजा दे सकता है।"

जिस आदमी को इस प्रकारसे सज़ा हो जावे, उसकी तनख्वाह में से एक शिलिङ्ग रोज़के हिसाबसे काट लिया जाता है और मजिस्ट्रेट की कचेरी से उसके मालिक की कोठी तक आने में जो खर्चा पुलिस के आदमी का होता है, वह भी उसी से वसूल किया जाता है। इस प्रकार जिस आदमी के पास जुर्माना देने को न हो उसे सात दिन का कठोर कारावास होता है, सात शिलिङ्ग उसकी तनख्वाह में से कटते हैं और पुलिस के द्वारा पहुँचाये जानेका खर्चा भी उसे ही देना पड़ता है।

इस प्रकार उपर्युक्त दोनों आदमियों में से एक को तो मजिस्ट्रेट ने उपर्युक्त नियम के अनुसार कैद कर दी, अब दूसरा आदमी जो रहा वह अपने रिश्तेदार की ओर से प्रोटेक्टर साहब से शिकायत करने के लिये दरबन गया। न्यूकेसिल से दरबन तक एक आदमी का थर्ड क्लास का किराया १ पौण्ड २ शिलिङ्ग लगता है। यह किराया उसने अपनी गाँठ से दिया। जब यह आदमी प्रोटेक्टर के पास पहुँचा तो प्रोटेक्टर साहब ने इससे कहा कि तुम अपने मालिक के यहाँ वापिस जाओ। इस आदमी ने ऐसा करने से इन्कार किया। बस प्रोटेक्टर साहबने इसे पुलिस के हवाले कर दिया, क्यों कि सन् १८९३ ई. के १२ वें विभाग की ३१ वीं धारा में लिखा हुआ है:—

: अनुसार इन्हे चार महिने तक और शर्तबन्दीमें काम करना डेगा। " *

इस एक दृष्टान्त से ही पाठकों को पता लग सकता है कि इण्डियन-मीग्रेशन के कानून कितने बेहूदा और भयंकर हैं। बिचारे दोनों ड़ितेदारों को दो दो महीने की जेल भुगतनी पड़ी, लगभग ५ पौण्ड जुर्माना हुआ, और चार महीने की शर्त बन्दी की मियाद बढ़ाई और तिस पर भी तुर्रा यह कि उनकी जो शिकायत थी उसका मेटाना तो दूर रहा, उसकी बाबत किसीने पूँछा भी नहीं!

ब्रिटिश गायना की इमीग्रेशन आर्डिनेन्सकी १२७ वीं धारा के मनुसार प्रत्येक पुलिस कान्स्टेबिल को इस बात का अधिकार है कि वह चाहे जिस कुली को गिरफ्तार कर सकता है, यदि उसे इस बात का शक हो कि यह अपने मालिक के खेत पर से भाग आया है अथवा बिना 'पास' के अपने खेत से गैर हाज़िर हुआ है। छोटे छोटे कान्स्टेबिलों को यह अधिकार देना पूर्ण अन्याय है। यह कान्स्टेबिल लोग कभी कभी ऐसा भी करते हैं कि यदि कोई मजदूर अपने मालिक की छुट्टी-की चिट्ठी लेकर जा रहा हो, तो उसे फाड़कर फेंक देते हैं और उसे गिरफ्तार करके सज़ा दिलवा देते हैं।

फिज़ी आर्डिनेन्स की १७१ वीं धारा यह है "जो आदमी ऐसे कुलियों को नौकर रक्खेगा जिनके पास अपने छुटकारे का सार्टीफिकट न हो उस पर अभियोग लगाया जावेगा" इस नियम के कारण बिचारे कितने ही मजदूरों को, जिनका सार्टीफिकट खो जाता है नोकरी नहीं मिलती।

* देखो 'Report on my visit to South Africa' 'माडर्न रिव्यू' मे सन १९१४ ई.

इस प्रकार के कितने ही नियम यहाँ दिये जा सकते हैं, परंतु स्थानाभाव से हम ऐसा करने में असमर्थ हैं। पाठक 'स्थालीपुलाक' न्याय से अनुमान कर सकते हैं कि इमीग्रेशनके कानूनों ने निस्सहाय भारतीय मज़दूरों को पूरे पूरे गुलाम बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। इन नियमों का परिणाम क्या होता है यह हम आगले प्रकरण में बतलावेंगे।

दण्डों की भरमार

The cruellest part of the story is that relating to the number of prosecutions. Peoples are subjected to penalties not only for desertions and criminal conducts but also even for insulting words and gestures.

P. Madan Mohan Malviya.

श्री. पं. मदन मोहन मालवीयजी ने व्यवस्थापक सभामें 'कुली प्रथा' के विरुद्ध बोलते हुये कहा था "इस कथा का सबसे अधिक निर्दय भाग यह है कि मज़दूरों पर जो अभियोग लगाये जाते हैं उनकी संख्या बहुत ज्यादा है। इन मजदूरों को केवल खेत छोड़कर भागने या जुर्म के कामों के लिये ही सजा नहीं दी जाती बल्कि अपमान करने वाले शब्दों और चेष्टा के लिये भी उन्हें दण्ड दिये जाते हैं।"

माननीय मालवीय जी का कहना बिल्कुल ठीक है। अगर आप अभियोगों की संख्या पर ध्यान दें तो आपको आश्चर्य और दुःख हुये बिना न रहेगा। हम यहाँ मि. मैकनील और मि. चिम्मन लाल की रिपोर्ट से कुछ अङ्क उद्धृत करते हैं:—

सन् १९१२ ई. में पाँच उपनिवेशों के शर्तबंधे भारतवासियों की संख्या मिलकर पचास हज़ार थी। इसी साल में इन पचास हज़ार मज़दूरों के

केन्द्र सात हजार शिकायतें अदालत में की गई। सुरीनाम के अङ्क तो प्राप्त नहीं हो सके; बाकी चार (फिजी, जमैका, ट्रिनीडाड और ब्रिटिश गायना) उपनिवेशों में ६ हजार शिकायतों में से १६०० तो खारिज हो गई या वापिस ले ली गई और शेष ठीक पाई गई और अपराधियों को सजा हुई। यानी जिन लोगों पर अपराध लगाया गया था उनमें ७० फ़िसदी को दण्ड दिया गया। फिजी में सन् १९१२ ई. में १२०० कुलियोंपर अभियोग चलाया गये और इनमें ९६० दण्डित हुये अर्थात् जिन लोगोंपर जुर्म लगाया गया उनमें ८० फीसदी को दण्ड मिला। श्रीमान् लार्ड हार्डिंजने हिसाब लगाकर अपनी स्पीच में कहा था कि 'शर्तबँधे भारतवासियों में ट्रिनीडाड में २३ फीसदी पर, ब्रिटिश गायना में १९ फीसदी पर, जमैका में १२ फीसदी पर और फिजी में १३ फिसदी पर अभियोग लगाये गये।'

यदि आप लार्ड सेंडरसन की रिपोर्ट को पढ़ें तो आप को और भी अधिक आश्चर्य्य होगा। १९०७-१९०८ई. की साल में ब्रिटिश गायना में ९७८४ शर्तबँधे मजदूरों में से ३८३५ पर अभियोग लगाये गये थे अर्थात् ३९ फीसदी से भी अधिक अभियुक्त हुये थे।

पाँच वर्ष की शर्तबन्दी में से जितने दिन कुलियों को जेल में रहना पड़ता है, उतने ही दिन उनके शर्तबन्दी में बढ़ा दिये जाते हैं। मालिक लोग मजदूरों की शर्तबन्दी की मियाद बढ़ाने की गरज़ से इन बिचारे कुलियों पर और भी ज्यादा अभियोग लगाते हैं। जितने दिन कुलियों को जेल में या अस्पताल में रहना पड़ता है वह Lost days 'खोये हुये दिन' कहलाते हैं। सन् १९०७ई. में ट्रिनीडाड में एक वर्ष के भीतर इन खोये हुयें दिनों की संख्या दस लाख हुई!*

* देखो जुलाई १९१५ के 'इण्डियन ऐमीग्रण्ट' में Rev. J. H. Harris.

शर्तबन्दी के दिनों में कसाईखाने में गोश्त काटने का काम करना पड़ा था। इसने बराबर इस काम को अस्वीकृत किया और इसी कारण इसे कई बार जेल भुगतनी पड़ी। हमने इस की कोठी के कागज पत्रों में इसका हाल देखा तो पता लगा कि शर्तबन्दी के दिनों में इसे ६९२ रोज कैद में रहना पड़ा था।"

घोर अत्याचार

[द्रष्टव्यः—इस प्रकरण के प्रारम्भ में ही हम पाठकों से निवेदन कर देते हैं कि वह इसे शान्तिपूर्वक पढ़ें और फिर इस प्रश्न पर विचार करें कि 'क्या कुलीप्रथा दासत्व प्रथा से कुछ कम है ?' प्रतिज्ञा-बद्ध भारतीय स्त्री पुरुषों पर जो जो अत्याचार होते हैं, उनका मूल कारण कुली प्रथा ही है। वस्तुतः हम अत्याचारी प्लाण्टरों और ओवर-सियरों की अपेक्षा कुलीप्रथा को ही अधिकतर दोषी समझते हैं; क्योंकि इसी प्रथा ही के नियमोंके अनुसार प्लाण्टरों और ओव-रसियरों को अनुचित अधिकार प्राप्त हैं।]

जिस समय मि. सी. एफ. एण्डूज़ दक्षिण आफ्रिका को गये थे तो वहाँ पर उनका परिचय केप टाउनके रैवरेण्ड डाक्टर बूथ (Rev. Dr. Booth) से हुआ। यह पादरी साहब नेटाल में पहिले गन्ने की कोठियों में डाक्टर रह चुके थे और इन्हें शर्तबन्दी की प्रथा का २० वर्ष से भी अधिक का अनुभव था। इन्होंने मि. एण्डूज़ से कहा था कि चाहे जैसे नियम कुलियों की रक्षा के लिये बनाये प्लाण्टर हमेशा इनका उल्लंघन कर

'नियमबद्ध दासत्वप्रथा' का रूप धारण कर लेती है।" इन अनु[illegible]
डाक्टर साहबने कुली प्रथा को "Nothing more or less th[illegible]
slavery in disguise" 'हूबहू गुलामी का रूपान्तर' कहा था।
इन पादरी डाक्टर साहब के विषयमें लिखते हुये मि. सी. एफ.
एण्ड्रूज़ ने 'न्यू इण्डिया' में लिखा था:— *

"He gave me one particularly flagrant case of a ma[illegible] named X, on whose estate Dr. Booth was morally cert[ain] that coolies had been actually flogged to death, "And yet" he said to me, "we could never get a conviction. And the consequence was that for eighteen years, Government ha[d] to go on supplying him with coolies...... Then at last, he added, "we caught the villain out, and we stopped h[is] supplies, But it took us eighteen years to do it!"

अर्थात्—"इन पादरी साहब ने हमें एक प्लाण्टर के विशेष [illegible] अन्याय की बात सुनाई और कहा कि "मेरा युक्तिपूर्वक और [illegible] विश्वास है कि इस प्लाण्टर की कोठी पर वास्तव में कुलियों पर [illegible] कोड़े पड़ते थे कि कितने ही कुली इन कोड़ों की मार से मर गये, लेकिन इतने पर भी हम लोग जुर्म क़ायम नहीं कर सके, [illegible] नतीजा यह हुआ कि बराबर अठारह वर्ष तक गवर्नमेण्ट इस [illegible] कुली देती रही...अन्त में इस दुष्ट को हमने पकड़ लिया और [illegible] कार ने इसे कुली दिलवाना बन्द करवा दिया। लेकिन ऐसा करने में हमें अठारह वर्ष लगे।"

अठारह वर्ष में कितने कुली कोड़ों की मार से परमधाम को गये होंगे इसका अनुमान पाठक स्वयं करें।

'नेटाल टाइम्स' (The Times of Natal) के [illegible] अगस्त १९०८ ई. के अङ्क में एक अभियोग का हाल छपा था। [illegible]

* देखो "इण्डियन रेव्यू' अक्टूबर १९१८ ई.

आर्मीटेज नामक एक गोरे पर इस बात का मुकद्दमा चलाया गया था कि उसने एक कुली के सीधे कान का नीचे का हिस्सा चाकू से काट डाला था। डाक्टर वार्ड ने इसके कान को देखा था और इसकी रिपोर्ट पेश की थी कि इस कुली के कानसे सवा इंच का टुकड़ा काट डाला गया है। इस कुली ने जज के सामने कहा कि आर्मीटेज साहबने मुझे ढकेल कर ज़मीन पर गिरा दिया और फिर कन्धे पर सवार होकर मेरे कान का टुकड़ा काट डाला और फिर इसके बाद दवाई लगाकर उस पर पट्टी बाँध दी। आर्मीटेज साहबने इस बात को मान लिया कि मैंने यह इस लिये किया था कि यदि यह कहीं भाग कर जावे तो पकड़ लिया जावे!! जब न्यायाधीश ने इन साहब से पूँछा कि तुमको ऐसा करने का अधिकार क्या था तो आपने जवाब दिया:—

"The Government allows the cutting of the sheep's ear and the complainant is no better than a sheep."

अर्थात्—'सरकार भेड़ों के कान काटने से हमें मना नहीं करती और यह शिकायत करनेवाला कुली भेड़ से किसी हालत में अच्छा नहीं है!!!'

न्यायाधीशने इन साहब पर बीस पौन्ड जुर्माना किया और कहा कि जुर्माना न दे सकोगे तो एक महीने की सजा होगी। न्यायाधीश साहब ने यह भी कहा कि 'अगर हमें इस बात का विश्वास न हो गया होता कि आर्मीटेज साहब का दिमाग उस समय, जब कि उन्होंने यह काम किया, ठिकाने नहीं था क्यों कि कुछ महीने पहिले इस कुली ने उनकी स्त्री का अपमान किया था, तो हम अवश्यमेव इन्हें जेल को भेजते।'

हम इस पर टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं समझते, हाँ

इतना अवश्य कहेंगे कि भारतीय मजदूरों और भेड़ों को एक कोटि में रखनेवाले कितने ही "आर्मिटेज" केवल नेटाल में नहीं, बल्कि फिजी, ट्रिनीडाड, जमैका इत्यादि में भी पाये जाते हैं।

मि. एण्ड्रूजने अपने एक लेखमें लिखा था "जब मैं प्रिटोरियामें था मैंने 'रैण्ड डेली मेल' नामक एक पत्र में एक बात पढ़ी। इसका शीर्षक 'A Panic-Stricken Indian' अर्थात् 'एक भयभीत भारतवासी' इसमें एक तैमिल कुली का हाल था जो कि अपने मालिक के खेत पर से चौदह बार भागा था और जिसे चौदह बार जेलखाना हो चुका था। इस पत्र के सम्वाददाता ने लिखा था कि यह भारतवासी भयभीत दीख पड़ता था और मजिस्ट्रेट से प्रार्थना करता था कि मुझे उस कोठी को वापिस मत भेजो। इस तैमिल कुलीने मजिस्ट्रेट से कहा था कि अगर आपने मुझे उस कोठी को वापिस भेजा तो मैं कचहरी से निकलते ही आत्मघात कर लूँगा। मैंने (मि. ऐण्ड्रूज ने) यह बात मि. गान्धी को बतलाई। मि. गान्धी ने कहा कि इस प्रकारके आत्मघात यहाँ प्रायः हुआ करते हैं।"

मि. पोलक ने अपनी पुस्तकमें एक अभियोग का ज़िक्र किया है। यह अभियोग 'थार्नविल जंक्शन-अभियोग' नाम से पुकारा जाता है। इस जंक्शन के निकट के निवासी दो प्लाण्टरों ने जिनका कि नाम Messrs Leaks मेसर्स लीक्स था, अपने कुलियों पर बड़ा अत्याचार किया था। इन दोनों प्लाण्टरों ने एक कुली को ४८ घंटे तक एक सन्दूक में जो ६ फीट लम्बा, १½ फीट चौड़ा और एक फीट गहरा था बन्द रक्खा था, और उसके ऊपर एक विशेष प्रकार का अत्याचार किया था जिसका यहाँ पर ज़िक्र करना · प्रकार की अशिष्टता होगी। और इन्हीं दोनों लोगों ने एक दूसरे

मी को ८ दिनतक इसी सन्दूकमें बन्द रक्खा था और कुछ भी को नहीं दिया था। प्रोटेक्टर ने इस मामले की जाँच पड़ताल मेसर्स डीसकूस दोषी सिद्ध हुये और सरकार से इन्हें कुली ना बन्द हो गया।

कौन ऐसा होगा जो इन अत्याचारों को पढ़कर भी कुली प्रथा- 'गुलमी' से कम समझे ?

अमेरीका में जिन दिनों गुलामी प्रचलित थी तो जो गुलाम याचारों से पीड़ीत होकर खेत छोड़कर भाग जाते थे उनके पक- के लिये विज्ञापन छपते थे और पकड़नेवालोंको इनाम मिलता। इस प्रकार के कितने ही दृष्टान्त आजकल 'गुलामी की बेटी' ली प्रथा के ज़माने में भी दिये जा सकते हैं।

Sir. P. Aroonachalam सर. पी. अरुणाचलम ने कोलम्बो में ाख्यान देते हुये सीलोनकी कुली प्रथा के विषयमें दो चार बातें हीं थीं। आपने कहा था:—

"I hold in my hand an advertisement which appeared a daily paper a few days ago, which recalls the slavery ays in the southern States of America. It offers a reward Rs. 50 and expenses paid to any person who arrests half dozen bolted coolies from an estate in Matale. Among hem is a woman who is described as "Sickly with a baby n arm and a boy 8 years and a girl 3 years." I wonder hat the superintendent of this estate was not ashamed to nsert such an advertisement and to organize a hunt for a oor Sickly woman with a baby in arms and burdened with wo more children."

अर्थात्—"इस समय मेरे हाथमें एक विज्ञापन है, जो कुछ दिन हुये क दैनिक पत्रमें प्रकाशित हुआ था। इस विज्ञापन को पढ़कर दक्षिण

अमेरीका के गुलामी के दिन याद आते हैं । इस विज्ञापन में लि[illegible]
हुआ है कि जो आदमी ६ कुलियों को जो मद्राले की कोठी से भ[illegible]
गये हैं पकड़ेगा उसको खर्चा और ५०) रु. का इनाम दिया जाये[illegible]
इन भागे हुये ६ कुलियों में एक स्त्री का भी नाम है जिसका [illegible]
इस विज्ञापन में इस प्रकार दिया गया है ' यह स्त्री बीमार है, [illegible]
गोदमें एक बच्चा है और इसके साथ एक आठ वर्ष का लड़का और [illegible]
वर्ष की एक लड़की है ।' मुझे इस बात का आश्चर्य है कि इस कोठी [illegible]
सुपरिण्टेण्डेण्ट को इस प्रकार का विज्ञापन छपाते हुये और एक [illegible]
बीमार स्त्रीका, जिसकी गोदीमें एक बच्चा है तथा दो बच्चे साथ [illegible]
पीछा कराते हुये शर्म भी नहीं आई ।"

प्लाण्टर लोग जो जो अत्याचार शर्तबन्धे भारतवासियोंपर [illegible]
हैं उन के कितने ही दृष्टान्त दिये जा सकते हैं । बात असली यह है [illegible]
कुलीप्रथा के नियम ऐसे हैं, जो प्लाण्टरों के हाथ में बहुत ज्यादा अधि[illegible]
दे देते हैं और बुरे प्लाण्टर बिना किसी डर के इन अधिकारों का [illegible]
माना दुरुपयोग करते हैं । मि. ऐण्ड्रूजने १२ अगस्त सन१९१५ [illegible]
' बाम्बे क्रानीकल ' में लिखा था:—

"The Indenture System plays all into the hands of the bad planter. This bad planter breaks all regulations, over-works his coolies, kicks them, thrashes them, drives them almost to the point of rebellion, with his cruelties and the while he can be practically safe in getting his full [illegible] of labour. He is master of the situation because the [illegible] can not run away."

अर्थात्—" शर्तबन्दी की प्रथा का बुरे प्लाण्टर मनमाना दुरु[illegible]
करते हैं । यह बुरा प्लाण्टर सब नियमों को तोड़ता है, अपने कु[illegible]
[illegible]

और उनके साथ इतनी निर्दयता का बर्ताव करता है कि वह बलवा
करने पर उतारू हो जाते हैं। इतना करने पर भी निर्भयतापूर्वक वह
जितने कुली चाहे सरकार से पा सकता है! सब तरह से उसी की बन
जाती है—सब अधिकार उसी के हाथमें रहते हैं; क्यों कि कुली भाग
कर कहीं दूसरी जगह जा ही नहीं सकता।"

ओवरसियरों के दुष्कर्म

देखो, दूर खेत में है वह कौन दुःखिनी नारी।
यहाँ पापियों के पाले है वह अबला बेचारी॥
देखो कौन दौड़कर सहसा कूद पड़ी वह जलमें।
पाप-जगत से पिण्ड छुड़ाकर डूबी आप अतल में॥

भारतीय हृदय-

लगभग तीन वर्ष हुये, जब 'भारत मित्र' में कुन्ती नामक एक फिजी
की शर्तबंधी चमारिन की दुःखपूर्ण रामकहानी छपी थी। ओवर-
सियर के डर से भागकर वह एक नदी में कूद पड़ी थी, लेकिन
सौभाग्यवश जगदेव नामक एक लड़के ने इसे डूबने से बचा लिया
था। एक कुन्ती क्या बीसियों भारतीय अबलाओं पर उपनिवेशों में
इसी तरह के अमानुषिक अत्याचार हुआ करते हैं। जो निरन्तर
अपने स्वार्थ में लगे रहते हैं, जिनमें देशप्रेम का लेश नहीं, जिन्हें अपने
दुःखित देशभाईयों और बहिनों के साथ सहानुभूति नहीं, और जिन्हें
भारत के राष्ट्रीय सम्मान की कुछ पर्वाह नहीं ऐसे मनुष्यों से (यदि
यह जीव 'मनुष्य' नाम से पुकारे जाने योग्य हैं) हमें कुछ भी नहीं
कहना, लेकिन जिन्हें भारतीय होने का कुछ भी अभिमान है, उनका

ध्यान हम प्रवासी भगिनियों की दुर्दशा की ओर आकर्षित करते और पं. माधवशुक्ल के शब्दोंमें उनसे निवेदन करते हैं:—

देखो भरी हुई दुःखों की, उनकी करुणा से सानी।
सिन्धु पार से संग हवा के, आती रोने की बानी॥

सुप्रसिद्ध अँग्रेज़ मिशनरी मि. जे. डब्ल्यू बर्टन जो कि फ़िजी कितने ही वर्ष रहकर इन अत्याचारों को अपनी आखों देख चुके हैं अपनी पुस्तक 'फ़िजी आफ़ टु डे' के २१० वें पृष्ठ पर लिखते हैं:—

"Sometimes-much too frequently it is the white man's relation with Indian women which are the cause of assault. Some Englishmen seem to imagine that because a woman is brown she has, therefore, on rights of person; and there is a certain class, happily growing less in Fiji, to whom no woman is sacred, and who profess incredulity if either a woman or her husband are above selling virtue."

अर्थात्—" प्रायः गोरों का भारतीय स्त्रियों के साथ जो अनुचित सम्बन्ध होता है वही अभिद्रोह का कारण होता है। कोई कोई अंग्रेज़ यह ख्याल करते हैं कि एक काले आदमी की स्त्री को अपने शरीर पर कुछ अधिकार नहीं है क्यों कि वह काली है, और कुछ गोरे लोग ऐसे भी हैं, जिनकी निगाह में कोई स्त्री पवित्र नहीं है। अगर कोई स्त्री या उसका पति सतीत्व बेचने से इंकार करे तो यह गोरे लोग इस बात पर विश्वास ही नहीं करते हैं। हर्ष है कि ऐसे लोगों की संख्या फ़िजी में कम हो रही है।"

जुलाई सन् १९१३ ई. के 'इण्डियन रिव्यूमें' एक लेख 'मलाया-प्रवासी भारतीय लोगोंकी दशा' के विषयमें छपा था। इसमें लिखा था "कोठियों के बिन ब्याहे गोरे अफ़सर हिन्दुस्तानी स्त्रियों के सर्तीत्व करने के उपाय सोचा करते हैं। कुछ कोठियों में कुलियों के घर-

दारों से कहा गया कि तुम खूबसूरत औरतोंको लाओ, और इस प्रकार वहाँ व्यभिचारका प्रचार किया गया। इसके अतिरिक्त वह एक दूसरी रीति का भी सहारा लेते हैं। यदि एक स्त्री और उस का पति दोनों एक कोठी को छोड़कर किसी दूसरी जगह जाना चाहें, और यदि दुर्भाग्यवश वह स्त्री रूपवती हो, तो कोठी का मेनेजर औरतको तो रोक लेता है और पतिको भेज देता है! वह इमीग्रेशन आफिस में शिकायत करता है, पर उसकी कोई सुनताही नहीं। बिचारा रोता हुआ इधर उधर भाग मारा फिरता है।"

मि. ऐण्ड्रूज़ और मि. पियर्सनने अपनी रिपोर्ट के ५६ वें पृष्ठ में लिखा है:——

"We went very carefully into the case of a European overseer who had been found guilty of committing offences with the women in the coolie 'lines.' The man was dismissed."

अर्थात्—"हमने एक युरोपियन ओवरसियर के अभियोग की बड़ी जाँच पड़ताल की। इस ओवरसियर पर कुली लेन की स्त्रियोंके साथ अत्याचार करने का अपराध सिद्ध हुआ था और यह इसी लिये नौकरी से बरखास्त कर दिया गया था।"

आगे चलकर मि. ऐण्ड्रूज़ और मि. पियर्सन लिखते हैं "फिजी की सरकार के बड़े बड़े अफसरों ने हमसे कहा था 'जब कभी किसी ओवरसियर का अपराध इस प्रकार के अभियोग में ठीक ठीक तरह प्रमाणित हो जाता है तो अवश्य ही वह ओवरसियर बरखास्त कर दिया जाता है। फिजी में अब पहिले की अपेक्षा बहुत कम ओवरसियर ऐसा अपराध करते हैं।' इन बातों को सुनकर हमें विश्वास हो गया कि बिन ब्याहे ओवरसियरों और सरदारों को नियुक्त करना बड़ी भारी भूल है; क्यों कि कुलीलेन में भारतीय स्त्रियाँ जैसी दुश्चरित्र

हो जाती हैं वह सब को स्पष्ट ही है, यद्यपि उनके दुश्चरित्रों का कारण *'कुली प्रथा' ही होती है न कि उनका कोई दोष । इस हालत में* जो लोग ओवरसियर और सरदार नियुक्त किये जाते हैं पाप कर्म करने के लिये उनकी स्थिति अत्यन्त प्रलोभनकारी होती है । "

अभी तक उपनिवेशों की सरकार ने कभी भी इस बात का ख्याल नहीं किया कि ओवरसियर और सरदार बिनब्याहे नहीं होने चाहिये, यही कारण है कि इन अमानुषिक अत्याचारों की संख्या बहुत बढ़ी हुई रही है । १६ अगस्त सन् १९१५ ई. के 'प्रताप' में 'फिजी में *एक अबला पर अमानुषिक अत्याचार'* शीर्षक एक लेख छपा था। मुहम्मदबेग की औरत और बच्ची का एक यूरोपियन द्वार सतीत्व नष्ट होने का इसमें हृदय विदारक वर्णन था । मि. बर्टन ने भी अपनी पुस्तक में कई दृष्टान्त इन अत्याचारों के दिये हैं, 'फिजी आफ टु डे' के २९०–२९१ पृष्ठ पर उन्होंने एक उदाहरण दिया है *उसका अनुवाद यहाँ दिया जाता है:——*

" दीन मुहम्मद नाम का एक उच्च जातीय शिक्षित मुसलमान एक कोठीमें कितनी ही औरतों के ऊपर सरदार नियुक्त किया गया था । वह एक अँग्रेज़ ओवरसियर के नीचे काम करता था । यद्यपि दीन मुहम्मद कोई बड़ा ज्ञानी आदमी नहीं था, लेकिन तो भी उसे नीतिकी कुछ बातें ज्ञात थीं और वह बड़ा ज़िद्दी भी था । जब उस ओवरसियर ने दीन मुहम्मद से कहा कि अपने यहाँ काम करने वाली खूबसूरत स्त्रियोंमें से दो एक हमारे लिये लादो, तो दीन मुहम्मद के हृदय में एक साथ धर्मभाव उत्पन्न हो गया । उसने ओवरसियर को कुरान से दो चार उपदेश दिये कि परस्त्रीसे व्यभिचार करना पाप है । ओवरसियर साहब यह सुनकर *अत्यन्त क्रुद्ध हुये* और उन्होंने दीन मुहम्मद को इतनी बेरहमी से मारा कि उसे अस्पताल

माना पड़ा! कुली इन्स्पेक्टर ने इस अभियोग को सुना और इसकी जाँच की। इधर ओवरसियर ने चार कुलियोंको दो दो रुपये दे दिये और उनसे सौगंध खिलाकर कहलवा दिया कि ओवरसियर साहबने अपनी रक्षा करनेके लिये ही दीन मुहम्मदको मारा था; क्योंकि दीन मुहम्मदने साहब के ऊपर आक्रमण किया था। इन चारों कुलियों ने कचहरीमें जाकर यही बात कही। दीनमुहम्मद को ६ महीने की कैद सख्त जेलमें हुई। लेकिन कुली इन्स्पेक्टरको इससे सन्तोष नहीं हुआ। उसने इस अभियोग की पुनः जाँच करवाई। जाँच करनेपर ज्ञात हुआ कि दीन मुहम्मद के साथ अत्याचार किया गया है और वास्तवमें वह अपने नीचे काम करनेवाली स्त्रियों की रक्षा करना चाहता था। यह बातें गवर्नर साहब के सामने पेश की गईं। दीन मुहम्मद को जेलसे छुटकारा मिला और ओवरसियर देशसे निकाल दिया गया।"

यदि कुली इन्स्पेक्टर लोग इसी तरह अपने कर्तव्योंका पालन करें तो भी ओवरसियरों और सरदारोंके अत्याचार व मज़दूरोंके कष्ट कम हो सकते हैं, लेकिन खेदकी बात है कि बहुत कम कुली इनस्पेक्टर ऐसा करते हैं। मि. बर्टनने अपनी पुस्तकके २६९ वें पृष्ठ पर लिखा है:——

"When the coolie judges that his task is too hard he has the right of appeal to the coolie inspector (a Government official) but as that gentleman is not seen oftener than once or twice a year, it is a somewhat limited privilege."

अर्थात्—"जब कुली को अपना कार्य्य बहुतही कड़ा ज्ञात हो तो उसको अधिकार है कि वह कुली इन्स्पेक्टरसे इस के लिये प्रार्थना करे, परन्तु यह महाशय सालभर में एक या दो बार से ज्यादह नहीं आते हैं, इसलिये यह अधिकार भी एक संकुचित अधिकार है।"

इस दृष्टान्त से यह स्पष्टतया प्रगट होता है कि औपनिवेशिक सरकारोंने जो नियम मजदूरोंकी रक्षा के लिये बनाये हैं, वह बिल्कुल उपरी दिखावट के लिये ही हैं। जो कुली इन्सपेक्टर, जो कि एक सरकारी नौकर होता है, सालभरमें केवल एक या दो बार ही 'कुली लेन' में दर्शन देगा वह उन मजदूरोंकी क्या खाक रक्षा करेगा!

बर्टन साहबने एक दूसरा दृष्टान्त 'फिजी आफ़ टु डे' के २९१–२९३ पृष्ठोंमें दिया है उसका भी यहाँ अनुवाद दिया जाता है:——

"जगनन्दनसिंह एक हिन्दुस्तानी ईसाई है, इस कारण कुछ गोरे आदमी उससे खास तोरपर घृणा करते हैं। वह बड़ा परिश्रमी है और एक मिल में अच्छी नोकरीपर है। उसकी स्त्री दुर्भाग्यवश रूपवती है। एक दिन जगनन्दनसिंह अपने अंग्रेज मिशनरीके पास गुस्से में भरा हुआ जाता है और कहता है:——

'पादरीसाहब! मेरा नाम ईसाईयोंके रजिष्टरमें से काट दो जिससे मेरे कारण ईसाई धर्मपर कलंक न लगे। मैं उस ओवरसियरको जो मेरी स्त्री के ऊपर काम लेनेके लिये नियुक्त है, जानसे मार डालना चाहता हूँ।'

पादरी०—'बात तो बताओ, मामला क्या है?'

जगनन्दन—'मामला क्या है? वह सुअर मेरी स्त्रीसे बदमाशी कराने के लिये कहता है। मेरी स्त्री ने उसकी बातको नहीं माना और कहा 'मैं तो विवाहिता हूँ।' आजके दिन उस दुष्ट पापी ने मेरी स्त्री को खेत में पकड़ लिया और उसके साथ बलात्कार करना चाहा। स्त्रीने अपनी रक्षा के लिये प्रयत्न किया और ओवरसियर के हाथ में काट खाया। जब वह ओवरसियर मेरी [illegible] काबूमें न कर सका तो उसने मेरी स्त्रीके सिर में कोड़ा मारा

और क्रोध में मेरी स्त्री के तमाम कपड़े फाड़कर फेंक दिये और लगभग नंगा करके खेतमें उसको छोड़ दिया जिससे दूसरी स्त्रियाँ उसपर हँसने लगीं।'

फिर जगनन्दन सिंह ने एक मैले कपड़ेकी धर्जीरें दिखलाई जो कि एक चोलीकी थीं। सम्भवतः उस ओवरसियरने इस वस्त्र को बहुत जोरसे नोच कर फाड़ा था। फिर जगनन्दनसिंह बोला 'साहब मैं उस ओवरसियरको मारते मारते अधमरा कर दूँगा!' तब वह मिशनरी जगनन्दनसिंहको शान्त करने लगा और कहने लगा कि तुम अदालत में इस बात की रिपोर्ट कर दो।

यह सुनकर जगनन्दनसिंह ताना देता हुआ और हंसता हुआ बोला 'क्या अदालत में? अदालत में सच बोलने वालेके लिये बिल्कुल न्याय नहीं है। नहीं नहीं; बस अब मेरी छुरी ही न्याय करेगी!'

पादरीसाहब–'ऐसा मत करो, यह ठीक नहीं!'

जगनन्दन–'साहब, वह ओवरसियर पाँच छ औरतों को गवाह बना लेगा; यह औरतें कसम खाके कह देंगी 'ओवरसियरने उसदिन हुआ भी नहीं बल्कि बात यह थी कि मोतीका तास्क (ठेकेका काम) बहुत कड़ा था इसलिये गुस्से में आकर इसीने साहब के हाथमें काट लिया है।' वह ओवरसियर भी अपने हाथ के निशान दिखा देगा।'

पादरी साहब ने जगनन्दन सिंह की शिकायत ठीक समझी और चुप रह गये। तो भी उन्हों ने जगनन्दन से कहा 'भाई धीरज रक्खो और क्षमा करो।' जगनन्दन सिंह ने कहा 'क्या आप मुझ से कहते हैं धीरज रक्खो! वाह वाह! क्या मैं उसे क्षमा करूँ? आप ही बताओ कि यदि वह ओवरसियर ऐसा कार्य्य आपकी स्त्री के साथ करता तो क्या आप उस हालत में धीरज रखते? क्या आप उसे क्षमा प्रदान करते?'

इस बात को विचार में लाते ही पादरी साहब का
लगा। वह सोचने लगे कि यदि यह काम मेरी स्त्री
जाता तो मुझे तभी सन्तोष होता, जब कि मैं ओवरसि
समाप्त कर देता। तब पादरी साहब जगनन्दन सिंह से
प्रगट करने लगे। बहुत देर तक बातचीत करने के बाद
सिंह का क्रोध शान्त हुआ और उसने बड़ी मुश्किल से
को वचन दिया कि मैं उस ओवरसियर से बदला न लूँगा

इस पर टिप्पणी करते हुये बर्टन साहब लिखते हैं:—

"So the scoundrel escaped punishment, an
prestige among this people suffered another loss."

अर्थात्—'इस प्रकार वह दुष्ट ओवरसियर साफ़ ब
फ़िजी के भारतवासियों के हृदय में अँग्रेज जाति की इज्जत
और कम हो गई।'

इन दृष्टान्तों को देकर हम यह सिद्ध नहीं करना चाहते
के सब ओवरसियर इसी प्रकार के अत्याचारी होते हैं
अभिप्राय इन दृष्टान्तों के देने से यह है कि पाठकों को ज्ञात
कि 'कुलीप्रथा' में मजदूरों की रक्षा के जो नियम हैं, व
बनावटी हैं और बुरे ओवरसियर उनका मनमाना दुरुप
सकते हैं। मिस्टर बर्टन साहब ने भी यही लिखा है:—

"But when there is a man (overseer), coarse,
and brutal in a Legree the system plays into his
He can wreak his revenge or gratify his baser p
without great fear of discovery." *

अर्थात्—"जब कोई ओवरसियर गुंडा, कामी और अत्य
तो वह शर्तबन्दीकी प्रथा के द्वारा कुलियों को मनमाने कष्ट

* देखो 'फिजी आफ टुडे' पृष्ठ १८६,

है, वह उनसे बदला ले सकता है और अपनी कामेच्छाओंको, बिना पकड़े जाने के डर के, पूर्णकर सकता है।"

ओवरसियरोंके इन दुष्कर्मों का बहुत बुरा परिणाम होता है, बहुतसा रक्तपात होता है और कितनीही जानें भी जाती हैं। भारतवासी सतीत्वको कितनी बड़ी चीज समझते हैं, यह बतलानेकी आवश्यकता नहीं। जब वह देखते हैं कि भारतीय भगिनियों पर अमानुषिक अत्याचार किये जाते हैं तो उनका खून खोलने लगता है और वह एकाध ओवरसियरका काम तमाम कर देते हैं, फिर चाहे उन्हें फाँसी भले ही हो जावे। बर्टन साहब अपनी पुस्तकके २९३-२९४ वें पृष्ठोंमें लिखते हैं, "भारतवासी डरनेवाले आदमी नहीं होते। जहाँ एक बार उन्हें क्रोध आ गया कि बस फिर संसार की कोई शक्ति उन्हें नहीं रोक सकती। एक दुराचारी ओवरसियर ने एक हिन्दुस्तानी स्त्री का सतीत्व जबर्दस्ती नष्ट किया था। यह ब्राह्मणी थी और इसके कितनेही मित्र थे। यद्यपि यह सच्चरित्रा नहीं थी, तथापि जाति की ब्राह्मणी होनेके कारण यह लोग इसका बड़ा आदर करते थे। इन लोगोंने उस ओवरसियर से इस ब्राह्मणीके सतीत्व नष्ट करने का बदला लेनेका निश्चय कर लिया। इन्होंने बदला ले लिया। उस ओवरसियर के टुकड़े टुकड़े कर डाले! जो दुर्गति इन लोगोंने उस ओवरसियर की वह अवर्णनीय है। बदला लेकर यह लोग बड़ी शान्ति के साथ फाँसी पर चढ़ गये!!"

इस प्रकार की दुर्घटनायें वास्तवमें खेदजनक हैं। इन सबका मूल कारण 'कुली प्रथा' ही है। मिस्टर ऐण्ड्रूज और मि. पियर्सनने अपनी रिपोर्ट के अन्त में जो टिप्पणियाँ लिखी हैं उनमें पहिली टिप्पणी के दूसरे पृष्ठमें वह लिखते हैं:—

"We visited an estate at Navua where the overseer had not long ago committed such atrocities upon

the coolies in his 'lines' that he was obliged at las fly from the colony, fearing a conviction for murder. months this man had terrorised the coolies on the plantat Yet these same coolies were compelled by the Law of In ture to remain on his estate. Fresh newly-arrived coo would, in the course of things, be sent direct from the ship serve on this estate, without any power of refusal."

अर्थात्—" नावुआ ज़िलेकी एक कोठी को हमने देखा, जहाँ थोड़े दिन हुये एक ओवरसियर ने कुली लेनोंके निवासी कुलियों इतने घोर अत्याचार किये थे कि अन्त में वह, इस डर से कि क मेरे ऊपर मनुष्य हत्याका अपराध न प्रमाणित हो जावे, उपनिवे से भाग गया महीनों तक इस ओवरसियर ने खेतों पर कुलि को पीड़ित और संत्रस्त किया थालेकिन तो भी यह कुली शर्तबन्दी नियमों के अनुसार इस ओवरसियर के खेतों पर रहने के लिये बाध थे। नये नये आये हुये कुली जहाज़ से उतरते ही नियमानुसा बराबर इस कोठी को भेजे जाते थे और कोई इन कुलियों को इस कोठी पर भेजे जानेसे नहीं रोक सकता था।"

इन दुष्कर्मों का एक परिणाम और होता है, वह यह कि यूरोपियनों और हिन्दुस्तानियों में पारस्परिक जातिविद्रोह उत्पन्न हो जाता है। प्रवासी भारतवासी यह समझने लगते हैं कि सब के सब यूरोपियन ओवरसियरोंकी तरह के होते हैं और औपनिवेशक गोराङ्ग लोग यह समझते हैं कि भारतवासी सब के सब 'कुली' ही होते हैं। सब यूरोपियनोंको दुराचारी ओवरसियरों की कोटि में रखना उतना ही भारी अन्याय है जितना कि सबके सब भारतवासियोंको कुली समझना है।

यहाँ पर हम यह लिख देना न्यायसङ्गत समझते हैं कि हिन्दुस्तानी सरदार भी कुलीप्रथा की ओट में अपने भाइयों और बहिनों पर

ढ़े बड़े घोर अत्याचार करते हैं। जिन लोगोंने दासत्व प्रथा का तिहास पढ़ा है, उनके लिये यह कोई नई बात नहीं है। यदि आप "टामकाका की झोंपड़ी" पढ़ें तो आपको पता लगेगा कि ़लाम हबशियों के सरदार कृष्णवर्ण हबशी अपने भाइयों पर जितने ़ुल्म करते थे उतने शायद उनके गौराङ्ग मालिक भी न करते होंगे।

इस प्रकार यह निर्विवाद सिद्ध हो गया कि प्रतिबद्ध कुलीप्रथा ़ासत्व प्रथा का रूपान्तर है। बड़े बड़े अनुभवी लोगोंने इसे गुलामी' और 'अर्द्धगुलामी' बतलाया है। हम यहाँ कुछ महानु- ावों की सम्मति कुली प्रथा के विषय में देते हैं, इनसे पाठकों को ता लग जावेगा कि किस प्रकार की 'गुलामी' ब्रिटिश साम्राज्य लगभग ९० वर्ष तक कायम रही। भारतवर्ष में कुली प्रथा सन् ८३४ ई. से प्रारम्भ हुई थी और कमसे कम सन् १९२१ ई. तक यह ़ायम रहेगी; क्योंकि जिन लोगों ने सन १९१६ ई. में शर्तबन्दी में ़ाम करना प्रारम्भ किया है वह सन् १९२१ ई. में 'स्वतंत्र' होंगे। ़ प्रकार इस दुष्ट प्रथा की उम्र कम से कम ८७ वर्ष की हुई। ़स प्रकार 'दासत्व प्रथा' मरते समय अपनी उत्तराधिकारिणी कुली प्रथा' को बना गई थी उसी प्रकार कहीं यह ८७ वर्ष की कुली प्रथा' 'सीलोन की स्वतंत्र (?) मजदूरी' या 'मलाया प्रथा' को अपनी उत्तराधिकारिणी न बना देवे, इस बात की बड़ी आशङ्का है। ख़ैर अब आप इस सतासी वर्ष की बुढ़िया सुकीर्ति तो सुन लीजिये। देखिये बड़े बड़े अनुभवी महाशयोंने का कैसा गुणगान किया है।

महात्मा गान्धी ने जो इस प्रथा के सर्वोत्तम ज्ञाता कहे जा सकते २८ अक्टूबर सन् १९१५ ई. को बम्बई में इसके बारे में व्याख्यान हुये कहा था:—

"However protected the system may be it would remain a state based upon full-fledged slavery and it is a hinderance to national growth and national dignity."

अर्थात्–"इस प्रथा में मजदूरों की रक्षा के लिये चाहे जितने नियम क्यों न बनाये जावें, लेकिन तो भी यह प्रथा पूर्ण दासत्व मूलक रहेगी, और यह प्रथा हमारी राष्ट्रीय उन्नति और राष्ट्रीय सम्मान की बाधक है।"

नेटाल के मुख्य सचिवने कहा था कि 'यह प्रथा Most unadvisable thing अत्यन्त अनुचित है और जितनी जल्दी इसका अन्त हो जावे उतना ही शर्तबँधे मजदूरों के लिये और उनके स्वामियों के लिये अच्छा होगा।' सर विलियम हंटर ने इस प्रथा को अपनी आखों देखा भाला था और बड़ी जाँच पड़ताल के बाद यह नतीजा निकाला था कि 'यह प्रथा गुलामी से बहुत मिलती जुलती है।' सन् १८९५ ई. में उन्होंने इस विषय की एक बड़ी विद्वत्तापूर्ण लेखमाला लिखी थी, इसमें एक जगह उन्होंने इस प्रथा को Semi-slavery 'अर्द्ध गुलामी' बतलाया था। लार्ड सेलबार्न ने, जब वह दाक्षिण अफ्रिका में हाई कमिश्नर थे, कहा था कि 'प्रतिज्ञा बद्ध कुली प्रथा मजदूरोंकी अपेक्षा उनके मालिकों के लिये अधिक बुरी है; क्यों कि गुलामी से इसका भयंकर सम्बन्ध है।'

मिस्टर जे. डबल्यू बर्टन, जिन्हें इस प्रथा के विषय में दस व[र्ष] का अनुभव है, 'फिजी आफ टुडे' के २८५ वें पृष्ठ पर लिखते हैं:

"The system, however, is a barbarous one, and the be[st] supervision can not eliminate cruelty and injustice. Such method of engaging labour may be necessary inorder to carry out the enterprises of capital, but there is something dehumanizing and degrading about the whole system. It is bad for the coolie, it is not good for the Englishman."

अर्थात्–"कुलीप्रथा अत्यन्त असभ्यतापूर्ण है और अच्छी से अच्छी देख भाल से भी इसकी निर्दयता और अन्याय दूर नहीं हो

सकते। धन लगाकर व्यवसाय करने के लिये मजदूर रखने की यह पद्धति भले ही आवश्यक हो, पर यह सम्पूर्ण प्रथा भ्रष्ट, अपकृष्ट और मनुष्यत्व को नष्ट करनेवाली है। कुली लोगों के लिये यह बुरी है और अँग्रेजोंके लिये भी यह अच्छी नहीं।" मिस् डडले ने, जिन्हें इस विषय का १५ वर्ष से भी अधिक का अनुभव है 'इण्डिया' नामक पत्र में इस प्रथा को 'Slavery' गुलामी बतलाया था और इसे Iniquitous System 'अन्यायपूर्ण प्रथा' लिखा था। मि. पियर्सन ने दक्षिण अफ्रिका में जाकर इस प्रथा की खूब अच्छी तरह जांच की थी और वहाँ से लौट कर इन्होंने जो अपनी रिपोर्ट लिखी थी उसमें लिखा था:—

"The whole system of indentured labour is to my mind utterly and thoroughly bad."

अर्थात्—"शर्तबन्दी की सारी प्रथा मेरी सम्मति में बिल्कुल और अत्यन्त खराब है।" मि. सी. ऐफ. ऐण्ड्रूज् इस प्रथा को Virtual slavery 'वास्तविक गुलामी' समझते हैं। स्वर्गीय सर हेनरी काटन ने २८ मई सन् १९१५ ई. को 'इण्डिया' में लिखा था "जितना अनुभव हम लोगों को इस प्रथा के विषय में हो चुका है, उससे हम कह सकते हैं कि इस प्रथा के दोषों को दूर करने का केवल एक उपाय है, यानी इस प्रथा को जड़मूल से नष्ट कर देना।"

स्वर्गीय महात्मा गोखले ने मार्च सन् १९१२ ई. में व्यवस्थापक सभा में इसके विषय में कहा था:—

"A system, iniquitous in itself, based on fraud and maintained by force."

अर्थात्—"यह प्रथा स्वतः अन्यायपूर्ण है, छल कपट की नींव पर स्थित है और बलद्वारा इस का संचालन होता है"। उन्होंने यह भी कहा था कि 'जो देश इसको सहन करता है उसकी सभ्यता के लिये यह कलंक लगानेवाली है।'

किम्बहुना, हम और भी बीसियों निष्पक्ष यूरोपियनों और अनुभवी भारतवासियों की सम्मति इस प्रथा के विषय में यहाँ दे सकते हैं, लेकिन हमारी समझ में इस विषय में यहाँ अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं।

इन सब बातों पर विचार करते हुये हम दृढ़ विश्वास के साथ कह सकते हैं कि यह प्रथा अब एक दिन भी प्रचलित रखने योग्य नहीं। मि. पियर्सन और मि. ऐण्डूज़ ने अपनी रिपोर्ट के अन्तिम पृष्ठ पर लिखा है:–

"I the fair name of India is to be saved from further disrepute, it is abundantly clear that this degradation should not be allowed to go on for a day longer."

अर्थात्–"यदि भारतवर्ष के शुभ नामको अधिक कलंकित होने से बचाना हो तो यह पूर्णतया स्पष्ट है कि इस भ्रष्ट प्रथा को अब एक दिन भी ज्यादा कायम नहीं रखना चाहिये"।

उपनिवेशों के मुख्य मंत्री मि. बोनर ला के एक पत्र से, जो उन्होंने फ़िजी सरकार को भेजा था, यह स्पष्टतया प्रगट होता था कि वह कम कम दस वर्ष तक इस "प्रतिज्ञा बद्ध कुली प्रथा" को कायम रख चाहते थे। उन्होंने लिखा था कि 'पाँच वर्ष तक और शर्तबन्दी में भारती कुली भेजे जाने चाहिये'। इस का अभिप्राय यही हुआ कि पाँच व तो यह और पांच वर्ष शर्तबन्दी के यानी कुल मिलकर दस वर्ष तव यह दासत्व प्रथा कायम रहे। मि. सी. ऐफ़. ऐण्डूज़ को भी विश्वस्त सूत्र से पता लगा था कि यह प्रथा कई वर्ष तक कायम रहेगी। इस प जो कुछ आन्दोलन देश भर में हुआ उसे सभी जानते हैं। अन्त में श्रीमान् वाइसराय साहब को भारत रक्षा कानून का आश्रय लेकर युद्ध काल तक इसे बन्द कर देना पड़ा। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि हम शिक्षित भारतवासी इसे गुलामी के समान समझते हैं श्रीमान् लार्ड हार्डिञ्ज ने भी कहा था:—

"Educated Indians look on it as a badge of helotry."

अर्थात्—"शिक्षित भारतवासी इसे अपनी जाति के ऊपर गुलामी की छाप समझते हैं।" इस लिये भारतसरकार से हमारा निवेदन है कि वह फिजी, जमैका, ट्रिनीडाड इत्यादि की सरकारों पर दबाव डाल कर उन लोगों की शर्तबन्दी को जो सन् १९१६ ई. में प्रतिज्ञाबद्ध कुली प्रथा में बँधकर गये हुये हैं, फ़ौरन कटवा देवे।

कुली प्रथापर विचार करनेके लिये 'इण्डिया आफिस' और 'कालोनियल आफिस' के प्रतिनिधियोंकी जो कमेटी बैठेगी, उसमें इण्डिया आफिससे निम्न महाशय सम्मिलित होंगे। भारतके पार्लीमेण्ट्री अंडर सेक्रेटरी लार्ड इसलिङ्गटन, इण्डिया आफिसके एक अफ़सर तथा निम्नलिखित भारतीय अफ़सर, सर जेम्स मेस्टन, सर एस. पी. सिनहा, मिस्टर केनेडी और मिस्टर मार्जोरी बैंकसस। अन्तिम दोनों महाशय अपने विशेष ज्ञानसे कमेटीकी सहायता करेंगे। इस कमेटीमें ऐसे लोग नहीं हैं जिनका होना अत्यन्त आवश्यकता था। क्या ही अच्छा होता यदि सरकार मिस्टर गान्धी, मि. ऐण्डूज् और मि. पोलकको इस कमेटीमें सम्मिलित कर लेती। पर सरकार ऐसी भूल क्योंकर कर सकती है? इस कमेटीमें केवल एक भारतवासी सज्जन हैं यानी सर ऐस. पी. सिनहा। यह महाशय बंगाली हैं अतएव इन्हें कुली प्रथाका बहुत ही कम ज्ञान है, क्योंकि बंगाल प्रान्तसे बहुत कम लोग शर्तबन्दीमें बँध कर जाते हैं। इसलिये इसका फल यह होगा कि सर सिनहाको इस मामलेमें औरोंसे दब जाना पड़ेगा, जो इस विषयके विशेषज्ञ होनेका दावा करेंगे। इन कारणोंसे बहुतसे लोगोंको ऐसी आशङ्का है—और उनकी यह आशङ्का निराधार नहीं है—कि कहीं इस प्रथाके स्थानमें कोई "दासत्व प्रथाका तृतीय संस्करण" न प्रचलित कर दिया जावे। अलमतिविस्तरेण, लोकमतको इस प्रकार पददलित करनेका क्या परिणाम होगा यह हम 'सरकारसे निवेदन' शीर्षक प्रकरणमें लिखेंगे। इसका अधिक विवरण यहां लिखना उचित न होगा।

षष्ठ अध्याय

विदेशों में भारतवासी

ब्रिटिश साम्राज्य में भारतीय

इस अध्याय में प्रवासी भारत वासियों का संक्षिप्त इतिहास दिया जावेगा और उनकी वर्तमान स्थिति के विषय में जो बातें ज्ञातव्य हैं वह लिखी जावेंगी। जिन जिन स्थानों में प्रवासी भारत वासी बसे हुये हैं उनके वर्णन का क्रम उनके महत्व के अनुसार रक्खा गया है। उदाहरणार्थ मोरीशस को भारतवासी मज़दूर सब से पहिले यानी सन् १८३४ ई. में गये थे और दक्षिण आफ्रिका में भारतवासी सन् १८६० ई. में गये थे लेकिन महत्व के लिहाज़ से दक्षिण आफ्रिका के भारतवासी, मारीशसके भारतवासियों की अपेक्षा कहीं अधिक गौरव युक्त हैं इसीलिये दक्षिण आफ्रिका का वर्णन प्रथम किया गया है।

दक्षिण आफ्रिका

लगभग ६० वर्ष हुये दक्षिण आफ्रिका में नये नये कारखाने खुले थे, खानें खोदी जा रही थीं और उनके लिये मज़दूरों की बड़ी आवश्यकता थी। इसके सिवाय ईख, चाय अरारोट इत्यादि की खेती बारी भी दिन पर दिन बढ़ती जाती थी लेकिन मज़ूरों के अभाव से गोरों को बड़ा कष्ट होता था वहाँ के आदिम निवासी काफ़िर लोगों से काम चल नहीं सकता था इस दशा में इन गोरों की दृष्टि भारतपर पड़ी

और इन्होंने साम्राज्य सरकार से प्रार्थना करके भारत सरकार पर इस बात का दबाव डलवाया कि अपने यहाँ से शर्त में बान्धकर मजदूरों को दक्षिण अफ्रिका भेजो। भारत सरकार भी चाहती थी कि भारतके मजदूर दक्षिण आफ्रिका में जाकर वहाँ वालों की सहायता करें और अपना गुज़ारा भी करलें। निदान प्रतिज्ञाबद्ध मजदूरों का पहिला बेड़ा दक्षिण अफ्रिका के किनारे पर सन् १८६० ई. के नवम्बर महीने की १६ वीं तारीख को पहुँचा।

जब तक भारतवासियोंकी ज़रूरत थी तब तक तो गोरे लोगोंने उन्हें वहाँ स्वच्छन्दताके साथ रहने दिया और कभी कभी उन्हें थोड़ीसी जमीन भी देदी; लेकिन ज्योंही भारतवासियोंके कठिन परिश्रमके कारण वहाँ वाले धनवान होगये, उनकी संख्या बढ़ गई और काम खूब चलने लगा तो इन लोगोंने बिचारे भारतीय मजदूरोंको नानाप्रकारके कष्ट देने प्रारंभ किये। जिस प्रकार कि कोई नारंगीका रस चूँसकर उसे बाहिर फेंक देता है उसी प्रकार इन गोरे अधिवासियोंने हिंदुस्तानियोंके यौवनका परिश्रम खींचकर उन्हें अपने यहाँसे निकाल देनेकी बड़ी बड़ी चेष्टायें कीं। इन चेष्टाओंका संक्षिप्त वृत्तान्त आपको आगे चलकर मिलेगा।

दक्षिण अफ्रिकाके ६ सूबोंमें भारतवासी रहते हैं।

(१) नेटाल, (२) ट्रान्सवाल, (३) आरेंज रिवरकालोनी (४) दक्षिण रोडेशिया (५) केप कालोनी (६) पुर्तगालवालों का मुजंबिक। इनमें मुजंबिकका वर्णन तो हम पीछे करेंगे क्योंकि यह ब्रिटिश साम्राज्यमें नहिं हैं, शेष पाँच सूबोंका हाल सुनलीजिये।

नेटाल

दक्षिण अफ्रिका में भारतवासियों की कुल संख्या डेढ़ लाख है। इनमेंसे अनुमानतः एक लाख और तेतीस हज़ार नेटालमें रहते हैं। इनमें ३२ सहस्र शर्तबंधे कुली हैं, ७२ सहस्र ऐसे हैं जो शर्तका समय पूरा कर चुके हैं या उनकी सन्तान हैं और १५ सहस्र व्यवसायी हैं जो अपने खर्चे से वहाँ पहुँचे हैं और अपनी पूँजी लगाकर व्यापार कर रहे हैं।

जो भारतीय मजदूर शर्तबन्दीमें नेटाल को पहुँचे उन्हें वहाँ बड़े बड़े कष्ट उठाने पड़े। खाने के लिये उन्हें चावल दाल और नमक दिया जाता था तथा पाँच रुपये मासिक वेतन मिलता था। कितनेही मजदूरों ने बड़े बड़े कष्टों को सहकर शर्त की अवधि समाप्ति की और स्वतं व्यवसायमें दत्तचित्त हुये। कुछ लोग खेती करने लगे और कुछ ने छोटी छोटी दूकानें रक्खीं। धीरे धीरे इनकी उन्नति होने लगी। इन लोगों अनेक प्रकार के रोजगार जारी किये और तरह तरह की तिजारत करने लगे। उद्यम और परिश्रम में यह लोग दक्षिण अफ्रिकाके निवासियों अधिक चतुर थे। यह लोग अंग्रेज व्यापारियों की प्रतियोगिता करने लगे परिश्रमी और अल्पव्ययी होने के कारण वहाँ के छोटे मोटे व्यापार इनके अधिकारमें आने लगे। भारतवासियों के ही परिश्रम से दक्षिण अफ्रिका जैसा जंगली देश धनधान्य से परिपूर्ण होगया।

अब तक तो गोरे लोग भारतवासियों की हर तरह से प्रशंसा करते थे लेकिन ज्यों ही देश अन्न धन से सम्पन्न हुआ, उन गोरों की सब प्रकार की आवश्यकतायें पूरी हुईं त्यों ही वह भारतवासियों से घृणा और द्वेष करने लगे। उनके इस द्वेष का कारण स्वार्थ बुद्धि थी। इन लोगों ने भारतवासियों को दबाने के लिये अनेक प्रकार के

प्रयत्न किये। सब भारतवासी कुली कहके पुकारे जाते हैं और गोरे अधिवासी उन्हें ट्राम गाडियोंमें, अपने चलने के मार्गों में और वहां के स्नानगृहों में नहीं आने देते हैं। यह लोग भारतीयों को 'सामी' के नाम से भी पुकारते हैं। मद्रास के लोग दक्षिण अफ्रिकामें बहुत हैं और इन लोगों के नाम प्रायः कुप्पूस्वामी, पुनूस्वामी, कृष्णस्वामी इत्यादि होते हैं। बस इसी लिये इन गोरे लोगों ने सब के सब भारतवासियों को 'सामी' की उपाधि दे डाली।

सन् १८९३ ई. में नेटाल सरकार भारतवासियों के विरुद्ध एक कायदा बनाना चाहती थी। इस कायदे का आशय यह था कि भारतवासियों के चालू हक छीन लिये जावें और अन्य कायदे भी उनके सम्बन्ध में बना दिये जावें। उस समय महात्मा गान्धी नेटाल में विद्यमान थे। इन्होंने इस कायदे की ओर भारतवासियों का ध्यान आकर्षित किया और एक विराट् सभा करके नेटाल सरकार के पास इस कायदे के विरोध में तार भेजे और इस कायदे का प्रतिकार करने के लिये प्रतिनिधि भी भेजा गया।

यह कायदा जारी होनेवाला था, पर भारतवासियों की प्रार्थना पर ध्यान देकर उस समय के मुख्य मंत्री सर जोन रोबिन्सने इस कायदे की कई एक धाराओंमें थोड़ा सा फेर फार कर दिया। इसके बाद यह कायदा पास हो गया। कार्यरूप में परिणत करने के लिये अभी इस बिलको सम्राट् की मंजूरी की आवश्यकता थी। दक्षिण अफ्रिका के भारतवासियों ने महात्मा गान्धी की सम्मतिसे दश सहस्र मनुष्यों के हस्ताक्षरयुक्त एक प्रार्थनापत्र लार्ड रिपनकी सेवा में भेजा। इसका परिणाम यह हुआ कि इस कायदे को सम्राट की मंजूरी न मिली।

तीन पौण्डका कर

नेटाल के गोरे अधिवासियों को यह बात बहुत बुरी लगी। उन लोगों ने भारतवासियों की बढ़ती को रोकने के लिये एक प्रतिनिधि मण्डल भारत सरकार के पास इस अभिप्राय से भेजा कि अब जो भारतीय मजदूर शर्त लिखकर नेटाल आवें वह शर्त की अवधि समाप्त होनेपर स्वदेश को लौट जावें, और यदि वह नेटालमें रहना चाहें तो २१ पौण्ड यानी ३१५) रु. वार्षिक कर सरकार को दिया करें। भारत की जनता ने इस प्रस्ताव का विरोध किया लेकिन नेटाल के गोरे अधिवासियों ने अपनी हठ नहीं छोड़ी और भारत सरकार को इस प्रस्ताव को स्वीकृत करने के लिये बाध्य किया। निदान भारतसरकार की सलाह से वार्षिक कर घटाकर २१ पौण्डकी जगह ३ पौण्ड कर दिया गया। यह कायदा सन् १८९५ ई. में पास हो गया। जिन दिनों यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ था उन दिनों भारतके वायसराय श्रीमान् लार्ड डफरिन थे, उन्होंने दया करके यह निश्चित करा लिया था कि यदि कोई भारतवासी कर देने में असमर्थ हो तो उस पर फौजदारी की अदालत में अभियोग न लगाया जावे, बल्कि दीवानी अदालत द्वारा रुपया वसूल किया जावे।

इस कायदे के अनुसार प्रत्येक शर्तमुक्त पुरुष पर जिसकी उम्र १६ वर्ष से अधिक थी और प्रत्येक शर्त मुक्त स्त्री पर जिसकी अवस्था १३ वर्ष से कम न थी, ४५) रु. वार्षिक कर लगा दिया गया। लेकिन जो लोग गोरे किसानों की शर्तबन्दी मजदूरी फिर करना स्वीकार कर लेते थे उन पर यह कायदा लागू नहीं होता था। इस का दुष्परिणाम यह हुआ कि कितने ही मजदूर लाचार होकर फिर शर्तनामे में बँध जाते थे और ऐसे लोगों को 'प्रतिज्ञा बद्ध कुली

प्रथा' की यमपुरी में सड़ना पड़ता था। इस 'खूनी कर' का प्रभाव भारतीय स्त्री पुरुषों के चरित्रों पर भी बहुत बुरा पड़ा।

अनुमान कीजिये कि एक कुटुम्ब में चार प्राणी हैं, एक पुरुष, एक स्त्री, एक पुत्र और एक कन्या। इन सबको १२ पौण्ड यानी १८०) रुपये वार्षिक कर देना पड़ेगा, यानी १५) रु. मासिक तो उसे इस खूनी कर के लिये देने पड़ेंगे। अब विचार करने की बात है कि एक साधारण मज़दूर जिसे २५) रु. या ३०) रु. मासिक वेतन मिलता हो किस प्रकार अपने कुटुंब का पालन पोषण करके सरकार को प्रति वर्ष १८०) रु. दे सकता है। जो स्त्रियाँ विधवा थीं उनको भी यह कर देना पड़ता था, इस कारण कितनी ही स्त्रियाँ व्यभिचारपूर्ण कार्यों से धन कमाकर सरकार को वार्षिक कर देनेके लिये विवश हुईं और कितने ही पुरुष चोरी आदि दुष्कर्मों में प्रवृत्त हुये। एक बार दरबन की फौजदारी अदालत में पाँच स्त्रियों पर ३ पौण्ड वाला कर न देने का अभियोग चला था। इन स्त्रियों ने कहा "हम कहाँ से दें ?" एक स्त्री ने कहा "मालिक लोग हमें ४५) रु. के कर की रसीद दिखलाये बिना काम पर नहीं रखते, हम कर कहाँ से दें ?" दूसरी स्त्री ने कहा "हमारे पति कमाते हैं पर वह इतना रुपया कहाँ से लावें कि घर का खर्च चलाकर ४५) रुपये वार्षिक टेक्स दे सकें ?" यह स्त्रियाँ जेल में ठूँस दी गईं, एक एक महीने कठिन कारावास की इन्हें सज़ा हुई। भारतीय सरकार से तो यह वायदा हुआ था कि दिवानी अदालत से कर वसूल होना चाहिये, लेकिन इस वायदे का कोई भी ख्याल नहीं किया गया और फौजदारी अदालत में स्त्री पुरुषोंपर अभियोग लगवाकर उन्हें जेल दी गई और उनके खूनसे रँगे हुये रुपये लियेही गये।

स्वतंत्र भारतीयों की रुकावटः—नेटाल के निवासी भारतीय मजदूरों को वहाँ बसने से रोकने के लिये उनपर ३ पौण्ड का कर लगा दिया

गया था और उनके ऊपर नाना प्रकार के अत्याचार किये गये थे, लेकिन स्वतंत्र भारतवासियों को इस देश में प्रवेश करने के लिये अवतक कोई रुकावट नहीं थी; यह बात गोरे अधिवासियों के दिल में खटक रही थी और वह स्वतंत्र भारतवासियों का आगमन रोकने के लिये यथाशक्ति प्रयत्न कर रहे थे। अन्त में इनका मनोरथ सफल हुआ और सन् १८९७ ई. में स्वतंत्र भारतवासियों के रोकने के लिये कायदा बन गया। इस कायदेका अभिप्राय यह था कि अब कोई स्वतंत्र भारतवासी नेटाल में नहीं आने पावे और जो लोग नेटाल से हिंदुस्तान को जाना चाहें, वह इमीग्रेशन अमलदार से सनद लेकर जावें और देश से लौटनेपर इस सनदको दिखा कर ही वह नेटाल में प्रवेश कर सकें। इस कायदे में एक यह भी धारा है कि जो भारतवासी अंग्रेजी में अच्छी योग्यता रखता हो और परीक्षा लिये जानेपर अपनी यह योग्यता प्रमाणित कर सके वही नेटाल में रहने का अधिकार प्राप्त कर सकेगा।

यद्यपि यह कानून नाम मात्र को सब के लिये है लेकिन इसका प्रयोग वहाँ जाने वाले भारतवासियों के ही साथ किया जाता है। भारतवर्ष के बड़े बड़े विद्वान् और पवित्रात्मा लोग केवल अँग्रेजी न जानने के कारण से वहाँ नहीं जा सकते।

यह कायदा अब भी जारी है। इससे भारतवासियों को बड़ी हानि पहुँचती है। भारत से कितने ही लोग यह समझकर, कि दक्षिण अफ्रिका में हम कमा खावेंगे, वहाँ के लिये चल देते हैं लेकिन जब वह वहाँ के किसी बन्दर पर पहुँचते हैं, तब उन्हें पता लगता है कि यहाँ पर स्वतंत्र भारतवासियों के आने का हक नहीं है। वह लौटा दिये जाते हैं और जहाज़के किराये में जो उनके सैंकड़ों रुपये व्यय होते हैं, वह व्यर्थ जाते हैं। सन् १९०१ ई. में नेटालके बन्दर पर सब मिलाकर ६७८३ रोकी रोके गये, उनमेंसे ३२४४ अँग्रेजी राज्यके भारतवासी थे।

रोज़गार का परवाना:—एक कानून बनाया गया जिसका नाम 'नेटाल लाइसेंसिङ्ग एक्ट रक्खा गया' बिना परवाने के कोई मनुष्य व्यापार नहीं कर सकता और प्रतिवर्ष लाइसेंसिङ्ग अफ़सर के द्वारा यह परवाना नया कराना पड़ता है। व्यापारियों को सताने का ढङ्ग यह है, एक दूकान खूब चल रही है, परवाने की अवधि पूरी हो गई, नये परवाने के लिये व्यापारी न्यायाधीश के पास गया, वहाँ उससे कहा जाता है कि तुम अपनी दूकान उठाकर अमुक स्थान पर ले जाओ नहीं तो तुम्हारा परवाना रद्द कर दिया जावेगा। विवश होकर बिचारे को अपनी दुकान को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाना पड़ा इस कारण ग्राहक कम हो गये। उसकी जगह किसी गोरे व्यापारी ने दूकान रख ली। इस ऐक्ट से भारतवासियों को हजारों रुपयों की हानि हुई।

निर्वाचनसम्बन्धी अधिकार:—सन् १८९६ ई. से पहिले राजकीय विचार सभाओं में प्रतिनिधि चुनने का अधिकार भारतवासियों को भी था। निर्वाचन या चुनाव के वह ही अधिकारी होते थे जिनके पास ५० पौण्ड या ७५०) रु. कीमत की स्थावर सम्पत्ति होती थी, या इतनी जमीन होती थी जिसकी वार्षिक आय कम से कम १५०) रु. हो। सन् १८९६ ई. में उन से यह अधिकार छीन लिया गया और यह कहा गया कि पार्लियामेण्ट के यूरोपीय मेम्बर ही भारतवासियों के ट्रस्टी का काम करेंगे, यानी उनके हक़ों की रक्षा करेंगे। भारतवासियों के इन स्वयम्भू ट्रस्टियों ने भारतवासियों के साथ पूरी तरह विश्वासघात किया। उस समय से नेटाल की पार्लियामेण्ट में भारतवासियों के विरुद्ध और भी कानून बनने लगे। पहिले यह प्रतिज्ञा की गई थी, कि भारतवासियों से म्यूनिसिपल वोट देनेका अधिकार नहीं छीना जावेगा, लेकिन दो वर्ष बाद एक ऐसा कानून पास किया गया जिसका अभि-

प्राय यह था कि भारतवासियों से म्यूनिसिपल वोट भी देने का अधिकार छीन लिया जावे। परन्तु इस कानून को इम्पीरियल गवर्मेण्ट ने स्वीकृत नहीं किया इस लिये यह प्रयोग में न आ सका।

शिक्षासम्बन्धी कष्टः—शर्तबँधे कुलियों की शिक्षाका प्रबन्ध तो नेटाल सरकार की ओर से बिल्कुल किया ही नहीं गया था, स्वतंत्र भारतवासियों की भी शिक्षा की ओर उन्होंने बहुत कम ध्यान दिया; यही नहीं बल्कि उसके भी मार्ग मे अनेक बाधायें डाली १८९९ ई. से पहिले यूरोपियन और भारतवासी पाठशालाओं में साथ ही साथ बैठकर पढ़ते थे पर इसी साल शिक्षासचिव सर हेनरी बेल ने यूरोपियनों के स्कूलों से भारतवासियों को निकाल बाहिर किया और भारतवासियों के लिये एक अलग हायर ग्रेड स्कूल कायम कर दिया गया, जहाँ यूरोपियनों के आचार विचार से रहनेवाले और फीस दे सकने वाले भारतसन्तान पढ़ सकते थे। भारतवासियों को यह बहिष्कार नीति भली नहीं मालूम हुई, लेकिन उन्होंने सरकार को कष्ट देना उचित नहीं समझा, और सरकार की ओर से जो दो स्कूल स्थापित हुये थे उन्हीं में वह अपने लड़कों को भेजने लगे और उन्हीं की सहायता करने लगे। इन स्कूलों की 'दिन दूनी रात चौगुनी' उन्नति होने लगी। अब तक भारतवासियों की लड़कियाँ यूरोपियन लड़कियों के ही साथ पढ़ती थीं परन्तु सन् १९०५ ई. में यह नीति बदल दी गई और हिन्दुस्तानी लड़कियाँ भी यूरोपियनों के स्कूलों से बाहर निकाल दी गई। यह भी विचार हो चुका था कि हिन्दुस्तानियों के इन स्कूलों को हिन्दुस्तानियों और काफिरों के लिये ही रख छोड़ा जावे और इनका नाम रंगीन स्कूल Coloured School रक्खा जावे। परन्तु भारतवासियोंने बहुत शोर मचाया तब यह विचार जहाँ का तहाँ रह गया। कुछ ही वर्षों में विद्यार्थियों की संख्या ५५० और पढ़नेवाली

कन्याओं की संख्या ३० हो गई थी। इसी समय एक नये असिस्टेन्ट इन्स्पेक्टर आफ़ स्कूल्स आये और उन्होंने पहिला काम यह किया कि इन स्कूलों में जो छोटे छोटे बच्चे पढ़ते थे उनको निकाल दिया और यह हुक्म फरमाया कि लड़के और लड़कियाँ साथ साथ पढ़ें। कितने ही भारतवासियों ने इसका विरोध किया लेकिन लड़के और लड़कियों का साथ पढ़ना न रुका; इसका परिणाम यह हुआ कि लड़कियों की संख्या घटते घटते कुल ६ रह गई।

सन् १९०८ ई. में हिंदुस्तानी स्कूलों के खर्च में ६७५ पौण्ड की और हिन्दुस्तानी शिक्षकों के तैय्यार करने के खर्च में १५० पौण्ड की कमी कर दी गई। इसका कारण यह बतलाया गया कि सरकार का खर्च बहुत बढ़ गया है, परन्तु इसी वर्ष वहाँ के आदिम निवासी काफ़िरों की शिक्षा के खर्च में १ हजार पौण्ड की और उनकी शिक्षकशाला के खर्च में २५० पौण्ड की बढ़ती की गई। अस्तु, खर्च कम किस तरह से हो? हिन्दुस्तानी स्कूल से १४ वर्ष से अधिक उम्र के लड़कों को निकाल देने का हुक्म हुआ। बहुत सर पटकने पर यह हुक्म ३० वीं अक्टूबर सन् १९०८ ई. को वापिस लिया गया। परन्तु इससे सरकार बहुत ही बेचैन हुई, इसीलिये २३ वीं दिसम्बर को वही नोटिस पुनः जारी हुआ और उसमें साफ़ आगाही कर दी गई कि १९०९ ई. की फर्वरी की पहिली तारीख से १४ वर्ष से अधिक उम्र के लड़के स्कूल में फिर भर्ती नहीं किये जावेंगे। तत्पश्चात् सन १८९४ ई. के ऐज्युकेशन ऐक्ट की दोहाई देकर काफ़िर, हिन्दुस्तानी और संकर जाति के लड़कों को उनके खास स्कूलों को छोड़ कर अन्यत्र जाने की मनाई की गई, हिन्दुस्तानी स्कूलों में बिना फ़ीस पढ़नेवाले विद्यार्थियों का पढ़ना रोक दिया गया। यह हुक्म हुआ कि १४ वर्ष से अधिक उम्र के लड़के किसी भी हिन्दुस्तानी स्कूल

में न पढ़ने पावें, दूसरे दर्जे की पढ़ाई बन्द कर दी गई, प्रायमरी स्कू
में जो कोर्स नियत था उसके अतिरिक्त कोई जातीय या धर्मसम्बन्ध
शिक्षा देने की मनाई कर दी गई और यह भी आज्ञा हुई कि चौथ
दर्जा पास कर चुकनेवाले विद्यार्थी स्कूल छोड़ कर चले जावें
धन्य नेटाल सरकार और उसकी शिक्षा नीति ! !

इनके सिवाय सन् १९०८ ई. में नेटाल सरकार ने दो ऐसे कानून पास किये थे, कि जिनकी सहायता से हिन्दुस्तानी व्यापारियों का दस वर्ष के अन्दर दमन कर दिया जा सकता था, किन्तु विलायती सरकार ने उन्हें स्वीकार नहीं किया।

नेटाल में मजदूरों का भेजना बन्द

जब नेटालवाले गोरों के इन अत्याचारों का वृत्तान्त भारतमें पहुँचा तो यहाँ का लोकमत क्षुब्ध हो गया। भारत सरकार का भी ध्यान इस घोर अत्याचार की ओर आकर्षित हुआ। माननीय गोपाल कृष्ण गोखले ने भारत की व्यवस्थापक सभा में यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि 'नेटाल में भारतीय मजदूरों का भेजना बन्द कर दिया जावे।' श्रीमान् लार्ड हार्डिञ्ज ने कृपा कर इस प्रस्ताव को स्वीकृत कर लिया।। मार्च १९१६ ई. में जब श्रीमान् लार्ड हार्डिञ्ज भारत वर्ष से स्वदेश को वापिस जानेवाले थे तब उन्होंने कहा थाः—

"I have always felt an irreconcilable prejudice against the system of indentured emigration from India to British colonies and as the council is aware one of the earliest acts of my administration and one which gave me profound pleasure was the prohibition of such emigration to Natal."

अर्थात्-"ब्रिटिश उपनिवेशों को भारतवर्ष से शर्तबँधे कुलियों को भेजनेकी प्रथा का मैं सदा से ही विरोधी हूँ और मेरा यह विरोध अशाम्य रहा है। आप जानते हैं कि शासनाधिकार ग्रहण करने के बाद ही सब से पहिले मैंने एक कार्य्य यह किया कि नेटाल को शर्तबँधे मजदूर भेजना बन्द करवा दिया; इस कार्य्य से मुझे बडी भारी प्रसन्नता हुई थी।"

भारतहितैषी श्रीमान् लार्ड हार्डिञ्ज को तो इस कार्य्य के करने से बडी भारी खुशी हुई थी, लेकिन नेटालबाले गोरों को इससे बडा भारी दुःख हुआ। उन्हें शोक इस बात को सोचकर हुआ कि हमारे यहाँ भारतीय मजदूरों का आना बन्द हो जानेसे ईखकी खेती को बडी भारी हानि होगी। स्वार्थपरता इसे कहते हैं! भारतवासियों के साथ बुरा बर्ताव करते समय भी क्या नेटालवाले गोरोंने कभी यह बात सोची थी? पहिली जुलाई सन् १९११ ई. से नेटाल में भारतीय मजदूरों का जाना बन्द कर दिया गया। यद्यपि नेटालवालोंने यूनियन सरकार से कह सुनकर भारत सरकार से प्रार्थना की कि आप कृपा कर अवधिका कुछ समय बढ़ादें। पर भारत सरकार ने साफ़ जवाब दे दिया कि अब समय नहीं बढ़ाया जा सकता। इस मुँह तोड उत्तर से नेटाल की गोरी कम्पनियों को बडी निराश हुई। नये मजदूरों का आना बन्द हो जाने से पुराने मजदूरों की दशा कुछ सुधर गई, उनको अधिक वेतन मिलने लगा और बर्ताव भी उनके साथ पहिले की अपेक्षा कुछ अच्छा होने लगा। इस प्रशंसनीय कार्य्य का यश श्रीमान् लार्ड हार्डिञ्ज और स्वर्गीय महात्मा गोखले को है। किन्तु इन दोनों की अपेक्षा इसका सुफल तो महात्मा कर्मवीर गांधीजी कोही देना होगा, कि जिनके अवश्रान्त परिश्रमके परिणाम में और जिनके समय पर उत्तेजित करनेके कारण इन दोनोंमहाशयों को उक्त कार्य करनेकी सुबुद्धि हुई।

ट्रान्सवाल

अत्याचार करने में यह साउथ अफ्रिकन सरकारों का गुरु है। यहाँ पर भारतवासियों की जितनी दुर्दशा की गई उतनी शायद और कहीं पर न हुई होगी। सन् १८८१ ई. में नेटाल से शर्त-बँधी मजदूरी की अवधि पूरी करके कुछ भारतवासी व्यवसाय करने के लिये यहाँ आये। परन्तु जैसे जैसे उनकी संख्या बढ़ती गई वैसे वैसे गोरों में ईर्षा और द्वेष बढ़ने लगा और गोरों के चेम्बर आफ़ कामर्स ने भारतवासियों के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ किया जिसमें छोटे बड़े सभी गोरे व्यवसायी और ट्रान्सवाल की सरकार भी शामिल हुई। साम्राज्य सरकार ने बहुत कुछ रोका और साम्राज्य सरकार के ट्रान्सवाल में रहने वाले प्रतिनिधि ने बहुत कुछ पैरवी भारतवासियों की ओर से की, लेकिन ट्रान्सवाल वालों ने किसी की एक न सुनी।

सन् १८८४ ई. मे लंदन में जो कनवेंशन हुई थी उसमें यह हुआ था कि नेटिवों को छोड़ कर (नेटिवों का, वहाँ के अधिवास जिन्हें काफिर कहते हैं, उनसे मतलब था।) और सब लोगों के घरबार व्यवसाय और खेती बारी इत्यादि में पूरी स्वतंत्रता होगी परन्तु ट्रान्सवाल की सरकार ने पहिला काम यह किया कि उन्होंने नेटिवों में सारे ऐशियावासियों और हिन्दुस्तानियों को घसीट लिया और उनको बिल्कुल पराधीन बना दिया। यह कायदा बना दिया गया कि भारतवासी ट्रान्सवाल में स्थावर सम्पत्ति के अधिकारी न हो सकेंगे, उन्हें वहीं रहना पड़ेगा जहाँ सरकारी राजकर्मचारी बतलावें, और अपनी दूकान उसी जगह, रखनी होगी, जिसे सरकार निश्चित करे। बस, फिर क्या था, हिंदुस्तानियों की जो दूकानें शहरों में थीं वह सरकारी आज्ञा से वहाँ से उठवाई जाकर ऐसी जगहों में पटकी गई

हाँ लोगों की बसती न थी और जहाँ बिक्री होने की बहुत कम
म्भावना थी। यह इस लिये किया गया कि यूरोपियन दूकानदारों
लाभ हो।

वाल्कस्राद्के यूरोपियन व्यवसाइयों ने सरकार से बारंबार कहा
री करके भारतीय व्यापारियों की दूकानों को जो शहर में थीं, शहर
बाहिर निकलवा दिया। सन् १८९८ ई. में सरकार ने यह घोषणा
: दी कि सन् १८९९ ई. के जनवरी मास की पहिली तारीख के पहिले
। कुली और एशियावासी शहर से अपनी अपनी दूकानें उठा ले
वें और शहर के बाहर जहाँ उनके लिये जगह नियत की गई है
ाँ दूकानें करें और वहीं रहें। हमारे यहाँ के धर्मशास्त्रों में चाण्डालों
निवास स्थानका नगर से बाहर होने का विधान है, बस इसी तरह
न्सवाल सरकार ने भारतवासियों के लिये उपर्युक्त नियम बना दिया।

एक बार बोर सरकार ने हिंदुस्तानियों को व्यवसाय के परवाने
ो से कर्मचारियों को रोक दिया, इस पर हिंदुस्तानियों ने बिना पर-
रा के ही व्यवसाय जारी रक्खा। हिंदुस्तानियों की यह कार्रवाई बृटि-
़ेजेण्ट को भी अच्छी मालूम हुई। बोर गवर्मेण्ट ने हिंदुस्तानियों को
कियाँ दीं कि अगर व्यवसाय बन्द न करोगे तो पकड़े जाओगे।
दुस्तानियों ने नहीं माना, तब वह पकड़े गये, उन पर जुर्माना हुआ
: जुर्माना न देने पर वह जेल में ठेल दिये गये। ब्रिटिश सरकार को
हिये था कि उसी वक्त भारतवासियों की सहायता करने के लिये
ा बढ़ती, लेकिन भारतवासियों के दुर्भाग्य से ऐसा न हुआ।

हमारे पाठकों ने हिन्दुस्तान के एक मुसलमान बादशाह मुहम्मद
लक् का हाल पढ़ा होगा। यह बादशाह कुछ सनकी था और
ने अपनी प्रजा को एक नगर को छोड़ कर दूसरे नगर को बसाने

के लिये आज्ञा दी थी और जब वह लोग उस दूसरे नगर में बस गये तो फिर उन्हें उसे त्याग कर वापिस आने के लिये हुक्म दिया था। बस इसी सनकी मुहम्मद तुगलक की आत्मा ने ट्रान्सवाल सरकार की काया में प्रवेश कर लिया था। ट्रान्सवाल सरकार कह देती थी कि अमुक जगह भारतवासी जाकर रहें। भारतवासी वहाँ जाकर रहते थे, दूकान खोलते थे, मकान बनाते थे। थोड़े दिनों बाद सरकार आज्ञा देती थी कि यहाँ से बस्ती हटा ले जाओ और दूसरी जगह जाकर बसो। इस सनक और निर्दयता की भी कोई सीमा है!

विवाहसम्बन्धी क़ानूनः—ट्रान्सवाल में (अकेले ट्रान्सवाल में नहीं, बल्कि सारे दक्षिण अफ्रिका में,) हिन्दूमुसलमानों के विव विवाह नहीं समझे जाते थे। और वहाँ वही विवाह कायदे माना जाते थे जो ईसाइयों की तरह सिविल कंट्राक्ट हों अं जिनकी रजिस्ट्री सरकार में हो जावे। गोरे कालों का विवाह ठीक नहीं समझा जाता। भारतवासियों के प्रसिद्ध शुभचिन्तक मि पोलक एक बार अपना विवाह रजिस्टर कराने गये तो रजिस्ट्रार उनसे कहा कि 'आपका विवाह यूरोपियन लड़की के साथ नहीं ह सकता!' मिस्टर पोलक हिंदुस्तानियों के साथ रहते हैं और उन्हीं वे पक्ष में आन्दोलन करते हैं इस लिये वहाँ के कुछ लोग उन्हें हिन्दु स्तानी ही समझ लेते हैं। ख़ैर, पीछे से रजिस्ट्रार को विश्वास हुआ कि मिस्टर पोलक यूरोपियन हैं।

बोर युद्ध में भारतवासी

यद्यपि अंग्रेजी उपनिवेश नेटाल और केपकालोनी में बोर युद्ध के पहिले प्रवासी भारतीयों के साथ अच्छा बर्ताव नहीं होता था, तथापि युद्धारम्भ होते ही इन उपनिवेशों के भारतवासी अंग्रेजों के पक्ष में जान देने के लिये तैयार हो गये, लेकिन दुर्भाग्यवशात् उन्हें यह अवसर नहीं दिया गया। तब इन उपनिवेशों के भारतवासियों ने घायल सिपाहियों की सेवा करनेका विचार किया। पहिले तो अँग्रेजों ने यह सहायता लेना भी स्वीकार नहीं किया लेकिन बार बार प्रार्थना करने पर यह बात स्वीकृत हुई। प्रार्थना स्वीकृत होते ही भारतवासियों के दल बन गये। इनके नेता महात्मा गान्धी बनाये गये। यह वीर रणक्षेत्र में तोपों की गड़गड़ाहट, बन्दूकों की सनसनाहट, और तलवारों की चमचमाहट के बीच में जाकर आहत सैनिकों को उठा लाते और उनकी सेवा शुश्रूषा करते थे। भारतवासियों ने इस युद्ध में अँग्रेज सरकार की जो सेवा की थी उसकी प्रशंसा प्रधान सेनापति लार्ड राबर्ट्स से लेकर अनेक राजनीतिज्ञों तक ने की थी।

जब ट्रान्सवाल ब्रिटिश साम्राज्य में आ गया तो भारतवासियों के हर्ष की सीमा न रही और उन्हें यह पूरा विश्वास हो गया कि अब हमारे दुःखों का अन्त हो जायगा। पर खेद के साथ लिखना पड़ता है कि भारतवासियों की यह आशा निराशा में परिणत हो गई। ब्रिटिश राजत्वकाल में भारतवासियों के दुःख बजाय घटने के और बढ़ गये तथा उनके हकोंपर और भी ज्यादा आक्रमण होने लगे।

भारतीय निवासस्थान का हरण:—सन् १९०३ ई. के आरम्भ में जोहांसवर्ग की चुंगी से इस अभिप्राय का विज्ञापन निकला कि जहाँ पर भारतवासी बसे हैं वह स्थान ले लिया जावेगा, क्योंकि उस स्थान

पर बाजार बसाया जावेगा। इस समाचार के सुनते ही भारतीय जनता में घोर कोलाहल मच गया, सब लोग हाय हाय करने लगे। भारतवासियों ने बहुत कुछ सर पटका और कहा कि जिस भूमि को बोर सरकार ने ९९ वर्षका पट्टा लिखकर दिया था उसे इस अवधिके बीचमें ही क्यों छीना जाता है ? लेकिन कौन सुनता है ! भारतवासियोंने हजारों रुपये खर्च करके अदालती लड़ाई लड़ी, साधारण पुरुषों से लेकर उच्च पदाधिकारियों तक अपने दुःख की आवाज पहुँचाई, यहाँतक कि विलायत की पार्लियामेण्ट को भी अपने कष्टों का सन्देशा भेजा लेकिन कुछ भी नतीजा नहीं हुआ ! भारतवासियों के रहने की जगह अँग्रेजी बस्ती में मिला ली गई और उन्हें भूमि के मूल्य का चतुर्थांश देकर सन्तोष करने की आज्ञा दी गई।

जोहांसबर्ग में प्लेगः—सन् १९०४ ई. के आरम्भ में महामारी का प्रकोप हुआ। इस बीमारी से तड़प तड़प कर कितनेही आदमी मरने लगे। थोड़े ही काल में ५७ भारतवासी इस रोग से छटपटाके मर गये। इस अनर्थ को रोकने के लिये लोकमान्य गान्धी जी ने एक अस्पताल खोल दिया और रोगपीड़ित भारतवासियों को विनामूल्य औषधि देने का प्रबन्ध किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने कितने ही स्वयंसेवक इकट्ठे किये और तरह तरह से रोगियों की सेवा करने लगे। जब प्लेग का समाचार सरकार को ज्ञात हुआ तो सरकार ने तत्काल ही भारतवासियों की बस्ती पर चौकी पहरे का पक्का प्रबन्ध कर दिया जिससे कि इस बस्ती से कोई बाहिर न जाने पावे। सरकार के इस काम से भारतवासियों का प्रायः सब व्यापार बन्द हो गया। इस अवसर पर गान्धीजी ने सरकार से प्रेरणा कर भारतवासियोंको खाने पीने की रसद दिलाई। थोड़े दिन के बाद भारतवासियों को वहाँ से क्लीपस्पूट नामक स्थान में भेजा गया। वहाँ पर

उन्हें एक महीने कोरनटायन में रहना पड़ा । इस स्थान पर कोई भी भारतवासी रोगपीड़ित नहीं हुआ, इसलिये भारत वासियों को यहाँ से छुटकारा मिला। इस बन्धन से मुक्त होने पर बहुतसे ट्रान्सवाल में रह गये और कितने ही नेटाल और भारतवर्ष को चले गये । भारतवासियों को निकालकर उनकी बस्ती फूँक दी गई, जिससे प्लेग न फैले।

अन्यायपूर्ण एशियाटिक कानून:—ट्रान्सवाल के युद्ध के समय में जो भारतवासी वहाँ से भाग गये थे, युद्ध समाप्त होने पर उन्हें वापिस आने की आज्ञा दे दी गई, लेकिन साथही साथ यह हुक्म भी जारी हुआ कि सब भारतवासियों को अपना नाम कमिशनरों के दफ्तर में रजिस्टर करा लेना चाहिये। इसके साथ यह कायदा भी किया गया था कि ज्यों ही शासन का काम सुचारु रूप से चलने लगे त्यों ही भारतवासियों की शिकायतें सुनी जावेंगी और उनके दुःख दूर करने की चेष्टा की जावेगी। सन् १९०१ ई. में सरकारी गज़ट में यह नोटिस निकला कि एशियाटिक इमीग्रेशन आफिस स्थापित हो गया है वहाँ जाकर भारतवासी पुनः अपने नाम गाँव लिखा कर अपने पास बदलवा लें। सन् १९०२ ई. में 'शान्तिरक्षा' नामक कानून पास हुआ, जिसके अनुसार बिना परवाने के कोई भारतवासी ट्रान्सवाल में नहीं रह सकता था। इसी वर्ष यूरोपियनों ने बड़ा कोलाहल मचाया कि बेशुमार भारतवासी, जो युद्ध से पहले इस देश में नहीं थे, ट्रान्सवाल में घुसे आ रहे हैं, इस लिये सरकार को कानून बनाकर इसका प्रतीकार करना चाहिये। परन्तु जब सरकारी जाँच हुई तो सिद्ध हुआ कि यूरोपियनों का कथन बिलकुल व्यर्थ है । इस घटना के कुछ दिनों पहिले ट्रान्सवाल की ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन ने गवर्मेण्ट पर यह प्रगट कर दिया था कि सरकारी कर्मचारियों में आजकल बड़ी [illegible] फैल रही है। इन कर्मचारियों को सरकार

ने दिखमित भी कर दिया था। तत्कालीन हाई कमिश्नर लार्ड मिलनर लोगों के नेताओं से मिले और कहा कि 'यदि सब भारतवासी अपनी इच्छा से अपने नाम रजिस्टर करा लेवेंगे तो उनको चाहे जहाँ जाने और आने का अधिकार हो जावेगा।' भारत वासियों ने इस पर स्वेच्छापूर्वक नाम रजिस्टर कराना स्वीकार कर लिया। रजिस्टर कराने के जो पास मिले उन पर नाम, परिवार, जाति, बापका नाम, कृद, पेशा और उम्र यह बातें लिखी हुई थीं और इनके सिवाय उन लोगों के दाहिने अँगूठे का निशान भी था।

कुछ महीने बाद लार्ड सैलबोर्न ने ने हाईकमिश्नर होनेपर देखा कि भारतवासियों के नाम १३ हजार पास बाँटे गये थे। यूरोपियन व्यापारियों और सरकारी कर्मचारियों ने फिर शोर मचाया और लार्ड सैलबोर्न ने तंग आकर फिर सब ऐसियावासियों को रजिस्टर कराने के लिये एक मसविदा पेश करने की मंजूरी दे दी, जिसका फल यह हुआ कि भारतवासियोंकी इज्जत एक जंगली बदमाश और पशुतुल्य जाति के बराबर हो गई। इस कायदे का उद्देश यह था कि प्रत्येक भारतवासी को अपना नाम रजिस्टर्ड कराना पड़ेगा और सायही साथ दशों अंगुलीकी अलग अलग तथा चार चार अंगुली की फिर एक साथ यानी सब मिलाकर १८ छाप देनी होंगी! इस कायदे में भारतवासियों के लिये कुली शब्द का प्रयोग खुल्लमखुल्ला किया गया था। इस कायदे में यह भी लिखा हुआ है कि प्रत्येक भारतवासी को 'एशियाटिक रजिस्ट्रेशन सार्टीफिकेट' नामक परवाना हमेशा अपने पास रखना होगा और सिपाहीके पूंछने पर तत्काल उसे दिखलाना पड़ेगा।

भारतवासियों ने बहुत सी सभायें कीं और ट्रान्सवाल सरकार से प्रार्थना की, परन्तु ट्रान्सवाल सरकार हिन्दुस्तानियों की बात क्यों सुनती। उसने कानून पास कर दिया। अभी यह कानून सम्राट की मंजूरी के लिये विलायत भेजा जाने वाला था। भारतवासियों ने सोचा कि

विलायत को एक डेपूटेशन भेजना चाहिये और वहाँ इस बात का आन्दोलन कराना चाहिये, जिससे इस कानून को सम्राट् की मंजूरी न मिले। कर्मवीर गाँधी और मिस्टर अली इस कार्य के लिये चुने गये। इन्हों ने जब इङ्गलैण्ड में जाकर शोर मचाया तब लार्ड एलगिन ने अभिवचन दिया कि ट्रान्सवाल में अब शीघ्रही पार्लियामेण्ट बैठनेवाली है, उसमें यह कानून विचार के लिये पेश किया जावेगा और तब तक इसका प्रयोग न होगा।

सन् १९०७ ई. के मार्च में ट्रान्सवाल में पार्लियामेण्ट बैठी, उसने हिन्दुस्थानियों की आशाओं पर फिर पानी फेर दिया, वही कानून पार्लियामेण्ट ने पास कर दिया! अब इस पर सम्राट् की सम्मति लेने के लिये लार्ड सैलबोर्न विलायत गये और उनके साथ जनरल बोथा भी गये। इस समय इङ्गलैण्ड में साम्राज्यभक्ति का समुद्र उमड़ रहा था। इसी साम्राज्यभक्ति की उमंगों के कारण लार्ड एलगिन सैलबोर्न और बोथा के जाल में फँस गये। साम्राज्य सभा में बिचारे भारतवासियों का किसी को नाम भी याद नहीं आया! लार्ड एलगिन ने कहा कि इस कानून को सम्राट् की सम्मति अवश्य मिलनी चाहिये। निदान सम्राट् की सम्मति मिल गई और सन् १९०७ ई. का दूसरा कानून अब पक्का बन गया और उसकी चक्की में भारतवासी पीसे जाने लगे।

सन् १९०८ ई. में Golden law 'सोने का कानून' बनाया गया, जिससे भारतवासी सोने के व्यापार करनेके अयोग्य ठहराये गये और प्रवासी भारतीय सुनारों का सारा काम चट हो गया।

भारतवासियों की शिक्षा के लिये ट्रान्सवाल सरकार ने कभी एक कौड़ी खर्च नहीं की। पाठकों को पता लग गया होगा कि हिन्दुस्तानियों को अत्यन्त नीच स्थिति में गिराने के लिये कैसे कैसे प्रयत्न किये गये। इन प्रयत्नों का परिणाम यह हुआ कि ट्रान्सवाल में भारतवासियों की संख्या १५ हज़ार से घटकर लगभग ६ हज़ार रह गई।

आरेञ्ज फ्री स्टेट

यहाँ सब मामला साफ़ साफ़ है। यहाँ की सरकार पहिले से ही सावधान है और उसने हिन्दुस्तानियों को ३० वर्ष पहिले ही घता बता दी है। सन् १८९३ ई. में 'आरेञ्ज फ्री स्टेट' में रहनेवाले भारतवासी वहाँ के ईर्षालु प्रतिद्वन्दी यूरोपीय व्यवसाइयों के कहने पर और दबाव डालने पर निर्दयतापूर्वक निकाल दिये गये थे, इससे बिचारे दुकानदारों को ९ हजार पौण्ड यानी एक लाख पैंतीस हज़ा रुपये की हानि हुई थी।

यूरोपियन लोगों ने शिकायतें की कि "यहाँ भारतवासी बिन कुटुम्ब के आते हैं और उनका धर्म उन्हें स्त्रियों को प्राणहीन औ ईसाइयों को अपना स्वाभाविक शत्रु बतलाता है। वह अपने सा कितनी ही बुरी बुरी बीमारियाँ लाते हैं, अतएव यहाँ ऐसे आदमियों का रहना अनावश्यक है। उन्हें यहाँ से निकाल कर अपना पिण्ड छुड़ाना चाहिये।" इसका फल यह हुआ कि एक क़ायदा बना दिया गया, जिसके अनुसार कोई भारतवासी वहाँ दो महीने से ज्यादा नहीं रह सकता। हाँ अगर गवर्नर आज्ञा दें तो अधिक दिनों तक रह सकता है, लेकिन गवर्नर साहब आज्ञा क्यों देने लगे! वहाँ कोई भारतवासी व्यापार नहीं कर सकता, मकान नहीं बना सकता और ज़मींदारी नहीं कर सकता। इसके अतिरिक्त उसे जज़िया टैक्स देना पड़ता है। कानून की पर्वाह न करके यदि कोई व्यापार करे तो उसे २५ पौण्ड जुर्माने या तीन मास के कठिन कारावास का दण्ड मिलता है।

इन अन्यायपूर्ण क़ायदों का परिणाम यह हुआ कि अब इस उपनिवेश में भारतवासियों की संख्या सौ डेढ़सौ से अधिक नहीं है।

यह लोग रसोईदार, बेरेर या कुली का काम करते हैं। एक बार इस उपनिवेश में एक विचित्र मामला हुआ था। एक हिन्दू युवती इस उपनिवेश में जाना चाहती थी। वहाँ की चेम्बर आफ़ कामर्स ने इसका विरोध किया; किन्तु जाँच करने पर गवर्नमेण्ट को मालूम हुआ कि वह स्त्री कानूनन 'आरेञ्ज फ्री स्टेट' में घुसने से नहीं रोकी जा सकती; क्यों कि वह वहीं पैदा हुई थी और पाली पोषी भी वहीं गई थी। अपने विवाह के कारण उसे नेटाल जाना पड़ा था और अब वह वापिस आना चाहती थी। इस पर चेम्बर आफ़ कामर्स के एक मेम्बर मिस्टर ए. जी. बार्लो (Mr. A. G. Barlow) ने, जो पार्लिमेण्ट के भी सभासद हैं, एक विचित्र युक्ति बतलाई थी। आपने कहा था:—

"This woman might have several daughters and thus form the nucleus of an Indian settlement in the colony."

अर्थात्–" यदि यह औरत यहाँ प्रवेश करने पावेगी तो फिर सम्भव है कि उसके बहुत सी कन्यायें उत्पन्न हों तथा फिर उन कन्याओं के भी सन्तति उत्पन्न हो और इस प्रकार भारतवासियों की यहां एक बस्ती बन जावे"!!! कल्पनाशक्ति हो तो ऐसी ही हो!

बोर युद्ध के अन्त में यह वायदा किया गया था कि निकाले हुये भारतीय व्यवसायी फिर आकर बस सकेंगे, पर वायदा पूरा करना 'आरेञ्ज फ्री स्टेट' का धर्म नहीं है।

इस प्रकार दक्षिण आफ्रिका में 'आरेञ्ज फ्री स्टेट' ही एक ऐसा उपनिवेश है, जहाँ के गोरे निवासियों को प्रवासी भारतवासियों का डर नहीं। उन्होंने यह सोचकर कि 'न रहेगा बाँस और न बजेगी बाँसरी' इसकी जड पहिले ही से काट दी थी।

दक्षिण रोडेसिया

यहाँ भारतवासियों की संख्या लगभग ८०० है। इन्हीं के विरुद्ध यहाँ के गोरे निवासियों ने ट्रान्सवाल शाही कानून बनाया था, जिसका अभिप्राय भारतवासियों की रजिस्टरी कराने और उन्हें निकाल बाहिर करने का था। यहां के भारतीय निवासियों ने ट्रान्सवाल और नेटाल के भारतीयों की सहायता से इस कानून का विरोध करने के लिये एक प्रार्थनापत्र साम्राज्यसरकार की सेवा में भेजा। लार्ड क्रू ने कृपा करके इस कानून को नामंजूर कर दिया।

इसके बाद यहाँ के गोरे लोगोंने फेरी और परवाने इत्यादि के कड़े कड़े कानून भारतवासियों के लिये बना दिये।

केप कालोनी

केप कालोनी इस बातका अभिमान करती है—और उसका यह अभिमान कुछ अंशों में ठीक भी है—कि वह भारतवासियों के साथ अन्य उपनिवेशों की अपेक्षा उत्तमतर व्यवहार करती है। इस कालोनी में रहनेवाले भारतवासियों को, यदि वह और सब बातों में योग्य हों तो, राजनैतिक और म्यूनिसिपल सम्बन्धी विषयों में सम्मति (वोट देने का अधिकार है। डाक्टर ए. अब्दुलरहमान, जो एक हिन्दुस्ता[illegible] हैं, केपटाउन की टाउन कौन्सिलमें एक प्रभावशाली और सम्मा[illegible] पुरुष समझे जाते हैं।

लेकिन इससे यह न समझना चाहिये कि यहाँ के निवासि[illegible] पर अत्याचार नहीं किये गये। अवश्य ही इस कालोनि[illegible] भारतवासियों को बड़े बड़े कष्ट उठाने पड़े हैं। उदाहरणार्थ [illegible] ला' और 'डीलर्स लाइसेन्स एक्ट' इन दोनों कानूनों [illegible] को बड़ी बड़ी हानियाँ उठानी पड़ी हैं। इनमें पहिले

कानून तो को नेटाल के कानून का बड़ा भाई कहना चाहिये; क्यों कि इसमें खींचतान की बहुत जगह है। यदि कोई भारतवासी कुछ दिनों के लिये भारतवर्ष को जाना चाहे और लौटने का पास भी ले ले (जिसके लिये एक पौण्ड देना पड़ता है) तो भी लौट आने पर उसे उपनिवेश में आने नहीं देते।

फेरी का कानून भी वैसा ही अन्यायपूर्ण है, जैसा कि नेटालमें है। इन सब बातों से पाठकों को ज्ञात हो गया होगा कि दक्षिण अफ्रिका में भारतवासियों पर कैसे कैसे अत्याचार किये गये थे। अब भारतवासियों के पास इन अत्याचारों को रोकने के लिये केवल एक ही उपाय बाकी था; वह था 'Passive Resistance' यानी 'सत्याग्रह'। महात्मा गान्धी के नेतृत्वद्वारा 'सत्याग्रह' के संग्राम में भारतवासियों को विजय किस प्रकार प्राप्त हुई, और उनके ऊपर होनेवाले अत्याचार किस प्रकार कम हुये, इसका वर्णन अगले प्रकरण में किया जावेगा।

सत्याग्रह का संग्राम

(१८०६—१८१४)

And so your activity in the Transvaal, as it seems to us, at the end of the world, is the most essential work, the most important of all work now being done in the world, and in which not only the nations of the christian, but of all the world, will unavoidably take part. Tolstoy—

रशियन ऋषि टाल्सटायने महात्मा गाँधी को एक पत्र में 'सत्याग्रह' के विषय में यह लिखा था "इस लिये ट्रान्सवाल में आप का आन्दोलन, जैसा कि हम दुनियाँ के इस छोर पर रहनेवालों को प्रतीत होता है, अत्यन्त आवश्यक कार्य है; जगत भर के कार्यों में सब से अधिक

महत्त्वपूर्ण है। इस कार्य्य में केवल ईसाई जातियाँ ही नहीं, बल्कि संसार की सारी जातियाँ अवश्यमेव सम्मिलित होंगी।"

वास्तव में ऋषि टाल्सटाय का कथन बिल्कुल ठीक है। सत्याग्रह-संग्राम के परिणाम ने उसकी उपयोगयता को पूर्णतया सिद्ध कर दिया है। इस क्षुद्र पुस्तक में इसका पूर्ण वृत्तान्त लिखना तो असम्भव है, अतएव इसका संक्षिप्त विवरण हीं यहाँ दिया जाता है।*

हम लिख चुके हैं कि भारतवासियों के बहुत कुछ आन्दोलन करने पर भी साम्राज्य सरकार ने १९०७ ई. के दूसरे कानून को स्वीकृति दे दी थी। एस बात से प्रवासी भारतवासियों का यह विश्वास हो गया कि ब्रिटिश सरकार को भारतवासियों के अधिकारों का बहुत कम खयाल है। बस तभी से इन लोगों ने समझ लिया कि हम बहुत कुछ प्रार्थना कर चुके, अब तो हमे अपने पैरोंपर खड़े होकर अपने ह[illegible] अत्मिक बल के भरोसे इस अपमानकारी कानून का विरोध करना पड़ेगा [illegible] इन लोगों ने दृढ़ निश्चय कर लिया कि हम इस कायदे को कदा[illegible] न मानेंगे, चाहे हमें जेल भले ही जाना पड़े; इस कायदे को मानक[illegible] हम मातृभूमि भारत का नाम कभी भी न कलङ्कित करेंगे। दरबन [illegible] सभा में यह साफ़ साफ़ कहा गया था कि "जो इस प्रतिज्ञापर अ[illegible] न रहेंगे वह करोड़ों भारतवासियों की नाक काटनेवाले और 'जन[illegible] जन्मभूमि' के नाम पर धब्बा लगानेवाले समझे जावेंगे। यदि अन्य[illegible] से जेल दी जावे तो जेल को महल समझना होगा और अपनी इज्[illegible] आबरू के लिये जानको कुर्बान करना होगा।"

सन् १८०७ ई. के जुलाई महीने से नवीन कायदे का प्रयोग [illegible] लगा। सरकार ने चारों ओर रजिस्ट्रेशन दफ्तर खोल रक्खे थे। रजि[illegible]

* जो सज्जन इस संग्राम का पूरा पूरा हाल जानना चाहें वह श्रीयु[illegible] भवानीदयालजी सत्याग्रही कृत 'सत्याग्रह का इतिहास' और 'इण्डियन [illegible] नियन' का स्वर्णाङ्क पढ़ें।

करनेवाले सरकारी अफ़सर ट्रान्सवाल के शहर शहर में घूमने लगे, लेकिन उनका सारा प्रयत्न निष्फल गया और रजिस्ट्री कराने की जो अवधि थी वह समाप्त हो गई। यह अवधि बढ़ा दी गई लेकिन फिर भी ९५ फ़ीसदी भारतवासियों ने अपने नाम रजिस्टर नहीं कराये।

इस एक्ट को सम्राट्की सम्मति मिलने के पहिले भी भारतवासियों ने स्वेच्छापूर्वक इस शर्त पर रजिस्टर कराना स्वीकार कर लिया था कि यह कानून न बने, परन्तु सरकार ने उनकी बात नहीं सुनी थी। अब की बार सितम्बर सन् १९०७ ई. में भारतवासियों ने ट्रान्सवाल सरकार के ३ ३ हज़ार आदमियों के हस्ताक्षर कराके एक प्रार्थनापत्र भेजा। प्रार्थनापत्र में लिखा था कि हम लोग स्वेच्छापूर्वक अपना नाम ग्राम [illegible]सटर कराने के लिये तैयार हैं, यदि आप इस बातका वायदा करें [illegible] वह कानून अमल में नहीं लाया जावेगा और रद्द कर दिया [illegible]वेगा। इस बार भी सरकार ने कोरा जबाव दे दिया। इस बीच में [illegible]मिग्रेण्ट्स रेस्ट्रिक्शन एक्ट' नाम का कानून पास हुआ। 'एशिया-[illegible]क ला ऐमेण्डमेण्ड ऐक्ट' और इस नये कायदे का साथ ही प्रयोग [illegible]रने का यह परिणाम हुआ कि उच्च शिक्षा प्राप्त भारतवासी शिक्षा-[illegible]म्बन्धी परीक्षा पास कर लेने पर भी ट्रान्सवाल में नहीं घुस सकते [illegible]। सन् १९०७ ई. की २६ वीं दिसम्बर को इस कानून को भी [illegible]म्राट् की सम्मति मिल गई। इसके बाद ही भारतवासियों और [illegible]ीनियों के कुछ नेताओं को इस बात की सूचना दी गई कि क्यूँ कि [illegible]म लोगोंने कानून के अनुसार अपने नाम रजिस्टर नहीं कराये हैं [illegible]स लिये क्यों न तुम ट्रान्सवाल से बाहिर न निकाल दिये जाओ? [illegible]न लोगों को आज्ञा दी गई कि तुम इतनी अवधि के बीच में ट्रान्स-[illegible]ाल छोड़कर चले जाओ। इन लोगों ने ऐसा नहीं किया इस लिये [illegible]न्हें दो दो महीने की जेल हो गई।

इस के कुछ दिनों बाद, रजिस्ट्रेशन का पास दिखाये बिना किसी को फेरी करने या दुकान करने का परवाना देना बन्द कर दिया गया। बिना परवाने के लोग फेरी करने लगे, यह पकड़े गये; कैदियों की संख्या बढ़ती गई, यहाँ तक कि जोहान्सबर्गका जेल कैदियों से ठसाठस भर गया। प्रत्येक जाति के सैंकड़ों भारतीय जेल में गये।

सन्धिकी चेष्टा

जब सरकार ने देखा कि भारतवासी जेल से नहीं डरते तो जनरल स्मट्स ने मीठी मीठी मेल की बातें शुरू कीं। 'ट्रान्सवाल लीडर' नामक पत्र के सम्पादक मि. एलबर्ट कार्टराइट मध्यस्थ बने। इस शर्त पर मेल हुआ कि भारतवासी प्रसन्नतापूर्वक रजिस्टर में अपना नाम दर्ज करावें और ट्रान्सवाल सरकार इस कायदे को रद्द कर डाले।

स्वेच्छापूर्वक रजिस्ट्रेशन

भारतवासी यह समझ कर। कि जब स्वेच्छापूर्वक रजिस्ट्रेशन कराने का कार्य्य ठीक तरह से संपादन हो जावेगा तब यह कानून रद्द कर दिया जावेगा,' अपने नाम रजिस्टर कराने लगे। जब जबरदस्ती रजिस्टर कराया जाता था तब भारतवासियों के उँगलियों के निशान भी लिये जाते थे और सभी बातें ऐसी होती थीं कि मानों भारतवासी अपराधी या राजविद्रोही हैं, परन्तु स्वेच्छापूर्वक रजिस्ट्रेशन की पद्धति बिल्कुल दूसरी थी। पहिली बात तो यह थी कि यदि कोई अपना नाम रजिस्टर कराना न चाहता तो भी उसका काम चल सकता था। सारी बातें भारतवासियों के ईमान पर थीं। बड़े बड़े व्यापारियों और

शिक्षित लोगों के केवल हस्ताक्षर ही लिये जाते थे, परन्तु जो लोग पढ़े लिखे नहीं थे, उनकी उँगलियों के निशान लिये जाते थे। यदि कोई धार्मिक कारण से या किसी दूसरी वजह से उँगलियोंके निशान नहीं देना चाहता था, तो उस पर जबर्दस्ती नहीं की जाती थी, उससे केवल अंगूठेका ही निशान लिया जाता था। भारतवासियों को विश्वास हो गया कि जिस कानून के लिये हमने जेल के कष्ट सहे हैं वह बदल जावेगा, इस लिये उन्होंने अपने खुशीसे अपने नाम रजिस्टर कराके ट्रान्सवाल सरकार की राजभक्तिपूर्वक सहायता की।

विश्वास घात

जनरल स्मट्स ने अन्त में विश्वासघात किया। जब भारतवासियों और चीनियों को इस बात का पता लगा तो उन्होंने स्मट्स साहब की इस बात का घोर विरोध किया। पहिले तो स्मट्स साहब इस बात की टालमटूल करते रहे, परन्तु अन्त में उन्होंने गांधी जीको इस बुलाकर कानून बदलने के विषय में अपना मसौदा उन्हें दिखलाया। इस मसौदे में भारतवासियों में से कई प्रकार के लोगों को यहाँ तक कि शिक्षा सम्बन्धी परीक्षा में उत्तीर्ण होने वाले लोगों को भी ट्रान्सवाल में बसने के अनधिकारी निश्चित किया था। महात्मा गान्धी जीने समझ लिया कि यह बात तो 'जले पर नमक' डालने के समान है। वह वहाँ से उठ आये और 'सत्याग्रह' की फिर शरण ली। सरकारी कर्मचारियों ने व्यवसाय के परवाने देना बन्द कर दिया। सैंकड़ों भारतीय जेल में जाने लगे।

नेटाल की सहायता

इसी समय नेटाल इण्डियन कांग्रेस के सभापति मि. दाऊद मु
म्मद, उपसभापति मि.रुस्तमजी जीवनजी और मि. ऐंग्लिया इत्या
अनेक नेटालप्रवासी भारतवासी ट्रान्सवालवाले भाइयोंकी सहायता करने
लिये नेटाल की सीमा पार करके ट्रान्सवाल में आये । वह पकड़े
और आज्ञा हुई कि वह आठ दिन के अन्दर ट्रान्सवाल छोड़कर
जावें नहीं तो कैद किये जावेंगे ।

यह लोग तथा इनके ११ साथी ट्रान्सवाल से निकाल दिये
लेकिन थोड़े दिनों बाद यह फिर ट्रान्सवाल में घुस आये। इन सब
पकड़कर ट्रान्सवाल की सरकार ने तीन तीन मास के कठिन कारा
का दण्ड दिया ।

भारतवासियों ने सुप्रीमकोर्ट से प्रार्थना की कि हम लोगों ने अ
खुशी से रजिस्ट्रेशन के जो फार्म भर दिये हैं वह लौटा दिये
पर यह प्रार्थना अस्वीकृत हुई । इस पर जोहान्सबर्ग में २
भारतवासियों की एक सभा हुई । इस सभामें सैकड़ों आदमि
अपने 'पास' जो उन्हें रजिस्ट्रेशन के समय मिले थे, जला
और सरकार को इस बात का चैलेञ्ज दे दिया कि अगर वह
करना चाहे तो कर ले, हम सब जेल जाने को तैयार हैं। यह
देखकर सरकार चमक गई । मुख्य मुख्य राजकर्मचारियों
बैठक प्रिटोरिया में हुई । इस में हिन्दुस्तानियों और चीनियों
प्रतिनिधि बुलाये गये, और मि. एलबर्ट कार्टराइट मध्यस्थ
लेकिन इस कान्फ्रेंस से कुछ लाभ नहीं हुआ। क्योंकि सरकार १
का दूसरा ऐक्ट रद करने के लिये तैयार न थी और न व
ग्रेशन के क़ायदे में से जातिभेद दूर करना चाहती थी,

थोड़ा सा सुधार करने के लिये उद्यत थी, पर भारतवासी इस निरर्थक सुधार से बिल्कुल असन्तुष्ट थे । इस के कुछ दिनों बाद ही पार्लीमेण्ट में एक सुधार का कायदा पास हुआ, यद्यपि इस में कई छोटी छोटी बातें भारतवासियों के लिये लाभदायक थीं, तथापि असल में यह कायदा बिल्कुल असन्तोषजनक था; क्योंकि दोनों ऐक्ट जिन्हें भारतवासी दूर कराना चाहते थे ज्यों के त्यों बने हुये थे, इसीलिये भारतवासियों ने इन छोटे छोटे सुधारों को स्वीकृत नहीं किया और 'सत्याग्रह' की लड़ाई ज़ोर शोर के साथ जारी रक्खी।

देश निकाले

इस नवीन कायदे से ट्रान्सवाल सरकार को एक अधिकार और मिल गया वह यह कि अब सरकार सत्याग्राहियों को दक्षिण अफ्रिका से बाहिर निकाल सकती थी। बस अब भारतवासियों पर दुःख का पहाड़ गिर पड़ा, गिरफ्तारी और देश निकालों की भरमार हो गई। १९०८ ई. के जनवरी से १९०९ ई. के जून, जुलाई तक १८ महीनों में २५०० भारतवासियों को जेल के दण्ड भुगतने पड़े थे। किसी को तीन महीने की जेल हुई तो किसी को ६ महीने की। इनमें १६ वर्ष के बालक भी थे और ६० वर्ष के बुढ्ढे भी।

सरकारी दाव पेच—भारतवासियों का ज़ोर घटाने के लिये ट्रान्सवाल सरकार ने नेटाल सरकार से कहसुन कर यह कायदा जारी किया कि जो भारतवासी हिन्दुस्तान से लौटकर ट्रान्सवाल जाते हुये नेटाल में उतरना चाहेगा उसे नये कानून के मुताबिक रजिस्टर कराने के लिये राजी होना होगा अन्यथा वह नेटाल की भूमि पर पैर नहीं रख सकता। भारतवासियों पर और भी अधिक अत्याचार

करने के लिये ट्रान्सवाल सरकारने मुज़ंबिककी पुर्तगाल सरकारसे यह मंजूर कराया कि जो भारतवासी ट्रान्सवाल से निकाल दिये जावें वह मुज़ंबिक के लारेंजो बन्दरगाह से भारतवर्ष को भेज दिये जावेंगे। इस तरह से कितने ही भारतवासियों को मुज़ंबिकवालों ने ट्रान्सवाल सरकार के कहने से देशत्याग कराया। खेद की बात है कि साम्राज्य सरकार भारतवासियों की रक्षा का कोई भी प्रबन्ध इस विषय में न कर सकी। और तो और खुद साम्राज्य सरकार ने इस बात को इस शर्त पर स्वीकार कर लिया कि केवल वह ही भारतवासी निकाले जावें जो अधिवासी होने के हकदार नहीं हैं। बस साम्राज्य सरकार की अनुमतिका मिलना था कि ट्रान्सवाल सरकार भारतियों को धड़ाधड़ देश निकाले देने लगी। किसी की घी ट्रान्सवाल में रोती हुई छूटी तो किसी के बालबच्चे भूखों मरते हुये छूटे। मि. पोलक जिस जहाज़ में बैठकर भारतवर्ष को आये थे, उस में उन्होंने ऐसे ६ भारतीय देखे थे जिन को देश निकाले का दण्ड मिला था परन्तु जो कि ट्रान्सवाल के हकदार अधिवासी थे। इस प्रकार ट्रान्सवाल सरकार साम्राज्य सरकार की आखों में धूल झोंकती रही। अकेले लारेंजो बन्दरगाह से ही एक हजार से अधिक भारतीय निर्वासित हुये थे।

जेल के कष्ट:—जंगली काफ़िरों के साथ जैसा व्यवहार होता वैसा ही भारतवासियों के साथ किया जाता था। राजकैदी किसे कहते हैं और उनके साथ कैसा सलूक करना उचित है, यह ट्रान्सवाल सरकार जानती ही नहीं थी। जंगली काफ़िर और भारतवासी एक ही साथ रक्खे जाते थे। सवेरे पाख़ाने जाते वक्त प्रायः काफ़िरों और भारतवासियों में लड़ाई हो जाया करती थी कारण यह कि पाख़ाने जाने के लिये जो बाल्टियाँ रक्खी हुई थीं वह बहुत थोड़ी थीं और पाख़ाने जाने वाले आदमी बहुत से थे। एक बार मि

गान्धीजी अपनी पास की कोठरी के पाख़ाने में जा रहे थे कि इतने में एक मोटा ताज़ा काफ़िर आया और उसने गान्धी जी को अपने हाथों से ऊँचा उठाकर ज़ोर से ज़मीन पर दे मारा। यदि गिरते समय गान्धी जी दरवाज़े का खम्मा न थाम लेते तो उनके सिर के टुकड़े टुकड़े हो जाते !

खाने के कष्टों का क्या पूँछना है। इन लोगों को काफ़िरों का खाना जिसे 'मीली' कहते हैं दिया जाता था। जब भारतीयों ने इस का घोर विरोध किया तो चाँवल मिलने लगे लेकिन साथ ही साथ तरकारी बन्द कर दी गई। कभी कभी खाना बनानेवाले काफ़िर लोग होते थे और वह हिन्दुस्तानियों की रोटियों में चर्बी या हड्डियाँ पीस कर मिला देते थे, जिससे हिन्दू और मुसलमान दोनों को ही भूखों रहना पड़ता था। नहाने के लिये काफ़िरों के स्नानागार में जाना पड़ता था। मारपीट गाली गलोच तो एक साधारण बात थी। महात्मा गान्धीजी को रोटियों के साथ घी भी दिये जाने की व्यवस्था की गई थी, लेकिन उन्होंने घी खाने से साफ़ इनकार कर दिया और कहा कि जब तक सब भारतीय क़ैदियों को घी न मिले तब तक हम अकेले कदापि घी न खावेंगे। सारांश यह है कि ट्रान्सवाल की सरकार अन्यायपूर्वक सत्याग्रहियों का ज़ोर घटाना चाहती थी जिससे, कि वह जेलख़ाने से मुक्त होते ही कायदे को स्वीकार करलें और फिर 'सत्याग्रह' का नाम भी न लें।

आर्थिक हानिः—इस संग्राम में सैकड़ों ही भारतवासियों की सारी धन सम्पत्ति नष्ट हो गई। ट्रान्सवाल के ब्रिटिश इण्डियन ऐसोसिये-शन के प्रधान मि. ए. ऐम. काछलिया का दिवाला निकल गया। और भी कितने ही भारतीयों का सब व्यापार नष्ट हो गया। हज़ारों रुपयों की हानि हुई।

इन सब कष्टों के कारण भारतीयों में बड़ी जागृति उत्पन्न हुई। सैंकड़ों सभायें दक्षिण अफ्रिका में हुईं और मातृभूमि भारतसे सहायता के लिये प्रार्थनायें की गईं। नेटाल ने बहुत कुछ आर्थिक सहायता दी। लन्दन में लार्ड ऐम्पथिल की कमेटी ने खूब आन्दोलन किया। विलायत के समाचारपत्रों में इस विषय में खूब चर्चा चली। ट्रान्सवाल के भी अखबारों में ज़बरदस्त हलचल मची। ट्रान्सवाल के कितने ही यूरोपियनों ने भारतीयों के साथ सहानुभूति प्रगट की और मिस्टर होस्केन ने एक कमेटी स्थापित की, जिसने भारतीयों की बड़ी भारी मदद की। इसी दर्मियान में नेटाल और दक्षिणी रोडेशिया की सरकार ने भारतीयों के विरुद्ध कई कानून बना डाले, लेकिन साम्राज्य सरकार ने उन्हें स्वीकृत नहीं किया।

प्रवासी भारतीय स्त्रियोंने भी इस संग्राम में बड़ी वीरता दिखा 'इण्डियन ओपीनियन' ने इस विषय में लिखा था—"जो कोई इस बा से परिचित है कि हिन्दुओं के बीच, घरों में परस्पर कितना गा स्नेह होता है, वह ट्रान्सवाल प्रवासी भारतीय महिलाओं के असी आत्मत्याग का अनुमान कर सकता है। प्रत्येक भारतीय रमणी इ बातके लिये तैय्यार रहती थी अथवा यह बात जानती थी कि जाने किस वक्त उसके प्राणनाथ उससे पृथक् कर उपनिवेश की जेलों में ठूँस दिये जावेंगे! जाने किस समय उसके बालकों का पोषक, उसका रक्षण प्राणाधार पति, उससे जुदा कर बन्दीगृह की बेड़ियों से जकड़ा जायगा! और जाने कब उसे उदारपोषणार्थ अपने उन भारतीय भाइयों की शरण लेनी होगी, जिन्होंने सम्वत् १९६२ वि० में य प्रण किया था कि जो सत्याग्रही जेल में जावेंगे हम उनके कुटुम्बों की सहायता और रक्षा करेंगे।"

'यो

बार एक भारतवासी की पत्नी रोग शैय्या पर नेटाल के दर्बन

गर में पड़ी थी। वह उस समय स्वयं प्रिटोरिया में था। वहाँ रतवासी पकड़े जाने लगे और उन्हें कड़ी कड़ी सज़ायें होने लगीं। भयानक दण्डों को देख कर वह आदमी वहाँ से भाग कर अपनी के पास दर्बन में आया। स्त्री ने उसके इस सटपट में आने का रण पूँछा। उसके भागने का सबब सुनते ही उस स्त्री ने अपने पति उसी समय लौटती गाड़ी से वहीं जाकर दण्ड शिरोधार्य करने के ये कहा। अपनी पत्नी की आज्ञानुसार वह लौट कर गया और पने को स्वयं पुलिस के हवाले कर तीन माह के कठिन कारावास यंत्रणा सहने को जेलखाने में चलागया।

प्रिटोरिया में एक पुरुष को उपनिवेश छोड़ने के हुक्म की दूली करने के कारण कचहरी में मजिस्ट्रेट के सामने दण्ड ग्रहण रने के लिये जाना था। वह न्यायालय में जाने से घबड़ाने लगा। सकी अधीरता को देखकर उसकी स्त्री ने कहा "तुम्हारे मर्दाने पड़े पहन कर मैं न्यायालय में जा तुम्हारे बदले का दण्ड ग्रहण रूँगी, आप घर में बैठें!" वह सिर नीचा करके जेल को पधारा!

इन दो उदाहरणों को देते हुये 'मार्डन रिव्यू' के सम्पादक श्रीयुत मानन्दजी चटर्जी ने कहा था "क्या आधुनिक वीर नारियों के यह उदाहरण हमें राजपूत वीर माता और वीरभार्याओं की याद नहीं दिलाते हैं?" क्यों नहीं, वह केवल याद ही नहीं दिलाते हैं, वरन् वह भी स्मरण कराते हैं कि इस कलिकाल में भी अवकाश मिलनेपर हमारी देवियाँ फिर भी वही वीर कर्म्म कर सकती हैं, जो कि राजपूत ललनायें कर चुकी हैं! *

* श्रीयुत मुन्दीलाल वर्मा कृत 'कर्मवीर गान्धी' नामक पुस्तकके १०१—१०२ पृष्ठ देखिये।

हम लिख चुके हैं कि जेल में भारत वासियों को कैसे कैसे कष्ट दिये जाते थे लेकिन ज्यों ज्यों यह कष्ट बढ़ते गये त्यों त्यों सत्याग्रहियों का जोश भी बढ़ता गया। जिस तरह कि सुवर्ण को तपाने से उसकी चमक अधिक बढ़ जाती है उसी प्रकार इन भारतियों को कष्ट देने से इनका विश्वास 'सत्याग्रह' की धार्मिकता में और भी अधिक बढ़ने लगा। तामिल लोगों ने तो हद कर दी, लड़ाई ज्यों ज्यों एक एक पग बढ़ती गई त्यों त्यों तामिल लोगों का स्वरूप अधिकाधिक गम्भीर होता गया। सब लोगों के हृदय में यह दृढ़ विश्वास हो गया कि यह एक धार्मिक युद्ध है; लोगों का साहस बढ़ता गया और वह अच्छी तरह समझने लगे कि अन्त में हमारी विजय होगी। इन सब बातों से 'सत्याग्रह' के संग्राम की कीर्ति दिन दूनी रात चोगुनी फैलने लगी और उसकी महिमा का गान देश विदेश में होने लगा।

हिन्दुस्तान और इङ्गलेण्ड को डेप्युटेशन

सन १९०९ ई. में इस हलचल को नवीन जीवन मिल गया। उस समय दो प्रतिनिधिमण्डल भेजने की तैय्यारी होने लगी, एक विलायत को और दूसरा हिन्दुस्तान को। जिस समय इन दोनों मण्डलों के प्रतिनिधि दक्षिण आफ्रिका से चलनेही वाले थे, सरकार ने उनमें से कितनों ही को पकड़ कर 'सत्याग्रह' के अपराध में जेल भेज दिया। ऐसा करने में सरकार का उद्देश यह था कि बाकी बचे बचाये प्रतिनिधि इग्लेण्ड और भारतवर्ष को न जावें। परन्तु भारतवासी तो इस बात पर तुले हुये थे कि डेप्युटेशन अवश्य भेजे जावें। पहिले इङ्गलेण्ड को जो जो प्रतिनिधि जानेवाले थे उनके नाम यह " " ऐम. काछालिया, गान्धीजी, हाजी हबीब, और बी. ए. चेतियार।

इनमें से ए. ऐम्. काछलिया और वी. ए. चेतियर कैद कर लिये गये थे। इस कारण मि. हाजी हबीब और गान्धी जी विलायत गये। इन लोगों के आन्दोलन से विलायत में इस प्रश्न पर विचार होने लगा। यूनियन ड्राफ्ट ऐक्ट का मामला उन दिनों वहाँ पेश था इस लिये ट्रान्सवाल के मंत्री लोग वहाँ उपस्थित थे। साम्राज्य सरकार ने प्रयत्न किया कि किसी तरह यह झगड़ा मिट जावे, लेकिन जनरल स्मट्स के दुराग्रह के कारण कुछ भी नहीं हो सका, उन्होंने जाति-भेदवाले कायदे को दूर करने से साफ़ इंकार कर दिया। गान्धीजी और मि. हाजी हबीब दक्षिण आफ्रिका को लौट आये। जितना काम करने की आशा से यह लोग वहाँ गये थे उतना काम तो नहीं हो सका, लेकिन इन लोगों ने वहाँ कुछ स्वयंसेवक एकत्रित किये और सर्व साधारण से चन्दा इकट्ठा करने और उनके सामने यह विषय बराबर लाने का काम उनको सौंप दिया।

भारतवर्षमें आन्दोलन

भारतवर्षको जो प्रतिनिधि भेजे जानेवाले थे, उनके नाम यह हैं-ऐन्. ए. कामा, ई. ऐस-कुवादिया, ऐन्. वी नायडू और मिस्टर पोलक। इनमें से पहिले तीन तो जेल में भेज दिये गये थे, अब अकेले पोलक साहब बाक़ी रहे थे। मि. पोलक के हिंदुस्तान के आनेके पहिले नागापन की मृत्यु हो गई। स्वर्गीय ऐस. नागापन एक सत्याग्रही थे और जोहान्सबर्ग की जेल से छूटने के पश्चात् आप मृत्युका ग्रास बने। अकेले मिस्टर पोलक हिन्दुस्तान को रवाना हुये। भारतवर्ष पहुँचकर उन्होंने महात्मा गोखले की सहायता ली। सर्वेण्ट आफ

इण्डिया सुसायटी ने बम्बई से लेकर रंगून तक और मद्रास से लाहौर तक बीसियों सभायें करवाईं। सारे भारतवर्ष में बड़ी उत्पन्न हुई। भारतीयों के हृदय में प्रवासी भाइयों के लिये सहा का स्रोत उमड़ आया और उनकी सहायता के लिये लगभग डेढ़ रुपया इकट्ठा हुआ। रतन ताता इत्यादि बड़े बड़े आदमियों से छोटे छोटे आदमियों तक ने इस पुण्य कार्य्यमें सहायता दी। र राजाओं ने भी उदारतापूर्वक चन्दा दिया। सब भारतवासिये मिलकर यही कहा कि साम्राज्य सरकार को इस वक्त बीच में पड़ प्रवासी भारतीयों को न्याय दिलाना चाहिये महात्मा गोखले ने इम्पीरियल कौंसिल में प्रस्ताव किया कि नेटाल को शर्तबंधे मज़दूर भेज बन्द किया जावे। यह प्रस्ताव लार्ड हार्डिञ्जने कृपा कर स्वीकृत क लिया। जब तेरह महीनेतक इसी प्रकार आन्दोलन होता रहा तो भारतीयों को अपने प्रवासी भाइयों की स्थिति अच्छी तरह मालूम हो गई। सारे भारत के भिन्न भिन्न भागों में बीसियों सभायें हुई और उनमें ट्रान्सवाल सरकार के विरुद्ध बड़े कड़े प्रस्ताव पास किये गये और सत्याग्रहियों के ट्रान्सवाल से निकाले जाने का घोर विरोध किया गया। इससे चिन्तित होकर भारतसरकार ने साम्राज्यसरकार से बीच में पड़ने के लिये निवेदन किया। साम्राज्यसरकार ने ट्रान्सवाल सरकार से कहा-सुनी करके देश निकाले बन्द करवा दिये। जो लोग दक्षिण अफ्रिका से निकाल दिये गये थे वह वहाँ वापिस पहुँच गये। केवल नारायण स्वामी नामक एक भारतीय दक्षिण अफ्रिकामें प्रवेश नहीं कर सका। बेचारा एक बन्दरसे दूसरे बन्दरतक खदेड़ा गया; अन्त में 'डेलगोआ बे ने शरीर त्याग दिया!

दक्षिण आफ्रिकाकी यूनियन

इसके बाद चारों कालोनी मिल गईं और उसका नाम 'दक्षिण आफ्रिका की यूनियन' रक्खा गया। अब साम्राज्य सरकार को विश्वास हो गया था कि भारतवासियों की प्रार्थना न्यायपूर्ण है, इस लिये उसने यूनियन सरकार के पास ७ अक्टूबर सन् १९१० ई. को एक खरीता भेजा। इस खरीते में दो बातों के लिये सिफ़ारिश की गई थी। पहिली बात तो यह थी कि सन १९०७ ई. का दूसरा ऐक्ट रद कर दिया जावे और दूसरी बात यह थी कि जातिभेदवाला कायदा उठा दिया जावे तथा उसके स्थान में एक अन्य कायदा बनाया जावे, जिसके अनुसार थोड़े से भारतवासी प्रतिवर्ष प्रवासी हिन्दुस्तानियों की धर्मसम्बन्धी या शिक्षासम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये दक्षिण अफ्रिकामें प्रवेश कर सकें। इस खरीते में साम्राज्य सरकार ने यह भी लिख दिया था कि ट्रान्सवाल का मामला तैय करते हुये यदि दूसरे प्रान्तों के भारतीयों के अधिकारों पर कोई आघात पहुँचेगा तो साम्राज्य सरकार को इससे असन्तोष होगा।

यूनियन सरकार के सचिवों ने इसका उत्तर अनुकूल भाव से दिया। 'सत्याग्रह' की लड़ाई थोड़े दिनोंके लिये कुछ धीमी पड़ गई।

इमीग्रेशन बिल

सन् १९११ ई. में 'यूनियन गजट' में इमीग्रेशन बिल छपा। इस बिलका उद्देश यह था कि बहुत दिनों से जो झगड़ा चला आ रहा था, उसका अन्त कर दिया जावे। लेकिन यह उद्देश सफल

नहीं हुआ; क्योंकि इस बिल की वजह से जातिभेदवाले
होना तो अलग रहा, बल्कि वह और बढ़ गया! क्योंकि
का प्रयोग इस बिल के अनुसार आरेञ्ज फ्री स्टेट में
वाला था। हाँ इस कायदे में १९०७ ई. के दूसरे ऐक्ट
लिये और लड़कोंके हक़ को बचाने के लिये लिखा ग
तवासी इससे सन्तुष्ट नहीं हुये; क्योंकि इस कायदे द्वारा
वाल निवासी भारतीयों का ही नहीं, बल्कि दक्षिण आफि
के प्रान्तों में रहने वालों का भी अधिकार छीना जा
भारतीयों ने मिलकर आन्दोलन करना शुरू किया। स
पत्रव्यवहार होना आरम्भ हुआ। भारतीय नेताओं ने सर
बात की सूचना दी कि इस बिल के बजाय एक ऐसा
चाहिये, जो केवल ट्रान्सवाल पर ही लागू हो; पर यह
नहीं की गई। अन्त में यह बिल पार्लीमेण्ट में पास न
तब एक प्रोविज़नल सेटलमेंट-अल्पकालस्थायी प्रबन्ध-
गया, जिसके अनुसार भारतवासियों ने सत्याग्रह की ल
रक्खी और सरकार ने यह प्रतिज्ञा की, कि १९१२ ई. की
सन्तोषजनक नियम बना दिये जायँगे। एक वर्ष तक 'स
लड़ाई बन्द रही।

सन् १९१२ ई. में एक बिल पार्लीमेण्ट में पेश
लेकिन इसकी भी हालत पिछले साल के बिल के समान
प्रोविज़नल सेटलमेंट की अवधि एक वर्ष और बढ़ा दी गई

दक्षिण अफ्रिका में महात्मा गोखले

इसी समय प्रवासी भाइयों का दुःख अपनी आखों देखने के लिये महात्मा गोखले दक्षिण आफ्रिका पधारे। सन् १९१२ ई. के अक्टूबर मास में आपने केपटाउन की भूमि पर पदार्पण किया। आपने दक्षिण अफ्रिका के भिन्न भिन्न नगरों में भ्रमण किया। जब आपने नेटाल के ३ पौण्ड के कर देनेवाले भारतीय मजदूरों की दशा अपनी आखों देखी तो आप का कोमल हृदय विदीर्ण हो गया। आप प्रीटोरिया में जाकर जनरल बोथा, जनरल स्मट्स और राजसचिव मिस्टर फिशर से मिले और उनको तीन पौण्ड के खूनी कर को रद्द कर देने के लिये परामर्श दिया। यूनियन सरकार ने प्रतिज्ञा की कि तीन पौण्ड का कर रद्द कर दिया जावेगा, इसी लिये महात्मा गोखले ने यह समाचार अपने देशभाइयों को खुल्लमखुल्ला सुना दिया। नवम्बर मास में महात्मा गोखले ने भारत के लिये प्रस्थान किया। इस समय प्रवासी भाइयों को दृढ़ विश्वास हो गया कि अब हम लोगों के दुःख दूर हो जावेंगे।

सन् १९१३ ई. का नवीन कायदा

सन् १९१३ ई. में संयुक्त पार्लीमेण्ट का जो अधिवेशन केपटाउन में हुआ, उस में भी भारतियों के दुःख दूर करना तो दूर रहा, उन के पुराने स्वत्व छीनने की चेष्टा और की गई। नवीन कायदे में यह धारा रक्खी गई कि सन् १८९५ ई. के पीछे आये हुये भारतीय मज़दूर यहाँ के रईस बिल्कुल नहीं समझे जावेंगे और स्वदेश जाने पर उनको

यहाँ लौटकर आने का हक नहीं रहेगा। अबतक दक्षिण
के जन्मे हुये भारतवासी केपकालोनी में बिना रोक टोक के ज
थे, लेकिन इस नवीन कायदे में यह नियम रक्खा गया था कि
भारतवासी केपकालोनी में जा सकेंगे, जो अँग्रेजी भाषा खूब
तरह जानते हों, और फ्रीस्टेट में जानेवाले भारतीयों को पा
लिख देना होगा कि हम वहाँ जाकर व्यापार अथवा खेती बाड़
करेंगे, केवल मजदूरी कर के जीवन निर्वाह करेंगे। तीन
का कर ज्यों का त्यों कायम रक्खा गया था। सब से भयानक
यह थी कि जिस धर्म में एक से अधिक विवाह कर लेनेकी
उस धर्म के अनुसार किया हुआ विवाह बे-कायदा माना जावेग

सरकारको अन्तिम चेतावनी

प्रवासी भाइयोंके नेताओंने इस उद्देश से कि 'सत्याग्रह' का
फिर न प्रारम्भ करना पड़े सरकार से लिखा पढ़ी शुरु की।
समय जोहान्स बर्गके गोरोंने हड़ताल कर दी। महात्मा गान्धी ने उ
तापूर्वक इस वक्त भारतीय प्रश्नों के विषय में सरकार को कष्ट देना उ
नहीं समझा। इस दर्मियान में एक प्रतिनिधिमंडल विलायत को
गया; इसका उद्देश यह था कि ब्रिटिश प्रजाका ध्यान इस अत
आवश्यक भारतीय प्रश्न की ओर आकर्षित करे। महात्मा गो
उन दिनों विलायत में ही थे और उन्हीं की आज्ञानुसार
प्रतिनिधि मंडल वहाँ भेजा गया था। लेकिन विलायत
किये हुये आन्दोलन का प्रभाव यूनियन सरकार पर
भी नहीं पड़ा। उसने अपना दुराग्रह नहीं छोड़ा, इसी लि
ट्रान्सवाल बृटिश इण्डियन एसोसियेशन के सभापति मि. काछलिया

दक्षिण अफ्रीका की सरकार की सेवा में एक पत्र भेजा। इस पत्र में यह चेतावनी दी गई थी कि यदि सरकार इस बिल की निन्दनीय और अपमानजनक धाराओं को दूर नहीं करेगी तथा तीन पौण्डका कर रद नहीं करेगी, पुराने और नये कायदों में भारतीयों के साथ न्याय-पूर्वक बर्ताव नहीं करेगी, तो सत्याग्रह का संग्राम पुनः प्रारम्भ कर दिया जावेगा। सरकार ने इस चेतावनी पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, अतएव बड़े जोर शोर के साथ सन् १९१३ ई. के सितम्बर महीने में 'सत्याग्रह' की लड़ाई फिर शुरू हुई।

अन्तिम संग्राम

इस अन्तिम संग्राम का यदि हम पूर्ण वृत्तान्त लिखना चाहें तो पचास साठ पृष्ठों में भी नहीं आ सकता, अतएव इसका संक्षिप्त वर्णन करना ही उचित होगा। जब सरकार के उकसाने से सुप्रीम कोर्ट ने यह फ़ैसला दे दिया कि हिंदुस्तानी विवाह अप्रामाणिक माने जावेंगे तो दक्षिण आफ्रिका की भारतीय स्त्रियों में खलबली पड़ गई। घर घर इसकी चर्चा होने लगी। इसी चर्चाका एक नमूना 'इण्डियन ओपीनियन' में छपा था उसका सारांश यहाँ दिया जाता है।

लोकमाता श्रीमती गान्धी ने अपने पतिसे कहा "तो क्या मैं इस कायदे के अनुसार आपकी धर्मपत्नी नहीं हूँ? क्या लोग मुझे वेश्या या रक्खी हुई औरत समझेंगे?"

श्रीयुत गान्धी जी ने उत्तर दिया "कायदा तो ऐसा ही है। नवीन कायदे के अनुसार आप हमारी धर्मपत्नी नहीं हैं और न हमारे बालक ही कायदे से बालक माने जावेंगे।"

यह सुनकर श्रीमती गान्धी को अत्यन्त आश्चर्य और दुःख हुआ। उन्होंने कहा " यदि ऐसे ऐसे अमानुषी क़ायदे यहाँ हैं तो इस जंगली देश को छोड़कर चलिये न अपने देश को लौट चलें ! "

श्रीयुत गान्धी " हाँ, हम और तुम इस देशको छोड़कर स्वदेश को लौट सकते हैं, पर सब ऐसा नहीं कर सकते, जो लोग इस देश को अपनी दूसरी मातृभूमि समझ कर यहाँ रहना चाहते हैं अथवा जो लोग यहाँ से जाने में असमर्थ हैं, वह विचारे क्या उपाय करेंगे ? हम लोग यदि अपनी ही रक्षा का विचार करें और दूसरों को इस घोर विपद् में छोड़कर भारत को लौट जावें तो इस में गौरव की क्या बात होगी ? इससे तो हमारी कायरता प्रगट होगी । "

श्रीमती गान्धी " सच है । तो फिर क्या हम स्त्रियां भी आपके आन्दोलन में शामिल हो सकती हैं । आप लोगों के साथ हम भी कारागार में जावेंगी । "

श्रीयुत गान्धी " जेल के कष्ट सहना कोई खेल नहीं है, तिसमें यहाँ के जेलखानों के कष्ट तो और भी भयानक हैं; स्त्रियों का इस संग्राम में शरीक न होना ही ठीक है । " ऐसा कहकर महात्मा गान्धी जी ने स्त्रियों को इस लड़ाई में सम्मिलित होने से रोकने की चेष्टा की, लेकिन श्रीमती गान्धी जी तथा अन्य स्त्रियों ने किसी की न सुनी और पुरुषों के समान स्त्रियों का भी समूह 'सत्याग्रह' में शामिल होने के लिये तैय्यार हो गया ! श्रीमती गान्धी प्रभृति कितनी ही स्त्रियाँ जेल में गईं !! फिर नेटाल के स्वतंत्र और शर्तबन्धे भारतवासी उठे उन्होंने हड़ताल कर दी, और वह हज़ारों की संख्या में ट्रान्सवाल में घुसने लगे । सरकार ने बड़ी सख्ती के साथ इन हड़तालियों को दबाने की चेष्टा की । सैकड़ों नेताओं को जेलखाना हुआ और हज़ारों ही साधारण भारतीय जेल में ठूँस दिये गये । जेलखानों को कारागार बना

दिया गया। इस वार के जेल के कष्टों का वर्णन करने के लिये ही कई अध्याय चाहिये। जेल की घटनाओं में घी के लिये झगड़ा, दरबन के कारागार में उपवास, और वृद्ध हरबत सिंह की जेलखाने में मृत्यु इत्यादि कई बातें चिरस्मरणीय हैं। नेटाल की कितनी ही जेलें सचा-सच भर गई थीं। मारीत्सवर्ग की जेलके अन्दर का गिरजाघर और दरबन की शो ग्राउंड (मेला लगने की जगह) से सत्याग्रहियों के लिये कारागार का काम लिया जाने लगा। जो लोग जेल में नहीं गये थे उन्हों ने दरबन, जोहान्सवर्ग, मारीत्सवर्ग और यूनियन के दूसरे भागों में असंख्य सभायें कीं और दूसरे तरीकों से अपने देशभाइयों की बड़ी भारी सहायता की।

भारतवर्ष में घोर हलचल

जब दक्षिण अफ्रिका के अत्याचारों के समाचार भारत में आये तो यहाँ का लोकमत जागृत हो गया और बड़ा भारी आन्दोलन होने लगा। स्थान स्थान पर सभा हुई और प्रवासी भाइयों की सहायतार्थ चन्दे एकत्रित होने लगे। गाँव गाँव में 'सत्याग्रह' की चर्चा होने लगी। भारतीय समाचार पत्रों में इस विषय पर सैंकड़ों जोशीले लेख निकले। गरीब-अमीर, बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष सभी ने सत्याग्रहियों की सहायता के लिये चन्दा दिया। भारत के विद्यार्थियों में भी अपूर्व उत्साह उत्पन्न हुआ। कांगड़ी गुरुकुल के ब्रह्मचारियों ने ३ दिन नदी में पुल बाँधकर मजूरी का द्रव्य दक्षिण आफ्रिका को भेजा। कविसम्राट् श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शान्तिनिकेतन के विद्यार्थियों ने आश्रम का चिकित्सालय स्वयं निर्मित कर मजदूरी के पैसे

'सत्याग्रह फण्ड' में दिये। इस समय श्रीमान् लार्ड हार्डिञ्ज ने मद्रास में जो वक्तृता दी थी वह भारतीय इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है। आपने कहा था:—

"Recently your compatriots in South Africa have taken measures into their own hands, by organizing what is called Passive resistance to laws which they consider invidious and unjust, an opinion which we who watch their struggle can not but share. They have violated, as they intended to violate, these laws with *full knowledge of penalties involved* and ready with all courage and patience to endure these penalties. In all they have the Sympathy of India-deep and *burning-and not only of India but of all those who like* myself, without being Indians themselves, have *feelings* of Sympathy for the people of this country."

अर्थात्—" थोड़े दिन हुये, आपके दक्षिण अफ्रिका प्रवासी देश-भाइयों ने उन क़ानूनों का, जिन्हें वह अन्यायपूर्ण और भेदभावयुक्त समझते हैं, विरोध करने के लिये सत्याग्रह मार्ग को स्वीकृत किया है। यह बात हमें भी, जो इतनी दूर से उनके संग्राम को देखते हैं, ठीक ही मालूम देती है। उन्होंने यह बात पूरी तरह से जानते हुये भी कि यदि हम इन कानूनों का उल्लंघन करेंगे तो हमें क्या क्या दण्ड भोगने पड़ेंगे, अपने उद्देश्यानुसार इन नियमों का अतिक्रम किया है, और वे पूरे साहस और धैर्य के साथ उन कष्टों को सहने के लिये तय्यार हैं। उनके इस कार्य्य में भारत की गहरी और पूर्ण सहानुभूति है—केवल भारत ही की नहीं, बल्कि उन सब लोगों की भी हमदर्दी है जो कि मेरी तरह, भारतवासी न होते हुये भी, इस देश के निवासियों से हमदर्दी रखते हैं।"

इस कथन से स्पष्टतया प्रतीत होता है कि लार्ड हार्डिञ्ज दक्षिण

आफ्रिका के सत्याग्रह संग्राम को पूर्ण न्याययुक्त समझते थे। इस के आगे चलकर लार्ड हार्डिञ्ज ने कहा था:–

" The most recent developments have taken a serious turn and we have seen the widest publicity given to allegations that this movement of passive resistance has been dealt with by measures which would not for a moment be tolerated in any country that claims to call itself civilized. I do feel that......only one course is left open to them (the South African Government) and that is to appoint a strong and impartial committee upon which Indian interests shall be fully represented to conduct a through and searching inquiry. "

अर्थात्–"अभी हाल की घटनाओं ने गम्भीर रूप धारण कर लिया है और हम देख चुके हैं कि दक्षिण अफ्रिका की सरकार पर जो दोष आरोपण किये जाते हैं, वह भारतवर्ष में खूब जाहिर कर दिये गये हैं। ऐसा कहा जाता है कि निष्क्रिय प्रतिरोध का प्रतिकार ऐसे उपायों द्वारा किया जाता है, जिनकी योजना सभ्यता का दावा करने वाले किसी भी देश में क्षम्य नहीं समझी जा सकती। मेरी समझ में अब दक्षिण आफ्रिका की सरकार के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह इन सारी बातों की जाँच कराने के लिये एक वजन्दार और निष्पक्ष कमीशन बिठलावे, जिसमें कि भारतवासियों की भी ओर के प्रतिनिधि हों।" फिर श्रीमान् लार्ड हार्डिञ्जने जो वाक्य कहे थे वे आजतक हमारे कानों में गूँज रहे हैं। आपने कहा था–" अफ्रिकन सरकार के ध्यान में यह बात आनी चाहिये थी कि हिन्दुस्तानी जैसे राज्यनिष्ठ साम्राज्यबन्धुओं से स्वतंत्र नागरिक की हैसियत तथा न्याय से बर्ताव करना चाहिये। जब तक यह बात अफ्रिकन सरकार के ध्यान में नहीं आवेगी तबतक भारत सरकार उसका पीछा नहीं छोड़ेगी।"

कमीशन की नियुक्ति

लार्ड ऐम्पथिल की कमेटी ने विलायत में घोर आन्दोलन किया; अन्त में साम्राज्य सरकार को बीच में दख़ल देना पड़ा। दक्षिण आफ्रिका की सरकार ने भारतीय कष्टों की जाँच करने के लिए एक कमीशन चुना; कमीशन के प्रधान जस्टिस सर विलियम सोलोमन बनाये गये और मि. ई. आल्डएसलन तथा मि. जे. एस् वायली उसके सदस्य निर्वाचित हुये। भारतवासियों ने इस नियुक्ति पर असन्तोष प्रगट किया; क्यों कि इस कमीशन में भारतीयों का एक भी प्रतिनिधि नहीं लिया गया था और इस के दो सदस्य भारतियों के विरोधी थे। इस समय सरकार ने सत्याग्रहियों के नेताओं को उन के दण्ड की अवधि समाप्त होने के पहिले ही छोड़ दिया। इन लोगों ने सर्व साधारण को कमीशन को कबूल न करने की सलाह दी। यह निश्चित हुआ कि यदि इस कमीशन का परिणाम सन्तोषजनक न हो तो पहिली जनवरी सन् १९१४ ई. को ट्रान्सवाल की सीमा पार करने के लिये कूच करना चाहिए। इसकी सूचना भी सरकार को दे दी गई थी। लेकिन इस कूच के प्रारम्भ होने के पहिले ही मि. एण्ड्रूज़ और मि. पियर्सन दक्षिण आफ्रिका पहुँच गये। निस्सन्देह इन दोनों सज्जनों ने वहाँ बड़ा काम किया।

इतने में वाइसराय के प्रतिनिधि सर बेंजमिन राबर्टसन दक्षिण आफ्रिका में जा पहुँचे। कमीशन ने अपना काम शुरू किया, लेकिन भारतीयों ने उस के सामने गवाही न देना ही ठीक समझा। इस अर्से में बहुत से सत्याग्रही कैदी यूनिअन की जुदी जुदी जेलों से छूटे। इन में एक सत्याग्रही भगिनी वेलीआमा जो जेल से बीमार आई थी स्वर्ग सिधारीं।

तदनन्तर रेल के गोरों ने हड़ताल कर दी। इस बार भी महात्मा गान्धी ने पहिले की तरह यही निश्चित किया कि जब तक गोरों की हड़ताल रहेगी तब तक हम आन्दोलन न करेंगे। थोड़े दिनों बाद हड़ताल शान्त हो गई। तत्पश्चात् केपटाउन में पार्लीमेण्ट की बैठक हुई। मि. एण्ड्रूज़ उस समय वहीं थे, उन्होंने वहाँ के टाउन हाल में एक अत्यन्त प्रभावशाली वक्तृता दी, जिसमें लार्ड ग्लैडस्टन भी पधारे थे। मि. ऐण्ड्रूज़ के इस कार्य का परिणाम यह हुआ कि गोरे लोग भारतीय प्रश्नों को सहानुभूति की दृष्टि से देखने लगे।

कमीशन की रिपोर्ट

कमीशन ने खूब जाँच पड़ताल कर १८ मार्च सन् १८१४ ई. को अपनी रिपोर्ट पार्लीमेण्ट में पेश की। इस रिपोर्ट में तीन पौण्ड का कर दूर कर देने के लिये सिफ़ारिश की गई थी और भारतीयों की दूसरी कठिनाइयों के भी विषय में सहानुभूति की दृष्टि से लिखा गया था। दक्षिण आफ्रिका की सरकार ने कमिशन की सिफ़ारिशों को पूर्णतया स्वीकृत कर लिया। दूसरी जून सन् १९१४ ई. को जनरल स्मट्स ने "इण्डियन रिलीफ़ बिल" को संयुक्त पार्लीमेण्ट में पेश किया। इस पर खूब वादविवाद हुआ और बड़े मार्के की स्पीचें हुई। अन्त में बहुमतसे यह 'बिल' पास हो गया।

सत्याग्रह का परिणाम

'सत्य मेव जयते' यह कथन सर्वथा ठीक है। अन्त में सत्याग्रही भारतीयों की जय हुई। दक्षिण अफ्रिका की शक्तिशाली सरकार को हिन्दुस्तानियों के आत्मबल के सामने सिर झुकाना पड़ा। इस सत्याग्रह संग्राम ने संसार को स्पष्टतया बतला दिया कि हम घृणा को प्रेम से, असत्य को सत्य से और अत्याचार को सहिष्णुता से जीत सकते हैं। यद्यपि भारतीयों की सब मनोकामनायें पूर्ण नहीं हुई, तथापि जिन जिन कारणों से सत्याग्रह का संग्राम प्रारम्भ हुआ था वह सब दूर कर दिये गये। सन् १९०७ ई. का दूसरा कायदा रद्द हो गया और इस कायदे का दूसरे प्रान्तों में प्रयोग होने का भय जाता रहा। तीन पौण्ड का कर दूर कर दिया गया। भारतीय विवाहों का प्रश्न सन्तोषजनक रीतिसे हल हो गया।

पहिले दक्षिण अफ्रिका की सरकार बराबर इस बात के लिये प्रयत्न करती थी कि जैसे हो तैसे भारतवासियों को वहाँसे निकाल दिया जावे और अपने इसी उद्देश की सफलता के लिये जातिभेद वाले कायदे बनाती थी; लेकिन अब 'इण्डियन रिलीफ बिल' के पास हो जाने के बाद इस बात की संभावना नहीं रही कि भविष्यमें कोई जातिभेद वाला कायदा बनाया जावेगा। दक्षिण आफ्रिका में शर्तबन्दे मजदूरों का आना तो सन् १९११ ई. में ही बन्द हो गया था, यह भी इसी सत्याग्रह के संग्राम का फल था। यह निश्चित हो गया कि भारतवासियों के व्यवस्थित अधिकारों की रक्षा की जावेगी। लेकिन इन सबसे बढ़कर लाभ यह हुआ कि सारा भारतीय राष्ट्र विदेशियोंकी दृष्टि में पहिले की अपेक्षा उच्चतर हो गया। अब कोई यह नहीं कह-

कता कि भारतवासियों में आत्मबल नहीं है। इस संग्राम से दक्षिण फ्रिका के प्रवासी भाइयों को जो लाभ हुए सो तो हुए ही, लेकिन स्तव में इससे भारतवर्ष को बहुत लाभ पहुँचा। अब भारतीयों की मझ में यह बात आ गई है कि साम्राज्य में हमारा भी कोई स्थान । इस युद्ध के समाप्त होने के बाद भारत को साम्राज्य में यदि पयुक्त स्थान मिला—जैसी कि हम लोग आशा करते हैं—तो इसका ख्य मूल कारण 'सत्याग्रह का संग्राम' ही कहा जावेगा। लोक-ान्य गान्धी जी और महात्मा गोखले इत्यादि भारतीय नेताओं ने इस ग्राम का सञ्चालन किस खूबी और सफलता के साथ किया इसका र्णन हम "प्रवासी भाइयों के नेता" शीर्षक प्रकरण में करेंगे, ौर लार्ड हार्डिञ्ज, मि. पोलक, मि. एण्डूज़ प्रभृति महानुभावों के ारित्र "भारत के शुभचिन्तक और सहायक अँग्रेज़" शीर्षक प्रकरण ां दिया जावेगा। इन्हीं लोगों की कृपापूर्ण सहायता से हमारे प्रवासी ाइयों को सत्याग्रह के संग्राम में विजय प्राप्त हुई।

सप्तम अध्याय

भिन्न भिन्न स्थानों में भारतीयों की कठिनाइयाँ

कनाड़ा:-उत्तर अमेरीका में कनाडा नामक जो उपनिवेश है उसमें इस समय लगभग पाँच सहस्र भारतवासी रहते हैं। यह लोग सभी पुरुष हैं। स्त्रियाँ केवल तीन या चार हैं, सो भी कनाडा सरकार की मेहरबानी से दाखिल कर ली गई हैं। इन पाँच हज़ार भारतवासियों में से अधिकांश सिक्ख हैं। इनकी स्त्रियाँ और परिवारवाले वहाँ नहीं जा सकते, इसलिये वहाँ उनके वंशवृद्धि की कोई सम्भावना नहीं है। इसका परिणाम यह होगा कि इन पाँच हज़ार पुरुषों को भी भारतवर्ष को लौटना पड़ेगा। भारतवासियों को कनाडा जाने से रोकने के लिये जो नियम बनाया गया है वह यह है-"कोई भी यात्री यदि वह अपने देश से एक ही जहाज़ और एक ही टिकिट में बराबर कनाडा तक न आया हो तो उसे जहाज़ पर से नीचे न उतरने दिया जावे।" भारतवर्ष से कोई भी जहाज़ बराबर सीधा कनाड़ा तक नहीं जाता। यहाँ से कनाड़ा जाने के लिये चीन के हाङ्काङ्ग टापू अथवा अन्य किसी मार्ग से जाना पड़ता है। इस लिये इस मन्तव्य का असली मतलब यह है कि भारतवासी किसी तरह कनाडा में न आने पावें। वास्तव में कनाडा तथा अन्य कई उपनिवेशों में हमारी दशा अन्य विदेशी पूर्वी जातियों से भी बुरी है। उदाहरणार्थ चीन और जापान को ही लीजिये। कनाड़ा में एक भी भारतवासी प्रवेश नहीं कर सकता, लेकिन् प्रति वर्ष चार सौ जापानी वहाँ जाकर बस सकते हैं; यदि उनमें से प्रत्येक के पास ५० डालर

(एक डालर ३=) रु. के बराबर होता है) हों। प्रति व्यक्ति ५०० डालर कर देने से चाहे जितने चीनी वहाँ जाकर बस सकते हैं। लेकिन भारतवासी किसी भी शर्त पर वहाँ जाकर नहीं बस सकते। केवल यही नहीं, जापानी और चीनी अपने साथ अपने परिवार के स्त्री पुरुषों को भी वहाँ ले जा सकते हैं, पर अब तक केवल तीन भारतीय स्त्रियाँ वहाँ प्रवेश करने पाई हैं और वह भी अधिकार से नहीं, पर कनाडा सरकार की दया से। अबतक कनाडा सरकार ने जो बर्ताव प्रवासी भारतीयों के साथ किया है वह अन्यायपूर्ण है। इसका एक उदाहरण लीजिये। सन् १९०८ ई. में कनाड़ सरकार ने भारत सरकार तथा बृटिश सरकार से परामर्श करके यह निश्चित किया था कि कनाड़ा प्रवासी भारतीयों को ब्रिटिश हण्डूरास नामक जलशून्य अरण्य प्रदेश को चालान कर देना चाहिये। कनाड़ा में भारतवासी स्वतंत्र व्यवसाय से लगभग १५०) रु. मासिक पैदा करते हैं लेकिन कनाडा सरकार ने हन्डूरास में उन्हें २४) रु. नक़द और बारह रुपयेका आटा, चावल, दाल आदि रसद देना स्वीकार किया था! इसपर भी तुर्रा यह कि कनाडा की स्वाधीन मजदूरी के बदले में वहाँ प्रतिज्ञाबद्ध कुली बनकर काम करना पड़ता!! धन्य है, कनाडा सरकार कितनी दयालु और न्यायपरायण है! ईश्वरकृपासे हमारे सिक्ख भाई इस कपटजाल में न फँसे। और सुनिये, एक सिक्ख महाशय कनाडा के व्यांकूवर शहरमें चार वर्षतक रहनेके बाद अपनी स्त्री और बच्चे को ले जाने के लिये भारतवर्ष को आये। उन लोगोंको साथ लेकर सन् १९११ ई. में २१ जुलाई को वह व्यांकूवर पहुँचे। वह पहिले कनाडा के अधिवासी थे इसलिये आज्ञा हुई कि तुम तो जहाजपर से पृथ्वीपर पैर रखने पाओगे लेकिन तुम्हारी स्त्री और कन्या को बलपूर्वक भारतवर्ष को वापिस भेज दिया जावेगा। यह सिक्ख महाशय भारतवर्ष में अंग्रेजी पल्टनमें

रहकर अंग्रेजों की ओरसे लड़े थे, वह सोचने लगे कि हमारी राज-भक्ति का हमें क्या ही अच्छा पुरस्कार मिला है। जो हो तीन हजारकी नक़द ज़मानत देकर उन्होंने स्त्री और कन्याका उद्धार किया, और फिर अदालत में दावा कर दिया। मुक़द्दमे का फल यह हुआ कि उनकी स्त्री और कन्या पर दया करके हाकिम ने उनके साथ की आज्ञा दी।

इस प्रकार के बर्तावका एक और बुरा परिणाम हुआ। सिक्ख समझने लगे कि जब साम्राज्य की रक्षा के लिये युद्ध करने आवश्यकता होती है तब तो हमारी बड़ी प्रशंसा की जाती है हमारी पीठ ठोंकी जाती है, लेकिन जब हम साम्राज्य में ब्रिटि नागरिक के पूर्ण अधिकार माँगते हैं तो हमें कोरा जवाब मिलता है सिक्खों का यह विचार स्वाभाविक ही था। यह बतलाने की आव श्यकता नहीं कि, सिक्खों ने युद्धों में सरकार की कितनी सहायत की थी और कितनी कर रहे हैं। लाला लाजपतराय ने विलायत के 'डेली' न्यूज़ और 'लीडर' के १० जून सन् १९१४ ई. के अङ्कमें एक लेख लिखा था। इस लेख में उन्होंने एक जगह लिखा था:—

"But for the bravery of the Sikhs, one shudders to think what the fate of the Empire would have been. Possibly, nay probably, that Empire would have been lost. Then the Sikhs have shed their blood for the Empire in Egypt, in the soudan in China, in Abyssinia, and in Burma, and it is from their ranks that a considerable part of His majesty's Indian army is recited. Some of your best generals have called them the flower of the Indian Army."

अर्थात्—"राजभक्त और वीर सिक्खों की सहायता के बिना ब्रिटिश की क्या दशा होती, यह ख्याल करते ही शरीर काँपने · सम्भवतः वह साम्राज्य ही ब्रिटिश सरकार के हाथ से

जाता रहता। इसके सिवाय सिखों ने साम्राज्य के लिये मिश्र देश में, सूदान में, चीन में, ऐबीसिनिया में और बर्मा में अपना खून बहाया है; और सम्राट् की भारतीय सेना का एक बड़ा भारी भाग सिक्खों द्वारा ही बना हुआ है। तुम्हारे कई सर्वोत्तम सेनाध्यक्षों ने सिक्खों को भारतीय सेना का 'उत्कृष्ट भाग' बतलाया है।"

इस युद्ध में भी जितनी सहायता सरकार को सिक्खजाति से प्राप्त हुई है उतनी किसी भी दूसरी भारतीय जाति से नहीं मिली। इतना होने पर भी उन्हीं सिक्खों के साथ साम्राज्य में अन्यायपूर्ण व्यवहार किया जाता है, यह कितनी लज्जा की बात है। कनाडा के 'टोरंटो वर्ल्ड' नामक पत्र ने दिसम्बर सन् १९११ ई. के अङ्क में लिखा था:—

"Ninety percent of the Sikhs who have come to Canada have been British soldiers. During the Chinese Boxer rebellion there were sixteen sikh regiments out of the eighteen employed."

अर्थात्—"जो सिक्ख कनाडा में बसे हुये हैं, उनमें से ९०. फीसदी ब्रिटिश सेना में सिपाही रह चुके हैं। चीन के बाक्सर विद्रोह में जो अठारह रजिमेण्ट फौज की भेजी गई थीं, उनमें १६ सिक्खों की थीं," कनाडा के अधिकारी एक बात और कहते हैं वह यह कि "सिक्खों का चरित्र शुद्ध नहीं है और वह मैले रहते हैं, इससे हमारे यहाँ रोग फैलने की आशङ्का है। इस विषय में हम अपनी ओर से कुछ न कह कर एक कनाडा निवासी गोरे डाक्टरकी राय लिखे देते हैं। डाक्टर लौसन ने 'डेली कालो निस्ट' नामक एक पत्र में लिखा था:—

"I refer in particular to the Sikhs, and I am not exaggerating in the least when I say that they were 100 percent cleaner in their habits and freer from disease than the European steerage passengers I had come into contact with. The sikhs impressed me as a clean, manly, honest race."

अर्थात्–" मैं खास तौर से यहाँ सिक्खों के बारे में कहता
सिक्ख लोग यूरोपियन यात्रियों की अपेक्षा दूने स्वच्छ और रोगा
होते हैं, इस बात में बिल्कुल अत्युक्ति नहीं है। सिक्ख लोग
स्वच्छ, पौरुषयुक्त और ईमानदार ज्ञात हुये।"

ब्रिटिश कोलंबिया:–में जो कनाडा का एक भाग है, प्रवा
भारतीयों की और भी अधिक दुर्दशा है। स्त्रियों के अभाव के कार
बहुतसे प्रवासी भारतवासी आचारभ्रष्ट बन जाते हैं। अच्छे अच्छे स्था
में तो वह लोग जा नहीं सकते, लेकिन शराबखाने उनके लिये बिल्कु
खुले हुये हैं, इस वजह से सैंकडों ही शराबी बन गये हैं।

सन् १९११—१९१२ ई. में लगभग १७ हजार चीनी ब्रिटिश को
म्बिया में आकर बसे। चीनी लोग चाहे जितनी स्त्रियाँ अपने सा
ला सकते हैं लेकिन बिचारे भारतवासी यहाँ पैर भी नहीं रख सकते
'कामागाता मारू' के यात्रियों के साथ ब्रिटिश कोलम्बिया वा
ने जो दुर्व्यवहार किया था वह किसी से छिपा नहीं है। यदि 'बज
बज' की शोचनीय घटना न हो जाती तो इस प्रश्न पर भारत सर
कार कुछ लिखा पढ़ी अवश्य करती, लेकिन दुर्भाग्यवश बजबज की
दुर्घटना के कारण इस बात की चर्चा ही बन्द हो गई। लेकिन
कनाडा प्रवासी भारतीयों का प्रश्न इस अनिश्चित दशा में बहुत दिनों
तक नहीं रह सकता। लाखों रुपये खर्च हो जाने के बाद भी आज
कनाडा में भारतवासियों की दशा वैसी ही है, जैसी पहिले थी। ईश्वर
जाने ब्रिटिश प्रजा के साथ यह दुर्व्यवहार कब तक जारी रहेगा।
'मानट्रिअल विटनैस' नामक पत्र में मिसेज़ एलीज़बेथ नामक एक स्त्री
ने लिखा था:—

"To-day thousands of the enemy's subjects are here, enjoying the privilege of Canada, while no Hindu can get

into Canda except under almost impossible conditions. He can not but wonder why we let in Turks and keep out Hindus. And our brave Canadians will find it hard face to face with brave Indian soldiers to justify our policy. How long are our domiciled Hindus, whether Sikh, Brahmin or Mohammedan, to wait to bring in their wives and children ?"

अर्थात्:—" आज हमारे शत्रुओं की प्रजा हज़ारों की संख्या में कनाडा में बसे हुई है और कनाडा के अधिकारों का उपयोग कर रही है, लेकिन एक भी हिन्दू कनाडा में प्रवेश नहीं कर सकता ! जिन शर्तों पर हिन्दू लोग कनाडा में आ सकते हैं वह लगभग असम्भव हैं। हिन्दू लोगों को इस बात से आश्चर्य होना ही चाहिये कि कनाडा-वासी गोरे, तुर्क लोगों को अपने यहाँ क्यों आने देते हैं और हम हिन्दुओं को क्यों नहीं आने देते ? हमारे वीर कनेडियन सिपाही युद्ध में जब हिन्दुस्तानी सिपाहियों के साथ मिलकर शत्रु से लड़ेंगे, तब उनके लिये यह कठिन होगा कि वह अपने देश कनाडा की नीति को न्यायपुक्त बतला सकें। कब तक हमारे कनाडा-प्रवासी हिन्दू—सिक्ख, ब्राह्मण और मुसल्मान—अपनी स्त्रियों और बच्चों को कनाडा लाने की प्रतीक्षा करते रहें गे ? " श्रीमती ऐनी बेसण्ट ने अपनी पुस्तक 'Wake up India' के २५४ वें पृष्ठ में ब्रिटिश कोलम्बिया की एक करुणाजनक घटना लिखी है; उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं:—

"One instance of the results there may be given, an Indian, walking with his companions, fell down in the street, taken his sudden ill. It was found to be a woman, on the verge of child birth, who had come in man's clothes, in order to rejoin her husband."

अर्थात्—" इसका (कनाडा में स्त्रियों का प्रवेश न करने देनेका) क्या परिणाम होता है इसका एक उदाहरण यहाँ दिया जाता है।

एक बार एक भारतवासी, जो अपने साथियों के साथ मार्ग में जा रहा था, गली में गिर पड़ा और अचानक बीमार पड़ गया। पता लगा कि वह एक स्त्री थी जिसके बच्चा पैदा होने वाला था जो पुरुष के कपड़े पहिन कर अपने पति के पास आई थी।"

इस दृष्टान्त को पढ़ कर हमें कनाडावाले गोरों की निर्दयता अत्यन्त खेद होता है। एक बार एक सीलोन-निवासी थियोसोफि कनाडा में व्याख्यान देने के लिये जाना चाहता था। बड़ी ब कठिनाइयों के बाद उसको संयुक्त राज्य अमरीका से व्यंकोवर में प्रवे करने की आज्ञा मिली और सो भी केवल थोड़े दिनों के लिये। इसका कारण यही था कि वह ऐशिया का निवासी था। आज यदि हज़रत ईसामसीह कनाडामें प्रवेश करना चाहते तो कनाडा के ईसाई गो उनसे यही कहते "हे खीष्ट प्रभु! आप स्वर्ग में हमसे दूर रह कर कृपा कीजिये, यहाँ हमारे कनाडा देश के किनारे आने की आप आवश्यकता नहीं; क्योंकि आप ऐशियावासी हैं।"

आस्ट्रेलिया

आस्ट्रेलिया में लगभग ६५०० भारतवासी रहते हैं। वहाँ अब और भारतवासी नहीं बसने पाते। 'Election test' जिसका कि आविष्कार नेटाल ने किया था, आस्ट्रेलिया में भी प्रचलित है। आस्ट्रेलियन अफ़सर नये आनेवाले भारतवासी की परीक्षा लेते हैं, जबरदस्ती उसे फेल कर देते हैं और आस्ट्रेलिया में उसे नहीं घुसने देते। "राष्ट्रिय सम्मान पर भयंकर आघात" शीर्षक प्रकरण में हम बतला चुके हैं कि किस प्रकार इन लोगों ने लेफ्टीनेण्ट कर्नल दुग्गा को आस्ट्रेलिया में प्रवेश नहीं करने दिया था। न मालूम कर्नल दुग्गा के

आस्ट्रेलिया में निवास करने से गोरे मजदूरों की कौनसी रोज़ी मारी जाती? अब ज़रा सुन लीजिये कि आस्ट्रेलियावाले अफ़सर 'शिक्षा सम्बन्धी परीक्षा' किस ढङ्गसे लेते हैं। छठीं फर्वरी सन् १९१४ई. के 'इण्डिया' नामक विलायती पत्र में इस का स्पष्ट विवरण छपा था, उसी का एक भाग यहाँ उद्धृत किया जाता है:—

"Mr H. W. Hunt, president of one of the Melbourne Theosophical Lodges,and a wellknown public man, had an interview on the subject with the commonwealth minister for External Affairs, who was "sympathetic," he says, but helpless. The Act does not mention colour or race but the minister stated (according to Mr Hunt) that the intention was to exclude all coloured races, and he admitted that, if an Indian gentleman who knew three European languges presented himself for admission to the Commonwealth, he would be set a dictation test in some language-say Russian—which be did not know. He said further that this hypocritical method of carrying out the purpose was suggested in a despatch by Mr Chamberlain, then Colonial secretary, who pointed out that the Japanese would regard an exclusion on the ground of colour, so stated in an Act of Parliament, as offensive to them as a nation and as imposing upon them a badge of inferiority. Mr Chamberlain, therefore, suggested that the then recently adopted National Act, embodying the "dictation test," would meet the difficulty and attain the same end, while being less offensive to Japan and India."

अर्थात्—" मेलबोर्न के एक थियासोफीकल भवन के प्रधान मि. एच्, डब्ल्यू हंट साहब, जो कि एक प्रसिद्ध पुरुष हैं, आस्ट्रेलिया के वैदेशिक विभाग के मंत्री से जाकर मिले और इस विषय में उनसे बातचीत की। मंत्री जी ने सहानुभूति प्रगट की लेकिन कहा कि

... ... में कुछ भी करने में असमर्थ हैं। यद्यपि इ
में किसी वर्ण या जाति को खास तौर से बहिष्कृत करने
नहीं लिखा, तथापि मंत्री जी ने कहा कि इस कानून का मं
है कि काले आदमियों को आस्ट्रेलिया में न घुसने दिया जावे
अगर कोई हिंदुस्तानी जो यूरोपकी तीन भाषाओं का ज्ञा
आस्ट्रेलिया में प्रवेश करने की आज्ञा माँगे तो उसकी परीक्ष
भाषा में ली जावेगी जिसे वह न जानता हो, उदाहरणार्थ रूसी
मंत्री ने कहा कि अपना उद्देश्य पूर्ण करने के लिये यह कप
तरीक़ा मि. चेम्बरलेन ने-जो उस समय विलायत में औपनिवे
मंत्री थे-अपने एक खरीते में लिखकर भेजा था। मि. चेम्बरले
यह भी लिखा था कि अगर पार्लीमेण्ट के एक ऐक्ट में यह लि
जावेगा कि अमुक वर्ण के मनुष्यों को न घुसने दिया जावे,
जापानी लोग इसे अपनी जाति के लिये अपमानकारक समझें
और वह इस ऐक्ट को अपनी जाति पर नीचता की छाप लगानेवा
ख्याल करेंगे। इसी कारण मि. चेम्बरलेन ने कहा कि 'शिक्ष
सम्बन्धी परीक्षा' का कानून पास कर दिया जावे, क्यों कि इस
कानून से अपना मतलब भी सिद्ध हो जावेगा और यह जापानियों
और हिंदुस्तानियों को बुरा भी कम लगेगा।"

हम भारतवासी सीधे सादे आदमी हैं; इस लिये हम इस बातको पसंद करते हैं कि हमसे सीधीसादी भाषामें स्पष्टतया कह दिया जावे कि तुम्हें हम इसलिये नहीं आने देते कि तुम काले रंगवाले हिन्दुस्तानी हो, घुमा फिरा कर कपटपूर्ण बात चालाकी से कहना हमें पसंद नहीं। कर्नल दन्त्रा का, जिन्हें कि आस्ट्रेलियन सरकारने अपने यहाँ नहीं घुसने दिया था, ज़िक्र करते हुये श्रीमती ऐनी बेसण्टने 'India's plea for justice' नामक व्याख्यानमें कहा था:—

"And how did they keep him out? By a law that unless
n Indian can pass a language test he is not to be allowed
go in; and they may set the test in any language they
te, Modern Greek, Russian, Polish, Roumanian. The
dians are very clever in languages, but it is hopeless for
em to try to pass such a test. The test was made at Mr.
seph chamberlain's suggestion, for he said it would make
em less angry than if you said plainly a coloured man
ıst not come in. It seems to me more hateful because of
hypocrisy."

अर्थात्–"और किस प्रकार आस्ट्रेलियावालों ने कर्नेल दुन्वा को
ने यहाँ आने से रोका? इसका उत्तर यह है 'एक कानून से'।
र यह कानून यह है कि जब तक भारतवासी एक यूरोपियन भाषा
परीक्षा में पास न हो जावे तब तक उसको न घुसने दिया
। यह परीक्षा आस्ट्रेलियन अफ़सर चाहे जिस भाषा में ले सकते
उदाहरणार्थ वर्तमान ग्रीक भाषा में, अथवा रूसी, पोलिश और
नियन भाषा में। हिन्दुस्तानी लोग भाषाओं के अध्ययन में
होशियार हैं, लेकिन इस प्रकार की परीक्षा पास करने के लिये
न करना व्यर्थ है। यह परीक्षा मि. चेम्बरलेन के कथनानुसार
की गई थी। मि. चेम्बरलेन ने कहा था कि अगर तुम
साफ़ कह दोगे कि काले आदमी होने की वजह से हम
नहीं घुसने देंगे तो उन्हें ज्यादा क्रोध आवेगा और अगर इस
ा के द्वारा तुम उन्हें आने से रोक दोगे तो वह कम क्रुद्ध होंगे।
क़ायदा कपटपूर्ण होने की वजह से मुझे और भी अधिक घृणित
होता है"।

नेस्सन्देह श्रीमती ऐनी बेसण्ट का कथन अक्षरशः सत्य है। इस
की परीक्षा पास करना असम्भव है। यदि हमने अँग्रेज़ी, फ्रेंच,

और लेटिन भाषा की पूर्ण योग्यता प्राप्त भी कर ली, तब भी आस्ट्रेलिया वाले हमारी परीक्षा रुसी भाषा या यूनानी भाषा में लेकर हमें फ़ेल कर सकते हैं। क्या ही अच्छा हो यदि उन आस्ट्रेलिया वालों की जो हिन्दुस्तान में प्रवेश करना चाहते हैं, तैमिल, तैलगू, मराठी, उड़िया, आसामी, बंगाली, पाली और हिन्दी इत्यादि देशी भाषाओं परीक्षा में ली जाया करे! हम कदापि नहीं चाहते कि आस्ट्रेलियन लोगों से हमारी शत्रुता हो जावे, लेकिन इसके साथ ही साथ हम यह भी कदापि नहीं सहन कर सकते कि हम तो आस्ट्रेलिया में घुसने भी न पावें और आस्ट्रेलियन लोग आई. सी. ऐस. परीक्षा पास करके और कलक्टर बन बन कर हमारे ऊपर शासन करें और हमारे देश में लाखों रुपये कमावें। एक बार बड़े लाट साहब की व्यवस्थापक सभा में माननीय श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने प्रश्न किया था कि भारतवर्ष में ब्रिटिश उपनिवेशों के कितने आदमी राजकार्य्य में नियुक्त हैं? इसके उत्तर में माननीय सर रेजीनल्ड क्रोडोक साहब ने कहा था कि "९७ शख़्स आदमी"। हम पहिले दिखला चुके हैं कि इन उपनिवेशों में भारतवासियों की कैसी दुर्गति की जाती है और वहाँ हमारे भाईयों के अपमान और लाञ्छना का अन्त नहीं है, और यह सहस्र औपनिवेशिक आदमी हमारे ऊपर प्रभुत्व करते हैं। हमारी समझ में इन आदमियों को कम से कम शर्म तो आनी चाहिये कि उनके भाई बन्धु भारतवासियों के साथ कैसा बुरा बर्ताव करते हैं। यदि भारतवासी भी इन ९७ लोगों के साथ वैसा ही बर्ताव करें, जैसा कि इनके भाई बन्धु भारतवासियों के साथ करते हैं, तो निस्सन्देह यह बात हानि-जनक न होगी। हमारी समझ में भारत गवर्नमेण्ट का यह कार्य्य न्याय-संगत नहीं है कि इन लोगों को भारतवर्ष में राजकार्य्य में नियुक्त किया जाता है। जो औपनिवेशिक लोग हमारे भारतवासियों के हाथ पुरे

से बुरा वर्ताव करके उनका अपमान करते हैं, उनका भारत के राजकार्य्य में नियुक्त होना अनुचित है, और भारत सरकार के लिये भी यह बात गौरवजनक नहीं है। भारतवर्ष भारतवासियों की जन्मभूमि है, अतएव गवर्मेण्ट का कर्तव्य है कि जहाँ तक हो सके तहाँ तक भारतवासियों ही से राज्यकार्य्य करावे, क्यों कि यह उनका न्यायोचित अधिकार है। यदि सरकार की राय में बिल्कुल श्वेताङ्ग कर्म्मचारी ही रखना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत हो तो खास इङ्गलेण्ड के ही निवासियों को राजकार्य्य में नियुक्त करना चाहिये। हम समझते हैं कि इङ्गलेण्ड में ऐसे आदमियों की कमी नहीं है, जो योग्यतापूर्वक भारतवर्ष में शासन कर सकते हैं, तो फिर भारत के अपमान करनेवाले आस्ट्रेलियन और कनेडियन भारतवासियों के भाग्य-विधाता क्यों बनाये जाते हैं? जब तक कि उपनिवेशों वाले ब्रिटिश सरकार की प्रजाओं के साथ असमानता का वर्ताव करते रहेंगे तब तक यह बात कि—औपनिवेशक आदमी भारतमें राजकर्मचारी नियुक्त हों—हमारे हृदयमें काँटे की तरह खटकती रहेगी। सरकार की न्यायनिष्ठामें हमें पूर्ण विश्वास है और हम आशा करते हैं कि सरकार भारत वासियों के हार्दिक असन्तोष को मिटाने के लिये शीघ्रही प्रयत्न करेगी।

अब ज़रा आस्ट्रेलिया की ओर फिर आइये। आस्ट्रेलिया में पचास लाख गोरे रहते हैं। यह पचास लाख गोरे कहते हैं कि "यह सारा महाद्वीप हमारी मौरूसी जायदाद है, इसलियेहम इसमें किसीको नहीं घुसने देंगे। चीनियों, जापानियों और हिंदुस्तानियों को हम अपने यहाँ कदापि नहीं आने देंगे।" अगर कल जापान यह निश्चित कर ले कि हम भी अपना एक उपनिवेश आस्ट्रेलिया में बनावेंगे—और असल में जापानियोंका प्रशान्त महासागर पर आस्ट्रेलियनों की अपेक्षा

अधिक अधिकार है–तो फिर आस्ट्रेलियन लोग क्या करेंगे ? हमा समझ में आस्ट्रेलियन लोग इङ्गलेण्ड के हाथ जोड़ेंगे और कहेंगे " हमारी रक्षा करो, रक्षा करो।" यह इङ्गलेण्ड का नामही है जो जापानियों को आस्ट्रेलिया पर आक्रमण करनेसे रोक रहा है। ऐसी दशा में यदि इङ्गलेण्ड आस्ट्रेलियावालों से कह दे कि " तुम लोग हमारी ऐशियावासी प्रजाओं का अपमान करते हो और इस प्रकार ब्रिटिश साम्राज्य का अहित करते हो तो फिर ब्रिटिश साम्राज्य तुम्हारी रक्षा क्यों करे ?" तब फिर आस्ट्रेलियन लोगों के होश ठिकाने आ सकते हैं। श्रीमती ऐनी बैसण्ट ने ३० मई सन् १९१४ ई. के 'नेशन' नामक पत्रमें लिखा था:–

" It must not be forgotten that Japan's increasing population is beginning to press against her boundaries, and that Australia, with her sparsely settled lands, her ludicrously small five millions of white-rapidly tending towards yellowmen, and her unguarded thousands of milesor coast offers a most tempting opportunity for colonisation, armed if necessary; only the Japanese Alliance with England and the floating Union Jack over Australia defend that Asiatic country against invasion. "

अर्थात्–" यह बात भूली नहीं जानी चाहिये कि जापान की आबादी दिनों दिन बढ़ रही है और यह बढ़ती हुई मनुष्यसंख्या जापानियों पर अपने देश की सीमा से बाहिर जा बसने के लिये दबाव डाल रही है। इधर आस्ट्रेलिया में दूर दूर पर थोड़े थोड़े आदमी बसे हुए हैं। आस्ट्रेलिया की जनसंख्या इतनी कम है कि उसे सुनकर हँसी आती है—यानी कुल ५० लाख गोरे, और इन गोरोंका भी रंग अब पीला हो चला है, और हज़ारों मील लम्बे किनारे जो आस्ट्रेलिया के हैं, वह अरक्षित हैं। इस स्थिति में जापानियों का मन आस्ट्रेलिया

को देखकर ललचा सकता है और वह वहाँ अपना उपनिवेश—यदि आवश्यकता हो तो शस्त्रोंद्वारा—स्थापित करने के लोभ में फँस सकते हैं। यदि कोई चीज़ जापानियों को आस्ट्रेलिया पर आक्रमण करने से रोकती है, तो वह है ब्रिटिश साम्राज्य का झंडा—यूनियन जैक—जो आस्ट्रेलिया के ऊपर फहरा रहा है। "

अब तक जो बर्ताव कनाडा और आस्ट्रेलिया वालों ने भारतीयों के साथ किया है, उससे हम लोगों के हृदय को बडा धक्का पहुँचा है।

यदि यही दशा युद्ध के बाद भी कायम रही तो इस में शक नहीं कि भारतवासियों का असन्तोष और भी ज्यादा बढ जावेगा।

इस बढते हुये असन्तोष को रोकने के लिये क्या क्या उपाय करने चाहिये, यह बात हम " ब्रिटिश सरकार से निवेदन " नामक प्रकरण में बतलावेंगे।

मोरीशस

दक्षिण अफ्रिका को छोड़ कर बाकी जिन देशों या द्वीपों में भारतवासी बसे हुये हैं उन में मोरीशस का नाम सब से पहिले उल्लेखयोग्य है। हमारे देश में मोरीशस का टापू दो नामों से प्रसिद्ध है; एक 'मोरिस' और दूसरा 'मिर्चका मुल्क'। डच लोगों ने अपने राजकुमार 'मोरिस' के नाम पर इस द्वीप का नाम मोरीशस रक्खा था, लेकिन हमारे यहाँ 'मोरिस' नाम की प्रसिद्धि इस टापू से आनेवाली चीनी शक्कर के कारण हुई। 'मिर्च का मुल्क' इस का नाम क्यों पड़ा उस विषय में एक बार 'भारतमित्र' ने लिखा था—" दो चार मिर्च खाने से तो मुँह ही कड़वा हो जाता है, परन्तु अधिक मिर्च खाने से खाने-

वाले को बड़ा कष्ट होता है और असह्य वेदना से वह छटपटाने लगता है। मोरीशस में हिन्दुस्तानी कुलियों के साथ जो कुव्यवहार किया जाता है, वह ऐसा है कि मानों उनके चारों ओर मिर्च ही मिर्च लगा दी गई हैं। इस लिये इस दारुण दुःख से दुःखी हो कर ही वहाँ जानेवाले हिन्दुस्तानी कुलियों ने इस टापू का नाम 'मिर्च का मुल्क' रख दिया है।"*

सम्भव है कि मोरीशस के 'मिर्च का मुल्क' पुकारे जाने का कारण यही हो लेकिन हमारी समझ में यह ठीक नहीं जँचता। हमारी सम्मति में 'मोरिस' और 'मिर्च' दोनों ही मोरीशस शब्द के अपभ्रंश हैं। अस्तु, इन शब्दों की व्युत्पत्ति कुछ भी क्यों न हो, 'मोरीशस' हम लोगों के लिये एक अत्यन्त उपयोगी 'भारतीय उपनिवेश' है। इसके दो कारण हैं, एक तो यह कि इस द्वीप की जनसंख्या में ७० फ़ीसदी हिन्दुस्तानी हैं, और दूसरा यह है कि दासत्व प्रथा के बन्द हो जाने पर सब से पहिले भारतवासी कुली बनाकर इसी द्वीप को

सन् १७१५ ई. में फ़रासीसी लोगों ने जाकर इस टापू को फिर बसाया। सन् १८१० ई. तक यह फ़रासीसियों के अधिकार में रहा। जब अँग्रेज़ों की फ़रासीसियों के साथ यूरोप में लड़ाई हुई तो अंग्रेज़ों ने इस द्वीप को फ़रासीसियों से छीन लिया। सन् १८१४ ई. में पेरिस की सन्धि के अनुसार यह अँगरेज़ों को दे दिया गया। इसका क्षेत्रफल ७१६ वर्ग मील है। आब हवा इसकी गरम है। जमीन नर्म है। वर्षा की दशा एक सी नहीं है। कहीं तो ४० इञ्च पानी बरसता है और कहीं १४५ इञ्च!

सन् १९११ ई. की मनुष्यगणना के अनुसार इसकी जनसंख्या ३६८७९१ है। इसमें से २५७७०० भारतवासी हैं।

इस प्रकार लगभग १०० वर्षों से मोरीशस अंग्रेज़ों के अधिकार में है। जब सन् १८३२ ई. में गुलामी उठा देने की बात चली थी, तब ईख के व्यवसायी मोरीशस-निवासी फ़रासीसियों ने अँग्रेज़ों से कहा था कि "गुलामों से तो हम अपना सब काम कराते हैं; गुलामी उठा देने से हमारा सारा व्यवसाय वाणिज्य नष्ट हो जावेगा।" इस पर अँग्रेज़ों ने उन्हें वचन दिया कि हम हिन्दुस्तान से तुम्हारे लिये कुली भेजेंगे। तबसे यानी सन् १८३४ ई. से फ़रासीसियों के खेतों पर काम करने के लिये हिन्दुस्तानी कुली भेजे गये।

मोरीशस में हिन्दुस्तानियों पर जो जो अत्याचार हुये, उनका वर्णन यहाँ स्थानाभावसे नहीं हो सकता। मोरीशस के गोरों ने भारतीयों को अधिकाधिक परतंत्र बनाने के लिये बड़े कड़े नियम बनाये। अँग्रेज़ी 'विश्वकोष' के नवें संस्करण के ३३६ वें पृष्ठ में लिखा है:—

"The case of Mauritius was more serious. It had long been suspected that the colony had been indulging in a course of legislation, the tendency of which, says Mr. Geoghegan, the under-secretary to the department of agriculture

in the Government of India, was "towards reducing the Indian labourer to a more complete state of dependence upon the planter, and towards driving him into indentures, a free labour market being both directly and indirectly discouraged."

अर्थात्–मोरीशस की स्थिति अधिक भयंकर थी। बहुत दिनोंसे इस बात की आशङ्का थी, कि यह उपनिवेश ऐसे कानूनों को बना रहा है, जिनके कारण भारतीय मजदूर प्लांटरोंके बिल्कुल आधीन हो जावें और वह बार बार शर्तबन्दी करा लें। स्वतंत्र मजदूरीको हर प्रकार से, सीधी तरहसे और टेढ़े तरीक़ों से रोकने की चेष्टा की जा रही थी। यह बात मि. जीओयेगन साहब ने जो उस समय सरकारी कृषिविभाग के उपमंत्री थे, कही थी।"

सन् १८३४ ई. से. १८३८ ई. तक चार वर्षों में २५ हजार भारतीय मोरीशस को कुली बनाकर भेज दिये गये। इन्हीं दिनों ब्रूहम साहबने तथा दासत्व प्रथा के अन्य विरोधियों ने ब्रिटिश पार्लीमेण्ट में इस कुली प्रथा के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाई। 'साइक्लोपीडिया' के नवीन संस्करण में 'कुलीप्रथा' का जिक्र करते हुये इस बारे में लिखा है:—

"Brougham and the anti-slavery party denounced the trade as a revival of slavery, and the Bengal Government suspended it in order to investigate its alleged abuses. The nature of these may be guessed when it is said that the enquiry condemned the fraudulent methods of recruiting then in vogue, and the brutal treatment which coolies often received from ship captains and masters."

अर्थात्–ब्रूहम तथा दासत्वप्रथा के विरोधियों ने इस कुली प्रथा की बड़ी निन्दा की और कहा कि यह गुलामी का नवीन स्वरूप है और बंगाल की सरकार ने इसे कुछ दिनों के लिये इस वास्ते बन्द कर दिया कि तब तक इसकी हानियों की जाँच की जावे। इस प्रथा की

यों और दुरुपयोगों का पता इसी बात से लग सकता है कि
करने वालों ने भर्ती की प्रथा में जिन छलपूर्ण तरीकों से काम
जाता था उनकी, तथा जहाजों के कप्तान तथा अन्य कर्मचारी
यि मजदूरों के साथ जो जंगली पन का बर्ताव करते थे, उसकी
न्द निन्दा की।"

ह बात ध्यान देने योग्य है कि सबसे पहिले जिस सज्जन ने
शस प्रवासी कुली-नामधारी नये हिन्दुस्तानी गुलामों की चेष्टा की
क फ्रांसीसी बेरिस्टर था और उसका नाम था देर्पाने। इसके बाद
शस में तेमिल के प्रोफ़ेसर राजरत्न मुदालियरने बहुत कुछ प्रयत्न
, परन्तु सरकारी नोकर होने की वजह से वह प्रकाश्य रूप से
आन्दोलन नहीं कर सके। अन्त में उन्होंने एक सहृदय फ्रां-
मि. एडोल्फ़ डे प्लेविट्ज़ के द्वारा एक प्रार्थनापत्र महाराणी
श्वरी के औपनिवेशिक मंत्री के पास भेजा, जिसमें यह निवेदन
गया था कि एक शाही कमीशन द्वारा मोरीशस-प्रवासी हिन्दु-
यों की दशा की जाँच की जावे। तदनुसार सन् १८७१ ई. में
के लिये कमीशन नियुक्त हुआ। सन् १८७५ ई. में कमीशन
नी रिपोर्ट साम्राज्य सरकार के सामने पेश की। इस रिपोर्ट
त्पर्य यह था कि कुलियों के साथ जो बर्ताव किया जाता है
त्यन्त असन्तोषजनक है और वह पूर्णतया प्लाण्टरों के आधीन
मीशन ने सुधार करने के लिये कितनी ही सिफ़ारिशें की थीं
दनुसार कुछ सुधार हुये भी थे, लेकिन तब भी मोरीशस-प्रवासी
यों की दशामें कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा! उनके दुःख ज्यों
बने ही रहे। एक सरकारी रिपोर्ट में सन् १८८३ ई. में
स-प्रवासी भारतीयों की जो दशा थी उसके विषय में लिखा है:—

hile the Government of India have taken great care to
the satisfactory regulation of the Emigrant ships

the Laws of the Island have been so unjust to the coloured people, and so much to the advantage of the Planters, that gross evils and abuses have arisen from time to time. In 1871, a Royal commission was appointed to inquire into the abuses complained of Various reforms were recommended and some improvements have been effected. But the Planters are not remarkable for their respect of the rights of the Coloured People, and the system is liable to gross abuse, unless kept under vigilant Control by higher Authority." *

अर्थात्–" यद्यपि भारत सरकार ने इस बात के लिये बहुत प्रयत्न किया है कि जिन जहाज़ों में भारतीय मज़दूर विदेशों को भेजे ज हैं उनकी सन्तोषजनक व्यवस्था की जावे, तथापि इस द्वीप के कान् कृष्णवर्ण आदमियों के लिये इतने अन्यायपूर्ण और प्लाण्टरों के लि इतने अधिक लाभदायक रहे हैं कि इनकी वजह से समय समय प बहुतसी बड़ी बड़ी बुराइयाँ और अन्याय उत्पन्न हो गये हैं। सन् १८७१ ई. में जिन अन्यायों और बुराइयों की शिकायत की गई थी, उनकी जाँच करने के लिये एक कमीशन नियुक्त किया गया था। इस कमीशन ने कितने ही सुधारों की आवश्यकता बतलाई और तदनुसार कुछ सुधार कर भी दिये गये। लेकिन प्लाण्टर लोग कृष्णवर्ण जातियों के अधिकारों को विशेषतः आदर की दृष्टि से नहीं देखते। यदि उच्चाधिकारी वर्ग बड़ी सावधानतापूर्वक 'कुली प्रथा' पर अपना अधिकार न रक्खे तो इस प्रथा में अनेक निकृष्ट बुराइयों के पैदा होने की सम्भावना है।"

मोरीशस-प्रवासी भाइयों को क्या क्या कष्ट सहने पड़े अथवा अबतक सहने पड़ते हैं, उनका संक्षेप में यहाँ वर्णन किया जाता है।

अच्छी ज़मीन भारतवासियों के हाथ नहीं आ सकती; जिस ज़मीन को वहाँ के गोरे ज़मीदार नहीं लेते वही हिन्दुस्तानियों को मिलती

*देखो रानडे कृत 'Indian Economics.' नामक पुस्तक का 'विदेशों में भारतवासियों का प्रवास' नामक लेख।

है। गरीब होने के कारण वह बिचारे उसमें खाद नहीं डलवा सकते, इसी लिये उनके खेतों में ईख की पैदावार कम होती है।

मोरीशस-प्रवासी भारतियों को जो थोड़े बहुत राजनैतिक अधिकार हैं, उनका वह उपयोग नहीं कर सकते। इसका कारण यह है कि उनकी उन्नति और अवनति बहुधा गोरे ज़मीदारों और कारखाने-वालों पर अवलम्बित है। कभी तो हिंदुस्तानियों के पास गोरों की ज़मीन का कुछ रुपया बाकी रहता है और कभी खाद मोल लेने के लिये हिन्दुस्तानियों को गोरों से रुपया उधार लेना पड़ता है। इस प्रकार हिन्दुस्तानी लोग गोरों का मुह ताकते रहते हैं; इसकी वजह और भी है वह यह कि गोरे ही हिन्दुस्तानियों की ईख मोल लेते हैं और उनके ही कारखानों में ईख की चीनी बनती है।

मोरीशस को जिस समय कुली भेजना प्रारम्भ हुआ था, उस समय स्त्रियों को ले जाने की प्रथा नहीं थी; परन्तु कई वर्षों के बाद सैंकड़े पीछे ३३ स्त्रियाँ ले जाना गुमाश्तों ने उचित समझा। स्त्रियों की संख्या की कमी से जो जो नैतिक हानियाँ हुईं, उनके बतलाने की आवश्यकता नहीं है, पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं।

पहिले हिन्दुस्तानियों को एक बड़ा कष्ट यह भी था कि जेल में पहुँचते ही उनका सिर और दाढ़ी मुंड़ा दी जाती थी। हिन्दू, शिखा और मुसलमान दाढ़ी रखते हैं। शौक की बात समझकर वह ऐसा नहीं करते बल्कि हिन्दुओं के लिये शिखा का और मुसलमानों के लिये दाढ़ी का रखना, धर्म से सम्बन्ध रखता है। शिखा और दाढ़ी मुँड़ जाने से हिन्दू और मुसलमानों के धर्मों को धक्का लगता था। केवल यही नहीं, बल्कि जेल में दोनों प्रकार के धर्मावलम्बियों को काफ़िरों द्वारा पकाया हुआ खाना खाना पड़ता था। इसमें हिन्दू-मुसलमानों के अखाद्य पदार्थों का बिल्कुल भी विचार नहीं किया

जाता था। चार पाँच वर्ष हुये तब श्रीमान् मणिलालजी बेरिस्टर ने, जो उस समय मोरीशस में रहते थे, बड़े प्रयत्न के बाद जेल के इन कष्टों को दूर करवाया। लगभग ७५ वर्ष तक भारतवासियों को मोरीशस में जेल के इन कष्टों को सहन करना पड़ा। सुनते हैं कि एक बार एक ब्राह्मण ने जेल में जाकर दो महीने तक कुछ नहीं खाया तब उसके लिये दूध की व्यवस्था की गई और वह जेल से निकाल दिया गया; लेकिन इसके एक सप्ताह बाद ही कमजोरी और बीमारी के कारण उसके प्राण पखेरू उड़ गये। इन सबका मूल कारण 'कुलीप्रथा' के सिवाय और क्या कहा जा सकता है?

हिन्दुस्तानियों के खाद्य पदार्थों पर टेक्स बहुत ज्यादा लगाया जाता है। उदाहरण के लिये एक सामान्य बात लीजिये। यूरोपियन लोग मक्खन खाते हैं, और हिन्दुस्तानी घी का व्यवहार करते हैं। मोरीशस में मक्खन की अपेक्षा घी पर अधिक टेक्स लगता है। कानून की दृष्टि में यूरोपियन और इण्डियन समान होने चाहिये, पर मोरीशस में यह बात नहीं है।

हिन्दुस्तान में हिन्दू और मुसलमान के उत्तराधिकारी का निश्चय हिन्दुधर्मशास्त्र और मुसलमान धर्मशास्त्र के अनुसार होता है। इसी के अनुसार हिन्दुओं और मुसलमानों को उनकी पैतृक आदि सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं, परन्तु मोरीशस में फ्रांसीसी कानून के अनुसार इन सम्पत्तियों के उत्तराधिकारी निश्चित होते हैं। हिन्दुओं और मुसलमानों के यहाँ जो सम्पत्ति के उत्तराधिकारी समझे जाते हैं, उन्हें फ्रांसीसी कानून अपनी प्राप्य सम्पत्ति से वंचित कर देता है। इसका दुष्परिणाम यह भी होता है कि हिन्दुस्तानी किसानों की जायदाद कितने ही छोटे छोटे टुकड़ों में बँट जाती है। इस से खेती के कारबार को नुकसान पहुँचता है और किसान लोग बन्धन में आते हैं।

शिक्षा के विषय में भी मोरीशस-प्रवासी भारतीयों को बहुत कष्ट । यद्यपि मोरीशस में ७० फ़ीसदी आदमी भारतीय हैं, तथापि नकी सुविधा का कुछ भी ख्याल नहीं किया जाता । मोरीशस में भाषायें प्रचलित हैं तेमिल, तैलगू, हिन्दी, अंग्रेज़ी, फ्रैञ्च और रीशियन । जो भारतीय लड़के स्कूलों में पढ़ते हैं उन्हें अँग्रेजी और ञ्च द्वारा शिक्षा दी जाती है । ऐसा करने में मोरीशस सरकार का देशच यही है कि इन लोगों में देशी भाव और राष्ट्रीय विचार उत्पन्न होने पावें । यदि कोई लड़का स्कूल में पढ़ता है तो साधारणतया ह चार भाषायें सीखता है । घर में तो वह अपने देश की भाषा लेता है और बाहर उसे मोरीशस की दोगली भाषा 'क्रोल' में बातचीत करनी पड़ती है तथा स्कूल में अँग्रेज़ी और फ्रैञ्च सीखता है । लेकिन न चारों भाषाओं में से उसे यथार्थ योग्यता एक भी भाषा में प्राप्त नहीं होती । हिन्दुस्तान की जो तीन भाषायें मोरीशस में प्रचलित हैं, उनमें हिन्दी प्रधान है । तेमिल और तैलगू बोलने वाले भी हिन्दी समझ सकते हैं । इस लिये मोरीशस सरकार का कर्त्तव्य है कि हिन्दुस्तानी लड़कों को हिन्दी में शिक्षा दिलवाने का प्रयत्न करे । किन्तु ख़ास आर्यवर्त में जो प्रयत्न अब तक सफल नहीं हुआ वह भला वहाँ कैसे हो सकता है !

मोरीशस वालों को यह एक बड़ा दुःख है कि वह अपने मुर्दे नहीं जलाने पाते । एक बार एक धनी हिन्दू ने बहुत सा रुपया खर्च करके एक मुर्दा जलाया था, परन्तु अन्य हिन्दुओं को ऐसा करने का अधिकार नहीं है । जो मुर्दा जलाता है उसे कठिन दण्ड दिया जाता है ।

सबसे बड़ा कष्ट भारतीयों को यह है कि उनकी आर्थिक उन्नति के मार्ग में अनेक बाधायें डाली जाती हैं । मोरीशस में कारख़ानों के मालिकों का एक विशेष दल है । इन्हीं लोगों का मोरीशस में प्रभुत्व

है। यह लोग भारतवासियों की बढ़ती देखकर जलते हैं और उन
दशा सुधारनेके लिये जो यत्न किये जाते हैं, उन्हें निष्फल करने
चेष्टा में यह दिनरात लगे रहते हैं । मोरीशस में भारतीयों के स
न्याययुक्त व्यवहार होने का प्रश्न बहुत दिनों से चल रहा है।
१८७२ ई.से, जब कि वहाँके प्रवासी भारतीयों की दशा की जाँच कर
के लिये पहिला कमीशन बैठा था, तभीसे यह प्रश्न चल रहा है लेकि
अभी तक इसका फ़ैसला नहीं हो पाया ! मोरीशस में रहनेवा
भारतीयों के लिये सहयोग समितियां और बेङ्क चलाने की जो व्य
वस्था की गई थी उसके विरुद्ध मोरीशस के गोरोंका दल नियमि
रूपसे आन्दोलन कर रहा है। सन् १९०९ ई. में जो कमीशन बैठ
था उसने अपनी रिपोर्ट में लिखा है "मोरीशस के छोटे छोटे हिन्दु
स्तानी प्लाण्टरों पर ही मोरीशस का भविष्य विशेष रूप से निर्भर है,
इस लिये उनकी आर्थिक दशा सुधारने के लिये कोआपरेटिव क्रैडिट
बेङ्क खोले जाने चाहिये।" भारतसरकार ने कमीशन के इस प्रस्ताव
को मान कर जाँच करने के लिये एक अँग्रेज अफ़सर को मोरीशस
भेजा था। उसने जाँच करने के बाद जो रिपोर्ट भेजी, उसीके अनुसार
सन् १९१३ ई. में इस द्वीप में इन बेङ्कों के स्थापित करने का कार्य
आरम्भ किया गया। इस बात को देखते ही मोरीशस के गोरे धनाढ्य
बहुत जलने लगे और उन्हों ने एक दल बनाकर अपने कारखानों के
पास के खेतों में उगने वाली बेंत की फ़सल पर अधिकार करने की
चेष्टा की। जुलाई सन् १९१४ ई. में इस द्वीपकी एक कोआपरेटिव
क्रैडिट सुसाइटी (सहयोग समिति) ने इस दल से अलग किसी
दूसरे कारखाने से बेंत की फ़सलका ठेका कर लिया, जिससे इस
दलवालों के उद्देश की सिद्धि न हो सकी। ऐसा होते ही सभी
नों के गोरे मोरीशस के सहयोग समिति-सम्बन्धी प्रस्तावों के

ौर उसकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध प्रयत्न करने लगे। इसका परिणाम यह आ कि सहयोग समिति के मेम्बरों को बड़ी हानि उठानी पड़ी।

यद्यपि मोरीशस की उन्नति वहाँ के भारतवासियों पर निर्भर है, ाापि मोरीशस के राज्य-कार्य्य में उन्हें कुछ भी अधिकार नहीं दिया ाया। अबतक मोरीशस-प्रवासी भारतवासी शान्ति के साथ इस स्थिति में रहे हैं, लेकिन भविष्य में यह स्थिति कायम नहीं रह सकती। और तो और सर फ्रान्क स्वीटनहम जैसे घोर एङ्गलो इण्डियन ने, जो पिछले रायल कमिशन में नियुक्त हुये थे लिखा था:—

"For the last three quarters of a century it has been found possible for the Colonial Government to regard the Indian as a Stranger among a people of European civilization—a Stranger who must indeed be protected from imposition and illtreatment and secured in the exercise of his legal rights, but who has no real claim to a voice in the ordering of the affairs of the colony. From what we have learnt during our enquiry *we very much doubt whether it will be possible* to continue this attitude. The Indian population in the colony has no natural inclination to assert itself in political matters, so long reasonable regard is paid to its desires on a few questions, to which it, not unreasonably, attaches importance."

अर्थात्—"पिछले ७५ वर्ष से मोरीशस सरकार यह समझती रही है कि मारीशस-प्रवासी हिन्दुस्तानी इस उपनिवेश में युरोपियनों के बीच में विदेशी हैं, जिन का बचाव छल कपट और बुरे बर्ताव से तो ज़रूर करना चाहिये, ताकि वह अपने न्यायपूर्ण अधिकारों का प्रयोग कर सकें, लेकिन इस उपनिवेश के मामलों को तैय करने में उनका कोई अधिकार नहीं है। हमें अपनी जाँच से जो कुछ बातें ज्ञात हुई उनसे हम कह सकते हैं कि भविष्य में मोरीशस सरकार इस नीति का अनुसरण

है । यह टोग भारतवासियों की बढ़ती देखकर जलते हैं और उनकी दशा सुधारनेके लिये जो यत्न किये जाते हैं, उन्हें निष्फल करनेकी चेष्टा में यह दिनरात लगे रहते हैं । मोरीशस में भारतीयों के साथ न्याययुक्त व्यवहार होने का प्रश्न बहुत दिनों से चल रहा है। सन् १८७२ ई. से, जब कि वहाँके प्रवासी भारतीयों की दशा की जाँच करने के लिये पहिला कमीशन बैठा था, तभीसे यह प्रश्न चल रहा है लेकिन अभी तक इसका फ़ैसला नहीं हो पाया ! मोरीशस में रहनेवाले भारतीयों के लिये सहयोग समितियां और बेङ्क चलाने की जो व्यवस्था की गई थी उसके विरुद्ध मोरीशस के गोरोंका दल निरन्तर रूपसे आन्दोलन कर रहा है। सन् १९०९ ई. में जो कमीशन बैठा था उसने अपनी रिपोर्ट में लिखा है " मोरीशस के छोटे छोटे हिन्दुस्तानी प्लाण्टरों पर ही मोरीशस का भविष्य विशेष रूप से निर्भर है, इस लिये उनकी आर्थिक दशा सुधारने के लिये कोआपरेटिव क्रेडिट बेङ्क खोले जानी चाहिये । " भारतसरकार ने कमीशन के इस प्रस्ताव को मान कर जाँच करने के लिये एक अँग्रेज़ अफ़सर को मोरीशस भेजा था । उसने जाँच करने के बाद जो रिपोर्ट भेजी, उसीके अनुसार सन् १९१३ ई. में इस द्वीप में इन बेङ्कों के स्थापित करने का कार्य आरम्भ किया गया । इस बात को देखते ही मोरीशस के गोरे धनाढ्य बहुत जलने लगे और उन्हों ने एक दल बनाकर अपने कारखानों के पास के खेतों में उगने वाली बेंत की फ़सल पर अधिकार करने की चेष्टा की । जुलाई सन् १९१४ ई. में इस द्वीपकी एक कोआपरेटिव क्रेडिट सुसाइटी (सहयोग समिति) ने इस दल से अलग किसी दूसरे कारखाने से बेंत की फ़सलका ठेका कर लिया, जिससे इस दलवालों के उद्देश की सिद्धि न हो सकी । ऐसा होते ही कारखानों के गोरे मोरीशस के सहयोग समिति

और उसकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध प्रयत्न करने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि सहयोग समिति के मेम्बरों को बड़ी हानि उठानी पड़ी।

यद्यपि मोरिशस की उन्नति वहाँ के भारतवासियों पर निर्भर है, थापि मोरिशस के राज्य-कार्य्य में उन्हें कुछ भी अधिकार नहीं दिया या। अबतक मोरिशस-प्रवासी भारतवासी शान्ति के साथ इस स्थिति रहे हैं, लेकिन भविष्य में यह स्थिति कायम नहीं रह सकती। और ो और सर फ्रान्क स्वीटनहम जैसे घोर एङ्गलोइण्डियन ने, जो पिछ- े रायल कमिशन में नियुक्त हुये थे लिखा था:—

"For the last three quarters of a century it has been found possible for the Colonial Government to regard the Indian as a Stranger among a people of European civilization—a Stranger who must indeed be protected from imposition and illtreatment and secured in the exercise of his legal rights, but who has no real claim to a voice in the ordering of the affairs of the colony. From what we have learnt during our enquiry we very much doubt whether it will be possible to continue this attitude The Indian population in the colony has no natural inclination to assert itself in political matters, so long reasonable regard is paid to its desires on a few questions, to which it, not unreasonably, attaches importance."

कर सकेगी, इस बात में हमें बहुत ज्यादा सन्देह है। मोरीशस के भारतवासियों के हृदय में वहाँ के राजनैतिक मामलों में दखल देनेकी कोई स्वाभाविक इच्छा तब तक नहीं होगी, जब तक कि कुछ प्रश्नों के विषय में उनकी जो इच्छायें हैं उन पर उचित ध्यान दिया जावे; क्योंकि इन प्रश्नों को वह बड़ा उपयोगी समझते हैं और उनका ऐसा समझना अनुचित भी नहीं है।"

वास्तव में अब तक मोरीशस सरकार की यह धींगाधींगी चल रही है और उसने मोरीशस-प्रवासी भारतीयों को कोई राजनैतिक अधिकार नहीं दिया, लेकिन अब आगे यह अन्यायपूर्ण नीति कायम नहीं रह सकती। जब से दक्षिण आफ्रिका के प्रवासी भाईयों ने 'सत्याग्रह' के संग्राम में विजय प्राप्त करके संसार को यह दिखला दिया है, कि दुनियाँ में भारतवर्ष भी कोई देश है और वहाँ के निवासी आत्मिक बलद्वारा बड़े बड़े अत्याचारों को दूर करवा सकते हैं, तबसे मोरीशसवालों के भी हृदय में कुछ जागृति उत्पन्न हो गई है। यह जागृति ही हमें इस बात का विश्वास दिलाती है कि मोरिशिस सरकार की यह लवड़धोंधों शीघ्र ही नष्ट होगी।

मोरीशस में जो हिन्दू या मुसलमान अपने धर्म के अनुसार विवाह करते हैं और उनकी सरकार से रजिस्ट्री नहीं कराते हैं वह कानूनकी निगाह में Unmarried बिन ब्याहे समझे जाते हैं और उनकी स्त्रियाँ घरेलू समझी जाती हैं! इस द्वीप की पिछली मर्दुमशुमारी की रिपोर्ट में लिखा हुआ है:—

" The large number of unmarried persons (85. 8 percent) is a consequence of the practice among the lower classes, both of the Indian and general population, of contracting religious marriages; that is to say they do not appear before the civil status officers and hence, under the civil Status Laws of Mauritius are not legally married. "

अर्थात्–" मारीशस में जो बहुसंख्यक मनुष्य यानी ८५. ८ फीसदी आदमी बिन ब्याहे हैं इसकी वजह यह है कि भारतवासियों में और जनसाधारण में नीच जाति के मनुष्यों में यह रिवाज़ है कि वह अपने धर्म के अनुसार विवाह करते हैं यानी वह सिविल स्टेट्स आफीसर के सामने आकर रजिस्ट्री नहीं कराते, इसी लिये मोरीशस के कानून के अनुसार इन लोगों की शादी न्याय्य नहीं समझी जाती।" इस दुर्दशापूर्ण स्थिति को शीघ्र ही दूर करने की आवश्यकता है।

मोरीशस में जो जो कष्ट भारतवासियों को सहने पड़े उनका वर्णन करने से एक लम्बी पोथी बन सकती है। मोरीशस के एक निर्भीक-हृदय अँग्रेज़ मजिस्ट्रेट ने, जिनका नाम कि मिस्टर बेटसन था, लार्ड सेण्डरसन के कमीशन के सामने जो कुछ कहा था, उससे अच्छी तरह प्रगट होता है कि किन किन कष्टों में भारतीय मज़दूरों को मोरीशस में काम करना पड़ा। मि. बेटसन ने कहा थाः—

"The system resolved itself into this–that I was merely a machine for sending people to prison.. ..There is absolutely no chance of the coolie being able to produce any evidence in his own favour; the other coolies are afraid to give evidence; they have to work under the very employer against whom they may be called upon to give evidence. Even if a coolie came before me with marks of physical violence on his body, it was practically impossible to convict the person charged with assault for want of corroborative evidence. It was a most painful sight to see people handcuffed and marched to prison in batches for the most trivial faults"*

अर्थात्–" इस प्रथाका निश्चय करके यही परिणाम होता था कि मैं आदमियों को जेलखाने भेजने के लिये एक कोरमकोर मशीन बना

* जी. ए. नेटीसन द्वारा प्रकाशित "ग. गोखलेकी स्पीचेज़" नामक पुस्तक का ११५ वाँ पृष्ठ.

दिया गया था। कुली के लिये इस बातकी संभावना नहीं है कि वह अपने पक्षके समर्थन में कुछ भी साक्षी पेश कर सके; दूसरे कुली लोग गवाही देनेसे डरते हैं, क्योंकि उन्हें उसी मालिक के विरुद्ध गवाही देने के लिये बुलाया जाता है, जिसके कि यहाँ उन्हें भी काम करना पड़ता है। यहाँ तक कि जब कोई ऐसा कुली, जिसके शरीर पर चोट के निशान लगे हुये हों, किसी मालिक पर अभियोग चलाने आता था तो भी उसके पक्ष को समर्थन करनेवाला कोई साक्षी न होनेके कारण अभियुक्त को दोषी सिद्ध करना वस्तुतः असम्भव हो जाता था। अत्यन्तही छोटे छोटे अपराधों के लिये झुंडके झुंड आदमियों को हथकड़ी डाले हुये जेलखाने को जाते देखकर मुझे बहुत ज्यादा खेद होता था।"

मि. बेटसन ने जो दीन दुखी भारतीय मजदूरों का पक्ष लिया इसका परिणाम यह हुआ कि मोरीशस की व्यवस्थापक सभा के प्रतिनिधियों ने उनकी नियुक्ति के विरुद्ध आन्दोलन करना शुरू किया। वहाँके स्वार्थी समाचार-पत्रोंने भी इन्हीं लोगों की हाँ में हाँ मिलाई। केवल यही नहीं, बल्कि यह लोग ऐसी ऐसी चालाकियों से काम लेने लगे कि अन्त में विरक्त होकर इस न्यायवान् सरल हृदय अंग्रेज़ माजिस्ट्रेट को इस उपनिवेश से विदाई ग्रहण करनी पड़ी।

मोरीशस सरकार के अत्याचार ज्यों के त्यों जारी हैं। अभी थोड़े दिन नहीं हुये जब उन्होंने पं. जयशंकर पाठक तथा ५ मुसलमानों को बिना कुसूर देश निकाला दे दिया था। * हमारी समझ में प्रत्येक मनुष्यका अधिकार है कि दण्ड पाने के पहिले वह दोषी सिद्ध किया जावे, पर मोरीशस के नादिरशाही राजकर्मचारियों को इस बात की क्या पर्वाह है!

---

* देखिये 'प्रताप' का १३ दिसम्बर १९१५ ई. का अङ्क।

सीलोन (सिंहल द्वीप)

सिंहल द्वीप को भारतवासी बहुत दिनों से जाते रहे हैं। पिछली १५ सालों में जानेवालों की संख्या और भी बढ़ती गई है। सन् १८८१ ई. से लेकर सन् १८९१ ई. तक जितने भारतवासी सीलोन को गये, उससे ६५ फ़ीसदी ज्यादा सन् १८९१ ई. से लेकर सन् १९०१ ई. तक गये। इसकी वजह यह है कि वहाँ चाय की खेती बढ़ती जाती है। अब रबड़ के उत्पन्न होने के कारण जाने वालों की संख्या में पहिले की अपेक्षा दस फ़ीसदी बढ़ती और भी हुई है। जानेवालों में अधिकांश मद्रास के दक्षिणी जिलों के होते हैं। मैसूर से ८०००, ट्रावनकोर से ७०००, कोचीन से २००० और बम्बई से ३००० मनुष्य प्रतिवर्ष सीलोन को जाते हैं।

सीलोन में भारतवासियों की क्या स्थिति है इस विषय में एक लेख मिस्टर कारूमुत्तु थियागराजा ने पिछली मार्च सन् १९१७ ई. के 'इण्डियन रिव्यू' में लिखा था। उसके मुख्य मुख्य अंशों का भावानुवाद यहाँ दिया जाता है।

"निवास स्थानः—१२ फ़ीट लम्बी, १० फ़ीट चौड़ी और ९ फ़ीट ऊँची कोठरियों में रहना पड़ता है। इन कोठरियों में केवल एक दरवाज़ा होता है, और खिड़की एक भी नहीं होती। दीवारें और फ़र्श मिट्टी के होते हैं और छत पर टीन पड़ी होती हैं। वैसे तो प्रत्येक कोठरी काम करने वाले चार कुलियों के रहने के लिये होती है, लेकिन कितनी ही जगहों में कोठरियों की संख्या कम होने की वजह से एक एक कोठरी में पाँच पाँच और छे छे आदमी मय अपने बालबच्चों के रहते हैं! पानी जहाँ का तहाँ जमा होता

रहता है, निकलने का रास्ता कोई नहीं। पाखाने बहुतही कम जगहों में बने हुये होते हैं। प्रायः कोठरियाँ दरख्तों के नीचे बनी होती हैं, हवा और रोशनी का कुछ भी ख्याल नहीं किया जाता। हाँ इन कोठरियों की दीवारें प्रायः तड़क जाती हैं, बस इन्हीं फटी हुई दीवारों में से हवा आती जाती रहती है।

स्वास्थ्यः—स्वास्थ्य भी इन लोगों का अच्छा नहीं, और इसप्रकार की कोठरियों में रहकर स्वास्थ्य अच्छा हो ही किस तरह सकता है! हर जगह आपको कितने ही बीमार कुली दीख पड़ेंगे। मिलेरिया और Anchylostomiasis का खूब प्रचार है। डाक्टर लन स्ल्यु के इन्सपेक्टिङ्ग मेडीकल आफ़ीसर हैं, वह एक कोठी के विषय में लिखते हैं "कुली लेन में एक भी ऐसा मनुष्य नहीं था जो कि Anchylostomiasis और साथही साथ मिलेरिया ज्वरसे पीड़ित न हो, दस्त, संग्रहणी और चर्म रोगों से भी कितने ही पीड़ित थे। कुलियों के स्वास्थ्य निरीक्षणका कार्य्य छोटे छोटे डाक्टरोंके सुपुर्द किया जाता है, जिन पर कि कुलियों का कुछ भी विश्वास नहीं होता। इन कम्पाउण्डरों में से दो चार को मैं ने भी देखा है और इसीलिये इन के विषयमें जो कुछ कुली लोग कहते हैं उस पर विश्वास करता हूँ। कुनैन ही इन लोगों की प्रिय औषधि है। यद्यपि यह नियम बना दिया गया है कि वह 'डाक्टर' हर तीसरे रोज़ कुली लेनों को आकर देखे, लेकिन वस्तुतः वह 'डाक्टर' सप्ताह में एक ही बार आता है, और चाहे वह सप्ताह में एक ही दिन आवे अथवा रोज़ही क्यों न आवे, इससे कुलियों के स्वास्थ्य की दशा में कोई फ़र्क़ नहीं पड़ सकता।" अगर कोई कुली बीमार पड़ जावे तो सुप्रिण्टेण्डेण्ट का कर्तव्य है कि उसे अस्पताल में भेज देवें, लेकिन प्रायः वह लोग बीमार कुलियों को अस्पताल को नहीं भेजते! यही

रण है कि बहुत सी इस्टेटों में कुलियों की मृत्युसंख्या अत्यन्त यंकर है। उदाहरणार्थ निर्वीटी गाला नामक कोठी में सन् ९१३ ई. में ९५० कुलियों में २२७ मर गये। सन् १९१६ ई. में डेकोया नामक ज़िले में ६० बच्चे पैदा हुये थे, उनमें से ४५ मर गये।

वेतन:-वेतन में चाँवल और रुपये दिये जाते हैं। चॉवल वहाँ पाँच रुपये से साढ़े पाँच रुपये का एक बुशैल आता है। प्रत्येक पुरुष को $\frac{1}{2}$ बुशैल, प्रत्येक स्त्री को $\frac{1}{2}$ बुशैल और प्रत्येक लड़के या लड़की को $\frac{1}{2}$ बुशैल चॉवल प्रति सप्ताह के हिसाब से मिलते हैं। यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि यह चाँवल वेतन का एक भाग हैं, अतएव यदि कोई कुली सप्ताह में पूरे दिन काम न करे तो उसके चाँवलों की मिक़दार घटा दी जाती है या बिल्कुल ही बन्द कर दी जाती है। जब कोई कुली बीमार पड़ जाता है तो उस बिचारे को भूखों मरना पड़ता है। यद्यपि यह नियम है कि बीमार आदमियों को चाँवल मुफ़्त में दिया जावे, लेकिन इस नियम का पालन बहुत कम होता है।

काम:-कुलियों को सबेरे ६ बजे से लेकर शाम के चार बजे तक लगातार काम करना पड़ता है। इस दस घंटे के काम में उन्हें बिल्कुल छुट्टी नहीं मिलती। इस लिये कुलियों को सबेरे से ५$\frac{1}{2}$ बजे खाना खाकर काम पर जाना पड़ता है और इसके बाद उन्हें शाम को सूर्य्य अस्त होने के बाद भोजन मिलता है। शाम के वक्त घर पर कुली पाँच साढ़े पांच बजे से पहिले नहीं लौट सकते।

कुलियों पर ऋण:-पुरुषों को सवा पाँच आने रोज़ के हिसाब से वेतन मिलता है, स्त्रियों को चार आने और लड़कों तथा लड़कियों को दो आने या तीन आने। साधारण कुली एक महीने में लगभग आठ रुपये कमा सकता है, स्त्रियाँ साढे छ रुपये और लड़के चार

या पाँच रुपये कमा सकते हैं। सो भी कब ? जब बीमार न पड़ें और लगातार २६ दिन तक काम करें तब चाँवलों के दाम इस में से कट जाते हैं, कुलियों पर जो उधार होता है, उसके भी चुकाने के लिये कुछ दाम काट लिये जाते हैं; इस प्रकार बिचारे कुली के पास कुछ दो या तीन रुपये रह जाते हैं। किसी भी स्टेट में एक भी ऐसा कुली नहीं है, जिस के उपर क़र्ज़ा न हो; फ़र्क़ यही है कि किसी कुली पर थोड़ा क़र्ज़ा होता है और किसी कुली पर बहुत। क़र्ज़ की रक़म प्रायः ५८) रुपये और २००) रुपये के बीच में होती है। शायद ही किसी कुली पर ५०) रुपये से कम उधार हो। साधारण कुलियों पर लगभग १००) रुपये क़र्ज़ा होता है। यह कर्जा कई तरह से हो जाता है; जिस समय कुली लोगों को कंगानी (आरकाटियों को दक्षिण भारत में कंगानी के नाम से पुकारते हैं) बहकाते हैं तब उन्हें कुछ रुपये उधार देते हैं, यह रुपये उस के नाम लिखे जाते हैं; जो चीज़ें कुली लोग कंगानियों से ख़रीदते हैं उन के दाम भी इसी क़र्ज़ में जुड़ जाते हैं; बीमारी की हालत में कुली लोग कंगानी से जो रुपये उधार लेते हैं, वह भी इसी क़र्ज़ में शामिल होते हैं! बिचारे कुली को कितनी ही जगह धोखा दिया जाता है; कंगानी लोग जो कुछ देते हैं उसका ड्योढ़ा दूना किताब में लिखते हैं। मद्रास यूनीवर्सिटी के एक विश्वसनीय ग्रेजुएट ने हम से कहा ' हम अपने दोस्तों के साथ एक इस्टेट में गये तो वहाँ हमें यह देखकर बड़ी हँसी आई कि एक कंगानी बिचारे कुलियों से कह रहा था कि आठ और पाँच मिलकर पन्द्रह होते हैं और कुली लोग इस बात को 'हाँ ठीक ' कह कर स्वीकृत कर रहे थे।' इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्यों कि जिन कुलियों को कंगानी लोग बहकाते हैं, वह बड़े सीधे सादे होते हैं। यह लोग कंगानियों से कपड़े तथा अन्य वस्तुयें उधार ख़रीदते हैं। कंगानी लोग

६ रुपये की चीज़ के दो रुपये और तीन रुपये तक ले लेते हैं । जब
ली लोग एक इस्टेट से दूसरी इस्टेटको काम करने जाना चाहते हैं
उन्हें एक आज्ञापत्र लेना होता है जिसे 'टण्डू' कहते हैं । इस
टण्डू' में यह लिखा होता है कि इतने रुपये का फ़र्ज़ चुकाने के
द ये कुली छोड़े जावेंगे । कुलियों का सरदार जिसे 'छोटा कंगा-
' कहते हैं, इस 'टण्डू' को लेकर दूसरी इस्टेट को जाता है । वहाँ
'टण्डू' को देकर रुपये उधार लाता है औरउस से यह कर्ज़ा चुकाता
। उधार के यह रुपये भी बिचारे कुलियों के पिछले हिसाब में जुड़ जाते
और इस प्रकार कुलियोंपर कर्ज़ा दिन पर दिन बढ़ता ही जाता है।
ब कोई स्त्री, पुरुष या लड़का, जिस पर रुपया उधार हो जावे, मर
ावे तो उसका कर्जा उस के जीवित रिश्तेदार के नाम लिख दिया
ाता है। यद्यपि कानून के अनुसार पति के कर्जे के लिये पत्नी उत्तर-
ाता नहीं है, लेकिन तब भी कंगानी लोग ऐसा करते हैं, और इस्टेटों
े सुप्रिण्टेण्डेण्ट लोग इस बात को देखी अनदेखी करते हैं ।

ऋण के इस नियम ने कुलियों की स्थिति को अत्यन्त खराब बना
दिया है। इसी नियम के कारण 'सीलोन' कुलियों के लिये काले
ानी की तरह बन गया है, क्योंकि इस से निस्सहाय कुलियों के लिये
भारतवर्ष का लौटना लगभग असम्भव है । चार पाँच आना रोज़
कमानेवाला कुली भला दो सौ रुपये का कर्जा कैसे चुका सकता
है ? अगर कोई पुरुष घर लौटना चाहे तो उसे अपनी पत्नी को,
और अगर कोई स्त्री घर लौटना चाहे तो उसे अपने पति को बतौर
ज़मानत के इस्टेट में छोड़ना पड़ता है।

कुली लोगों के लिये अदालत में जाना आसान नहीं । अगर कोई
कुली शिकायत करने के लिये इस्टेटों के बाहिर अदालत को जाते
हैं तो उन पर यह अभियोग चलाया जाता है कि वह काम छोड़कर

भाग गये और उन्हें सज़ा भुगतनी पड़ती है। इसी
लोग सुप्रिण्टेण्डेण्टों से अदालत में जाने की अ
जिसके विरुद्ध शिकायत करने अदालत में जान
माँगनी पड़ती है, कैसे अन्याय की बात है ? भल
दे सकता है ?

उत्सव मनाने, विवाह करने इत्यादि के लिये छु
हैं, लेकिन कुलियों के सिवाय और कोई आदमी इ
दूरों से बात चीत नहीं करने पाते।

दण्डः—ख़राब काम के लिये आधे दिन की
तनख्वाह कट जाती है। हुक्म न मानने और बु
लिये बेंत भी लगाये जाते हैं। जब कुली लोग जाने
(आज्ञा-पत्र) माँगते हैं तो उनमें प्रायः बेंत और ठ
हैं और वह ख़ूब पीटे जाते हैं!

वर्तावः—बहुत से मज़दूर काम छोड़ कर भा
भी इसका प्रमाण है कि उनके साथ अच्छा वर्ताव नह
अदालत में कुलियों पर जो अभियोग चलाये जाते है
बहुत ज्यादा है इससे भी सिद्ध होता है कि कुलियों
काम लिया जाता है। इनके सिवाय कुलियों के
कितनी ही कठिनाइयाँ पड़ती हैं। जब कुली अदालत
हैं तो वकीलों को देने के लिये उनके पास रुपये न
किसी कुली के चोट लगी हो और वह डाक्टर रे
सर्टीफ़िकेट माँगे तो डाक्टर साहब को रुपये देने प
देने के लिये कोई नहीं मिलता। Labour laws (मज़
अत्यन्त कठोर और अमानुषिक हैं। काम न कर स
के लिये कठोर कारावास का दण्ड भुगतना पड़ता है ।

सहृदय दयालु पुरुष भागे हुये कुलियों को शरण दे तो उसे भी कठोर कारावास का दण्ड दिया जा सकता है।

कंगानी लोगः–' चोर चोर मोसेरे भाई ' की कहावत के अनुसार दक्षिण के कंगानी और उत्तरी भारत के आरकाटियों में कोई भेद नहीं है। कंगानी असल में आरकाटियों का दूसरा नाम है। यह लोग भोले भाले आदमियों को बड़े छलकपट के साथ बहकाते हैं; पढ़े लिखे आदमी, शिक्षक लोग और क्लार्क भी इनके बहकाने में आ जाते हैं। प्रत्येक कुली पीछे कंगानी को पाँच रुपये से लेकर दस रुपये तक मिलते हैं। सीलोन गवर्मेण्ट ने जब एक कमीशन कुलियों के विषय में अनुसन्धान करने के लिये नियुक्त किया था, तब इस कमीशन के सामने एक सुप्रिन्टेण्डेण्ट साहब ने कहा था–' मैं कंगानी को पन्द्रह रुपये प्रति कुली पीछे देता था और यह पन्द्रह रुपये कुली के हिसाब में लिख लेता था।' इसके सिवाय इन कंगानियों को और भी आमदनी होती है। अगर एक इस्टेट में एक दिन सो कुलियों ने काम किया तो उनके कंगानीको फी कुली पीछे एक आना मिलेगा, इसप्रकार उस दिन सवा छै रुपये उसे मिल जावेंगे। कुलियों की नैतिक दुर्दशा का चित्र मैं नहीं खींच सकता, क्योंकि मैं एक भारतवासी हूँ और ऐसा करने में मुझे अत्यन्त लज्जा आती है। स्त्रियों की संख्या पुरुषोंकी संख्या की अपेक्षा बहुत कम है, और कुलियों में इसी कारण आपस में स्त्रियोंके लिये झगड़े हुआ करते हैं।"

मिस्टर कारुमुत्तु थियागराजा के उपर्युक्त लेख से पाठकों को सीलोनके मजदूरों की स्थिति ज्ञात हो गई होगी। मिस्टर N. E. Marjoribanks साहब I. C. S. और Mr. Ahmad Dambi Markkayar साहब ने भी–जो सीलोन और मलाया की कुली-प्रथाओं के विषयमें अनुस-

न्धान करने के लिये सरकार की ओर से भेजे गये थे—सीलोन के भ्रमण के नियम के विरुद्ध लिखा है। ये लोग लिखते हैं:—

"As a matter of fact the labourer is at liberty to leave his employment at a month's notice for any reasonable cause, but under the Kangani system whereunder the labourer is Kangany's debtor and the latter is in his turn indebted to the estate, it is not surprising that the labourer does not relise his legal position. That the Kangany considers that he has some proprietary right in the labourer and that the labourer accepts this position is abundantly clear from the manner in which the labourer is and allows himself to be taken from employer to employer and accepts the increasing load of debt thrust on him in this process."

अर्थात्— "वैसे तो मज़दूर को इस बात का अधिकार है कि एक महीने का नोटिस देकर किसी उचित कारण से अपनी नोकरी छोड़ दे, लेकिन कंगानी प्रथा की वजहसे (जिसमें कि मज़दूर कंगानीका कर्ज़दार होता है और कंगानी इस्टेट का कर्ज़दार) यदि मज़दूर इस बातको नहीं समझता कि कानून के अनुसार मेरी स्थिति क्या है, तो इस में आश्चर्य की कौन बात है!

कंगानी समझता है कि मज़दूर के ऊपर मेरा स्वाम्याधिकार है। जिस ढङ्ग से कंगानी मज़दूरों को एक मालिक से दूसरे मालिक के पास ले जाते हैं और मज़दूर भी इसका विरोध नहीं करते, तथा अपने ऊपर पड़ने हुये कर्ज़ को मञ्जूर कर लेते हैं, उससे यह बिल्कुल स्पष्ट है कि मज़दूर अपनी इस स्थिति को स्वीकृत कर लेते हैं।"

'Ceylon Morning Leader' नामक पत्र ने अपने ११ मई सन् १९१९ ई. के अङ्क में सीलोन की कुली प्रथा के विषय में एक अच्छा लेख लिखा था। सुन लीजिये वह क्या कहता है—" जब कभी जाँच करने के लिये कमीशन नियुक्त होते हैं तो जाँच करने के बाद वह प्रायः यही लिखते

है कि 'प्लाण्टर लोग मजदूरों के साथ बहुत अच्छा वर्ताव करते हैं'। हमको सुपिरिटेण्डेण्ट लोगों से ज्ञात हुआ कि कुली लोगों ने इस ।१९१५ में कोई शिकायत नहीं की।' विचारे कुली लोग शिकायत करही किस तरह सकते हैं ? प्रथम तो उन लोगों को सुपिरिटेण्डेण्ट के पास जाने की आज्ञा ही नहीं मिलती, दूसरे यदि आज्ञा मिल भी जावे तो सुपिरिटेण्डेण्ट साहब कुलियों की भाषा ही नहीं समझते, इस कारण उन्हें बाहिर निकाल देते हैं। ऐसी दशा में शिकायतें हो ही कहाँ से सकती हैं। इस लिये शिकायतों के अभाव से हम यह नतीजा कदापि नहीं निकाल सकते कि कुलियों के साथ अच्छा वर्ताव किया जाता है। उदाहरणार्थ सन् १९१२ ई. में निविटीगाला नामक इस्टेट में ९५० कुलीयों में २२७ कुलीयों की मृत्यु हुई। इन २२७ ने कोई शिकायत नहीं की, लेकिन वह मर तो गये ! ! शिकायतों के न होने से क्या कोई यह सिद्ध कर सकता है कि इन लोगों की मृत्यु नहीं हुई ? अब कुलीयों के वेतन के विषय में लीजिये। वह कितने वेतन की आशा पर सीलोन में आये थे, और अब उन्हें क्या मिलता है ?

तुकाराम लक्ष्मण भारतवर्ष में जुलाहे का काम करके तेरह रुपये महीना कमाता था। सीलोन में उसे एक रुपया पाँच आना से लेकर दो रुपये महीने तक मिलता है। पार्वती को जिसका कि पति एक यूरोपियन के यहाँ बटलर था और २५) रु. महीना कमाता था—कंगानी ने बतलाया था कि तू १२) रु. महीना बड़ी आसानी के साथ कमा सकेगी और तू स्त्रियों के ऊपर सरदारिन बना दी जावेगी, लेकिन पार्वती अब एक रुपया या आठ आना महीना कमाती है ! ! असना नामक लड़के का पिता भारतवर्ष में पाँच सौ रुपये से लेकर एक हज़ार रुपये मासिक कमाता था। असना को बहकाते समय कंगानी ने कहा कि तुमको सीलोन में १६) रुपये से लेकर तीस रुपये

तक मासिक वेतन मिलेगा, और खुराक अलग। इस धोखे में आ असना ने अपने बाप के तीन सौ रुपये चुरा लिये और कंगानी साथ चला आया। यह तीन सौ रुपये कंगानी ने उड़ा लिये अब इस लड़के को १) रु. से लेकर १) रु. ५ आना महीने का मिल जाता है। तुकाराम बलिया जुलाहे का काम करके भारत में १६) रुपये से लेकर २५) रु. मासिक कमाता था। उससे कंगानी ने कहा कि तुम को सीलोन में तीस रुपया महीना मिलेगा और सिर्फ दो प्रहर तक काम करना पड़ेगा। अब उसे एक रुपया ५ आना या एक रुपया सात आना पाँच पाई मासिक मिलते हैं। आजतक उसे दो रुपये से ज्यादा कभी नहीं मिले............हाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिये कि इस वेतन के सिवाय चाँवल भी मिलते हैं।"*

कितने ही कुली बिचारे भूखों मरते हैं। Mr. A. P. Boon १४ जनवरी सन् १९१४ ई. के एक पत्र में लिखते हैं:–

"Forty coolies stated prostrating before us, saying they were starving......the coolies were obviously being starved Many of them were fit only for hospital. Dr. Perera told me that from all sides he was hearing similar reports......they were unable to resist such diseases (hook worm) owing to being underfed......Four deaths occured from starvation. From what I saw I can believe it."

अर्थात्–"चालीस कुलियों ने हमारे सामने पैरों पड़कर कहा कि हम लोग भूखों मर रहे हैं। यह बात स्पष्टतया प्रगट होती थी कि वह लोग क्षुधा से अत्यन्त पीड़ित थे। बहुत से तो उनमें बस अस्पताल ही जाने के योग्य थे। डाक्टर पेरेरा ने हम से कहा कि हमें भी चारों

* पुरुषों, स्त्रियों और बच्चों को जो चाँवल १ महीने में मिलते हैं, उनकी कीमत क्रमानुसार ४½ रुपये, ३½ रुपये और २½ रुपये होती है।

से इसी प्रकार की बातें सुनाई पड़ती हैं। वह लोग Hook-worm
ादि रोगों के आक्रमण से बचने में असमर्थ थे, क्योंकि उन्हें मर-
भोजन नहीं मिलता था...........अनाहार की वजह से
आदमी मर गये। जो कुछ मैंने देखा उससे मैं इस बात पर
ास कर सकता हूँ"।

क्या अत्याचार सदा गुप्त रह सकते हैं? अब तक सीलोन के गोरे
टर लोग बिचारे निस्सहाय कुलियों पर मनमाने ज़ुल्म किया
े थे, और किसी को इस बात की ख़बर भी नहीं होती थी।
न्तु क्या अत्याचार सदा गुप्त रह सकते हैं?

रमात्मा न्यायकारी है और वह दीन दुखियों की पुकार कभी
भी अवश्य सुनता है। अब वह ज़माना आ गया है कि भारतवासी
े भाइयों की दुर्दशा पर ध्यान देने लगे हैं और अपनी अत्याचार-
त भगिनियों की रक्षा के लिये आन्दोलन करने लगे हैं। यह देखकर
ेन के स्वार्थी प्लाण्टरों के पेट में खलबली मच गई है। ९ फर्वरी
१९१७ ई. को केण्डी में इन प्लाण्टरों की एक सभा हुई थी,
ं एक प्लाण्टर ने जिस का कि नाम Mr. J. Graeme Sinclair
कहा था:—

It is most unjust that agitators should be allowed to
e to Ceylon, settle in our midst, interfere with our labour,
then write untruthful letters, about the result of their
rference to certain papers which are only too glad to
ive them."

र्थात्—"यह अत्यन्त ही अन्यायपूर्ण बात है कि आन्दोलन करने-
को बिना रोकटोक के सीलोन में आने दिया जाता है, वह लोग
बीच में रहते हैं, हमारे मज़दूरों के काम में दख़ल देते हैं और

अपनी इस दस्तनदाज़ी के परिणाम के बारे में वे झूटे पत्र अख़बारों में छपवाते हैं और अख़बारवाले भी बड़ी ख़ुशी के साथ उन्हें छाप देते हैं। ”

मिस्टर सिनक्लेयर साहब के इस करुणाजनक कथनपर हमें दया आती है, लेकिन हमें आशा नहीं कि आन्दोलन करनेवालों का दिल इस कथन से पिघल जावेगा; क्यों कि वह लोग देशभक्त हैं और देशबन्धुओं की दशा सुधारने का बीड़ा उन्होंने उठाया है, इस वजह से वह लोग मिस्टर सिनक्लेयर के इस कथन को अवश्यमेव दोषपूर्ण और अन्यायपुक्त समझेंगे। शायद यही ख्याल कर के मिस्टर सिनक्लेयर ने इन Agitators को एक जबरदस्त धमकी भी दी थी; आपने कहा था:—

“ As chairman of this Association, I mean to do all in my power to bring to book the writers of these letters and those who back them up in the press, without any effort to find out if the statements made are true or not. ”

अर्थात्—“ इस सभा के प्रधान की हैसियत से मैं इन पत्रलेखकों तथा समाचारपत्रों में उनकी सहायता करनेवालों को जो कभी भी इस इस बात के जानने का प्रयत्न नहीं करते कि इन पत्रों में लिखी हुई बातें सत्य हैं या असत्य, यथाशक्ति दण्ड दिलाने का प्रयत्न करूँगा। ”

सिनक्लेयर साहब और उनके साथी चाहे कुछ ही क्यों न करें, अब सीटोन के मज़दूरों की दशा शिक्षित भारतवासियों को ज्ञात हुये विना नहीं रह सकती।

अत्याचारों के दृष्टान्त

अब हम यहाँ पर कुछ उदाहरण देते हैं, जिन से सीलोन की स्वतंत्र मज़दूरी (!) की वास्तविक स्थिति और भी अधिक स्पष्ट हो सकती
। सीलोन में प्रायः खेतों पर मज़दूरों से काम लेने के लिये अफ़गान
खे जाते हैं। यह मोटे ताज़े मुस्टंडे अफ़गान बिचारे मज़दूरों की नाक
ं दम कर देते हैं। कुछ दिन हुये, एक अफ़गान पर अदालत में इस
ात का अभियोग लगाया गया था कि उसने एक मज़दूरनी स्त्री
ो जान से मार डाला। इस अभियोग का हाल लिखते हुये सीलो-
ीज़ 'Ceylonese' नामक पत्र ने लिखा था:—

"According to Muniyamma, an eye-witness, the accused ome up with a gun to the coolie lines and asked the deceased mong others, why she was not at work. The woman replied he would go to work the next day. The accused then hot her dead, and ran off, but was soon secured by some coolies and handed over to the authorities. Karupai, Soccala, Naran and Moriamma, all of them eye-witnesses, told much the same story, and their simple manner of telling it caused it is said, some merriment in Court, although we fail to see any sense in the derision. After hearing evidence, the jury brought in a verdict of not guilty of murder, but, guilty of a rash and negligent act......His Lordship thoughtfully enquired of Counsel how much the accused could pay as a fine, and on learning he received thirty rupees a month, imposed a penalty of one hundred rupees, an amount which was promtly paid up by a number of Afghan spectators, friends and fellow-tribesmen of the accused in court." *

* देखिये 'बम्बई क्रानीकल' ६ फर्वरी सन् १९१७ ई.

अर्थात्–"मुनियम्मा नामक एक प्रत्यक्षदर्शी साक्षी ने कहा कि अभियुक्त एक बन्दूक लिये हुये कुली लेन में आया और कितने ही आदमियों के साथ इस मृत्युगत स्त्री से पूँछा 'तू आज काम पर क्यों नहीं आती ?' उस स्त्री ने जवाब दिया 'मैं कल काम पर जाऊँगी।' बस इतने ही पर अभियुक्त ने उसपर गोली चलाकर उसे मार डाला और स्वयं भाग गया, लेकिन कुछ कुलियों ने उसे पकड़ लिया और सरकारी कर्मचारियों के हवाले कर दिया। कारुप्पी, सोकम्मा, नागन और मीर अम्मा ने, जो चारों प्रत्यक्षदर्शी थे, यही बात अदालत के सामने ज्यों की त्यों कही। ऐसा सुना जाता है कि जिस सीधे सादे ढङ्ग से इन लोगों ने इस बात को बयान किया उस से अदालत में लोगों को कुछ हँसी आई, लेकिन हमारी समझ में नहीं आता कि इसमें उपहास की कोनसी बात थी! साक्षी सुनकर जूरी लोगों ने फ़ैसला दिया कि यह अफ़ग़ान हत्या का अपराधी नहीं है, बल्कि इसका यह अपराध है कि इसने एक अविवेक-पूर्ण और असावधानी का कार्य्य किया है!......श्रीमान् जज महोदय ने वकील से पूँछा कि अभियुक्त कितना रुपया जुर्माने में दे सकता है! जब जज साहब को ज्ञात हुआ कि अभियुक्त तीस रुपये मासिक पाता है, उन्हों ने उसे सौ रुपये जुर्माने का दण्ड दिया!! न्यायालय में इस अफ़ग़ान के कितने ही जातिबन्धु और मित्र लोग खड़े हुये थे, उन्हों ने मिलकर फ़ौरन ही यह रुपया अदालत में दाखिल कर दिया।"

इस पर टिप्पणी करते हुये 'बम्बई क्रानीकल' ने लिखा था:—

"The question naturally arises whether the life of a woman labourer is so cheap that the murderer should be let off by a court of justice with a paltry fine of a hundred rupees"

अर्थात्–"स्वभावतः यह प्रश्न उठता है कि क्या एक मजदूरनी स्त्री के जीवन का मूल्य इतना कम है कि हत्यारे को न्यायालय से

केवल सौ रुपये जुर्माने का छोटा सा दंड मिलता है और वह छोड़ दिया जाता है ! " देखें सीलोन सरकार इस प्रश्न का क्या उत्तर देती है !

अब दूसरा उदाहरण लीजिये-एक इस्टेट के सुप्रिण्टेण्डेण्ट ने " ओमियन " नामक एक ६० वर्ष के बूढ़े कुली पर यह अभियोग लगाया कि वह २२ फर्वरी सन् १९१७ ई. के रोज़ विना छुट्टी के और विना किसी उचित कारण के काम छोड़ कर भाग गया था। अभियुक्त के विरुद्ध असिस्टेण्ट सुप्रिण्टेण्डेण्ट साहब ने यह भी कहा था कि यह बूढ़ा कुली एक शहर में पानी खींचता हुआ देखा गया था। अभियुक्त ने अपने पक्ष में कहा " मैं एक बूढ़ा आदमी हूँ, मुझे गठिया की बीमारी है इस लिये मेरे पैरों और हाथों में दर्द होता है। मैं जब शहर को धनियाँ और लाल मिर्च खरीदने गया तो मेरे पास दाम कम थे। दुकानदार ने मुझ से कहा ' तुम पर हमारे दाम चाहिये, इस लिये तुम इसके बदले में हमारे यहाँ पानी भर दो। जरूरी चीजों के खरीदने के लिये मुझे उसके यहाँ पानी भरना पड़ा। असिस्टेण्ट सुप्रिंटेंडेंट साहब ने मेरे सिर और नाक में बहुत से घूँसे लगाये थे, इस लिये मेरे बहुत खून भी बहा था। यह देखिये जो कपड़े मैं पहिने हुये हूँ, उन पर उसी खून के धब्बे हैं। " जब इस कुली से पूँछा गया कि तुम अपराधी हो या नहीं तो उसने जवाब दिया कि " मैं अपराधी हूँ, क्यों कि मैं अदालत में लाया गया हूँ। " जो कुली काम छोड़कर चले जाते हैं, वह प्रायः यही कहते हैं। वह भोले भाले कुली यही समझते हैं कि जो अदालत में लाया जाता है-चाहे वह अन्याय से लाया गया हो या न्याय से-वह अपराधी ही है। इस बूढ़े कुली को अदालत से सात दिन का सपरिश्रम कारावास का दण्ड दिया गया। *

* देखिये दूसरी मार्च सन् १९१७ ई. का ' बम्बई क्रानीकल '

एक तीसरा उदाहरण और लीजिये—एक इस्टेट में चार नौकर थे; वेलू और उसकी स्त्री सेलमा तथा गोविन्द स्वामी और उ माँ संगामा। इन चारों ने एक वकील के द्वारा सुपिन्टेण्डेण्ट को महिने के नोटिस दिये कि हम नौकरी छोड़ना चाहते हैं। ज्यों सुपिन्टेण्डेण्ट साहब को नोटिस मिले त्योंही इन लोगों को जो ए के खेतों में काम करते थे, नाली खोदने का कठिनतर काम दि जाने लगा। सब कुलियों को प्रति सप्ताह के प्रारम्भ में चाँवल दिं जाते हैं। इन बिचारों के यह चावल बन्द कर दिये गये। अब वह इस्टेट में भूखों मरने लगे। इसके बाद उनकी बेइज्जती की गई जिन कुली लोगों ने उनकी दुर्दशा पर दया कर के इन्हें भूखों मर देखकर कुछ चाँवल दिये थे, उनको इस बात की धमकी दी गई कि तुम पर मुकद्दमा चलाया जावेगा।

जब वेलू ने देखा कि अब हम लोग भूख के मारे मरे जाते तो वह कई मिल दूर पर एक बाजार में गया और एक सहृदय हि न्दुस्तानी सौदागर के चरणों में गिर पड़ा। इस सौदागर ने दया क के उसे कुछ चाँवल तथा अन्य चीजें दे दीं। यह इन चीजों को कु लैन में ले आया। दूसरे दिन सुबह को इन लोगों को काम पर जा की आज्ञा मिली। इन्हों ने उस माँगकर लाये हुये चाँवल वगैरा के कोठरी के भीतर रख दिया और बाहिर से ताला लगा दिया। जब काम पर से यह चारो वापिस लौटे तो देखते क्या हैं कि दरवाजा टू पड़ा है और कोई चाँवल इत्यादि सब वस्तुयें उठा ले गया है! उस समय वेलू भूख के मारे अधमरा हो रहा था। इसी दशा में वह मील पैदल चलकर एक वकील के यहाँ गया और वहाँ से उसने ए नायब गवर्नमेंट एजेण्ट रजपुरा को और एक पुलिस मजिस्ट्रे पुग को भेजा।"

इसी को प्लाण्टर लोग Free labour 'स्वतंत्र मजदूरी' बतलाते हैं और यह झूठी डींग मारते हैं कि इस में बड़ी स्वतंत्रता है; क्यों कि कुली बड़ी आसानी के साथ एक महीने का नोटिस देकर अपनी नौकरी छोड सकता है।

सीलोन सोशल सर्विस लीग (सिंहल समाजसेवा समिति) ने एक प्रार्थनापत्र सीलोन की सरकार को ११ दिसम्बर सन् १९१६ ई. को भेजा था, उसमें उन्हों ने वहाँकी 'कुली प्रथा' के कितने ही दोष बतलाये थे। इस प्रार्थनापत्र में उन्होंने लिखा था:—

(१) सिंहल-समाज-सेवा-समिति को यह जानकर बड़ा खेद हुआ कि सीलोन की सरकार बच्चों और स्त्रियों को मजदूरी सम्बन्धी अपराधों के लिये कारावास के दण्ड से पूर्णतया मुक्त नहीं कर सकती है। इस बात में सीलोन फिजी, ब्रिटिश गायना, जमैका और ट्रिनीडाड से भी पीछे है।

(२) काम छोड़कर भागी हुई स्त्रियों को पकड़ने के लिये जो वारंट निकाले जाते हैं, वह पुरुषोंके सुपुर्द किये जाते हैं। इस में बिचारी स्त्रियों की स्थिति बड़ी संकटपूर्ण हो जाती है। गवर्मेण्ट को ऐसी आज्ञा निकालनी चाहिये कि किसी स्त्री को पकड़ने, एक जगह से दूसरी जगह हटाने और अपने अधीन रखने के लिये कोई पुरुष नहीं भेजा जावेगा, जब तक कि जेल विभाग की कोई बड़ी बूढ़ी स्त्री उसके साथ न हो।

(३) इस्टेटों के सुप्रिण्टेण्डेण्ट लोग जो विज्ञापन भागे हुये कुलियों को पकड़ने के लिये छपवाते हैं, उनसे इन स्त्रियों की स्थिति और भी विपत्तजनक हो जाती है। 'मद्रास टाइम्स' नामक एक पत्र ने जो मद्रास के अँग्रेजों द्वारा संचालित होता है, इन विज्ञापनों के बारे में लिखा था:—

अर्थात्—"यह विज्ञापन हमें माइकमोर बड़े ज़ोर के साथ उन
की गुलामी के उन पुराने दिनों की याद दिलाते हैं, जब कि भगे
गुलामों को पकड़ने के लिये इसी ढङ्ग से और लगभग ऐसे ही
में छिपे हुये विज्ञापन—जैसे कि आजकल सीलोन में भागे हुये कु
को पकड़ने के लिये छपाये जाते हैं—समाचार पत्रों में प्रका
किये जाते थे।

(४) समिति को ऐसा कोई क़ायदा नहीं मालूम जिसके अ
सार एक आदमी को, जिसका इस्टेट से कोई सम्बन्ध न हो, बि
वारंट के एक स्त्री या पुरुष मज़दूर को पकड़ने का अधिकार दि
जा सकता है। लेकिन इस्टेटों के सुपरिण्टेण्डेण्ट लोग खुल्लमखुल्ल
क़ानून के इस उल्लंघन को देखते हुये भी सहन करते हैं। वास्त
में वर्तमान शासन प्रणाली के लिये यह बड़ी कलङ्कर बात है।"

इन सब दोषों के होते हुये सीलोन की कुली-प्रथा क्या 'स्व
मज़दूरी' के नाम से पुकारी जा सकती है?

एक बार कोलम्बो में ब्रिस्टल के प्रोफ़ेसर जी. एच. लियोना
साहब का व्याख्यान 'समाज-सेवा का आदर्श' विषय पर हुआ
था। इस व्याख्यान में सभापति का आसन सर पी. अरुणाचलम ने
ग्रहण किया था। व्याख्यान के बाद सभापति ने कहा था—

"But there is one important question which has engaged its attention and in which we earnestly ask the cooperation of Professor Leonard and his friends in England. It will be surprise to him to learn that in this premier crown colony o the Empire, after over a hundred years of British ...

bour system, which in some of its aspects is little better
n organized slavery, though it lurks under the name
e labour, and that breaches of civil contracts are
able and are daily punished with imprisonment with
abour. He will be still surprised and shocked to learn
nder this system even women and children are sent to
th hard labour."

ांत्–"लेकिन एक बड़ा उपयोगी प्रश्न है जिस के हल करने में
समाज सेवा समिति लगी हुई है और जिस के लिये हम बड़ी श्रद्धा
प्रोफेसर लियोनार्ड तथा उन के इङ्गलैण्ड वासी मित्रों की सहा-
चाहते हैं, प्रोफेसर साहब को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि
य के इस मुख्य राजकीय उपनिवेश में सौ वर्ष से अधिक काल
टिश राज्य होने पर भी एक ऐसी मजदूरी की प्रथा प्रचलित है
संगठित गुलामी की प्रथा से किसी हालत में भी अच्छी नहीं
ह गुलामी की प्रथा 'स्वतंत्र मजदूरी' के नाम भीतर छिपी हुई है
स में ठेके की शर्तों को पूरा न कर सकने के लिये कठिन सप-
कारावास के दण्ड देने का नियम है और नित्यप्रति कितनेही
मियों को इसी अपराध के लिये जेल खानोंमें सख्त सजा भुगतनी
हैं। प्रोफेसर साहब को और भी आश्चर्य और क्षोभ होगा जब
आप यह सुनेंगे कि इस प्रथा के नियमों के अनुसार स्त्रियों औ
को भी कठोर कारावास का दण्ड दिया जाता है।"

'Towards Democracy' नामक प्रसिद्ध पुस्तक के लेखक जगत्
मि. एडवर्ड कारपेण्टर साहब ने एक पुस्तक में जिसका वि
'From Adam's Peak to Elephanta' है, सीलोन की कुली
के विषय में दो चार बातें लिखी हैं। चाय के खेतों में काम
वाले कुलियों की शोकोत्पादक दुर्दशा को देखकर आप क
द्रवित हो गया था। देखिये वह कैसे हृदयद्रावक शब्दों में इस
की निन्दा करते हैं:—

" *These* (*advertisements*) can not *but* remind *us forcibly* of the *old slavery days* in *America* when run-away slaves were advertised *for* in the newspapers much in the same style and even in much, the same terms as these advertisement *for* bolters. "

अर्थात्–"यह विज्ञापन हमें अवश्यमेव बड़े ज़ोर के साथ अमेरिका की गुलामी के उन पुराने दिनों की याद दिलाते हैं, जब कि भागे हुये गुलामों को पकड़ने के लिये इसी ढङ्ग से और लगभग ऐसे ही शब्दों में लिखे हुये विज्ञापन–जैसे कि आजकल सीलोन में भागे हुये कुलियों को पकड़ने के लिये छपाये जाते हैं—समाचार पत्रों में प्रकाशित किये जाते थे।

(४) समिति को ऐसा कोई क़ायदा नहीं मालूम जिसके अनुसार एक आदमी को, जिसका इस्टेट से कोई सम्बन्ध न हो, बिना वारंट के एक स्त्री या पुरुष मज़दूर को पकड़ने का अधिकार दिया जा सकता है। लेकिन इस्टेटों के सुप्रिण्टेण्डेण्ट लोग खुल्लमखुल्ला क़ानून के इस उल्लंघन को देखते हुये भी सहन करते हैं। वास्तव में वर्तमान शासन प्रणाली के लिये यह बड़ी कलङ्कर बात है।"

इन सब दोषों के होते हुये सीलोन की कुली-प्रथा क्या 'स्वतंत्र मज़दूरी' के नाम से पुकारी जा सकती है?

एक बार कोलम्बो में बिस्टल के प्रोफेसर जी. एच. लियोनार्ड साहब का व्याख्यान 'समाज-सेवा का आदर्श' विषय पर हुआ था। इस व्याख्यान में सभापति का आसन सर पी. अरुणाचलम ने ग्रहण किया था। व्याख्यान के बाद सभापति ने कहा था—

" But there is one important question which has engaged its attention and in which we earnestly ask the cooperation of Professor Leonard and *his friends* in England. It *will* be a *surprise* to *him to learn* that *in this premier crown colony* of the Empire, after over a hundred years of British rule, there

our system, which in some of its aspects is little better
organized slavery, though it lurks under the name
e labour, and that breaches of civil contracts are
ble and are daily punished with imprisonment with
bour. He will be still surprised and shocked to learn
der this system even women and children are sent to
th hard labour."

तिं-" लेकिन एक बड़ा उपयोगी प्रश्न है जिस के हल करने में
समाज सेवा समिति लगी हुई है और जिस के लिये हम बड़ी श्रद्धा
प्रोफेसर लियोनार्ड तथा उन के इङ्गलैण्ड वासी मित्रों की सहा-
ाहते हैं, प्रोफेसर साहब को यह सुनकर आश्चर्य्य होगा कि
य के इस मुख्य राजकीय उपनिवेश में सौ वर्ष से अधिक काल
टश राज्य होने पर भी एक ऐसी मज़दूरी की प्रथा प्रचलित है
संगठित गुलामी की प्रथा से किसी हालत में भी अच्छी नहीं
ह गुलामी की प्रथा 'स्वतंत्र मजदूरी' के नाम भीतर छिपी हुई है
स में ठेके की शर्तों को पूरा न कर सकने के लिये कठिन सप-
कारावास के दण्ड देने का नियम है और नित्यप्रति कितनेही
ियों को इसी अपराध के लिये जेल खानोंमें सख्त सज़ा भुगतनी
हैं। प्रोफेसर साहब को और भी आश्चर्य्य और क्षोभ होगा जब
ाप यह सुनेंगे कि इस प्रथा के नियमों के अनुसार स्त्रियों और
को भी कठोर कारावास का दण्ड दिया जाता है।"

Towards Democracy' नामक प्रसिद्ध पुस्तक के लेखक जगत्-
मि. एडवर्ड कारपेण्टर साहब ने एक पुस्तक में जिसका कि
'From Adam's Peak to Elephanta' है, सीलोन की कुली-
के विषय में दो चार बातें लिखी हैं। चाय के खेतों में काम
ाले कुलियों की शोकोत्पादक दुर्दशा को देखकर आप का
द्रवित हो गया था। देखिये वह कैसे हृदयद्रावक शब्दों में इस
की निन्दा करते हैं:—

"परन्तु यह कुली-प्रथा, व्यापारिक प्रथा की भाँति ही [illegible]
कुत्सित और पापमय है। निस्सन्देह अनेक अवस्थाओं में यह [illegible]
जनक पापों के लिये एक पर्दे का काम देती है। तामिल कुली-[illegible]
पुरुष और बच्चे-दलों के दल भारत से आते हैं। कुलियों को [illegible]
लाने और जल तथा थल के मार्ग से उन्हें उनके लक्ष्य तक पहुँ[illegible]
के लिये एक ऐजेण्ट भेजा जाता है। जब वह चाय की कोठी में पहुँ[illegible]
हैं तो उनमें से प्रत्येक को पता लगता है कि मार्गव्यय के कारण
कोठी का इतने रुपयों का ऋणी है। औसत मज़दूरी ६ आने प्रति[illegible]
है, पर काम में शिथिल न होने देने के मिस से उनके लिये [illegible]
समय के लिये विशेष काम नियत कर दिया जाता है।

यदि वह उतना काम उतने समय में न करें तो उन्हें केवल [illegible]
मज़दूरी मिलती है। अतः यदि मनुष्य सुस्त या आलसी या अस[illegible]
हो तो उसे तीन आना प्रतिदिन की आशा करनी चाहिये। पाठ[illegible]
अनुमान कर सकते हैं कि उनका ऋण घटने के स्थान में प्रति[illegible]
बढ़ता रहता है। चाय की कोठी गाँव या नगर से बहुत दूर परे [illegible]
पर होती है, इसलिये यही चाय की कोठी ऐजेण्ट बनकर [illegible]
कुलियों के पास चावल तथा जीवन की अन्य आवश्यक वस्तु[illegible]
बेचती है। अभागे मनुष्य किसी अन्य स्थान से नहीं खरीद सकते।
एक युवक टीप्लाण्टर ने मुझे कहा "वे ऋणी होना पसन्द करते
हैं और जबतक उनपर इतना ऋण न हो जाय जितना देने की
कम्पनी उन्हें आज्ञा दे सकती है, तब तक वह समझते हैं कि हम
अच्छा काम नहीं करते!" टी-प्लाण्टर बहुत सुकुमार था और शायद
अपने कथन का अनुभव नहीं करता था। पर हा! कैसे नैराश्य
[illegible] है! जब ऋण से मुक्त होने की सब आशायें जाती
[illegible] सबसे अच्छी बात मनुष्य यही कर सकता है कि जितना
[illegible] लिए सके ले ले! सप्ताह की समाप्ति पर [illegible]

मुंह नहीं देखता, उसके चौंवल इत्यादि में वह सब कट इसलिये उसका ऋण थोड़ासा और बढ़ जाता है; यदि वह वे तो उसकी तलाश होती है और उसे तीन मासका कारा-लता है। वह गुलाम है और आजन्म उसे गुलाम रहना पर उसका जीवन बहुत लम्बा नहीं होता, क्योंकि निकम्मा कपड़ों की कमी, पर्वतों के कुहरे और शीतल पवन शीघ्र ही के रोग पैदा कर देते हैं और दुर्बलकाय तैमिल कुली आसानी से ता है। टी-प्लाण्टरने कहा "मैं मानता हूँ कि तीन आना दैनिक कम वेतन है, पर आश्चर्य्य की बात है कि यह लोग इतने थोड़े र्वाह कर सकते हैं। उनके दुर्बल शरीरों को देखकर वस्तुतः र्य होता है कि वह जीते कैसे हैं।" शोक पर उनके घर पर अवस्था इस से भी बत्तर है। जब वह भारत से आते हैं तब न पर दृष्टि डालिये।"*

क ओर तो ब्रिटिश सरकार दूसरों की स्वाधीनता के लिये महा-संग्राम में लित है और दूसरी ओर कुछ थोड़े से स्वार्थी गोरे सीलोन में इस गुलामी द्वारा उसके नाम को कलङ्कित कर रहे या इधर ध्यान देना किसी का भी कर्तव्य नहीं है? सब से तो सीलोन की गवर्मेण्ट का फ़र्ज़ है कि इस दुर्दशापूर्ण को ठीक करे। इसके बाद विलायत के औपनिवेशिक मंत्री का है कि इस ओर ध्यान दें; क्योंकि सीलोन में गवर्नर नियुक्त इन्हीं के अधिकार में है। और सबसे ज्यादा उत्तरदायित्व हमारी सरकार का है। जिन लोगों के ऊपर सीलोन में अत्याचार जाते हैं, वह भारत वर्षसे ही कुली बना कर भेजे जाते हैं; इस उनकी रक्षा करना भारत सरकार का आद्य कर्तव्य है।

---

* दूसरी दिसम्बर सन् १९१६ ई. के 'सद्धर्म प्रचारक' में श्रीयुत सन्तराम-बी. ए. का "एक अँग्रेज सन्यासी का भारत भ्रमण" शीर्षक लेख देखिये।

के लेखक हैं। पहिले पहिल जो लोग अमेरीका को गये थे वह सभी शिक्षित थे; अमेरीका की स्वतंत्रतापूर्ण परिस्थिति ने उनके हृदय को आकृष्ट कर लिया था और वह इसी उद्देश से अमेरीका को गये थे कि हम वहाँ जाकर सर्व साधारण के सामने धर्म, तत्त्वविद्या और राजनीति के विषय में अपने स्वतंत्र विचार बिना किसी खटके के सुनावेंगे। स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो की धर्मसम्बन्धी महासभा में, जो १८९३ ई. में हुई थी और जिसमें सारे संसार के मुख्य मुख्य धर्मों के प्रतिनिधि पधारे थे, एक बहुत ही अच्छा व्याख्यान दिया था। स्वामी रामतीर्थ ने भी भारतवासियों के यश को अमेरीका में फैलाया। तदनन्तर विद्यार्थियों ने अमेरीका को जाना शुरू किया। भारतवर्ष में हमारे दुर्भाग्य से शिक्षा की वैसी अवस्था नहीं है, जैसी पाश्चात्य देशों में है, इसलिये बहुतेरे विद्यार्थियों को शिक्षार्थ विदेश जाना पड़ता है। सिविल सर्विस या बेरिस्टरी पास करनेवाले विद्यार्थी तो इङ्गलेण्ड जाते हैं, पर कलाकौशल्य या विज्ञान आदि सीखनेवाले अमेरीका को ही जाते हैं। विद्यार्थियों के बाद मज़दूरों ने भी अमेरीका को जाना शुरु किया। १९०७ ई. और १९१० ई. के दर्मियान में कई सहस्र मज़दूर अमेरीका में पहुँच गये।

अमेरीका में स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ ने हिन्दुओं की प्रतिष्ठा बढ़ाई थी, परन्तु थोड़े ही वर्षों में यह नोबत आ गई कि अमेरीका से हिन्दुओं के निर्वासित करने का विचार होने लगा।

ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत जिन उपनिवेशों को स्वराज्याधिकार मिले हैं, उन में भारतवासियों के सम्बन्ध में कैसे कैसे कड़े कानून बनाये गये हैं इसका ज़िक्र हम पहिले कर चुके हैं। परन्तु इसका परिणाम जो अन्य राष्ट्रों पर पड़ा है वह और भी बुरा हुआ है। लग भग चार वर्ष हुये, जर्मन पूर्वी अफ्रिका में भी भारतवासियों के साथ

अष्टम अध्याय

अमेरीका में भारतवासी।

संयुक्त राज्य अमेरीका में भारतवासियों की संख्या लगभग सहस्र है। किस किस साल में अमेरीका में कितने भारत[illegible] गये थे यह बात निम्नलिखित अङ्कों से प्रगट होती है:—

सन्	कितने भारतवासी गये थे।
१९००	९
१९०१	२०
१९०२	८४
१९०३	८३
१९०४	२५८
१९०५	१४५
१९०६	२७१
१९०७	१०७२
१९०८	१७१०
१९०९	३३७
१९१०	१७८२
[illegible]९११	५१७
[illegible]९१२	१६५

१९१३ ई॰ की मनुष्यगणना के अनुसार अमेरीका में ४७९४ [illegible]ी थे; इनमें लगभग तीन सौ विद्यार्थी हैं; और शेष में से [illegible] प्रशान्त महासागर के किनारे की रियासतों में मज़दूरी [illegible]या कुछ लोग उपदेशक प्रोफेसर डाक्टर और समाचार पत्रों

-के लेखक हैं। पहिले पहिल जो लोग अमेरीका को गये थे वह सभी शिक्षित थे; अमेरीका की स्वतंत्रतापूर्ण परिस्थिति ने उनके हृदय को आकृष्ट कर लिया था और वह इसी उद्देश से अमेरीका को गये थे कि हम वहाँ जाकर सर्व साधारण के सामने धर्म, तत्त्वविद्या और राजनीति के विषय में अपने स्वतंत्र विचार बिना किसी खटके के सुनावेंगे। स्वामी विवेकानन्द ने शिकागो की धर्मसम्बन्धी महासभा में, जो १८९३ ई. में हुई थी और जिसमें सारे संसार के मुख्य मुख्य धर्मों के प्रतिनिधि पधारे थे, एक बहुत ही अच्छा व्याख्यान दिया था। स्वामी रामतीर्थ ने भी भारतवासियों के यश को अमेरीका में फैलाया। तदनन्तर विद्यार्थियों ने अमेरीका को जाना शुरू किया। भारतवर्ष में हमारे दुर्भाग्य से शिक्षा की वैसी अवस्था नहीं है, जैसी पाश्चात्य देशों में है इसलिये बहुतेरे विद्यार्थियों को शिक्षार्थ विदेश जाना पड़ता है सिविल सर्विस या बेरिस्टरी पास करनेवाले विद्यार्थी तो इङ्गलेण्ड जाते हैं, पर कलाकौशल्य या विज्ञान आदि सीखनेवाले अमेरीका को ही जाते हैं। विद्यार्थियों के बाद मजदूरों ने भी अमेरीका को जाना शुरु किया। १९०७ ई. और १९१० ई. के दर्मियान में कई सहस्र मजदूर अमेरीका में पहुँच गये।

अमेरीका में स्वामी विवेकानन्द और स्वामी रामतीर्थ ने हिन्दुओं की प्रतिष्ठा बढ़ाई थी, परन्तु थोड़े ही वर्षों में यह नौबत आ गई कि अमेरीका से हिन्दुओं के निर्वासित करने का विचार होने लगा।

दक्षिण अफ्रिका का सा बर्ताव करने का विचार किया गया था और इसके समर्थन में यही कहा गया था कि, जब *ब्रिटिश* उपनिवेशों में ऐसा व्यवहार किया जा सकता है, तब यहाँ होना कुछ अनुचित नहीं है। अब अमेरीका भी भारतनिवासियों का प्रवेश-निषेध करता है, इसका कारण यही है कि जब *ब्रिटिश* साम्राज्य में सर्वत्र इच्छानुसार भारतवासी आ जा नहीं सकते, तब अमेरीका भी यही ठीक समझता है कि भारतवासियों को अपने यहाँ बे-रोक टोक नहीं आने देना चाहिये; इसका अर्थ यही हुआ कि जिसका सम्मान घर में नहीं होता वह बाहर सम्मानित होने की आशा छोड़ दे।

अमेरीकन लोग भारतवासियों का प्रवेश-निषेध करते समय कई *आक्षेप करते हैं। वह आक्षेप निम्नलिखित हैं:—*

(१) भारतीय मजदूर अमेरीका के मजदूरों के साथ बराबरी करते हैं, वह लोग कम मजदूरी पर काम करते हैं, इसलिये उन *लोगों के आने से अमेरीकन मजदूरों की रोज़ी में फर्क पड़ेगा।*

(२) *हिन्दुस्तानी मजदूर अशिक्षित होते हैं।*

(३) इन के *रहन सहन का ढङ्ग नीच दर्जे का होता है और यह लोग थोड़ा खा कर थोड़े में ही गुजर कर लेते हैं।*

(४) यह लोग अमेरीका के *निवासियों में पूर्णतया मिल जुल कर 'एकसा' नहीं बन सकते।*

(५) *यह लोग सादा जीवन के और जाति पाँति के बन्धनों में जकड़े हुये हैं।*

(६) *यह लोग स्वच्छ नहीं रहते और इनके आचरण ठीक नहीं होते।*

(७) *ये लोग ईसाई नहीं हैं।*

(८) *यह लोग डालरों द्वारा रुपये कमाके भारतवर्ष को ले जाते हैं।*

(९) *इन लोगों की संख्या अमेरीका में दिन पर दिन बढ़ती जाती है, सम्भव है कि कुछ दिनों में यह अमेरिकनों की तरह नहीं फैल जायें।*

(१०) यह लोग ब्रिटिश उपनिवेशों में नहीं घुसने पाते।
(११) यह लोग सभ्य जाति के नहीं हैं।
अब हम प्रत्येक आक्षेप का उत्तर क्रमानुसार देते हैं:—

पहिला आक्षेप यह है कि 'भारतीय मज़दूर अमेरीका के मज़दूरों के साथ बराबरी करते हैं, वह लोग कम मज़दूरी पर काम करते हैं, इस लिये उन लोगों के आने से अमेरीकन मज़दूरों की रोज़ी में फ़र्क़ पड़ेगा।'

यह आक्षेप बिल्कुल भ्रान्तिमूलक है, डाक्टर सुधीन्द्र बोस ने जो अमेरीका में कितने ही वर्ष रह चुके हैं, इस प्रश्नका उत्तर देते हुये कहा था "हमारे मज़दूर अमेरीका के मज़दूरों के साथ किसी प्रकार की भी बराबरी नहीं कर रहे हैं। अमेरीकन बुद्धि का काम करते हैं और भारतीय मज़दूर हाथों से श्रम करते हैं। भारतीय मज़दूर कलों और कारख़ानों में और रेल की सड़कों पर कठिन से कठिन काम करते हैं। वह ऐसा काम करके उदर पालन करते हैं, जिनकी साधारण अमेरीकन परवाह भी नहीं करते। तिस पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि भारतीय मज़दूर कम मज़दूरी में काम करके स्थानीय मज़दूरों के अधिक मज़दूरी पाने में बाधा डालते हैं, क्योंकि साधारण भारतीय मज़दूर सवा तीन रुपये से लेकर चार रुपये तक प्रतिदिन पाते हैं। यह बात कट्टर से कट्टर स्वार्थी अमेरीकन मज़दूर को भी माननी पड़ेगी कि एक अनपढ़ मज़दूर के वास्ते यह ख़ासी अच्छी मज़दूरी है। इसके अतिरिक्त ज्यों ज्यों हमारे मज़दूरों को अमेरीका में रहते अधिक समय बीतता जाता है, त्यों त्यों उनके रहन सहन का ढङ्ग भी अधिक ख़र्चीला होता जाता है और वह अधिकाधिक मज़दूरी पाने की चेष्टा करते हैं। पिछले वर्ष फ़सल के समय में पैसफ़िक किनारे के हिन्दुस्तानी मज़दूरों ने कम समय

तक काम करने और अधिक मज़दूरी पाने के वास्ते हड़ताल कर दी
थी लेकिन यूरोपियन मजदूर हड़ताल में सम्मिलित न होकर नीचता
के साथ कार्य्य करते रहे। इन बातों के सम्मुख कोई भी नहीं
कह सकता कि हमारे मजदूर सदा ही कम मज़दूरी पर काम करते
रहेंगे, एवं अमेरीका के रहन सहन के ढंग को नीचे दर्जे का बना देंगे-
यह हम यदि मान भी लेवें कि जब हिंदुस्तानी मज़दूर अमेरीका में
आते हैं, तब उनके रहन सहन का ढङ्ग अमेरिकन लोगों की दृष्टि
नीचे दर्जे का होता है, लेकिन उन लोगों के हृदय में अपनी स्थिति
सुधारने के लिये उत्कट अभिलाषा तो अवश्य ही होती है; य
अभिलाषाही उन्हें अपने ढङ्ग आस पास के निवासी अमेरीकन लो
के समान बनाने के लिये बलपूर्वक बाध्य करती है।" *

अब रही यह बात कि हिन्दुस्तानी मज़दूर अमेरीका में आ
अमेरीकन मज़दूरों की रोज़ी या रोटी छीन लेवेंगे सो यह भी बिल
ल निराधार है। भारतीय मज़दूरों के अमेरीका में जाने से वहाँ ले
न्धोरा के कार्य्य में वृद्धि होती है और इस कार्य्य में वृद्धि होने का
धन में वृद्धि होना है। मिनेसोटा नामक राज्य के प्रतिनिधि मान
जेम्स मनाहन साहब ने बहुत ही ठीक कहा है:—

"These immigrants do not take the place of the Ameri
labourers. The new immigrants add to the population
increase the market. If they go on to the farms and w
as labourers they produce food for the people in the to
to eat. So the adding to the number makes more work if
proper relationship prevails, and does not drive anybody
of work."

* जून सन् १९१४ ई. की 'मर्यादा' में श्रीयुत पं. दत्तात्रेय भट्ट [illegible]
"अमेरीका और भारत" नामक लेख देखिये।

अर्थात्—"बाहिर से आनेवाले यह मज़दूर अमेरीकन मज़दूरों की जगह को नहीं छीनते हैं। यह नवीन प्रवासी जनसंख्या को बढ़ाते हैं और क्रयविक्रय की भी वृद्धि करते हैं। यदि वह लोग खेतों पर जाकर मज़दूरी का काम करते हैं, तो वह नगर-निवासियों के लिये खाद्य वस्तु उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार मज़दूरों की संख्या में वृद्धि होने से कार्य में वृद्धि होती है। यदि इन दोनों प्रकार के मज़दूरों में उचित सम्बन्ध बना रहे और किसी आदमी को खाली हाथ न बैठना पड़े।"

अमेरीकन मज़दूर तथा यूरोपियन मज़दूर शहरों में काम करते हैं, लेकिन हिन्दुस्तानी मज़दूर नगरों में काम करना बिल्कुल नापसन्द करते हैं। ऐसी दशा में यह कहना कि हिन्दुस्तानी मज़दूर अमेरीकन मज़दूरों की रोटी छीने लेते हैं, युक्तिरहित और अन्यायमूलक है।

अब दूसरा आक्षेप लीजिये। 'हिन्दुस्तानी मज़दूर अशिक्षित होते हैं।' हम इस बात को मानते हैं कि हिन्दुस्तानी मज़दूर अशिक्षित होते हैं, लेकिन क्या अकेले हिन्दुस्तानी मज़दूर ही अशिक्षित होते हैं? क्या अमेरीका में घुसनेवाले सब के सब यूरोपियन मज़दूर शिक्षित ही होते हैं? डाक्टर सुधीन्द्र बोस ने जून सन् १९१४ ई. के 'माडर्न रिव्यू' में लिखा था—"यदि हम १८९९ ई. से लेकर सन् १९१० ई. तक के आये हुये मज़दूरों की संख्या के अनुसार हिसाब लगावें तो हम को पता लगेगा कि लिथुएनियन लोगों में ४९ फ़ीसदी, मैक्सीकन लोगों में ५७ फ़ीसदी, सीरियन और रूथेनियन लोगों में ५३ फ़ीसदी, दक्षिणी इटेलियन लोगों में ५४ फ़ीसदी और तुर्क लोगों में ६० फ़ीसदी अशिक्षित थे। लेकिन इनके मुक़ाबिले में अमेरीका प्रवासी हिन्दुस्तानियों में केवल ४७ फ़ीसदी ही अशिक्षित थे। इस प्रकार हमारे भारतीय मज़दूर औरों की अपेक्षा अशिक्षित नहीं हैं। यदि वह सब

के सब सुशिक्षित ही होते तो फिर विचारे अन्य लाभदायक काम छोड़कर मज़दूरी क्यों करते ? "

यूरोप के जो आदमी अमेरीका में प्रवास करते हैं, उनमें से भी अधिकांश अशिक्षित होते हैं। देखिये Paul Leland नामक लेखक अपनी पुस्तक 'America is Ferment' के ५१ वें पृष्ठ पर क्या लिखते हैं:—

"Most of the immigrants are poor and, much more serious, most of them are ignorant. Of the 838, 172 who come in 1912 over 177,000 were unable either to read or write and *comparatively few* were well educated."

अर्थात्—"प्रवासी लोगों में अधिकांश निर्धन होते हैं, और इससे भी अधिक बुरी बात यह है कि उनमें से अधिकांश बिल्कुल अपढ़ होते हैं। सन् १९१२ ई. में अमेरीका में आने वाले ८३८,१७२ आदमियों में से १७७,००० न तो पढ़ सकते थे और न लिख सकते थे, और बहुत ही कम लोग सुशिक्षित थे।"

तीसरा आक्षेप यह है कि '*इनके रहन सहन का ढङ्ग नीचे दर्जे का होता है, और यह लोग चाँवल खाकर थोड़े से में गुज़र कर लेते हैं।*' हम इस बात को मानते हैं कि *जब हिन्दुस्तानी मज़दूर* अमेरीका में पहुँचते हैं, उस *समय उनके रहन सहन का ढङ्ग कुछ* नीचे दर्जे का अवश्य होता है, लेकिन जैसा कि हम पहिले लिख चुके हैं, थोड़े दिनों के बाद *वह भी खासे खर्चीले हो जाते हैं।* हिन्दुस्तानियों के अमेरीका में प्रवास के विरोधी प्रोफेसर जेङ्कस और प्रोफेसर लौक भी इस बात को मानते हैं कि:—

"Where wages improve, their standard of *living rises.*"

अर्थात् 'जहाँ वेतन में वृद्धि होती है, वहाँ उनके रहन सहन का ढङ्ग भी उन्नतर दर्जे का होता जाता है।' लोग कहते हैं कि हिन्दु-

स्तानी मज़दूर बहुत कम ख़र्च में गुज़र कर लेते हैं। यदि यह मान भी लिया जावे तो हम पूँछते हैं कि क्या कम ख़र्च में गुज़र करना कोई अवगुण है? क्या मितव्ययिता कोई घोर अपराध है? अगर यही बात है तो यदि हिन्दुस्तानी फ़िज़ूल खर्च करके 'अपव्ययी' बन जावें तो फिर क्या अमेरीकन लोग उनका खूब स्वागत करने के लिये उद्यत होंगे! अगर हिन्दुस्तानी मज़दूर संयमी, महनती, और मितव्ययी होने के एवज़ में 'शराबी' 'आलसी' और 'फ़िज़ूलख़र्ची' होते और बराबर Poor houses अनाथालयों के अतिथि बने रहते तो फिर क्या अमेरीकन लोग उन्हें उत्तम भावी नागरिक समझकर सहर्ष ग्रहण करते!

अमेरीका में कहावत मशहूर है कि 'एक अमेरीकन कुटुम्ब में जितनी खाद्य वस्तुयें व्यर्थ जाती हैं, उतने में एक जर्मन या फ्रांसीसी कुटुम्ब की गुज़र हो सकती है।' यदि यह बात ठीक है तो फिर हम कहेंगे कि इन अपव्ययी अमेरीकनों को हमारे परिश्रमी और मितव्ययी हिन्दुस्तानी मज़दूरों से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

अमेरीका के ईसाई मिशनरी लोग बाईबिल के आधार पर भारतवर्ष में इस बात का उपदेश देते फिरते हैं कि 'सादा जीवन व्यतीत करो।' हमारी समझ में उन्हें अपने घर अमेरीका में जाकर अपने ही भाइयों के सामने मितव्ययिता के गुण वर्णन करना चाहिये; क्योंकि वहाँ उनके इस कार्यके लिये बड़ा विस्तृत क्षेत्र पड़ा है।

यह बात पढ़कर हमें हँसी आती है कि 'हिंदुस्तानी लोग चाँवल खाते हैं इसलिये यह अमेरीका में घुसने के योग्य नहीं।' एक ज़माना था जब कि इङ्गलैंड पर स्काटलेण्डवाले आक्रमण करते थे, उस समय अँग्रेज़ लोग स्काटलेण्ड के निवासियों से यह कह कर घृणा किया करते थे कि ये लोग Porrige लपसी खाते हैं। क्रमशः इङ्गलेण्ड का

दूर हो गया और आज वह लोग स्काटलेण्ड वालों पर ऐसा नहीं करते। हमारी सम्मति में जब अमेरीकन लोग दुराग्रह इस आक्षेप पर विचार करेंगे तब उन्हें स्वयं इसका छछो- ात हो जावेगा।

या आक्षेप यह है कि यह लोग अमेरीका के निवासियों मिलजुलकर एकसा नहीं बन सकते।' पहिले तो हम या कि 'एकसा बनने' (Assimilation) का तात्पर्य क्या है के बड़े बड़े विद्वान् 'एकसाँ होने' का तात्पर्य अमेरीक य-प्रणाली, उसके उद्देश्य, उसकी सामाजिक स्थिति और वस्था से सहमत होने को ही मानते हैं। यदि यह परि- न ली जावे तो भारतवासियों के विरुद्ध उपर्युक्त दोष करना सरासर अन्याय है। क्योंकि भारतवासी भी दूसरी के मनुष्यों की तरह अमेरीकन लोगों से मिलजुल कर 'एकसाँ' ने हैं। अमेरीका-प्रवासी भारतवासी वहाँ की कितनी ही और व्यवहारों को आदर्श मानते हैं और यथाशक्ति उनका भी करते हैं। हालमें कुछ हिन्दुस्तानी लोगोंने अच्छे घराने कन युवतियों के साथ विवाह भी कर लिये हैं। डाक्टर म लिखते हैं कि 'अधिक सुनने में आया है, इन विवाहों म बहुत अच्छा ही हुआ है, और सब दम्पती शान्तिपूर्वक तीत कर रहे हैं'। यह बात हमने दृष्टान्त के लिये कह दी हमारा विश्वास है कि Assimilation (एकसाँ बनने) के र में धार्मिक व सामाजिक सम्बन्ध होना आवश्यक नहीं हैं कहे कि 'एकसाँ होनेका मानी रूप-रङ्ग-नस-शिरा में नसे सदा धार्मिक व सामाजिक सम्बन्ध होनेसे है, तो यह ्त निरर्थक है। अमेरीका में लाखों ही यहूदी रहते हैं,

जिनके सामाजिक और धार्मिक व्यवहार अमेरीकन लोगों से बिल्कुल भिन्न हैं, केवल यही नहीं, बल्कि धर्मानुसार वह ईसाइयों से कतई मिलजुल भी नहीं सकते, लेकिन तब भी यहूदियों ने पाश्चात्य देशों की उन्नति में जो सहायता दी है वह अत्यन्त आश्चर्यजनक है। अकेले न्यूयार्क में ही अठारह लाख अस्सी हज़ार पाँचसौ यहूदी हैं। पर क्या कभी किसी अमेरीकन राजनीतिज्ञ ने इस बहाने से कि यहूदी लोग अमेरीकन लोगों से मिलजुल कर एकसाँ नहीं बन सकते, इन यहूदियों को देश निकाला देने की बात कही है?

पाँचवां आक्षेप यह है कि 'यह लोग साफ़ा बाँधते हैं और जातिपाँति के बन्धनों से जकड़े हुये हैं।'

इस उपहासजनक आक्षेप का उत्तर यह है कि जो अमेरीकन लोग भारतवर्ष में अध्यापक हैं, या व्यापार करते हैं, अथवा ईसाई धर्मप्रचार में लगे हुये हैं वह अपने सिर पर टोप धारण करते हैं, फिर हम लोग अमेरीका में जाकर साफ़ा क्यों नहीं बाँधें?

अमुक आदमी सिर पर टोपी पहिनता है या पगड़ी रखता है अथवा साफ़ा बाँधता है, यह एक ऐसा प्रश्न है जिसका उसी व्यक्ति से सम्बन्ध है और यह कोई ऐसी बात नहीं है जिस के आधार पर हम उस आदमी को किसी देश से बहिष्कृत कर दें। इसके अति-रिक्त ज्यों ज्यों हमारे देशवासियों को अमेरीका में बसे हुये अधिक दिन होते जाते हैं त्यों त्यों वह अमेरीकनों की पोशाक का अपने आप ही अनुकरण करते जाते हैं।

यह बात भी निराधार और असत्य है कि हिन्दू लोग जाति पाँति के बन्धनों से जकड़े हुये हैं। अमेरीका-प्रवासी भारतीयों में थोड़े से विद्यार्थियों को छोड़कर जो भिन्न भिन्न जातियों के हैं, बाक़ी सब सिक्ख और मुसलमान मज़दूर हैं। इन दोनों ही जातियों में जाति पाँति के

सम्बन्ध बिल्कुल नहीं है। केलीफ़ोर्निया, ओरेगन तथा वाशिङ्गटन में
मज़दूर काम करते हैं वह इन्हीं दोनों जातियों के हैं। हाँ यह बात
अंशों में ठीक हो सकती है कि कट्टर हिन्दू लोग दूसरे लोगों से पारस्परि
सामाजिक सम्बन्ध कम रखते हैं, लेकिन यदि मुक़ाबिला किया जा
तो यहूदी लोगों का कट्टरपन हिन्दू लोगों के कट्टरपन से कहीं ज्याद
ज्ञात होगा। लेकिन क्या इस कारण से अमेरीका में उनका तिरस्कार
होता है? कदापि नहीं। न्यूयार्क की जनसंख्या में चार आदमी पीछे
एक आदमी यहूदी है। हम कदापि नहीं चाहते कि वहाँ हर पाँच
आदमी पीछे एक हिन्दुस्तानी हो, किन्तु यह हम अवश्य चाहते हैं
कि हमारे साथ न्याययुक्त व्यवहार किया जावे और कोई ऐसा बर्ताव
न किया जावे जिससे हमारे राष्ट्रीय सम्मान का तिरस्कार हो।

छटवाँ आक्षेप यह है कि 'यह लोग स्वच्छ नहीं रहते और इनके
आचरण ठीक नहीं होते।'

लाला लाजपतराय जी, जिन्होंने अमेरीका में खूब यात्रा करके
यूरोपियन और हिन्दुस्तानी मज़दूरों के आचरणों को भली प्र
देखा भाला है, लिखते हैं:–

"Now so far as moral standards are concerned, it
ridiculous to say that the moral standard of the Indian is
any way inferior to that of an average American or Europe
of the same class. It is in no way worse, if not better. A
for cheap living and unclean habits here again I do not thin
there is much difference between the poor European immi
grant and the Hindu labourer."

अर्थात्–"नैतिक नियमों के विषय में यह कहना कि भारतवासियों
के आचरण उसी दर्जे के साधारण अमेरीकन या यूरोपियन के आच-
रण से बुरे होते हैं उपहास-जनक है। अगर हिन्दुस्तानियों के आच-
रण अपने समकक्ष यूरोपियनों या अमेरीकनों से अच्छे नहीं होते तो

उनसे किसी हालत में खराब भी नहीं होते हैं। रही थोड़े से में जीवन निर्वाह करने और मेले कुचेले रहने की बात सो इस बारे में भी मैं यह समझता हूँ कि निर्धन प्रवासी-यूरोपियन और हिन्दू मजदूर की स्थिति में कोई विशेष फ़र्क नहीं है।"

मिस्टर हेवर्थ Haworth नामक एक अमेरीकन लेखक ने हंगरी से अमरीका आनेवाले प्रवासी स्लोवक लोगों के विषय में लिखा है:—

"Their (i. e. the slovak's) standard of living is almost as low as that of the Chinese. They herd promiscuously in any room, shed or cellar, with little regard to sex or sanitation. Their demand for water is but very limited, for the use of outer body as well as the inner. They drink slivovitz a sort of brandy made from potatoes or prunes. They wear sandals and caps and clothes of sheepskin, which latter also serve as their bed. They are excessively ignorant."

अर्थात्—"स्लोवक लोगों के रहनसहन का ढङ्ग लगभग उतने ही नीचे दर्जे का होता है, जितना कि चीनी लोगों का होता है। वह लोग किसी कमरा, शाला या भूमिगृह के सङ्कीर्ण स्थान में स्वास्थ्य अथवा स्त्रीपुरुष का कुछ भी ख्याल न करते हुये जानवरों की तरह इकठे रहते हैं। शरीर के बाहिरी और भीतरी भागों के लिये उनको पानी की बहुत ही कम आवश्यकता पड़ती है। वह "स्लिवोविट्ज़" नामक एक प्रकार की शराब पीते हैं जो आलुओं और बेरों की बनाई जाती है। वह भेड़ों की खाल के बने हुये खड़ाऊँ, टोपी और कपड़े पहिनते हैं और भेड़ों की खाल के ही बिछौने बनाते हैं। वह अत्यन्त मूर्ख होते हैं।"

इससे आगे चलकर एक जगह लाला लाजपतराय जी लिखते हैं:—
"मैंने उन स्थानों को भी अपनी आखों से देखा है, जहाँ कि यूरोपियन मजदूर रहते हैं और काम करते हैं। मेरी समझ

में हिन्दुस्तानी मज़दूरों और यूरोपियन मज़दूरों की रहन सहन के ढङ्ग में बहुत ही कम भेद है; अगर कोई फ़र्क़ है तो यही है कि सिक्ख मज़दूर अपने साफे और रङ्ग की वजह से अमेरीकन तथा यूरोपियन मज़दूरों के बीच में आसानी के साथ पहिचाना जा सकता है लेकिन गोरे मजदूरों को देखतेही यह जान लेना कि यह किस देश या जाति के हैं, इतना सहज नहीं है। रहन सहन के ढङ्ग और आदतें दोनोंही प्रकार के मज़दूरों की ख़राब होती हैं, लेकिन यदि दोनों की स्थिति का मुक़ाबिला किया जावे तो सौ में से पचास हालतों मे सिक्ख मज़दूर ही उत्तमतर सिद्ध होगा।"

'इण्डियन ऐमीग्राण्ट' के जून सन् १९१५ ई. के अङ्क में डाक्टर सुधीन्द्र बोस लिखते हैं "लगभग आठ वर्षतक मैं अमेरीका में अमेरीकन विद्यार्थियों के साथ एक कमरे में रहा हूँ। व्यापारिक यात्री की तरह मैंने संयुक्तराज्य में बहुत कुछ यात्रा भी की है, इस लिये इस बात को तो आप मान लेंगे कि अमेरीकन लोगों के स्वभावों को निकट से निरीक्षण करने के मुझे बहुत से अवसर मिले हैं इतने दिनों रहने पर भी मेरा ऐसा विश्वास है कि साधारण अमेरीकन लोगों के स्वभाव, साधारण भारतीयों के स्वभावों की अपेक्षा अधिक अच्छे नहीं होते।"

सातवाँ आक्षेप यह है कि 'यह लोग ईसाई नहीं हैं।' जो अमेरीका सर्व साधारण को धर्मसम्बन्धी बातों में स्वतंत्र बनाने का दावा करता है, उसके निवासियों के मुख से यह आक्षेप शोभा नहीं देता। सिक्ख धर्म और इस्लाम मज़हब दोनों ही ऐसे मत हैं जिन के नैतिक उपदेश ईसाई धर्म के नैतिक उपदेशों की अपेक्षा किसी हालत में बुरे नहीं हैं। जिस युनाइटेड स्टेटस अमेरीका में एक सौ पचहत्तर भिन्न भिन्न धार्मिक सम्प्रदाय हैं, उसके निवासियों के लिये यह अत्यन्त

दर्जे की धृष्टता है कि वह किसी जाति को स्वधर्मपालन की वजह से अपने यहाँ आने से रोकें।

आठवाँ आक्षेप यह है कि 'यह लोग हजारों रुपये इकट्ठे करके भारत वर्ष को ले जाते हैं।' प्रोफेसर जैंक्स और लौक ने अपनी "The Immigration Problem" 'प्रवास का प्रश्न' नामक पुस्तक में हिन्दुस्तानियों के विषय में यही आक्षेप किया है। यह महाशय लिखते हैं:—

"Usually they (Indians) have little money in their possession when they arrive and come with the expectation of accumulating a fortune of some 2000 dollars, then going back to their native land..."

अर्थात्–"प्रायः भारतवासियों के पास जब वह अमेरीका में आते हैं कुछ भी नहीं होता और वह लोग इसी आशा से यहाँ आते हैं कि हम यहाँ से सात आठ हज़ार रुपये इकट्ठे करके अपने घर ले जावेंगे।" केलीफ़ोर्निया के कुछ अमेरीकन लोगों ने कहा था–"हिन्दू लोग अपनी कमाई का एक बड़ा भाग अपने घर भारत वर्ष को भेज देते हैं। स्टाकटन नामक नगर के निकट के हिन्दुओं ने सन् १९१४ ई. में ५५ हज़ार ४ सौ ६७ रुपये घर को भेज दिये।" तर्क के लिये हम मान भी लेते हैं कि रुपयों की यह संख्या ठीक है। अब हमारा प्रश्न इन केलीफ़ोर्निया वाले अमेरीकनों से यह है कि "क्या अमेरीका-प्रवासी यूरोपियन लोग अपनी आमदनी का एक बड़ा भाग अपने देश को नहीं भेजते?" डाक्टर स्टीनर साहब ने जो प्रवास सम्बन्धी प्रश्नों के बड़े अच्छे ज्ञाता हैं 'अमेरीकन रिव्यू आफ़ रिव्यूज़' नामक पत्र में लिखा था:—

"About forty percent of our European peasant immigrants reemigrate. They export perhaps 2700,000,000 rupees each

में हिन्दुस्तानी मज़दूरों और यूरोपियन मज़दूरों की रहन
के ढङ्ग में बहुत ही कम भेद है; अगर कोई फ़र्क़ है तो यही
सिक्ख मज़दूर अपने साफे और रङ्गकी वजह से अमेरीकन तथा
पियन मज़दूरों के बीच में आसानी के साथ पहिचाना जा सक
लेकिन गोरे मजदूरों को देखतेही यह जान लेना कि यह किस देश
जाति के हैं, इतना सहज नहीं है। रहन सहन के ढङ्ग और आ
दोनोंही प्रकार के मज़दूरों की ख़राब होती हैं, लेकिन यदि दोनों
स्थिति का मुक़ाबिला किया जावे तो सौ में से पचास हालतों में सि
मज़दूर ही उत्तमतर सिद्ध होगा।"

'इण्डियन ऐमीग्राण्ट' के जून सन् १९१५ ई. के अङ्क में
सुधीन्द्र बोस लिखते हैं "लगभग आठ वर्षतक मैं अमेरीका में अमेरी
कन विद्यार्थियों के साथ एक कमरे में रहा हूँ। व्यापारिक
की तरह मैंने संयुक्तराज्य में बहुत कुछ यात्रा भी की है, इस
लिये इस बात को तो आप मान लेंगे कि अमेरीकन लोगों के स्व
वों को निकट से निरीक्षण करने के मुझे बहुत से अवसर मिले हैं।
इतने दिनों रहने पर भी मेरा ऐसा विश्वास है कि साधारण अमेरी
कन लोगों के स्वभाव, साधारण भारतीयों के स्वभावों की अ
अधिक अच्छे नहीं होते।"

सातवाँ आक्षेप यह है कि 'यह लोग ईसाई नहीं हैं।' जो अमे
रीका सर्व साधारण को धर्मसम्बन्धी बातों में स्वतंत्र बनाने का द
करता है, उसके निवासियों के मुख से यह आक्षेप शोभा नहीं देता
सिक्ख धर्म और इस्लाम मज़हब दोनों ही ऐसे मत हैं जिन के नैति
उपदेश ईसाई धर्म के नैतिक उपदेशों की अपेक्षा किसी हालत में
बुरे नहीं हैं। जिस यूनाइटेड स्टेट्स अमेरीका में एक सौ
भिन्न भिन्न धार्मिक सम्प्रदाय हैं, उसके निवासियों के लिये यह अक्षर

दूसरे की धृष्टता है कि वह किसी जाति को स्वधर्मपालन की वजह से अपने यहाँ आने से रोकें।

आठवाँ आक्षेप यह है कि 'यह लोग हजारों रुपये इकट्ठे करके भारत वर्ष को ले जाते हैं।' प्रोफ़ेसर जैंक्स और लौक ने अपनी "The Immigration Problem" 'प्रवास का प्रश्न' नामक पुस्तक में हिन्दुस्तानियों के विषय में यही आक्षेप किया है। यह महाशय लिखते हैं:—

"Usually they (Indians) have little money in their possession when they arrive and come with the expectation of accumulating a fortune of some 2000 dollars, then going back to their native land..."

अर्थात्–"प्रायः भारतवासियों के पास जब वह अमेरीका में आते हैं कुछ भी नहीं होता और वह लोग इसी आशा से यहाँ आते हैं कि हम यहाँ से सात आठ हज़ार रुपये इकट्ठे करके अपने घर ले जावेंगे।" केलीफ़ोर्निया के कुछ अमेरिकन लोगों ने कहा था–"हिन्दू लोग अपनी कमाई का एक बड़ा भाग अपने घर भारत वर्ष को भेज देते हैं। स्टाकटन नामक नगर के निकट के हिन्दुओं ने सन् १९१४ ई. में ५५ हज़ार ४ सौ ६७ रुपये घर को भेज दिये।" तर्क के लिये हम मान भी लेते हैं कि रुपयों की यह संख्या ठीक है। अब हमारा प्रश्न इन केलीफ़ोर्निया वाले अमेरिकनों से यह है कि "क्या अमेरीका-प्रवासी यूरोपियन लोग अपनी आमदनी का एक बड़ा भाग अपने देश को नहीं भेजते?" डाक्टर स्टीनर साहब ने जो प्रवास सम्बन्धी प्रश्नों के बड़े अच्छे ज्ञाता हैं 'अमेरीकन रिव्यू आफ़ रिव्यूज़' नामक पत्र में लिखा था:—

"About forty percent of our European peasant immigrants reemigrate. They export perhaps [illegible]

normal year. During industrial depression or Panics the become larger."*

अर्थात्—" अमेरिका प्रवासी यूरोपियन किसानों में से चालीस फ़ीसदी लगभग दो अरब सत्तर करोड़ रुपये प्रत्येक साधारण वर्ष में अपने घर भेजते हैं। जब उद्योगधंधों का कार्य्य ढीला पड़ जाता है तो यह रक़म और भी बढ़ जाती है।"

जब अमेरीकन लोगों ने आज तक इस बात की शिकायत नहीं की कि यूरोपियन लोगों को उपर्युक्त कारण से अमेरीका में नहीं घुसने देना चाहिये, तो फिर बिचारे भारतवासियों ने ही क्या अपराध किया है?

नवाँ आक्षेप यह है कि 'इन लोगों की संख्या अमेरीका में दिन पर दिन बढ़ती ही जाती है, सम्भव है कि कुछ दिनों में यह मक्खियों की तरह यहाँ फैल जावें।' केलीफ़ोर्निया के कुछ राज-नैतिक नेताओं ने तो यहाँ तक कहा है कि 'हिन्दू लोग' अमेरीका पर चढ़ाई कर रहे हैं, और एक महाशय ने तो यहाँ तक कह डाला था कि इस समय संयुक्तराज्य अमेरीका में तीस हजार हिन्दू हैं। लेकिन संयुक्तराज्य अमेरीका के इमीग्रेशन विभाग ने डाक्टर सुधीन्द्र बोस को जो सूचना भेजी थी उससे पता लगता है कि इस समय अमेरीका में लगभग ४७९४ हिन्दू हैं। इन चार हज़ार सातसौ चौरानवें में लगभग तीनसौ छात्र हैं। समझ में नहीं आता कि इन थोड़े से हिन्दुस्तानियों से अमेरीकन सरकार को इतना भय क्यों हो गया है?

ईश्वर की कृपा से अब भारतवासियों के हृदय में स्वाभिमान तथा

* देखिये 'इण्डियन ऐमीग्रान्ट' अक्टूबर सन् १९१५ ई.।

राष्ट्रीय सम्मान के विचार उत्पन्न हो गये हैं। जब वह देखते हैं कि अमेरीकन हमारा निरादर करते हैं तो वह स्वयं अमेरीका को छोड़ते जाते हैं। निम्नलिखित अङ्क हमारे कथन के प्रमाण हैं:—

सन्	कितने आये	कितने गये
१९११	५७५	२५२
१९१२	२२१	३१२
१९१४	२८३	३८५

इन अङ्कों से हमें पता लगता है कि सन् १९१२ ई. में अमेरीका से बाहिर जाने वाले हिन्दुस्तानियों की संख्या अमेरीका में प्रवेश करनेवालों की संख्या से ९१ अधिक है। इसी प्रकार सन् १९१४ ई. में जितने भारतवासी अमेरीका में गये उनसे १०२ अधिक अमेरीका से बाहिर आये। वस्तुतः हम हिन्दुस्तानी लोग महात्मा तुलसीदासजी के निम्नलिखित कथन के अनुयायी हैं:—

"आवत ही हर्ष नहीं, नयनन नहीं सनेह।
तुलसी तहाँ न जाइये, कंचन बरसे मेह"

दसवाँ आक्षेप यह है कि 'यह लोग ब्रिटिश उपनिवेशों में नहीं घुसने पाते।' इस आक्षेप को पढ़कर हमें और भी आश्चर्य होता है। हम पूँछते हैं कि क्या "संयुक्त राज्य अमेरीका" अब भी कोई ब्रिटिश उपनिवेश है? भारतवर्ष तथा ब्रिटिश उपनिवेशों का झगड़ा एक घरेलू झगड़ा है, क्योंकि उसका सम्बन्ध केवल ब्रिटिश साम्राज्य से ही है। जिस प्रकार कि एक घर के लड़कों में लड़ाई झगड़े होते हैं, उसी प्रकार हमारे और औपनिवेशक लोगों के पारस्परिक मतभेद हैं। लेकिन अमेरीका तथा भारतवर्ष का सम्बन्ध एक अन्त-र्जातीय बात है। इसके सिवाय उपनिवेशों में हमारे साथ जो अन्याय होता है, उसका समर्थन इङ्गलैण्ड की सरकार ने कभी नहीं किया है।

ग्यारहवाँ आक्षेप यह है कि 'यह लोग सभ्य जातिके नहीं है।' इस आक्षेपको पढ़कर हमारे हृदयको बड़ा आघात पहुँचता है। जिन्हों ने सारे संसार को सभ्यताका पाठ पढ़ाया था, जिनकी कृपा से मिश्र और यूनान में शिक्षा और सभ्यता फैली, जिन्हों ने दर्शनशास्त्र, विज्ञान, बीजगणित और अङ्कगणित में असाधारण उन्नति की, जिन्हों ने उस समय में जब कि यूरोपवाले बिल्कुल जंगली थे, कवित, राजनीति तथा तत्त्वविद्या के बड़े बड़े नियम निकाले, जिनके प्राचीन नाटक अब भी फ्रांस और जर्मनी तथा इङ्गलेण्ड में रङ्गभूमि पर खेले जाते हैं और जिनके यहाँ इस समय भी सर जगदीशचन्द्र बोस और सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे प्रतिभाशाली पुरुष उत्पन्न होते हैं, उन भारतवासियों पर यह आक्षेप करना कि तुम सभ्य जाति के नहीं हो हद दर्जे की कृतघ्नता और नालायकी है।

शैशव दशा में देश प्रायः जिससमय सब व्याप्त थे,
निःशेष विषयों में तभी हम प्रौढ़ता को प्राप्त थे।
संसार को पहले हमीं ने ज्ञान भिक्षा दान की,
आचार की व्यवहार की, व्यापार की विज्ञान की॥
'हाँ' और 'ना' भी अन्य जन करना न जब थे जानते,
थे ईश के आदेश तब हम वेदमंत्र बखानते।
जब थे दिगम्बररूप में वह जङ्गलों में घूमते,
प्रासाद–केतन–पट हमारे चन्द्र को थे चूमते।

भारतभारती—

बाज़ बाज़ अमेरिकन लोग कहते हैं कि हिन्दुस्तानी ईमानदार नहीं होते। जो लोग हिन्दुस्तानियों के साथ कभी भी नहीं रहे वह भी इस प्रकार के कटाक्ष करने में बिल्कुल नहीं हिचकिचाते। इन लोगों का भ्रम दूर करने के लिये यहाँ हम Mrs. R. F. Patterson नामक एक अमेरिकन मेम साहिबा

की सम्मति देते हैं। आप आनरेबिल पैटरसन साहबकी, जो दस वर्ष तक भारतवर्ष में संयुक्त राज्य के कौंसल जनरल रहे थे, स्त्री हैं। आपने लिखा है:—

"The Hindus are the most honest, most reliable and most religious people I have ever known. In ten years that we were in Calcutta we had many servants, and not one did I ever find dishonest in any respect. At one time I was dining with the Commander-in-chief Sir George White, and I was speaking of the honesty of these servents and how we liked them, and he said " Mrs Patterson I have about a hundred *in my house and I have never lost a single sollitary thing.*" I am surprised that any one in the United States should question their moral."

अर्थात्—" जितनी जातियों के आदमी हमने देखे हैं, उनमें हिन्दू लोग सबसे अधिक ईमानदार, विश्वसनीय और धार्मिक हैं। दस वर्ष तक हम भारतवर्ष में रहे; इस दर्मियान में हमारे यहाँ कितने ही हिन्दुस्तानी आदमी नोकर रहे थे। इन नोकरोंमें से किसी को हमने कभी भी किसी प्रकार की बेईमानी करते नहीं देखा। एक बार मैं कमाण्डर इन चीफ़ सर जार्ज ह्वाइट साहब के साथ भोजन कर रही थी। मैंने हिन्दुस्तानी मजदूरों की ईमानदारी के विषयमें उनसे बातचीत की और पूँछा कि हम लोगों को वह पसन्द हैं या नहीं। कमाण्डर इन चीफ़ साहब ने उत्तर दिया ' मिसेज़ पेटरसन, मेरे घरमें लगभग एक सौ हिन्दुस्तानी नौकर हैं, लेकिन आज तक मेरी कोई चीज़ कभी भी चोरी नहीं गई।' यदि कोई अमेरीकन मनुष्य हिन्दुस्तानियों के आचरण के विषय में शङ्का करे तो उस पर मुझे बड़ा आश्चर्य होता है।"

हुई है। मिस्टर ऐण्डूज़ और पियर्सन साहब अपनी रिपोर्ट के अन्तिम पृष्ठ पर लिखते हैं:—

"Fiji is, at present, like a great flaring advertisement, saying in big letters, to all who travel to and for across the Pacific,-' This is India ' Each traveller from America and Australia goes home to spread the news about India which he has learnt in Fiji. We felt, more than we can express, the terrible wrong which was being done to India by such a false advertisement. We found ourselves protesting every day of our journey to our fellow passengers,-' This is not India ' But the patent fact remained. The advertisement went flashing across the Pacific, ' This is India. '-It was the only 'India' which the travellers in the Pacific saw."

अर्थात्-" फ़िज़ी वर्तमान समय में एक प्रकाशमान विज्ञापन की तरह बड़े बड़े अक्षरों में, उन लोगों को, जो प्रशान्त महासागर में होकर यात्रा करते हैं यह सूचना दे रहा है " देखो यही भारतवर्ष है " अमेरीका और आस्ट्रेलिया का प्रत्येक यात्री अपने घर पहुँच कर भारतवर्ष के विषय में वही खबरें फैलाता है जो उसने फ़िजी में सुनी थीं। इस प्रकार के असत्य विज्ञापन से भारतवर्ष का जो भयंकर अपमान हो रहा है, उसको जानकर हमारे हृदय को जितनी वेदना हुई उतनी लिखने में हम असमर्थ हैं। अपनी यात्रा में हम को नित्यं प्रति अपने साथी यात्रियों का विरोध करके यही कहना पड़ता था " यह भारतवर्ष नहीं है " लेकिन स्पष्ट बात ज्यों की त्यों रही। सारे प्रशान्त महासागर में यही विज्ञापन एक छोर से दूसरे छोर तक होरहा है " यही भारत है, यही भारत है "। प्रशान्त महासागर के यात्रियों ने तो फ़िजी के ही भारतवासी देखे थे (इसलिये उनके लिये वह ही भारत के आदर्श थे) "

इसके सिवाय कुछ ' आलसी मि. सम्गों ' की उत्तेजना के कारण कतिपय जोशीले देशभक्त अमेरीकनों ने विदेशी मज़दूरों के विरुद्ध शोर मचा रक्खा है।

इस नीतिका परिणाम क्या होगा?

अमेरीकन लोगों ने इमीग्रेशन बिल बनाकर भारतवासियों का अमेरीका में आना रोक दिया है। हाँ ख़ास ख़ास हालतों में भारतवासी वहाँ जा सकते है। लाला लाजपतराय जी अपनी पुस्तक 'United States of America' में लिखते हैं:—

"The Immigration department admits no more Hindus into the United States. There is no law forbidding their entrance as such, but the laws and regulations are so administered as to shut out and effectively exclude the Hindus from entering America unless he comes on a short visit or for purpose of trade with plenty of money in his pockets, or as a student with sufficient evidence that he would be supported from home."

अर्थात्-"इमीग्रेशन विभाग अब और हिन्दुओं को संयुक्त राज्य अमेरीका में नहीं घुसने देता। यद्यपि इस प्रकार का कोई नियम नहीं बना कि हिन्दुओं को मत घुसने दो, पर जो नियम बने हुये हैं, उनका पालन इस ढङ्ग से किया जाता है, जिससे कि हिन्दू लोग घुसने न पावें। यदि कोई थोड़े दिन के लिये अमेरीका की यात्रा करने के वास्ते जावे या बहुत सा रुपया लेकर व्यापार के लिये जावे अथवा कोई विद्यार्थी, जिसके पास इस बात के पर्य्याप्त प्रमाण हों कि अमेरीका में जीवन निर्वाह के लिये उसे घर से काफ़ी सहायता मिलेगी, पढ़ने के लिये वहाँ जावे, तो उसे अमेरीका में प्रवेश करने की आज्ञा मिल सकती है।"

पहिले संयुक्त राज्य अमेरीका ने ऐसा कानून बनाने का विचार किया था जिसमें यह स्पष्टतया लिख दिया गया था कि 'हिन्दू

लोग अमेरीका में न घुसने पावें।' जब अमेरीका-प्रवासी हिन्दुओं ने इसके विरोध में घोर आन्दोलन किया और प्रेसीडेण्ट विलसन को पत्र लिखा तथा अमेरीका के बड़े बड़े प्रभावशाली समाचार पत्रों और मासिक पत्रों में लेख तथा Memorandum (प्रार्थनापत्र) छपवाये, तब कहीं 'हिन्दू' शब्द इस इमीग्रेशन बिल से निकाल दिया गया, लेकिन इससे हिन्दुस्तानियों को लाभ कुछ भी नहीं हुआ; क्योंकि इसके बजाय उस 'इमीग्रेशन बिल' में ऐसे वाक्य डाल दिये गये जिनका अभिप्राय यह है कि पृथ्वी के अमुक अमुक भाग के निवासी अमेरीका में न आने पावें। अमेरीका से निकलने वाले हिन्दुस्तानी स्टूडेण्ट नामक मासिक पत्र की जनवरी सन् १९१७ई. की संख्या में लिखा है:—

"The protest, which was made on economic as well as humanitarian grounds was at last heeded by the senate. The original bill which excluded Hindus as such, was amended and the racial terms were stricken out. But to make the matter worse the committee on Immigration worded the amendment in such a manner that the bill now excludes the *whole of India geographically*, which is an insult to the peace loving and proud people."

अर्थात्—"इमीग्रेशन बिल का जो विरोध आर्थिक कारणों से अथवा दया याचना के उद्देश्य से किया गया था, आखिरकार सिनेट (नियमनिर्धारणी-सभा) ने उस पर ख्याल किया। मूल बिल में, जिसके अनुसार कि हिन्दू लोग केवल इसी कारण से कि वह हिन्दू हैं बहिष्कृत किये जानेवाले थे, सुधार कर दिया गया और वह शब्द निकाल डाले गये, जिनका अभिप्राय किसी जातिविशेष का प्रवेश-निषेध करने का था। लेकिन इमीग्रेशन कमेटी ने इस बिल का

`. विद्यार्थी का चित्र, वंश का नाम, नाम, आयु, ऊँचाई, शरीर के विशेष चिन्ह, पहले की और अब की वृत्ति, पढ़ने का स्थान, निवास-स्थान, भारतवर्ष में क्या पढ़ता था, अमेरीका में क्या पढ़ना चाहता है, और इन सब के ऊपर तुर्रा यह कि इसके पालन पोषण खर्च आदि का उपयुक्त प्रबन्ध कर दिया गया है।

इस बिल से और भी अधिक हानि होने की सम्भावना है। इस बिल में यह भी एक नियम है कि जब किसी विद्यार्थी को सरकार से अमेरीका जाने का सर्टीफिकेट मिल जायगा तब उस सर्टीफिकेट को संयुक्त राज्य के प्रतिनिधि को, जो कि भारत में रहता है, दिखाना होगा। बिना उस प्रतिनिधि को दिखाये कोई भी विद्यार्थी अमेरीका जानेवाले जहाज़ के तख्ते पर पैर भी न रख सकेगा। यही नहीं बल्कि अमेरीका जाने पर भी भारतीय विद्यार्थी को यह आवश्यक होगा कि वह अपने प्रमाणपत्रों को इमीग्रेशन आफ़िस के कर्मचारी को दिखलावे और इस कर्मचारी का यह अधिकार होगा कि वह इस सर्टीफिकेट की बातों का विरोध करके चाहे तो उसे अस्वीकृत करे। *

यह बिल दो प्रकार से अत्यन्त हानिकारक सिद्ध होगा। पहिली बात तो यह है कि हमारे विद्यार्थियों को अमेरीका जाने के लिये सरकार से प्रमाणपत्र लेने में बड़ी बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा, और दूसरी बात यह कि जो लड़के उच्च कर्म्मचारियों को इस बातका विश्वास नहीं दिला सकेंगे कि हमारे पालन-पोषण, अन्न वस्त्र का काफ़ी बन्दोबस्त कर लिया गया है, उनको प्रमाणपत्र मिलना असम्भव हो जायगा। निस्सन्देह उन लड़कों के लिये, जिन के पास रुपयों की थैलियाँ नहीं हैं, लेकिन जो कि अपनी तीक्ष्ण बुद्धि,

* दिसम्बर सन् १९१४ ई. के 'विद्यार्थी' में प्रोफेसर सुधीन्द्रबोस, एम. ए. पी. ऐच. डी. का लेख।

असाधारण इच्छाशक्ति, और शारीरिक बल के सहारे अमेरीका में जाव
पढ़ना चाहते हैं, अमेरीका का दरवाज़ा बन्द कर दिया जावेगा ।
वह सेनफ्रासिस को या न्यूयार्क में होकर किसी तरह अमेरीका मे
भी आवें तो फिर इमिग्रेशन कार्य्यालयके कर्मचारियों के मारे हर
उनकी जान आफ़त में रहेगी । जो भारतीय विद्यार्थी स्वयं परिश्रम का
रुपया कमाकर पढ़ना चाहेंगे उन पर यह अपराध लगाया जावेगा
यह धन बटोरने का काम कर रहे हैं । स्वतन्त्रता की डींग मारने वाले
अमेरीकन लोग इस प्रकार निर्धन, पर योग्य विद्यार्थियों को शिक्षा पानेके
अधिकार से वंचित करेंगे ।

'माडर्न रिव्यू' में इस विषय की जो बातें प्रकाशित हुई हैं,
उनसे जान पड़ता है कि, जिन हिन्दुस्तानियों को अमेरीका रहते
हुये पाँच वर्ष से अधिक नहीं हुये हैं, वह भारत भेज दिये जावेंगे ।
लाला लाजपतराय का कहना है कि ऐसा न होना चाहिये, क्योंकि
जब यह भारतवासी भारत जायँगे, तब बहुतोंपर मुसीबत आवेगी,
क्योंकि यहाँ उन्हों ने अपने जो राजनैतिक मत प्रगट किये हैं, उनके
लिये वहाँकी सरकार उनपर मामले चला सकती है । इसलिये भारत
के सिवाय वह जिस देश में जाना चाहें, उस देश में जावें, और
निर्वासित करके भारत न भेजे जावें । +

अमेरीकन इमीग्रेशन बिल से भारतीय विद्यार्थियों और राजने-
तिक शरणार्थियों को तो कष्ट होवेगा ही, पर इससे भारत का
अपमान होवेगा वह अकथनीय है । सम्भवत. इस समय तो अधिका
वर्ग यह चाहता होगा कि राजनैतिक शरणार्थी यहाँ आ जावें, औ
हम उनसे बदला चुका लें, पर भारत की अप्रतिष्ठा समस्त संसार में
छा जावेगी । हम देखते हैं कि धीरे धीरे भारत सारे संसार के लिये

+ देखिये ऐंग्लो 'मराठा' २६ सितम्बर सन् १९१६ ई.

अस्पृश्य हुआ जाता है। क्या यह अवस्था वाञ्छनीय है ? इसका *परिणाम अमेरीकनों के लिये क्या होगा,* यह अभी उन लोगों को मालूम नहीं है। भारतवर्ष में आजकल राष्ट्रीय भावों का प्रचार हो रहा है, जब अमेरीकनों के अन्याय की बात सम्पूर्ण भारत में फैल जावेगी और हम सब लोगों को भारत के राष्ट्रीय सम्मान की बेइज्जती होते देखकर क्रोध आवेगा उस समय अमेरीकन लोग समझेंगे कि इस *अन्यायपूर्ण नीति का क्या दुष्परिणाम हुआ।* जिस समय हम तीस करोड़ भारतवासी यह प्रतिज्ञा कर लेंगे कि हम अमेरीका की बनी हुई किसी वस्तु का व्यवहार नहीं करेंगे उस समय अमेरीकनों की बड़ी भारी आर्थिक हानि होगी। जब अमेरीकन लोग हमारे साथ अन्याय करते हैं, तो हमें सर्वथा उचित है कि हम इसका बदला लें और उन्हें बतला दें कि हिंदुस्तानी लोग एक जीवित देश के हैं। स्वयं अमेरीकन लोगों को भी अभी से इस बात का डर लग गया है। 'Nebraska state Journal' नामक पत्र अपने देश भाइयों को सचेत करता हुआ लिखता है:—

"The Hindus in India are *expressing* in no uncertain way the resentment they feel over the plans on foot to exclude them from the United States. They are an exceedingly proud people who have recently taken pains to mulct Great Britain to the extent of many millions of dollars worth of trade every year, because the attitude of the Government has not been satisfactory to the natives. what boycott will now be extended to American goods, it is practically certain if a policy of general exclusion is carried out, and a very promising trade expansion for our merchants will be nipped in the bud."

इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि ब्रिटिश सरकार अमेरीका पर इस बात का दबाव डाले कि वहाँ भारतवासियों को वह ही प्रवेशाधिकार मिलने चाहिये, जो चीनियों और जपानियों को प्राप्त हैं। इसके अतिरिक्त समर के अनन्तर ब्रिटिश साम्राज्य के भिन्नभिन्न भागों का जो संगठन हो उसमें भारत को स्वराज्य के ऐसे अधिकार मिलें, जिससे वह आत्मसम्मान की रक्षा स्वयं कर सके। बात तो असली यह है कि यदि आज भारत 'स्वतंत्र' होता तो अमेरीका की क्या मजाल थी कि वह इस प्रकार का अपमानकारी नियम बनाने के लिये उद्यत होता!

प्रथमखण्ड समाप्त
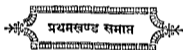
प्रवासी भारतवासी
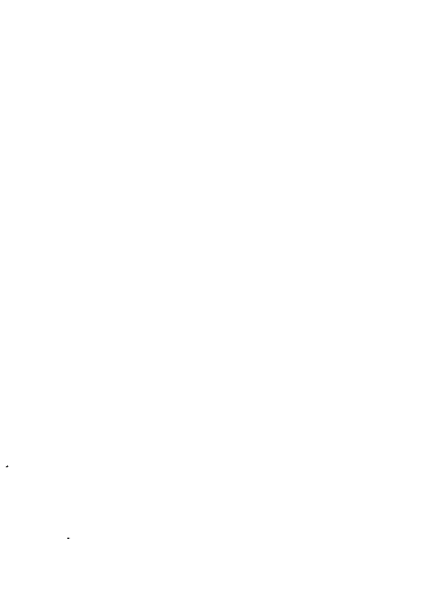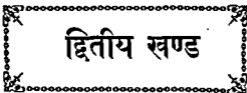
द्वितीय खण्ड

द्वितीय खण्ड

स्मोकिङ्ग (चुरटबाज़ी) करेगा। तुम हमारा पैर के पास बैठो।" गान्धी जी जगह पर से हटने के लिये राज़ी नहीं हुये। तब तो इस गोरे ने गान्धी जी के मुक्के लगाने शुरू किये। यह देख अन्य श्वेताङ्ग यात्री उस गार्ड को रोकने लगे, लेकिन वह नहीं रुका, तब वह यात्री कहने लगे "चलो इस कमबख्त काले आदमी को पिटे जाने दो।"

प्रिटोरिया में एक बार जब कि आप बोरों के प्रेसीडेण्ट के बँगले के सामने की पगडंडी (Foot path) पर चल रहे थे, एक गोरे सिपाही ने इनके एक लात मारी और इन्हें वहाँ से हटा दिया। परन्तु आपने शान्तिपूर्वक इस दुर्व्यवहार को सहन कर लिया।

जनवरी सन् १८९७ ई. में जब गान्धी जी सकुटुम्ब दक्षिण अफ्रिका को भारत से वापिस गये थे, तब भी कुछ गोरों ने उन पर बड़ा अत्याचार किया था। जिस समय आप सड़क पर जा रहे थे गोरे लोगों ने इन पर पत्थर, मछली और सड़े अण्डों की वर्षा की थी! [हमारे यहाँ तो सुवर्णवृष्टि की दन्तकथा बहुत प्रचलित हैं, लेकिन मौसवृष्टि शायद सभ्यता की डींग मारनेवाले यूरोपियनों के यहाँ ही होती है।] इस वृष्टि से भी यह लोग सन्तुष्ट नहीं हुये। एक यूरोपियन गुंडा पीछे से इन पर झपटा और कहने लगा "क्या आप वही गान्धी हैं जिसने हमारी शिकायत लिखी थी!" यह कहकर इस धूर्त ने गान्धी जी के पीछे बड़े ज़ोर से लात मारी! इस लातके धक्के की वजह से गान्धी जी एक बाड़ पर जा लगे। इतने में इस अत्याचारी गोरे ने दूसरी लात जमाई, जिससे गान्धी जी बेहोश हो गये!! यह दृश्य देखकर पुलिस सुपिरिण्टेण्डेण्ट की स्त्री मिसेज़ अलिक्ज़ेण्डर को दया आ गई और उन्होंने गान्धी जी की सहायता की, इस प्रकार गान्धी जी के प्राण बचे।

यदि महात्मा गान्धी इन अत्याचारों के उत्तर में शारीरिक शक्ति-का प्रयोग करते तो कोई महत्त्व की बात नहीं थी। ईंट का जवाब

अयोग्य न बनाये, वरन् मुझे शक्ति और बल दे, जिससे कि मैं अपने काम को पूरी पूरी तौर कर सकूँ। मेरे काम से प्रसन्न होकर जमादार ने सावाशी की थपकी दी। मैंने उसे उत्तर दिया कि जितना मुझ से हो सके उतना काम करना मेरा कर्तव्य है।" *

गान्धी जी भारतमाता के उद्धार की चिन्ता में इतने लिप्त रहते हैं कि आप को अपने कुटुम्बियों तक की सुधि नहीं। एक बार जब गान्धी जी बोल्कस्ट की जेल में थे तब एक ऐसी घटना हुई, जिससे उनकी देशभक्ति की पूर्ण परीक्षा हो गई। इस घटना का विवरण उन्हीं के शब्दों में सुन लीजिये। गान्धी जी लिखते हैं "जब कि जेल में मेरा आधा समय कट गया था, मेरे मकान से तार आया कि मेरी स्त्री बहुत सख्त बीमार है, और मेरी बाट देख रही है। मेरा घर जाना अत्यावश्यक समझ गया, किन्तु मैं भली भाँति जानता था कि इस समय मेरा क्या कर्तव्य है। जेल के दारोगा ने मुझ से कहा कि तुम जुर्माना देकर घर जा सकते हो। मैंने उत्तर दिया कि यह तो हमारे संग्राम का मुख्य सिद्धान्त है कि यदि इस कार्य्य में हमें स्त्री, और पुत्र इत्यादि से भी हाथ धोना पड़े तो भी हम इस युद्ध से पीछे नहीं हटेंगे। मेरे यह शब्द सुन कर पहिले वह दारोगा मुस्कराया फिर वह शोक प्रकट करने लगा। कोई लोग मुझे कठोर हृदय और निर्दयी कहेंगे कि मैं अपनी प्राणेश्वरी को मृत्युकारक व्याधि से पीड़ित देख कर भी जुर्माना देकर घर जाने को सहमत न हुआ। देशानुराग मैं अपने धर्म का मुख्य अङ्ग समझता हूँ। जब तक मनुष्य की रग रग में देशप्रेम और देश के प्रति गाढ़ भक्ति न भरी हो, तब तक वह अपने धर्म का पालन पूर्ण रीति से नहीं कर सकता। अथ च

* श्रीयुत मुकुन्दीलाल जी वर्मा कृत "कर्म वीर गान्धी" नामक पुस्तक देखिये।

अयोग्य न बनाये, वरन् मुझे शक्ति और बल दे, जिससे कि मैं अपने काम को पूरी पूरी तौर कर सकूँ। मेरे काम से प्रसन्न होकर जमादार ने साबाशी की थपकी दी। मैंने उसे उत्तर दिया कि जितना मुझ से हो सके उतना काम करना मेरा कर्तव्य है।" *

गान्धी जी भारतमाता के उद्धार की चिन्ता में इतने लिप्त रहते हैं कि आप को अपने कुटुम्बियों तक की सुधि नहीं। एक बार जब गान्धी जी वोल्करस्ट की जेल में थे तब एक ऐसी घटना हुई, जिससे उनकी देशभक्ति की पूर्ण परीक्षा हो गई। इस घटना का विवरण उन्हीं के शब्दों में सुन लीजिये। गान्धी जी लिखते हैं "जब कि जेल में मेरा आधा समय कट गया था, मेरे मकान से तार आया कि मेरी स्त्री बहुत सख्त बीमार है, और मेरी बाट देख रही है। मेरा घर जाना अत्यावश्यक समझ गया, किन्तु मैं भली भाँति जानता था कि इस समय मेरा क्या कर्तव्य है। जेल के दारोगा ने मुझ से कहा कि तुम जुर्माना देकर घर जा सकते हो। मैंने उत्तर दिया कि यह तो हमारे संग्राम का मुख्य सिद्धान्त है कि यदि इस कार्य्य में हमें स्त्री, और पुत्र इत्यादि से भी हाथ धोना पड़े तो भी हम इस युद्ध से पीछे नहीं हटेंगे। मेरे यह शब्द सुन कर पहिले वह दारोगा मुसकराया फिर वह शोक प्रकट करने लगा। कोई लोग मुझे कठोर हृदय और निर्दयी कहेंगे कि मैं अपनी प्राणेश्वरी को मृत्युकारक व्याधि से पीड़ित देख कर भी जुर्माना देकर घर जाने को सहमत न हुआ। देशानुराग मैं अपने धर्म का मुख्य अङ्ग समझता हूँ। जब तक मनुष्य की रग रग में देशप्रेम और देश के प्रति गाढ़ भक्ति न भरी हो, तब तक वह अपने धर्म का पालन पूर्ण रीति से नहीं कर सकता। अथ च

* श्रीयुत मुकुन्दीलाल जी वर्मा कृत "कर्म वीर गान्धी" नामक पुस्तक देखिये।

पत्थर से देने में क्या खूबी है ? लेकिन महात्मा गान्धी ने इसका उत्तर आत्मिक बल द्वारा दिया । उन्हों ने समझ लिया कि इन दुष्टता-पूर्ण व्यवहारों का सामना धैर्य और सहनशीलता के साथ करना चाहिये, न कि क्रोध के साथ । इसी कारण उन्हों ने इस अपमान को सर्वदा सामने रखकर उसका विरोध 'निष्क्रिय प्रतिरोध' द्वारा करने की चेष्टा की ।

स्वदेशप्रेम—गान्धीजी का देशप्रेम अकथनीय है । एक आदर्श देशभक्त में जितने गुण होने चाहिये वह सब आप में विद्यमान हैं । आप अपना तन मन धन सर्वस्व स्वजाति के लिये लगा चुके हैं। देश के लिये जितने कष्ट महात्मा गान्धीने सहे हैं, उतने महात्मा तिलक को छोडकर शायद ही किसी भारतीय नेता ने सहे होंगे। स्वदेश के ही गौरवकी रक्षा के लिये आप तीन बार जेल जा चुके हैं । जेल में आपको बडी बडी तकलीफें झेलनी पडी हैं । वहाँ कभी कभी आप को पाख़ाना भी साफ़ करना पडता था । अपने प्रथम कारावास का हाल लिखते हुये गान्धीजी ने एक जगह लिखा है । "ठीक नौ बजे चीनी क़ैदी पाख़ाने के पात्र को उठाने आया करते थे । अतएव यदि हम इस समय के पीछे स्थान को स्वच्छ रखना चाहते तो हमें स्वयं महतर का कार्य्य करना पडता था"।

दूसरी बार जब गान्धी जी क़ैद किये गये थे, तब भी उन्हें जमादार के कहने से कई बार पाख़ाना साफ़ करना पड़ता था। गान्धी जी का जेल का एक अनुभव सुनिये । वह लिखते हैं:—

"मैं स्वयं थक गया था । मेरे हाथ जगह जगह कट और छिल-गये थे, जिनके फूटने से पानी निकलता था । कमर झुकाना भी कठिन हो गया था । यह मालूम होता था कि फावड़ा पूरा मन भर भारी है । मैं ईश्वर से प्रार्थना करता था कि वह मुझे काम

में है ही नहीं, उन्होंने अपने देशभाइयों के लिये सम्पूर्णतया आत्म-त्याग कर दिया है और इस समय वह निर्धन आदमी की तरह उसी दशामें यहाँ से वापिस जा रहे हैं, जिस दशा में कि वह यहाँ आये थे।"

जब रेवरेण्ड डोक साहब ने मिस्टर गान्धी से पूँछा था "कहिये आप अपने कार्य के लिये कहाँ तक आत्मसमर्पण कर सकते हैं?" तब उन्होंने उत्तर दिया था:—

"I am nothing, I am willing to die at any time or to do anything for the cause."

अर्थात्–"मैं कोई चीज़ नहीं हूँ, इस कार्य्य के सिध्यर्थ मैं प्रत्येक कार्य करने के वास्ते यहाँ तक कि मरने के लिये भी तैय्यार हूँ"।

'सत्याग्रह' में विजय प्राप्त करने के बाद जब गान्धी जी दक्षिण आफ्रिका से विलायत को जाना चाहते थे, वह दरबन से रेल द्वारा जोहान्सबर्ग पहुँचे। वहाँ उनको विदा करने के लिये सभा होने वाली थी। ज्योंही गाड़ी स्टेशन पर पहुँची त्यों ही स्टेशन 'बन्दे-मातरम्' की ध्वनि से गूँज उठा। महात्मा गान्धी और उनकी धर्मपत्नी पर पुष्पों की वर्षा होने लगी। इस आनन्द के समय भी ...ड़े से अदूरदर्शी मुसलमानों ने बड़ी ही धृष्टता और कृतघ्नता का ...म किया। एक मुसलमान महात्मा गान्धी जी के ऊपर अण्डा ...कता हुआ पकड़ा गया, हिन्दुओं ने उसे खूब ही पीटा। रात को ...ब सभा हुई तो सभाभवन हिन्दू मुसलमानों से खचाखच भर गया। ...ी आशङ्का थी कि कहीं मुसलमान लोग मिलकर गान्धी जी को पीटें। जब गान्धी जी ने यह समाचार सुना तो उन्होंने कहा "मैंने सुना है कि मेरे कुछ भाई मुझे मारने पर उतारू हैं। इनसे मुझे ...छ नहीं कहना है। वह भले ही मुझे मारें। मैं मार खाने के लिये ...प्यार हूँ, जो लोग मेरी रक्षा के लिये प्रबन्ध कर रहे हैं, उनसे मेरी

यदि हमें अपने धर्म पर तत्पर रहने के लिये अपने स्त्री पुत्र इत्यादि को छोड़ना पड़े या उन्हें अपने सामने मृत्यु को प्राप्त होते भी देखना पड़े, तो इसमें क्या कठोरता है ? वास्तव में अपने धर्म पालन के हेतु वियोग सहना हमारा कर्तव्य है ।"

हमारे कुर्सी तोड़ स्वदेश नेताओं में कितने ऐसे हैं, जो देश के लिये इस प्रकार के कष्ट सहन को तैयार हों ?

देश की सेवा करते हुए जेल जाने को गान्धी जी अपना परम सौभाग्य समझते हैं । यद्यपि जेलमें गान्धी जी को बड़ा परिश्रम करना पड़ता था, खाने पीने का अत्यन्त ही कष्ट था, कभी कभी भूखों भी रहना पड़ता था, और खूनी चोर, काफ़िर और बदमाश हबशियों के साथ काल कोठरियों में सोना पड़ता था, तथापि इन कष्टों को गान्धीजी कष्ट नहीं गिनते थे । जो प्रवासी भारतीय नेता अपने भाइयों की सेवा करना चाहते हैं उन्हें इस प्रकार के कष्टों को सहने के लिये सदा उद्यत रहना चाहिये ।

साहस—महात्मा गान्धी के बराबर साहसी आदमी इस संसारमें बहुत ही कम पाये जाते हैं । उनके दक्षिण अफ्रिका से बिदा होने के समय जो सभा दरबनमें हुई थी, उसमें मिस्टर एफ़. ए. लाटन के. सी. ने कहा था:—

"Mr Gandhi's courage has never been excelled—I doubt whether I have ever seen it equalled. Selfishness Mr. Gandhi had none. He has sacrificed every thing to his people whom he loves, and he leaves as poor a man as when he came to this country."

अर्थात्—" किसी ने आज तक मिस्टर गान्धी जी से ज्यादा साहस नहीं दिखलाया—मैंने शायद ही कभी मिस्टर गान्धी के समान साहसी कोई दूसरा आदमी देखा हो । स्वार्थपरता तो मिस्टर गान्धी

सारांश निकालता हूँ कि हिन्दुओं को मुसलमानों पर विशेष कृपा रखनी चाहिये। बड़े भाई को छोटे पर कृपा रखनी ही उचित है। एकता तभी रह सकती है, जब दोनों एक दूसरे के प्रति सहानुभूति और उदार भाव रक्खें। जब हिन्दू मुसलमान अपने को एक ही माता के दो पुत्र समझ कर परस्पर सहानुभूति रख मिलजुल कर काम करेंगे तभी भारत के अभ्युदय के दिन फिरेंगे।"

प्रवासी हिन्दुओं और मुसलमानों में स्थायी मेल किस तरह हो सकता है, इस विषय में तो हम आगे चलकर लिखेंगे, लेकिन यहाँ हम यह अवश्य कहेंगे कि हिन्दुओं और मुसलमानों का मेल कराने की वजह से दक्षिण अफ्रिका में गान्धी जी को अपने कार्य्य में बहुत सफलता प्राप्त हुई।

राजनैतिक आन्दोलन की शिक्षा

गान्धीजी ने ही प्रवासी भारतीयों को राजनैतिक आन्दोलन करना सिखलाया। इस समय राजनैतिक आन्दोलन करने में दक्षिण अफ्रिका के प्रवासी भाई हम लोगों की अपेक्षा कहीं ज्यादा कुशल हैं। सत्याग्रह के संग्राम में २५ हज़ार भारतियों ने भाग लिया था। यह संख्या तो उन लोगों की है, जिन्होंने अपनी जी जान की कुछ परवाह न करके इस धार्मिक युद्ध में पूरा पूरा काम किया था, इनके अतिरिक्त हज़ारों लोगों ने सभा करके, चन्दा इकट्ठा करके तथा अन्य प्रकार से सत्याग्रही भाइयों की सहायता की थी। दक्षिण अफ्रिका के प्रवासी भाईयों की कुल संख्या लगभग डेढ़ लाख है, इसका छटवाँ हिस्सा सत्याग्रह जैसे कठिन संग्राम में सम्मिलित हुआ, यह कुछ कम गौरव की बात नहीं। जब भारत के तीस

सारांश निकालता हूँ कि हिन्दुओं को मुसलमानों पर विशेष कृपा रखनी चाहिये। बड़े भाई को छोटे पर कृपा रखनी ही उचित है। एकता तभी रह सकती है, जब दोनों एक दूसरे के प्रति सहानुभूति और उदार भाव रक्खें। जब हिन्दू मुसलमान अपने को एक ही माता के दो पुत्र समझ कर परस्पर सहानुभूति रख मिलजुल कर काम करेंगे तभी भारत के अभ्युदय के दिन फिरेंगे।"

प्रवासी हिन्दुओं और मुसलमानों में स्थायी मेल किस तरह हो सकता है, इस विषय में तो हम आगे चलकर लिखेंगे, लेकिन यहाँ हम यह अवश्य कहेंगे कि हिन्दुओं और मुसलमानों का मेल कराने की वजह से दक्षिण अफ्रिका में गान्धी जी को अपने कार्य्य में बहुत सफलता प्राप्त हुई।

राजनैतिक आन्दोलन की शिक्षा

गान्धीजी ने ही प्रवासी भारतीयों को राजनैतिक आन्दोलन करना सिखलाया। इस समय राजनैतिक आन्दोलन करने में दक्षिण अफ्रिका के प्रवासी भाई हम लोगों की अपेक्षा कहीं ज्यादा कुशल हैं। सत्याग्रह के संग्राम में २५ हजार भारतियों ने भाग लिया था। यह संख्या तो उन लोगों की है, जिन्होंने अपनी जी जान की कुछ परवाह न करके इस धार्मिक युद्ध में पूरा पूरा काम किया था, इनके अतिरिक्त हजारों लोगों ने सभा करके, चन्दा इकट्ठा करके तथा अन्य प्रकार से सत्याग्रही भाइयों की सहायता की थी। दक्षिण अफ्रिका के प्रवासी भाईयों की कुल संख्या लगभग डेढ़ लाख है, इसका छटवाँ हिस्सा सत्याग्रह जैसे कठिन संग्राम में सम्मिलित हुआ, यह कुछ कम गौरव की बात नहीं। जब भारत के तीस

नामक पत्र की नींव डाली। पहिले ही साल में इसमें तीस हजार रुपये डूब गये; अभी तक लोगों में इतना उत्साह और इतनी शिक्षा न थी कि वह इसका यथोचित आदर कर सकते। पहिले तो इसके संचालन का भार कई लोगों ने लिया था, लेकिन जब घाटा हुआ तब सब अलग हो गये और अब तक यह पत्र गान्धी जी के ही धन से चल रहा है।

इसके अतिरिक्त गान्धीजी ने लोगों को यह भी बतलाया कि जो लोग ब्रिटिश साम्राज्य में नागरिक होने के पूर्ण अधिकार माँगते हैं उनके लिये यह भी आवश्यक है कि वह साम्राज्य के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन भी करें। इसी लिये बोर युद्ध के समय उन्हों ने 'Indian Ambulance Corps' अर्थात् 'भारतीय आहत सहायक सेना' बनाई। इस सेना में हिन्दुस्तानी व्यापारी, वकील, मजदूर इत्यादि सब प्रकार के लोग थे। गान्धी जी इन सब के अग्रगण्य थे। इनकी असाधारण कार्य्यकुशलता से विस्मित होकर जनरल बुलर इन को असिस्टेण्ट सुप्रिंटेंडेण्ट (सहायक निरीक्षक) कहा करते थे। यह भारतीय लोग कई युद्धों में रहे और कई अवसरों पर इन्हों ने जो सहायता दी, वह चिरस्मरणीय है। विशेषतः स्पिआनकोप की लड़ाई में इन्हों ने जो कार्य्य किया वह बहुत प्रशंसनीय है। लड़ाई नदी के किनारे हो रही थी। बोअर लोग नदी के एक किनारे पर एक पहाड़ी पर से अँगरेज़ों पर गोले बरसा रहे थे। नदी के इस पार कुछ अँग्रेज़ थे और शेष उस पार उसी पहाड़ी के नीचे लड़ रहे थे। दोनों किनारों के बीच एक छोटा सा पुल था, जिस पर गोलों की भरमार के आगे चलना असम्भव सा था, परन्तु वहाँ पर भी इन लोगों ने अपना कर्तव्य पालन किया। वह इस पुलको पार करके गये, आहत सिपाहियों को उस युद्धक्षेत्रसे उठाया और फिर पुल पार
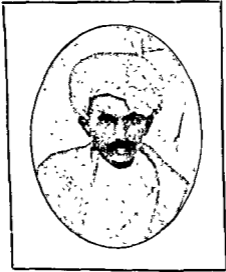
सत्याग्रही महात्मा मोहनदास कर्मचन्द गांधी.

नहीं हैं। आपने प्रवासी भाईयों के लिये बहुत कार्य्य किया है, आप कई वर्ष से भारतवर्ष के प्रसिद्ध प्रसिद्ध पत्रों में कुली प्रथा के विषय में लिख रहे हैं। आप के ही प्रेरित करने से महात्मा गोखले ने 'कुली प्रथा' का प्रश्न सन् १९१२ ई. में श्रीमान् वायसराय की कौंसिल में पेश किया था। मोरीशस में आप कई वर्ष तक रहे थे और वहाँ के प्रवासी भारतीयों के लिये आपने बहुत कुछ कार्य्य किया था। पोर्ट लुई के एक भूतपूर्व मेयर ने कहा था कि 'डाक्टर मणिलाल जी मोरीशस प्रवासी भारतीयों की स्वाधीनता की रक्षा के लिये सब से अधिक प्रयत्नशील हैं।' जब तक आप मोरीशस में रहे बराबर मोरीशसवालों के अधिकारों के लिये लड़ते झगड़ते रहे; इसी कारण मोरीशस के गोरे प्लैण्टर आप से बहुत जलते थे और उन लोगों ने कह सुन कर आप के मोरीशस से निकाले जाने की आज्ञा गवर्नर से दिलवा दी थी, लेकिन् स्वर्गीय महाराज सप्तम एडवर्ड ने कृपा कर इस आज्ञा को रद्द कर दिया था। मोरीशस से आपने एक 'हिन्दुस्तानी' नामक पत्र भी निकाला था, जिसमें वहाँ के प्रवासी लोगों के दुःखों का वर्णन रहता था। मोरीशस के प्रतिनिधि होकर आप राष्ट्रीय सभा में भी कई बार सम्मिलित हुये थे। जब मोरीशस के विषय में कमीशन बैठा था तो उसके सामने गावाही देने के लिये आप विलायत गये थे। आपने ही प्रयत्न करके मोरीशस को कुली जाना बन्द कराया, जो भारतवासी वहाँ बस गये हैं उनकी बहुत कुछ सहायता की, वहाँ के कानून में हेरफार कराया, और आपके ही प्रयत्न से मोरीशसवाले हिन्दू और मुसलमानों ने कई अपमान-जनक फ़ैश्व क़ायदों से मुक्ति पाई। मोरीशस में पहिले यह नियम था कि जेल में हिन्दुओं और मुसलमानों की चोटी और दाढ़ी काट दी जाती थी, और खाने पीने में भी बहुत [illegible]

आर्य्य वीर का मूल्य फिजी जाकर मालूम हुआ। फिजी में पहुँचतेही एक बड़े उच्च पदाधिकारी से मैंने पूँछा कि अपने आन्दोलन में मैं किस से सहायता लूं। मुझे उत्तर मिला कि यदि पं. तोताराम होता तो मैं निस्सङ्कोच तुम्हें उससे सहायता लेने के लिये कहता। ' उन्हों ने कहा ' कि हम तोताराम को १४ वर्षों से जानते हैं और हमें निश्चय है कि हमने इस बड़े अन्तर में उसे एक बार भी झूंठ बोलते नहीं देखा। " * वास्तव में एण्ड्रूज़ साहब की सम्मति बिल्कुल ठीक है। पं. तोताराम सनाढ्य ने अपने फिजी प्रवासी भाईयों के लिये जितना स्वार्थत्याग और परिश्रम किया है वह भारत के कुछ कुर्सी तोड़ स्वयम्भू नेताओं के कार्य्य से कहीं अधिक और महत्त्व पूर्ण है।

सन् १८९३ ई. में, जब कि आपने हिन्दी की केवल प्रारम्भिक शिक्षा ही प्राप्त की थी, आरकाटी द्वारा बहकाये जाकर फिजी को भेज दिये गये थे। वहाँ पर आप को पाँच वर्ष तक कुलीगीरी का काम करना पड़ा। जो लोग शर्तबन्दी में काम करते हैं उनके चरित्र कुलीलैनों की भयंकर परिस्थिति के कारण प्रायः बिगड़ जाते हैं। ऐसे लोगों पर अक्सर जुर्माने होते हैं और उन्हें इन पाँच वर्षों के अन्दर कई बार कारावास का दण्ड भोगना पड़ता है; लेकिन पं. तोताराम ने बड़ी चतुरता के साथ अपने चरित्र की रक्षा की, और आपने मजदूरी का काम इतने परिश्रम से किया कि कभी भी आप पर कुछ भी जुर्माना नहीं हुआ, और न आप को कभी बड़े घर की हवाही खानी पड़ी। स्वतंत्र होने के बाद आपने अपने प्रवासी भाइयों की स्थिति सुधारने के लिये फिजी द्वीप में घूमना प्रारम्भ किया। फिजी एक द्वीपसमूह है, जिस में २५४ छोटे छोटे द्वीप हैं। इन द्वीपों में जितनी यात्रा पं. तोताराम सानाढ्य ने की है, उतनी शायद ही

* देखो ' सद्धर्मप्रचारक ' १२ फर्वरी सन् १९१६ ई. का मुख्य लेख।

सब को धर्म में प्रवृत्त किया, ईश्वर आप को इस उपकार का बदला देवेगा। महात्मा गान्धी जी और डाक्टर मणिलाल जी से पत्रव्यवहार करके डाक्टर मणिलालजी को बुलाने के लिये पैसा इकट्ठा करने के निमित्त आप अपनी गाँठ का पैसा खर्च कर पहाड़ व जंगलों में कोठियों में घुमे और अपनी स्त्री और बच्चों की भी पर्वाह न करके २६००) रु. इकट्ठा किया और डाक्टर मणिलाल जी को बुलाया। यह कहना अनुचित न होगा कि डाक्टर जी आज आपही के कठिन परिश्रम से आये हैं। भारत सरकार ने जो कमीशन हम लोगों के दुःख सुख जाँच करने के लिये भेजा था, उसके जाँच करने की सूचना फ़िजी के एजेण्ट जनरल ने यहाँ के गोरे ज़मीन्दारों को दे दी थी; हम लोगोंको स्वप्न में भी कमीशन के आने की खबर न थी। आपने ऐसे समय में अपनी बुद्धिमत्ता दिखला, कुली एजण्ट से उपरोक्त कमीशन की जाँच का नोटिस लाकर अँग्रेजी से हिन्दी में तर्जुमा कराके तमाम कोठियों में पहुँचाया.................और भी कुन्ती का दुख देख उस पर गुज़रे जुल्म आपने ही भारतके समाचार पत्रों में उद्धृत कराके भारत के नेता तथा सरकार तक पहुँचाये। आपने ही यह बात एजेण्ट जनरल तक पहुँचाई कि हिन्दू मुसलमानों के धार्मिक विवाहों को सरकार स्वीकार करे...... "

जब पं. तोतारामजी भारत को रवाना हुये थे तो 'पैसफिक हैराल्ड नामक गोरों के एक पत्र ने लिखा था:—

"Tota Ram is leaving for good and his departure is much felt by the Indians of Fiji, as he has been one of the leading Aryan lecturers and debaters in the colony...... It is noteworthy that Pandit Tota Ram is the first Indian who has reelived an address from his fellow country-men in Fiji."

और अनुमोदक २१ वर्ष तक फिजी की खाक छाननेवाले पं. तोताराम सनाढ्य थे।

कुलियों के कष्टों के विषय में हमारे पाठक बहुत कुछ जानते हैं, परन्तु कांग्रेसवाले इस विषय में कुछ नहीं जानते। इसी से उन्होंने इस को महत्त्व नहीं दिया। यदि फिजी प्रवासी भारतवासी तोताराम जी को अपना प्रतिनिधि बनाकर न भेजते तो इसकी भी आशा न थी।"

हरिद्वारके कुम्भ पर आपने निजके व्यय से बारह दिन तक कुली-प्रथा के विरुद्ध प्रचार किया था और ५० सहस्र विज्ञापन आरकाटियों के विरुद्ध बँटवाये थे। कितने ही गाँवों में घूम घूम कर आप ने टापूओं के दुःख सुनाये हैं। इस विषय में आप बिना किसी दूसरे की सहायता के ७०० रु. अपनी गाँठ से व्यय कर चुके हैं। आपने 'फिजी द्वीप में मेरे २१ वर्ष' नामक पुस्तक छपवाकर सर्व साधारण का बड़ा उपकार किया है। इस पुस्तक के तीन अनुवाद भिन्न भिन्न स्थानों से गुजराती में प्रकाशित हो चुके हैं; इसका मराठी अनुवाद छप चुका है, इसका अँग्रेजी अनुवाद कराके मि. एण्ड्रूज् फिजी को ले गये थे और इसके अनुवाद बँगला और गुरुमुखी में भी शीघ्र ही प्रकाशित होंगे। हिन्दी में इस पुस्तक के दो संस्करण हो चुके हैं। सब भाषाओं में मिलाकर इस पुस्तक की लगभग १३ सहस्र प्रतियाँ छप चुकी हैं।

श्रीमान् लार्ड हार्डिञ्ज ने भी इस पुस्तक के कुछ अंशों का अनुवाद अपने लिये करवाया था। मि. ऐण्ड्रूज़ ने इस पुस्तक के विषय में लिखा था:—

"I can assure you the book you have sent will be of very great service to the cause we all have so much at heart the abolition of this indenture slavery...... I have got a translation made for me of your excellent book. It is very nearly completed. I Shall use it freely."

थी। सन् १९०४ ई. में आप अपने पिता के साथ भारतवर्ष को आये। दो वर्ष तक आपने विहार बंगाल की आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से धर्मोपदेश का कार्य किया। सन् १९०८ ई. में आपका विवाह हुआ। सन् १९१२ ई. में आपने सपरिवार दक्षिण आफ्रिका के लिये प्रस्थान किया। जब जहाज़ दरबन पहुँचा तो सरकारी कर्मचारियों ने आप को वहाँ नहीं उतरने दिया और आप को भारत को लौट जाने के लिये कहा। तब महात्मा गान्धी और मि. पोलक ने सुप्रीम कोर्ट का दरवाज़ा खटखटाया। १५००) रु. की ज़मानत लेकर दक्षिण अफ्रिका की सरकार ने उन्हें इस शर्त पर उतरने दिया कि यदि वह १४ दिन के अन्दर यह प्रमाणित कर सकेंगे कि उन्हें दक्षिण आफ्रिका में रहने का अधिकार है तो वह वहाँ रहने पावेंगे, नहीं तो भारत को लौटा दिये जावेंगे। बड़े बड़े प्रमाण देने पर बड़ी मुश्किल के बाद पं. भवानीदयाल जी का उस देश में रहने का अधिकार स्वीकार किया गया।

जब सत्याग्रह का संग्राम प्रारम्भ हुआ था तब श्रीयुत भवानीदयाल जी से उनकी धर्म्म पत्नी श्रीमती जगरानीदेवीजी ने जेल में जाने की आज्ञा माँगी। आपने उनसे कहा कि इस विषय में महात्मा गान्धी की अनुमति लेनी उचित है। महात्मा गान्धी ने श्रीमती जगरानीदेवी से कहा 'जेल में बड़े बड़े कष्ट उठाने पड़ते हैं, अच्छा कपड़ा पहिनने को नहीं मिलता, कठिन से कठिन काम करना पड़ता है, और भोजन खराब मिलता है, ऐसी दशा में तुम क्यों इतना कष्ट उठाती हो?" इसके उत्तर में श्रीमती जगरानी देवी ने कहा "जेलघर को मैं महल समझूँगी। जेल के गाढ़े को रेशमी वस्त्र और बुरे भोजन को मोहनभोग मानूँगी और कड़े से कड़ा काम मैं खुशी के साथ महनत से करूँगी। जिस क़ायदे से हिन्दुस्तान की शुद्ध और सती स्त्रियाँ

से छूटने पर आप 'इण्डियन ओपीनियन' के हिन्दी विभाग के सम्पादक नियुक्त हुये। 'आर्य्यावर्त' के भी आप सहकारी सम्पादक थे। पं. भवानी दयाल ने दक्षिण अफ्रिका में कई संस्थायें स्थापित की हैं। जार्मिस्टन की हिन्दी प्रचारिणी सभा आप ही के प्रयत्न का फल है। एक हिन्दी पुस्तकालय और रात्रिपाठशाला भी आपने स्थापित की है। आप इस पाठशाला के अवैतनिक मुख्य अध्यापक हैं। 'सत्याग्रह का इतिहास' लिखकर आपने हिन्दी संसार का बड़ा भारी उपकार किया है। +

'धर्मवीर' पत्र का सम्पादन आप ही करते हैं। आप इससमय हिन्दी आश्रम, हिन्दी विद्यालय और हिन्दी यन्त्रालय स्थापित करने और 'हिन्दी' नामक साप्ताहिक पत्र निकालने के प्रयत्न में लगे हुये हैं। ईश्वर आपको सफल करे। परमात्मा करे कि प्रवासी नवयुवक पं. भवानीदयाल के दृष्टान्त से स्वार्थत्याग और देशसेवा करना सीखें।

अध्यापक तेजसिंह।

आप का जन्म पंजाब के बल्लोवाली नामक ग्राम में सम्वत् १९३५ विक्रमी में हुआ था। बड़े परिश्रम के साथ आप ने सम्वत् १९५८ ई. में एम. ए. और एल. एल. बी. की परीक्षायें पास कीं। इसके कुछ दिनों बाद आपने वकालत आरम्भ की, लेकिन उस में आपका मन नहीं लगा, इस लिये आपने उसे छोड़ दिया। तत्पश्चात् एक स्कूल में आप सात महीने तक हेडमास्टर रहे, तदन्तर दो वर्ष तक नमक विभाग के सहकारी अधिष्ठाता की जगह काम किया।

+ यह सर्वोत्तम पुस्तक सरस्वती-सदन, इन्दौर से मिल सकती है।

के कुछ नगरों में हिन्दुओं का अड्डा जम जाय और उन लोगों की धार्मिक सामाजिक, शिक्षाविषयक और आर्थिक दशा भी अच्छी रहे। क्या ही अच्छा हो यदि दस बीस सुशिक्षित भारतवासी अध्यापक तेजसिंह की तरह प्रवासी हिन्दुस्तानियों का उद्धार करना अपने जीवन का उद्देश्य बना लें!

सर शीतल प्रसाद दुबे

आप का जन्म सन् १८६७ ई. में जिला फैजाबाद के बेंती नामक ग्राम में हुआ था। चौदह वर्ष की अवस्था में आप अपनी माता के साथ डचगायना की राजधानी सुरी नाम में पहुँचे; माता पुत्र दोनों जगन्नाथजी की यात्रा को जा रहे थे, किन्तु मार्ग से ही यह माताके साथ ही इस उपनिवेश को भेज दिये गये। यहाँ शीतल प्रसाद ने विद्याभ्यास किया और डच भाषा को बहुत अच्छी तरह सीखा। १८८८ ई. में आपको इमीग्रेशन दफ्तर में दुभाषिये की नौकरी मिली। अपनी कार्य्यतत्परता और कर्तव्य परायणता के कारण आप को शीघ्रही एक उच्च पद मिल गया। आपका व्यवहार अपने देश-वासियों के साथ इतना अच्छा है कि डच गायना के ४५ हजार भारतवासी आप को अपना पिता समझते हैं। योरूप के निवासी आप को महाराजा कहते हैं। यदि किसी अन्य साधारण हिन्दुस्तानी को यह पद और सम्मान प्राप्त होता तो कभी शायद ही वह मामूली आदमी से बातचीत करता। आप को हालैण्ड की महारानी विल्हेल्मीना से "आर्डर आफ दी आरेंजे नासाउ" Order van oracge-nassaw, की पदवी मिली है। इस पदवी को बड़े बड़े डच लोग 'सर' की

भारवासी विदेशों में जाकर धनाढ्य हो गये हैं, लेकिन इन धनाढ्यों में से अधिकांश ऐसे हैं, जिन्हें भारतवर्ष की भलाई की कुछ भी चिन्ता नहीं, और जो यह भी नहीं जानते कि देशभक्ति कहते किसे हैं। ऐसे प्रवासी धनाढ्यों से हम कहते हैं कि जो मनुष्य धनवान् होकर और उच्च पद प्राप्त करके अपने देशभाईयों की कुछ भी भलाई नहीं करता और स्वार्थ में लिप्त रहता है उसका जन्म निरर्थक है।

" उसकी सब पदवियाँ व्यर्थ हैं, उसके धन को है धिक्कार।
केवल अपने तन की सेवा, करता है जो विविध प्रकार॥

विमल कीर्ति का जीवन भर वह, कभी न होगा अधिकारी।
घोर मृत्यु के पंजे में फँस, पावेगा वह दुख भारी॥

तुच्छ धूल से उपजा था वह, उस ही में मिल जावेगा।
उस पापी के लिये न कोई, आँसू एक बहावेगा॥ " *

डाक्टर सुधीन्द्र बोस एम. ए., पी. ऐच. डी.

आप का जन्म बंगाल के ढाका ज़िले में हुआ था। कोमिल्ला विक्टोरिया स्कूल से आपने ऐण्ट्रेंस की परीक्षा पास की। इसके बाद कुछ दिनों तक आप कोमिल्ला विक्टोरिया कालेजमें पढ़ते रहे, जहाँ आप के भाई मिस्टर सत्येन्द्रनाथ बसु प्रिन्सिपल थे। सन् १९०४ ई. में आप भारतवर्ष से अमेरीका के लिये रवाना हुये और तबसे आप वहीं पर हैं।

---

* अगस्त सन १९१५ ई. की 'सरस्वती' में प्रकाशित ' सुयोग पिता पुत्र ' शीर्षक लेख से संगृहीत।

सुप्रसिद्ध भारत हितैषी लार्ड हार्डिंग

सन् १९१४ ई. में पैसफ़िक कोस्ट की ख़ालसा दीवान सभा ने "हिन्दू निर्वासन कानून" (Hindu Exclusion bill) का विरोध करने के लिये आप को प्रतिनिधि बनाकर वाशिंगटन भेजा था। आप इस विषय में 'माडर्न रिव्यू,' 'इण्डियन रिव्यू' इत्यादि पत्रों में बहुत से लेख लिख चुके हैं और अमेरीका में भी बहुत कुछ आन्दोलन आपने किया है, लेकिन अमेरीकन सरकार ने इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। बात असल में यह है कि जब ब्रिटिश साम्राज्य में ही हमको कोई नहीं पूँछता तो बाहिर पूँछनेवाला कौन है?

सभापति बर्नेट साहब के सामने आपने कहा थाः-

"We are a great class of British subjects and are entitled to the rights of such a class. International complications may follow an attempt to exclude us."

अर्थात्-"हम भारतवासी ब्रिटिश की एक महान् प्रजा हैं, इसलिये हमें तदनुसार ही अधिकार मिलने चाहिये। यदि हमारा बहिष्कार किया जावेगा तो अन्तर्राष्ट्रीय झगड़े उठ खड़े होने की सम्भावना है।" इसका जवाब प्रधान बर्नेट साहब ने दियाः-

"But the other colonies of Great Britain are already excluding the Hindus."

अर्थात्-"लेकिन कितनेही ब्रिटिश उपनिवेश तो हिन्दुओंका बहिष्कार अब भी कर रहे हैं।" इसका उत्तर डाक्टर सुधीन्द्र बोस ने दिया था "हाँ ब्रिटिश उपनिवेश इस बात के लिये प्रयत्न कर रहे हैं, लेकिन विलायत की अंग्रेज़ी सरकार ने उनके इस कार्य्यका समर्थन नहीं किया है। यदि भारत को ब्रिटिश साम्राज्य का एक भाग बनाये रखना है तो अवश्यमेव इस प्रश्न को हल करना ही पड़ेगा।"

इस विषय में विशेष रूप से तो हम "अमेरीका में भारतवासी" शीर्षक प्रकरण में लिखेंगे, लेकिन यहाँपर हम इतना अवश्य कहेंगे

कि ग़रीब की जोरू को सभी भाभी समझते हैं और सभी उस
हँसी उड़ाते हैं। हमारी हालत के विषय में तो यह कहावत चरित
होती है "धोबी का कुत्ता घर का न घाट का"

अस्तु, सहस्र वार धन्यवाद है डाक्टर सुधीन्द्र बोस को, जो अप
विद्या और अनुभव से स्वदेशवासियों की सुविधा के लिये सुदूर संयुक्त
राज्यों में प्रयत्न करते रहते हैं। जब आप अमेरीका गये थे उस समय
आप के पास कुछ भी नहीं था, लेकिन आप ने अनवरत परिश्रम से
अपने आपको अत्यन्त योग्य बन लिया है। अमेरीका की बड़ी बड़ी
सभाओं के आप सदस्य हैं। परमात्मा करें कि भारतमाता के मुख को
उज्ज्वल करने वाले प्रतिभाशाली सुधीन्द्रबोस की तरह अन्य प्रवासी
भारतीय छात्र भी स्वदेशाभिमानी बनें। प्रवासी भारतवासियों को
ऐसे लोगोंसे बड़ी बड़ी आशायें हैं।

द्वितीय अध्याय

प्रवासी भारतीयों के शुभचिंतक यूरोपियन सज्जन गण

सर हैनरी काटन

आप का जन्म सितम्बर सन् १८४५ ई. में तंजौर जिले के कुम्बाकोनम नामक स्थान में हुआ था। कई पीढ़ियों से आप के बापदादे भारतवर्ष ही में सरकारी नोकरी का काम करते आये थे। पहिले पहिल कप्तान जोज़फ काटन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारिक विभाग में नोकर होकर लगभग सन् १७५० ई. में भारत वर्ष को आये थे। इनके लड़के जान काटन तंजौर में १५ वर्ष तक कलक्टर रहे। जान काटन के लड़के द्वितीय जोज़फ काटन सन् १८३१ ई. में सिविलसर्विस में नियुक्त हुये। हमारे चरित नायक सर हैनरी काटन इन्हीं के लड़के थे। सर हैनरी काटन ने सन् १८६७ ई. से सन् १९०२ ई. तक यानी ३५ वर्ष भारतवर्ष में नोकरी की। सर हैनरी काटन के सुयोग्य पुत्र जेम्स काटन साहब भी इस समय मद्रास प्रान्त के एक जिले में कलक्टर हैं। सर हैनरी काटन ने एक बार एक भोज में कहा था "मेरी पाँच पीढ़ियाँ लगातार भारतवर्ष में नोकरी करती आई हैं; यह एक ऐसी बात है, जिसका प्रत्येक आदमी अभिमान कर सकता है।'

भारतीय मज़दूरों के आप सबसे बड़े शुभचिन्तक थे। ६ वर्ष तक आप आसाम में चीफ कमिश्नर रहे थे। आसाम के कुलियों की

और सर जोन पीटर ग्राण्ट पर और भी ज्यादा जोर के साथ कटाक्ष किये गये थे। लेकिन समय ने इन लोगों की कीर्ति को सत्य प्रमाणित कर दिया है। मैं भी इसी समय रूपी न्यायाधीश से अपने लिये अपील करता हूँ।" इस में सन्देह नहीं कि सर हैनरी काटन पीड़ितों के सच्चे सहायक थे। आप ने एक बार कौंसिल में कहा था:—

"The labourers in Assam are an ignorant and voiceless community and they have no organ to press their demands, while on the other hand the British press are pledged to the hilt in the defence of their own interests and there is no need to comment on the energy and ability with which the capitalists are represented in this council, but there is no member to agree to the coolie's cause"

अर्थात्–"आसाम के मजदूर अज्ञानी तथा वाणीरहित हैं और उनका कोई पत्र नहीं है, जो उनकी आवश्यकताओं के विषय में लिखे। लेकिन दूसरी ओर ब्रिटिश समाचारपत्र निज स्वार्थों की रक्षा के लिये दृढ़-प्रतिज्ञ और कमर कसे खड़े हैं। धनाढ्य प्लण्टरों के प्रतिनिधि इस व्यवस्थापक सभा में जिस शक्ति और योग्यता के साथ सम्मिलित किये गये हैं, उस पर टीका टिप्पनी करने की आवश्यकता नहीं है, परन्तु बिचारे श्रमजीवी कुलियों का पक्ष लेनेवाला कोई मेम्बर नहीं है।"

इन्हीं अत्याचारपीड़ित निस्सहाय गूँगे मजदूरों का पक्ष लेने का यह परिणाम हुआ कि आप बंगाल के लेफ्टीनेण्ट गवर्नर नहीं बनाये गये! कुली प्रथा के आप घोर विरोधी थे। जब मि. मैकनील और लाला चिम्मनलाल की रिपोर्ट छपी थी तो आपने सबसे पहिले उसकी आलोचना एक बहुत ही महत्वपूर्ण लेखद्वारा की थी; इस लेख में आप ने लिखा था:—

"The whole system of recruiting stands condemned. The truth is however that indentured labour itself, within the confines of India is no longer difensible. It is no longer in the

experimental Stage, for it has gone on for more than fifty years...... With all the experience we have had we are unable to eradicate the evil and the only effectual remedy is to put a stop to indentured labour altogether."

अर्थात्–"भर्ती की सारी प्रथा ही अत्यन्त निन्दनीय है। सत्य बात तो यह है कि अब प्रतिज्ञाबद्ध कुलीप्रथा ही चाहे वह भारतवर्ष के भीतर के लिये हो अथवा चाहे सुदूरवर्ती उपनिवेशों के लिये, इस योग्य नहीं है कि उसका समर्थन किया जा सके। यह अब अपनी प्रयोग की अथवा प्रारम्भिक अवस्था में नहीं है, क्योंकि यह प्रथा पचास वर्ष से जारी है। जितना कुछ अनुभव हमें हुआ है, उससे हम कह सकते हैं कि हम इस प्रथा के दोषों को समूल नष्ट करने में असमर्थ हैं। इसका तो केवल एक ही इलाज है, वह यह कि हम शर्तबन्दी की मजदूरी को बिल्कुल बन्द कर दिया जावे।"

सरकार को इन वाक्योंपर ध्यान देना चाहिये। खेद की बात है कि अब तक जो नीति लार्ड चेम्सफोर्ड की सरकार की कुली प्रथा के विषय में रही है, वह दूरदर्शितापूर्ण नहीं है। कुली प्रथा की वजह से जितनी अशान्ति भारत में फैली है और भारतीय लोकमत जितना क्षुब्ध इस कारण से हुआ है, उतना शायद ही किसी और वजह से हुआ होगा। इस समय सरकार से हमारा निवेदन है कि वह सर हेनरी काटन के यह शब्द याद करे:—

"The best protection of India must always rest on the loyalty, confidence, and affection of the Indian people. The surest way to prevent unrest is to remove the matter of discontent."

अर्थात्–"भारतवर्ष की सर्वोत्तम रक्षा का आधार सर्वदा भारतवासियों की राजभक्ति, विश्वास और प्रेम ही रहेगा। अशान्ति के रोकने का सब से अच्छा ढङ्ग यही है कि असन्तोष उपजाने वाली बात ही दूर कर दी जावे।"

जब सर हैनरी काटन ६ मई सन् १९०२ ई. को भारत वर्ष से रवाना हुये थे तो उनको विदाई का अभिनन्दनपत्र देने के लिये कलकत्ते में एक सभा हुई थी। अभिनन्दन पत्र का उत्तर देते हुये सर हैनरी काटन ने कहा था:—

"I can only bid you farewell· not a final farewell, I trust for I shall assuredly, if life and health are spared me, come among you again; but a sincere farewell with the amplest gratitude for all you have done for me, and the renewed assurance although none is needed, that my remaining energies shall continue to be consecrated to the service of the Indian people."

अर्थात्–"मैं यहाँ से बिदा होते समय, आपको प्रणाम करता हूँ, लेकिन् यह मेरी अन्तिम प्रणाम नहीं है; मुझे उम्मीद है और मैं आप को यक़ीन दिलाता हूँ कि यदि मेरी ज़िन्दगी और तन्दुरस्ती क़ायम रही तो मैं फिर आप के यहाँ आऊँगा, लेकिन तब भी मेरे बिदा होते समय, आपने मेरे लिये जो कुछ किया है तदर्थ मैं अत्यन्त कृतज्ञता प्रगट करता हुआ, आपको हार्दिक प्रणाम करता हूँ। मैं आप को फिर विश्वास दिलाता हूँ–यद्यपि ऐसा कहने की कोई आवश्यकता नहीं है–कि जो कुछ शक्ति और सामर्थ्य मुझ में शेष है वह बराबर भारतीय जनता की ही सेवा में अर्पित होगी।"

सर हैनरी काटन ने अपनी यह प्रतिज्ञा पूर्णतया पालन की, जबतक वह जीवित रहे बराबर भारतवासियों की भलाई के लिये प्रयत्न करते रहे। यद्यपि विधाता ने सन् १९१५ ई. में हमारे इस सहायक और शुभचिन्तक को इस संसार से उठा लिया तथापि जो अत्युच्च स्थान हम लोगों के हृदय में उन्होंने पा लिया है उससे उन्हें कदापि कोई नहीं हटा सकता।

सहानुभूति के कारण हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना हो सकी। ढाका की यूनीवर्सिटी खोली गई। स्वराज्य की आकांक्षा को आप ने बिल्कुल न्यायपूर्ण बतलाया। दक्षिण अफ्रिका के मामले में आपने जिस दृढ़ नीति का अवलम्बन किया वह भारत के इतिहास में चिर-स्मरणीय रहेगी। कुली प्रथा के अन्त का निश्चय कर के आपने प्रवासी भारतीयों की बड़ी भारी भलाई की। जब पंडित मदन मोहन मालवीय ने कुली प्रथा के बन्द होने का प्रस्ताव कौंसिल में पेश किया था, तो उसे स्वीकार करते हुये श्रीमान् लार्ड हार्डिञ्ज ने कहा था:—

"No one who knows anything of Indian sentiment can remain ignorant of the deep and genuine disgust to which the continuance of indentured system has given rise. Educated Indians look on it, they tell us, as a badge of helotry, soon to be removed for ever, and it is a source of deep personal satisfaction to myself that one of the last official acts that I shall perform in this country is to tell you that I have been able to do something to ensure that Indians who desire to work as labourers in the tropical colonies may do so under happier conditions and to obtain from His Majesty's Government the promise of the abolition in due course of a system which educated opinion in India has for long regarded as intolerable and as a stigma upon their race"

अर्थात्—"जो मनुष्य भारतीय विचारोंसे कुछ भी परिचित है, उससे यह बात छिपी नहीं रह सकती कि कुली प्रथा के जारी रखने के कारण भारतवासियों के हृदय में वास्तव में अत्यन्त घृणा उत्पन्न हो गई है। शिक्षित भारतवासी कहते हैं कि यह हमारी जाति के ऊपर गुलामी की छाप है। इसका शीघ्रही अन्त हो जावेगा। यह कहते हुये मुझे अत्यन्त हार्दिक हर्ष होता है कि कर्मचारी के नाते मैंने जो अन्तिम काम इस देश में किया है, वह यह है कि मैंने इस

subordinate managing staff. The feelings which these beliefs engender are strong."

अर्थात्–" शर्तबंधे मजदूरों को विदेशों में भेजने से चाहे जितना आर्थिक लाभ हो, लेकिन इस प्रश्न ने जो राजनैतिक रूप धारण किया है, वह ऐसा है कि भारतवर्ष में स्थापित ब्रिटिश राज्य का कोई भी शुभचिन्तक उसे अपेक्षा की दृष्टिसे नहीं देख सकता। भारत के वर्तमान राजनैतिक विषयों में यह विषय सबसे अधिक प्रधान है, और इस प्रश्न के वादविवाद से जितनी कटुता व क्रोध भारतवासियों के हृदय में उत्पन्न होता है उतना शायद ही किसी अन्य मुख्य प्रश्न से होता हो। नरम और गरम दलवाले दोनों ही प्रकार के राजनीतिज्ञ बिना किसी हिचकिचाहट के इस प्रथा को गुलामी के नाम से पुकारते हैं और वह ख्याल करते हैं कि ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्यकी आखों के सामने यह कुली प्रथा हमारी सारी जाति के ऊपर गुलामी की छाप लगाती है। यह लोग पूँछते हैं कि उपनिवेशों के गोरे लोग हमें ब्रिटिश साम्राज्य का नागरिक क्यों कर समझ सकते हैं जब कि वह देखते हैं कि हमारे देश भारतवर्ष के और हमारे रङ्ग के मनुष्य ५ शिलिंग प्रति सप्ताह के हिसाब से पाँच वर्षतक के लिये खरीदे जा सकते हैं? इस देश में इस बात पर भी लोगों का दृढ़ विश्वास है (और ऐसा विश्वास करने के लिये उन के पास गम्भीर कारण हैं) कि प्रवासी भारतीय स्त्रियां प्रायः व्यभिचारपूर्ण जीवन व्यतीत करती हैं जिसमें कि उनके शरीरों पर, रुपये पैसों के लालच की वजहसे या सरकारी दबाव के कारण, उनके साथी पुरुषों का और कोठियों के नीचे दर्जे के प्रबन्धकर्ताओं का भी पूर्ण अधिकार होता है। इन विश्वासों की वजह से जो भाव भारतवासियों के हृदयमें उत्पन्न होते हैं वह बड़े तीक्ष्ण होते हैं।"

किया है वह यह थी कि ब्रिटिश साम्राज्य के किसी नागरिक को उसके किसी भी भाग में जाने का अधिकार है, पर इस नीति का परिणाम यह हुआ है कि स्वतंत्र उपनिवेशों ने अपने यहाँ कड़े कानून बना कर हिन्दुस्तानियों का पूरा पूरा प्रतिबन्ध किया है। इसका नतीजा यह हुआ कि कनाडा प्रवासी भारतवासियों की वर्तमान दशा ने इस प्रश्न को इस दारुण स्थिति में पहुँचा दिया है। इस हालत को देख कर मुझे यह सूझता है कि अब वह समय आ गया है जब कि हमें अपनी नीति का मार्ग बदल देना चाहिये। जो कुछ हम माँगते हैं यदि वह सम्पूर्णतया हमें नहीं मिल सकता तो कम से कम यह तो हो सकता है कि जो असन्तोषजनक स्थिति इस समय पैदा हो गई है वह दूर कर दी जावे। वर्तमान स्थिति भारतवासियों और कनाडावासियों के हित की दृष्टि से अयुक्त है और इस से भविष्य में भयंकर झगड़ा पैदा हो जाने की सम्भावना है......हम जो जो सुविधायें प्रवासी भारतीयों के लिये चाहते हैं वह तभी मिल सकती हैं जब कि हम सहकारिता और समानता की नीति का अनुकरण करें। उपनिवेशों की सरकारों से मिलजुल कर बातचीत करनी चाहिये और Complete Reciprocity 'जैसे को तैसा' की नीति काम में लानी चाहिये। उदाहरणार्थ हम जानते हैं कि कुछ जापानी लोग कनाडा में हर साल दाख़िल हो सकते हैं। निस्सन्देह भारतवर्ष इस बात का अधिकारी है कि जो अच्छे से अच्छा बर्ताव ब्रिटिश साम्राज्य से भिन्न अन्य देशों के साथ किया जाता है कम से कम वही भारतवासियों के साथ किया जावे।"

इसमें सन्देह नहीं कि जब तक भारत सरकार औपनिवेशिक सरकारों के साथ 'पारस्परिक समानता' का बर्ताव नहीं करेगी तब तक भारतीय प्रवास के प्रश्न हल नहीं हो सकते।

गाव देसे तो सहसा आप का हृदय उनकी ओर आकृष्ट हुआ। मि. पोलक की प्रवृत्ति बाल्यावस्थासे ही धर्म की ओर रही है। आप टाल्सटाय और रस्किन के बड़े भक्त हैं। श्रीभगवद्गीता तथा उपनिषदों के भी आप बड़े प्रेमी हैं। जब आपको महात्मा गान्धी के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो आप उनके गुणों पर मुग्ध होकर उनके अनुयायी बन गये और हिन्दुस्तानियों की सेवा करने लगे। अपने आने के एक ही वर्ष बाद आप दक्षिण अफ्रिका के प्रवासी-भारतीयों के मुखपत्र 'इण्डियन ओपीनियन' (Indian opinion) के सम्पादक बन गये। चार पाँच वर्ष बाद पोलक साहब गान्धीजी के साथ वकालत करने लगे। तदनन्तर सब कुछ छोड़ छाड़ कर आप ने ट्रान्सवाल के हिन्दुस्तानियों की दशा को सुधारने का बीड़ा उठा लिया। आप बड़े स्वार्थत्यागी और परिश्रमी हैं। भारतवर्ष में आप दक्षिण अफ्रिका के प्रवासी भाईयों का सन्देशा लेकर सन् १९०९ ई. में आये थे। फिर सन् १९११ ई. में भी आप आये। भारत के सभी प्रसिद्ध प्रसिद्ध नगरों में आप ने व्याख्यान दिये थे और लोकमत को जागृत किया था। सन् १९१३ ई. में भी आप कराँची कांग्रेस में सम्मिलित होना चाहते थे और दक्षिण आफ्रिका के भारतीयों के दुःखों को सुनाना चाहते थे, पर वहाँ की सरकार ने इन्हें पकड़ लिया, इस लिये यह न आ सके। अन्य जातियों के मनुष्यों के लिये इतना आत्मत्याग करना कोई साधारण बात नहीं है। आप ने अपना विवाह दक्षिण अफ्रिका में किया था। आपको पत्नी भी आपके समान ही मिली। जो काम मिस्टर पोलक ने हमारे प्रवासी भाईयों के लिये किया है, वही उन की स्त्री ने हमारी भगिनियों के लिये किया है। दक्षिण आफ्रिका के हिंदुस्तानियों के आन्दोलन के लिये मिस्टर पोलक को कई बार विलायत भी जाना पड़ा

था। अँग्रेजी के बड़े बड़े समाचार पत्रों में लेख लिखकर इस आन्दोलन में आपने बड़ी सहायता दी थी। आपने अपनी सुप्रसिद्ध पुस्तक "The Indians of South Africa, Helots within the Empire and how they are treated" में दक्षिण आफ्रिका का आन्दोलन, वहाँ के अन्यायपूर्ण कानून और उनके द्वारा जो अत्याचार हिन्दुस्तानियों पर होते थे, यह सब बड़ी योग्यता से हृदयविदारक शब्दों में दर्शाये हैं। 'सत्याग्रह' के संग्राम में आप भी पकड़े गये थे और आप के ऊपर इमीग्रेशन ऐक्ट की २० वीं धारा के अनुसार अभियोग चलाया गया था। सरकारी वकील ने कहा कि मिस्टर पोलक को भारी से भारी दण्ड देना चाहिये। मिस्टर पोलक ने अपना दोष स्वीकार कर लिया। मजिस्ट्रेट ने मि. पोलक से कहा "यदि तुम भारतीयों की हलचल में शामिल न हो, तो हम तुम्हें छोड़ सकते हैं।" इसके उत्तर में मि. पोलकने कहा "हम सत्य के पक्षपाती और अन्याय के शत्रु हैं, अतः यूरोपियन होते हुये भी भारतवासियों के साथ मेरी पूरी सहानुभूति है। मजिस्ट्रेट ने आपको ३ मास के कारावास का दण्ड दिया।

आजकल आप फिर भारतवर्ष में आये हुये हैं और आप ने कुली प्रथा के विरुद्ध बहुत से व्याख्यान भिन्न भिन्न स्थानों में दिये हैं। साम्राज्य में भारतीयों का क्या स्थान है, इस विषय पर भी आपकी कई महत्त्वपूर्ण वक्तृतायें हो चुकी हैं। मिस्टर नेटसन के साथ आप सीलोन जानेवाले हैं और वहाँ के प्रवासी भारतीय कुलियों की दशा पर एक रिपोर्ट लिखनेवाले हैं। दक्षिण आफ्रिका और पूर्वी आफ्रिका के भारतीयोंकी स्थिति को भारत सरकार और भारत निवासियों को बतलाना भी आप के यहाँ आने का एक उद्देश्य है। १२ दिसम्बर सन १९१६ ई. को आप ने मद्रास में एक वक्तृता देते हुये कहा था:—

"It is my duty to stand up as an Englishman and protest against things that are wrong, improper, unjust and un British."

अर्थात्–" यह मेरा कर्तव्य है कि एक अँग्रेज की भाँति मैं उन बातों का विरोध करूं जो अन्यायपूर्ण तथा अनुचित हैं और ब्रिटिश जाति को शोभा नहीं देतीं।"

इसी कर्तव्य को सामने रखते हुये आपने १२ वर्ष तक दक्षिण-अफ्रिका के प्रवासी भाईयों की तन-मन-धन से सहायता की थी। अब आप अपनी जन्मभूमि इङ्गलेण्डमें जाकर रहेंगे क्यों कि आपका दक्षिण अफ्रिका सम्बन्धी कार्य्य समाप्त हो चुका है। भारतवासियों के मानवी सत्त्वों को ब्रिटिश पबलिक के सामने रखना ही भविष्य में आपके जीवन का मुख्य उद्देश्य होगा। महात्मा गान्धी जी को आप बड़े आदर की दृष्टिसे देखते हैं और गान्धीजी भी आपको अपने छोटे भाई के समान समझते है।

जब तक इंगलेण्ड सर हैनरी काटन, लार्ड हार्डिञ्ज और मि. पोलक की तरह के परोपकारी और स्वार्थत्यागी मनुष्य उत्पन्न कर सकता है तब तक हमें भारत के भविष्य में निराश होने की आवश्यकता नहीं।

मि. केलनबेक

जिन लोगों ने दक्षिण अफ्रिका के 'सत्याग्रह के' आन्दोलन का वर्णन पढ़ा है वह मिस्टर केलनबेक के नाम से अपरिचित नहीं हो सकते। आप एक यूरोपियन हैं और यहूदी धर्म के अनुयायी हैं। आप बहुत दिनों से निरामिष आहार करते हैं। मद्य माँस तो दूर रहा आप नमक, मसाला, शकर, दूध और दूधकी बनी हुई किसी
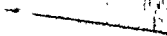
अतिरिक्त मनुष्य मात्र की सेवा करना ही हमारा धर्म है, हम असत्यके विरोधी और सत्य के समर्थक हैं।" आप आपने को महात्मा गान्धी का शिष्य बतलाते हैं। जब सत्याग्रह का संग्राम हुआ था तो आप को भी दाक्षिण अफ्रिका की सरकार ने पकड़ा था और आप के ऊपर अनधिकारी मनुष्यों को ट्रान्सवाल में प्रवेश कराने का अभियोग चलाया गया था। आप ने अपने बयान में कहा था "बहुत दिनों से मैं महात्मा गान्धी का मित्र हूँ, इस लिये भारतीयों के कष्टों का मुझे पूरा अनुभव है। सरकार ने प्रतिज्ञा भङ्ग की है, यह भी मैं जानता हूँ। भारतीय जनता के पास सरकार का सामना करने के लिये सत्याग्रह के संग्राम के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है। महात्मा टाल्सटाय का अनुयायी होने से सत्याग्रह के प्रति मेरी पूर्ण श्रद्धा और सहानुभूति है। मैं न्यायाधीश को बतलाना चाहता हूँ कि सरकार के कायदे के प्रति कूल मैं सत्याग्रह के संग्राम में निरन्तर योग देता रहूँगा। ऐसा करने से मैं एक अत्यन्त त्रासदायक प्रश्न के निर्णय करने में सरकार और भारतीय प्रजा की सेवा करता हूँ, ऐसा मेरा विचार है।" सरकारी वकील ने यह सुनकर मि. केलनबेक को भारी से भारी दण्ड देने के लिये कहा और मिस्टर केलनबेक ने भी यही प्रार्थना की कि मुझे कड़े से कड़ा दण्ड दो। न्यायाधीश ने आपको तीन मास के सरल कारावास का दण्ड दिया। जेल में आप को कितने ही कष्ट दिये गये थे और कई बार आप को अच्छे बर्ताव के लिये उपवास करना पड़ा था। हमारे देश में लाखों ही ऐसे हिन्दुस्तानी हैं जिनके कानोंपर, प्रवासी भारतीयों के दुःखों को पढ़कर, जूँ भी नहीं रेंगती। ऐसे आदमियों से हमारा निवेदन है कि वह मि. केलनबेक के चरित्र को पढ़ें और स्वार्थ-त्याग करना सीखें। यदि यह न हो सके तो एक बार लज्जित तो हों!

हैं जिससे हमारा मन आनन्द से उमड रहा है। भारत वर्ष को मैं बड़े प्रेम की दृष्टि से देखता हूँ, वैसा ही दूसरा भारत मुझे यहाँ दीख पड़ता है। मैं और मि. पियर्सन दोनों देखते हैं कि हम लोग अजान देश में नहीं आये हैं वरन् प्रेम और मित्रता से गठित देश में आ पहुँचे हैं। भारत आप की ओर से बे पर्वाह नहीं है। ऐसा एक भी दिन भारत के लिये न बीता होगा, जिस दिन आप को स्मरण न किया गया हो, और आप के कल्याण के लिये ईश्वर से प्रार्थना न की गई हो। दक्षिण अफ्रिका सम्बन्धी प्रश्न में हिन्दु, मुसलमान-पारसी, क्रिश्चियन आदि सब जाति और धर्म के मनुष्य एकमत हैं। मुसलमान जाति में हमारे कितने ही मित्र हैं, उसी प्रकार हिन्दुओंसे भी हमारी गाढ़ी मित्रता है। हमारे परम मित्र कवि शिरोमणि बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने एक सन्देशा भेजा है, वह यह है कि "सत्यं ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्मम् आनन्दरूपम्। अमृतम् यद्विभाति शांतम् शिवम् अद्वैतम्" अर्थात् जो ईश्वर सत्य और ज्ञानमय है, जिसका अन्त नहीं है, जो आनन्द स्वरूप है, जो शान्ति और सुखदायक है, जो एक ही है और जिसके समान कोई दूसरा नहीं है, उसका मैं ध्यान धरता हूँ।"

प्रिटोरिया नगर में व्याख्यान देते हुए श्रीमान् ऐण्ड्रूज़ साहब ने कहा था "भारत में हमारे दो पुराने मुसलमान मित्र थे, उन्हें हम पिता के तुल्य समझते थे और वह दोनों हमें पुत्र के समान मानते थे। उनका नाम मौलवी जाकुल्ल और मुंशी था। यह दोनों दिल्ली के प्रख्यात नागरिक थे। इनके शुद्ध आदेश से हमने हिन्दू और मुसलमानोंसे एकसा प्रेम करना सीखा। दिल्ली कालेज के मुख्य प्रोफेसर रुद्र से हमने भारत की विद्वत्ता का पूरा मान करना सीखा। मि. रुद्र ईसाई हो गये हैं, पर भारतीयों से उनका अगाध प्रेम है। हमने गुरुकुल के महात्मा मुंशीराम और शान्तिनिकेतन के गुरुदेव बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर से

अर्थात्–" मुझ से केपटाउन में लोगों ने कहा, और मुझे निस्सन्देह स बात पर विश्वास है कि जिन जिन राजनीतिज्ञों और प्रधान नुष्यों से मि. ऐण्ड्रूज़ मिले उन सबके हृदय मि. ऐण्ड्रूज़ के विचारों े प्रभावित हो गये थे। मि. एण्ड्रूज़ यहाँ थोड़े दिन रह कर चले ाये लेकिन दर हक़ीकत जिन लोगोंसे उनका मिलना हुआ उन ोगों के दिल, साम्राज्य के प्रति जो उनका कर्तव्य है उसके भावों से प्रज्वलित हो गये।"

इसमें सन्देह नहीं कि दक्षिण आफ्रिका के झगड़े को ते कराने में मिस्टर ऐण्ड्रूज़ ने बड़ी भारी सहायता दी। केपटाउन में आपने एक व्याख्यान कविशिरोमणि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विषय में दिया था। इस व्याख्यान का प्रभाव बड़ा भारी हुआ था। यहाँ तक कि लार्ड ग्लैडस्टन ने इसका समर्थन किया था। लार्ड ग्लैडस्टन ने कहा था " लन्दन की पाठशाला में भारत का प्राचीन इतिहास पढ़कर मैं मुग्ध हो गया था। यहाँ के गोरों को यह न समझना चाहिये कि भारत नेटाल के लिये एक मजूर भेजनेवाला देश है, पर भारत एक ऐसा देश है जिसने बाबू रवीन्द्रनाथ के समान पुत्ररत्न पैदा कर संसार के अधिवासियों को चकित कर दिया है।"

फ़िजी प्रवासी भारतीयों के दुःखों का हाल जब आपको ज्ञात हुआ तो आप ' फ़िजी द्वीप में मेरे २१ वर्ष ' नामक हिन्दी पुस्तक का अँग्रेजी अनुवाद कराके और उसे साथ लेकर फ़िजी को गये। फ़िजी में आप सवेरे के ६ बजे से शामके ७ बजे तक कोठियों में, कुली-लैनों में और खेतों पर घूमते थे, और वहाँ के शर्तबंधे भारतीयों की दुर्दशा को देखकर आँसू बहाते थे। फ़िजी से लौटकर आप ने जो रिपोर्ट फर्वरी सन् १९१६ई. में प्रकाशित की उसे पढ़कर पाषाणहृदय

या नहीं। वह समुद्रके किनारे टहल रहा था कि एकाएक कोई स्त्री उसके पैरों पर गिर पड़ी । यह वही हिन्दुस्तानी युवती थी । वह अपने चरित्र की रक्षा करती हुई भाग ही तो निकली । उस बंगाली युवक ने उसको अपने साथ ले लिया और उसके साथ विवाह कर लिया । क्यों कि उसके बचाने का एक यही उपाय था। और उसको दासत्व से छुड़ाने के लिये जितने रुपये की आवश्यकता थी, उस बंगालीने अपने पास से दे दिये। यही एक निकास उसके चरित्र की रक्षा करने का था । यह एक उदार काम था परन्तु उस स्त्री के फूटे भाग्यकी ओर तो तनिक ध्यान दीजिये । अब तक वह बेचारी रात दिन अपने दुर्भाग्य पर रोती है और उसको अपना देश—जिसे देखने की आशा उसे अब कुछ भी बाकी नहीं रह गई–भेलाये नहीं भूलता । "

आपकी अहमदाबाद की वक्तृता बड़ी ही करुणोत्पादक थी। उन्हों ने एक राजपूत पुरुष की सच्ची घटना वर्णन की थी, वह इतनी प्रभावशाली है कि उसे हम यहाँ दिये बिना नहीं रह सकते । ऐण्डूज़ साहबने कहा थाः—

अपने अनुभव से मैं एक घटना आपको और सुनाता हूँ । फिजी से जिस दिन मैं चलनेवाला था उसी दिन मि. पियर्सन के साथ मैं एक राजपूत को देखने गया। यह राजपूत एक अच्छे वंश का था और इसे एक धोखेबाज आरकाटी ने यह लालच दिलाकर कि, तुम्हें फिजी में एक रजीमेण्ट में सिपाही की नोकरी मिल जावेगी, फ़िजी को भेज दिया था । जब हमने उसे देखा तो वह जेलखाने की एक कोठरी में था; और उसे फाँसी का हुक्म हो गया था क्यों कि उसने एक स्त्री को कतल किया था । यद्यपि उसने हत्या का अपराध किया था और उसके हाथ खून से भरे हुये थे, लेकिन मैं कह सकता हूँ कि

ारापीटी होने लगी, इतने में उस औरत ने बीच में आकर उस राजपूत के
ह पर एक तमाँचा मारा। इस अन्तिम अपमान से उस राजपूत का
नून खौलने लगा। उसने गन्ने काटने की छुरी से उस औरत का सिर
ढ़ से लगभग अलग कर दिया। यही सारा किस्सा था, और इसी
कारण वह हत्यारों की कोठरी में बन्द कर दिया गया था, इस
कोठरी में सींखचों की एक खिड़की थी, और इस खिड़की के बाहर
खड़ा हुआ उसे मैं देख रहा था। यद्यपि यह आदमी सचमुच हत्यारा
था, तथापि उसके लिये मेरे हृदय में बड़ी करुणा तथा आदर का
भाव आया, और उस समय मेरे दिमाग में सब से पहिले यही ख़याल
आया कि इस बिचारे राजपूत को किस भयंकर स्थिति में रहना पड़ा
है। इस समय भी उसका मुख वीरता और तेज से पूर्ण था। असल में
दोष तो था कुली प्रथा का, न कि उस मनुष्य का। उस समय जब
मैंने उस राजपूत को उस कोठरी में देखा तो मैंने शर्तबन्दी
की प्रथा को अपने अन्तःकरण से कोसा और उसी दिन मैंने
निश्चय कर लिया कि इस प्रथा को बन्द किये बिना विश्राम नहीं
लूँगा। इसके बाद उस राजपूत ने अपने घर के बारे में
जो राजपूताना में है, मुझ से कहा। इस समय तक तो उस
राजपूत के चहरे से रूखापन और पीलापन प्रगट होता था,
लेकिन उसके मुखपर निर्बलता या शोकावेग का कोई चिन्ह नहीं था;
परन्तु जब उसने अपने ग्राम के विषय में कहा और मैंने उससे पूँछा
'क्या मैं तुम्हारे घर को जाऊँ और तुम्हारे कुटुम्बियों से मिलूं' तो वह
फूट फूट कर रोने लगा। आँसुओं की धारा उसकी आँखों से निकल
कर गालों पर बह बह कर नीचे गिरने लगी; वह रोता हुआ कहने
लगा "साहब तुम जाकर उनसे क्या कहोगे? क्या तुम इस बात के
बारे में उन से कहोगे?" इस समय मेरी भी आँखों में आँसू आ गये

और मैंने आँसुओं के भीतर उनसे हाथ मिलाकर प्रणाम किया और मैं फौरन ही वहाँ से चल दिया। मैं सीधा प्रधान न्यायाधिकारी के पास गया और फिर फिजी के गवर्नर साहब की सेवा में उपस्थित हुआ। जो कुछ मैंने इन लोगों से उस राजपूत के बारे में कहा उसे उन्हों ने बड़े ध्यान से सुना। इसके पहिले उन्हों ने इस किस्से को अच्छी तरह नहीं समझा था। जब हम लोग फिजी से रवाना होकर न्यूज़ीलेण्ड पहुँचे तो मुझे गवर्नर साहबका एक तार मिला कि उस राजपूत को प्राणदण्ड नहीं दिया जावेगा। इस तारको पाकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई।" इस दृष्टान्त से पाठकों को मि. एण्ड्रूज़ साहब के हृदय की उदारता ज्ञात हो सकती है।

फिजी में आप ने कितने ही शर्तबन्धे कुलियों के साथ बड़े बड़े उपकार किये हैं, इसी कारण जब आप फ़िजी से वापिस आने लगे तो वहाँवालों ने आप को अभिनन्दन पत्र दिये थे। जब आप जहाज़ में सवार हुये थे तो कितने ही भारतवासियों की आँखों से आसुओं की धारा वह निकली थी और कई तो फूट फूट कर रोने लगे थे। स्वयं ऐण्ड्रूज़ साहबका भी हृदय गद्गद हो गया था। ऐण्ड्रूज़ साहब बड़े ही सरलस्वभाव और निर्भीक मनुष्य हैं। जिस समय आप दक्षिण अफ्रिका पहुँचे तो स्टेशनपर आपका स्वागत करने के लिये कितनेही अंग्रेज और हिंदुस्तानी आये थे; महात्मा गान्धी भी अपनी स्वदेशी और सादी पोशाक पहिने हुये वहाँ उपस्थित थे। रेल में से उतरते ही ऐण्ड्रूज़ साहबने लोगों से पूँछा "महात्मा गान्धी कहाँ हैं?" लोगों ने कहा "आप गान्धी जी को नहीं पहिचानते हैं! देखिये वह उस कोने की ओर खड़े हैं।" यह सुनते ही एण्ड्रूज़ साहब उस कोने की ओर गये और तुरन्त ही आप ने गान्धी जी के चरणों की रज हाथ से लेकर अपने माथे से लगा ली। इस बात से दक्षिण

अफ्रिका के कितने ही दुराग्रही गोरे आप से बहुत रुष्ट हुये थे, लेकिन आप ने किसी की कुछ भी पर्वाह न की।

आप पहिले दिल्ली के स्टीफेन्स कालेज में प्रोफेसर नियुक्त होकर आये थे, लेकिन कुछ वर्षों के बाद आप ने इस नोकरी को छोड़ दिया। रेवरेण्ड की भी पदवी आपने त्याग दी। भोजन आप हिन्दुस्तानियों जैसा ही करते हैं और माँस और मद्य को आप स्पर्श भी नहीं करते। आजकल आप सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विद्यालय में जो 'शान्तिनिकेतन' के नाम से प्रसिद्ध है, अध्यापक हैं। गीताञ्जलि का अनुवाद करने में आपने उन्हें बड़ी सहायता दी-थी। आप उनके साथ अभी अमेरीका को भी पधारे थे। गुरुकुल काँगड़ी से भी आप का बहुत प्रेम है, और महात्मा मुंशीराम जी से आप की बड़ी गहरी मित्रता है। थोड़े दिन हुये, आप फिजी को दूसरी बार गये हैं। आप अँग्रेजी भाषा के बड़े भारी विद्वान् हैं और अँग्रेजी कविता भी आप की बड़ी प्रभावोत्पादक होती है। आप की "Indian women in Fiji" "फिजी की भारतीय स्त्रियाँ" नामक कविता इतनी हृदयविदारक है कि उसे यहाँ हम उद्धृत किये बिना नहीं रह सकते।

Indian Women in Fiji.

They are toiling, toiling, toiling,
In the dense rank sugar cane,
And their hearts are burning burning,
With a dull and smouldering pain.

Thay are weeping, weeping, weeping,
For the homes left far behind,
And their cry comes fainter fainter,
On the distant south sea wind.

सहायता दी है। दक्षिण अफ्रिका को आप मि. ऐण्ड्रूज़ के साथ ही गये थे। अकस्मात् ९ जनवरी सन १९१४ ई. को ऐण्ड्रूज़ साहब की माँ का देहान्त विलायत में हो गया, इस लिये वह बहुत दिनों तक वहाँ न ठहर सके। मिस्टर पियर्सन वहाँ २६ फर्वरी तक रहे और वहाँ से लौट कर 'मोडर्न रिव्यू' में "Report on my visit to South Africa" नामक एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण लेख लिखा। ऐण्ड्रूज़ साहब के साथ आप फिजी को भी गये थे। फिज़ी की शर्तबन्दी पर जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई है वह मिस्टर ऐण्ड्रूज़ और मिस्टर पियर्सन दोनों ही की लिखी हुई है। आप भी सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ अमेरीका को गये थे। आजकल आप उन्हीं के शान्तिनिकेतन बोलपुर में अध्यापक हैं।

मिस्टर वेस्ट:—आजकल आप दक्षिण अफ्रिका से निकलने वाले 'इण्डियन ओपीनियन' नामक पत्र के सम्पादक हैं। आपने सत्याग्रही भारतीयों की बड़ी सहायता की थी। इसी लिये २५ नवम्बर सन् १९१३ ई. को आप भी पकड़े गये थे और डरबन की जेलमें लाये गये थे। तदनन्तर आप को कोठरी में बन्द कर दिया गया और खाने को कुछ नहीं दिया गया। उस समय आप इतने भूखे थे कि आप को रात भर नींद नहीं आई। आप अदालत में पेश किये गये। सरकारी वकील ने एक सप्ताह के लिये समय माँगा और कहा कि मि. वेस्ट को ज़मानतपर नहीं छोड़ना चाहिये। लेकिन मजिस्ट्रेट ने आप को सौ पौण्ड की ज़मानत पर छोड़ दिया। मिस्टर पोलक के दक्षिण अफ्रिका से चले आने के बाद अब आप ही वहाँ के भारतीयों के सबसे बड़े सहायक रह गये हैं।

मिस्टर रीच:—आपने भी सत्याग्रही हिन्दुस्तानियों की बड़ी मदद की थी। आप डरबन में वकालत करते थे। आजकल आप ब्रिटिश ईस्ट अफ्रिका के नैरौबो नामक नगर में वकालत करते हैं।

, एम्. ए.

धर्म का प्रचार किया था। आपने 'फ़िजी-आफ़-टुडे' "Fiji of To-day" नामक बड़ी उपयोगी पुस्तक लिखी है। इस पुस्तक में आप ने प्रवासी हिन्दुस्तानियों की दुर्दशा का मानों चित्रसा खींच कर रख दिया है। इस पुस्तक को पढ़कर यही प्रगट होता है कि मि. बर्टन बड़े ही निष्पक्ष और साहसी लेखक हैं। आप भी कुली प्रथा को गुलामी के समान समझते हैं। मि. ऐण्डूज़ अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं:—

"There were no two English names more frequently on their (Indian's) lips than those of Miss Dudley and Mr. Burton. They spoke of these two friends and helpers with an affection amounting to reverence. It was the work of missionaries like these, struggling against overwhelming odds, that had saved the whole Indian community from falling to the lowest level of ignorance and vice."

अर्थात्—"फ़िजी प्रवासी भारतीयों की जिह्वा पर बराबर दो अंग्रेज़ों के नाम रहते थे; एक तो मिस डडले का और दूसरा मिस्टर बर्टन का। वह लोग अपने इन दोनों मित्रों और सहायकों के नाम बड़े प्रेम और श्रद्धाके साथ लेते थे। बड़ी ही कठिन और विलक्षण स्थिति में इन दोनों मिशनरियों की तरह के आदमियों ने जो कार्य्य प्रवासी हिन्दुस्तानियों के लिये किया उसी के कारण सारा भारतीय समाज अज्ञानता और पाप की अधोतम गति को पहुँचने से बचा।" हमारे जो पाठक अँग्रेज़ी पढ़ सकते हैं उनसे हमारा निवेदन है कि वह एक बार "Fiji of to-day" * को अवश्य पढ़ें।

लार्ड ऐम्पथिलः—आप पहिले मद्रास में गवर्नर थे। विलायत में आपने एक कमेटी स्थापित की थी, जिसका उद्देश्य दक्षिण अफ़्रिका-प्रवासी हिन्दुस्तानियों की सच्ची दशा ब्रिटिश जनता के सामने रखना था। इन्हीं के प्रयत्न से विलायत वालों का ध्यान सत्याग्रह

* यह पुस्तक Charles H. Kelly २५-३५ सिटी रोड लंदन से ७है शिलिङ्ग में मिल सकती है।

सुप्रसिद्ध भारत हितैषी मि. हेन्री पोलक.

there never has been so great or momentous a departure from the principles on which the Empire has been built up and by which we have been wont to justify its existence, the principles of that true Liberalism which has hitherto belonged to Englishmen of all parties...... If the Houses of Parliament and the press can not see this and do not think it worth while to take account of so momentous a reaction, it would seem that our genius for the government of an Empire has commenced its decline."

अर्थात्–" ब्रिटिश नागरिक होने के इस प्रारम्भिक अधिकारको वर्णभेद के कारणों की वजह से छीन लेना, यह साम्राज्य के शासन में एक अपूर्व प्रतिकारक कार्य्य है; और शायद उन नियमों का, जिनके आधार पर साम्राज्य खड़ा हुआ है और जिन्हें कि हम अपने साम्राज्य के अस्तित्वका कारण बतलाया करते हैं, ऐसा महत्त्वपूर्ण उल्लंघन कभी नहीं हुआ। इन सच्चे उदारतापूर्ण नियमों का अब तक सब पक्षों के अँग्रेजों ने पालन किया है।......यदि पार्लामेण्ट के दोनों दल और समाचारपत्र इस प्रतिघातक कार्य्य को नहीं देख सकते और इस महत्त्वपूर्ण कार्य्य पर विचार करना व्यर्थ समझते हैं, तो हम कहेंगे कि एक साम्राज्य के शासन के लिये जिस धी, शक्ति और सामर्थ्य की आवश्यकता है, उसका हम लोगों में अब क्षय होना प्रारम्भ हो गया है।"

कनाडावालों ने हमारे इस प्रारम्भिक अधिकार को छीन लिया है; यदि साम्राज्य सरकार यह अधिकार हमें वापिस न दिलवा सके तो लार्ड ऐम्पथिल की तरह हमें भी यही कहना पड़ेगा कि अब ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की वह धी, शक्ति और सामर्थ्य नष्ट हो चली है; जो एक साम्राज्य के शासन के लिये आवश्यक होती है। परमात्मा करे कि हमें शीघ्रही ब्रिटिश नागरिक के पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जावें और हमें उपर्युक्त अप्रिय बात कहने का अवसर ही न मिले।

की ओर आकर्षित हुआ और वह समझने लगे कि यह प्रश्न साम्राज्य की दृष्टि से बड़ा महत्त्वपूर्ण है। आपने महात्मा गान्धीजी की जीवनी की जो भूमिका लिखी है उसमें लिखा है:—

"What is to be the result in India if it should finally be proved that we are *powerless to abide by the pledges of our* sovereign and our Statesmen? Those who know about India will have no doubt as to the consequences. And what if India irritated, mortified and humiliated—should become an unwilling and refractory partner in the great Imperial concern? Surely it would be the beginning of the end of the Empire."

अर्थात्—"यदि यह बात अन्त में प्रमाणित हो जावे कि *हम लोग अपने सम्राट् और राजनीतिज्ञों की की हुई प्रतिज्ञाओं के पूर्ण करने में असमर्थ हैं, तो इसका परिणाम भारतवर्ष में क्या होगा? जो लोग हिन्दुस्तान को जानते हैं वह इन परिणामों को निस्सन्देह समझ जावें*गे। यदि भारतवर्ष क्रुद्ध, पीड़ित, और अपमानित होकर साम्राज्य का एक अनिच्छुक और विरोधी भाग बन जावे तो फिर इस का क्या नतीजा होगा? निस्सन्देह उसी दिन से साम्राज्य का अन्त होना शुरू हो जावेगा।"

साम्राज्य के हितैषियों को बराबर इस बात पर ध्यान रखना चाहिये। लार्ड ऐम्पथिल की सम्मति में सम्राट् की प्रत्येक प्रजा का यह अधिकार है कि वह साम्राज्य के अन्य भागों में उन्हीं शर्तों पर प्रवेश कर सके, जिन पर कि सम्राट् की अन्य सभ्य प्रजायें प्रवेश करती हैं। जब ट्रान्सवालवाले गोरों ने भारतवासियों से यह अधिकार छीन *लिया था, तो ऐम्पथिल साहब ने बड़ी ज़ोरदार भाषा में इसका विरोध करते हुये लिखा था:—*

"This Deprivation of an elementary right of British citizenship on racial grounds, constitutes a reactionary step *in Imperial Government almost without parallel, and perhaps*

there never has been so great or momentous a departure from the principles on which the Empire has been built up and by which we have been wont to justify its existence, the principles of that true Liberalism which has hitherto belonged to Englishmen of all parties...... If the Houses of Parliament and the press can not see this and do not think it worth while to take account of so momentous a reaction, it would seem that our genius for the government of an Empire has commenced its decline."

अर्थात्–"ब्रिटिश नागरिक होने के इस प्रारम्भिक अधिकारको वर्णभेद के कारणों की वजह से छीन लेना, यह साम्राज्य के शासन में एक अपूर्व प्रतिकारक कार्य्य है; और शायद उन नियमों का, जिनके आधार पर साम्राज्य खड़ा हुआ है और जिन्हें कि हम अपने साम्राज्य के अस्तित्वका कारण बतलाया करते हैं, ऐसा महत्त्वपूर्ण उल्लंघन कभी नहीं हुआ। इन सच्चे उदारतापूर्ण नियमों का अब तक सब पक्षों के अँग्रेजों ने पालन किया है।......यदि पार्लामेण्ट के दोनों दल और समाचारपत्र इस प्रतिघातक कार्य्य को नहीं देख सकते और इस महत्त्वपूर्ण कार्य्य पर विचार करना व्यर्थ समझते हैं, तो हम कहेंगे कि एक साम्राज्य के शासन के लिये जिस धी, शक्ति और सामर्थ्य की आवश्यकता है, उसका हम लोगों में अब क्षय होना प्रारम्भ हो गया है।"

कनाडावालों ने हमारे इस प्रारम्भिक अधिकार को छीन लिया है; यदि साम्राज्य सरकार यह अधिकार हमें वापिस न दिलवा सके तो लार्ड ऐम्पथिल की तरह हमें भी यही कहना पड़ेगा कि अब ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की वह धी, शक्ति और सामर्थ्य नष्ट हो चली है; जो एक साम्राज्य के शासन के लिये आवश्यक होती है। परमात्मा करे कि हमें शीघ्रही ब्रिटिश नागरिक के पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जावें और हमें उपर्युक्त अप्रिय बात कहने का अवसर ही न मिले।

के लिये उपयोगी समझते हैं, लेकिन कितनों ही को इनके डर के मारे नींद भी नहीं आती। वह पीतवर्ण और कृष्णवर्ण जातियों की अवश्यंभावी उन्नति और फैलाव से जलते हैं और अभी से उन्हों ने Yellow Peril और Colour menace (पीतवर्ण और कृष्णवर्ण जातियों से भय) कह कह कर होहल्ला और ऊधम मचाना शुरू कर दिया है।

एशियावालों ने सन् १८२५–१८५० ई. के दर्मियान में दूसरे महाद्वीपों को जाना प्रारम्भ किया। 'भारतीयों के विदेश प्रवास' को 'एशियावासियों के विदेश प्रवास' की एक शाखा समझनी चाहिये। हम बतला आये हैं कि सन् १८३४ ई. से भारतवासी प्रतिज्ञाबद्ध कुली बनाकर विदेशों को भेजे जाने लगे। अब तक यह सिलसिला जारी है और इसी के द्वारा लाखों ही भारतवासी विदेशों को भेज दिये गये हैं।

अब भारतीयों के विदेशप्रवास के प्रश्नों ने बड़ा महत्त्वपूर्ण रूप धारण कर लिया है। जो लोग मनुष्य जाति के इतिहास को अध्ययन करना चाहते हैं, उनके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह ध्यानपूर्वक इन प्रश्नों पर विचार करें।

पहिला कारण तो भारतवासियों के प्रवास का यह है कि जिस समय गुलामी की प्रथा बन्द हुई थी और स्वतंत्र हबशी लोगों ने दासत्वशृङ्खला में बँधना अस्वीकार किया तो फिर भारतवासी शर्तबन्दी में कुली बनाकर भेजे जाने लगे। इस कारण के विषय में हम विस्तार पूर्वक पिछले पृष्ठों में लिख चुके हैं; अतएव यहाँ उसे दुहराने की जरूरत नहीं।

दूसरा कारण यह है कि हमारे देश के उद्योगधन्धे और कारीगरियाँ यूरोपवालों की अन्याययुक्त प्रतिद्वन्द्विता के कारण नष्ट हो गईं। भारत के प्राचीन उद्योगधन्धों का सच्चा इतिहास अभीतक नहीं लिखा गया। जब यूरोपवालों ने स्वार्थान्ध होकर कुटिल नीतियों द्वारा हमारे व्यापारों और रोज़गारों को चौपट कर दिया (उदाहरणार्थ कपड़ा बुनने और रङ्ग तैय्यार करने के रोज़गार क़रीब क़रीब बन्द हो गये) तो इन कार्य्यों में लगे हुये लोगों की आर्थिक स्वतंत्रता जाती रही और वह भूखों मरने लगे। अब इन लोगों के पास केवल दो उपाय बाक़ी थे, एक तो यह कि उन फेक्टरियों में मज़दूरी करें जो अब देश के भिन्न भिन्न भागों में खुल गई थीं, अथवा खेती करके अपनी गुज़र करें। कल कारख़ानों में काम करना भारतवासी स्वभावतः नापसन्द करते हैं, इसलिये इन कारीगर लोगों को आख़िरकार खेतीही करनी पड़ी। हिन्दुस्तान में लोग सैकड़ों ही वर्षों से खेती करते आये हैं, इस लिये भूमिकी उर्वरा शक्ति कम हो गई है। खाद देने के लिये दाम चाहिये सो आवें किस के घर से? नये तरीक़ों से खेती करना वह जानते नहीं। पैदावार हरसाल कम होने लगी। इसका नतीजा यह हुआ कि किसानों को पेट भरना मुश्किल हो गया। अन्त में यह लोग कुली बनाकर विदेशों को भेजे जाने लगे।

दूसरा उपाय यह है कि औपनिवेशक सरकारों पर इस बात का दबाव डाला जावे कि वह अपने यहाँ Cooperative credit societies 'सहयोग समितियाँ' स्थापित करें।

दूसरी आर्थिक कठिनाई प्रवासी भारतीयों के मार्ग में यह है कि जब कोई अच्छी जायदाद बिकती है तो उसको अकेला कोई भी भारतवासी नहीं खरीद सकता, क्योंकि उसका मूल्य बहुत ज्यादा होता है, और अगर कोई भारतवासी जोड़ तोड़ लगाकर खरीद भी ले तो फिर जोतने बोने के लिये रुपये कहाँ से लावे ? इस लिये एक प्रभावशाली प्रवासी हितकारक कम्पनी कायम होनी चाहिये। यह कम्पनी ज़मीन को खरीदा करे और फिर उसे प्रवासी भारतीयों को बेच दिया करे। अधिकांश प्रवासी मजदूर आठ दस एकड़ के खरीददार होते हैं। बहुत सी ज़मीन इकट्ठी खरीद कर फिर आठ आठ दस दसे एकड़ भूमि भिन्न भिन्न भारतीयों में बाँट देने से कम्पनी को भी लाभ होगा और बिचारे मजदूरों को तो बड़ी सुविधा हो जावेगी। कम्पनी के लिये यह कार्य्य कोई जोखों का नहीं होगा। कितने ही यूरोपियन देशों में इस प्रकार की कम्पनियों ने बड़ी सफलता के साथ काम किया है। युद्ध के पहिले जर्मन लोगों की एक सभा ने जिसका कि नाम German colonisation Syndicate था, पश्चिमी रूस में कितनी ही ज़मीन रशियन लोगों से खरीद कर अपने प्रवासी भाईयों को बेची थी। कनाडा में भी इस प्रकार के प्रयत्न सफल हुये हैं। इसी तरह की यदि कोई 'प्रवासी हितकारक कम्पनी' स्थापित हो जावे और उसकी शाखायें उपनिवेशों के मुख्य मुख्य नगरों में कायम हो जावें तो इससे दो बड़े लाभ हो सकते हैं, एक तो यह कि इस कम्पनी के द्वारा प्रवासी हिन्दुस्तानियों का सम्बन्ध अपने देश से दृढ़ हो जावेगा और दूसरा यह कि गोरे ज़मीन्दारों के

विरुद्ध बनाये जाते हैं और मोरीशस के फ्रेंच और ब्रिटिश गोरे उनसे द्वेष करते हैं और उनकी उन्नति को देख कर जलते हैं। मोरीशस और फिजी के गोरों को सुरीनाम के गोरों का बर्ताव देख कर लज्जित होना चाहिये। सुरीनाम में जो भारतीय बसना चाहते हैं उनकी सुविधा के लिये डच सरकार ने बहुत कुछ प्रयत्न किया है। आबं-पाशी के काम जगह जगह खोले गये हैं और सरकार की तरफ़ से सहयोग समितियाँ स्थापित हो गई हैं, जो प्रवासी हिन्दुस्तानियों के लिये बहुत लाभकारी सिद्ध हुई हैं।

कनाडा और आस्ट्रेलिया का ढोङ्ग।

कनाडा और आस्ट्रेलियावाले गोरे कहते हैं कि हम लोग काले आदमियों को अपने यहाँ आर्थिक कारणों की वजह से नहीं आने देते। इस जगह हमें यह सिद्ध करना है कि आर्थिक कारणों का यह बहाना बिल्कुल ढोङ्ग मात्र है। जिस तरह कि कोई कुत्ता किसी चरागाह में घुस जावे और फिर उसमें आनेवाले गाय और बैलोंके ऊपर ज़ोर ज़ोर से भूंके और उन्हें न घुसने दे, ख़ुद तो कुत्ता घास खाने से रहा, लेकिन वह भूँक भूँक कर गाय बैलों को भी घास न खाने दे, बस इसी तरह की नीति का अनुसरण आस्ट्रेलियावाले गोरे कर रहे हैं। उत्तरी आस्ट्रेलिया की रेतीली भूमि को जोतने बोने लायक़ बनाना आस्ट्रेलियन गोरों की शक्ति के बाहर है। गर्म मुल्कों में रहनेवाले भारतवासी या चीनी मज़दूरों की सहायता के बिना उत्तरी आस्ट्रेलिया ऊजड ही बनी रहेगी; लेकिन यह गोरे लोग न तो ख़ुद उसका उपयोग कर सकते हैं और न हिन्दुस्तानियों और चीनियों को ही करने देते हैं।

कि कल ही सारा झगड़ा तैय हुआ जाता है। लेकिन् गोरे लोग ऐसा क्यों करें ? वह लोग हिन्दुस्तानियों और चीनियों को अपने यहाँ आने से जो रोकते हैं उसका कारण तो कुछ और ही है, जिसका ज़िक्र तो हम आगे चल कर करेंगे।

दूसरा कारण जो गोरे लोग बतलाते हैं, उसे भी सुन लीजिये। वह कहते हैं "प्रत्येक देश में जो कुछ रुपया मज़दूरों को अपनी मज़दूरी से मिलता है वह एक 'निश्चित धन' है, इसलिये मज़दूरों की संख्या जितनी ही बढ़ती जावेगी उतना ही प्रत्येक मज़दूर को कम मिलेगा। इसका उत्तर यह है कि हम अपने भारतीय मज़दूरों को जो दूसरे देशोंमें भेजना चाहते हैं उसका उद्देश्य यह नहीं है कि वह इस निश्चित धन में से बँटवारा करें, बल्कि जो स्थान अभी बिल्कुल ऊजड़ पड़े हैं और जिनका उपयोग गोरे मज़दूर नहीं कर सकते उन्हें जोत बोकर ठीक करें, जिससे उस देश का भी लाभ हो और हमारे भाई भी अपनी गुज़र कर सकें। जब नई ज़मीन का उपयोग होने लगेगा तो वहाँ के गोरे निवासियों को भी बड़ा मारी लाभ होगा। हम फिर कहते हैं कि हम कदापि नहीं चाहते कि गोरे मज़दूरों के 'निश्चित धन' में से हमारे प्रवासी भाई हिस्सा बटावें। इस 'निश्चित धन' की रक्षा करने के लिये वहाँ की सरकार ऐसा कानून बना सकती है कि हिन्दुस्तानी मज़दूर नवीन उद्योग धन्धों में ही लगाये जाने चाहियें। जब ऐसा कानून बन जावेगा तो फिर गोरे मज़दूरों के वेतन में कमी होने का डर बिल्कुल जाता रहेगा।

इस प्रकार यह निर्विवाद सिद्ध हो गया कि आस्ट्रेलियावालों के बतलाये हुये आर्थिक कारण बिल्कुल निराधार हैं। अब प्रश्न यह है कि तो फिर गोरे लोग हिन्दुस्तानियों को अपने यहाँ घुसने से क्यों रोकते हैं ? इसके कारण भी सुन लीजिये।

गोरे लोगों के दिमाग़ में यह भ्रमपूर्ण विचार समा ग
में एक घोर युद्ध होगा जिसमें एशियावाले एक त
यूरोपवाले दूसरी तरफ़ । यूरोपीय राजनीतिज्ञों के
गोरों का यह युद्ध समाया हुआ है और यह इसे अवश्य
हैं। बस इसी के आधार पर वह लोग कहते हे कि
हो सके अपने अधिकार में रक्खो और एशियावालों के
मत घुसने दो, नहीं तो यह लोग आगे चलकर झगड़ा
पियन लोग कहते हैं कि "संसार में 'जीवनसंग्राम
प्रचलित है, जो सबसे अधिक बलवान होते हैं वह ही
सकते हैं, बाकी सबको मृत्यु का ग्रास बनना पड़ता है
नियमके अनुसार कभी न कभी भविष्य में काले गोरों में
जो जीतेंगे उनकी ही उन्नति होगी।"

यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जावे तो यह पता लग स
यूरोपवालों की यह भविष्यवाणी असत्य और हानिकारक
मनुष्यसमाज की उन्नति हो सकती है तो भिन्न भिन्न
मिलजुल कर रहने से ही हो सकती है। यदि संसारमें
"जीवनसंग्राम" का नियम काम कर रहा है तो दूसरी
के समान शक्तिशाली "पारस्परिक साहाय्य" का नियम भ
रहा है। जितनी शीघ्र यूरोपवालों की समझ में यह बात
उतनी ही मनुष्य समाज की भलाई होगी।

दूसरी बात जो यूरोपवालों के दिमाग़ में समाई हुई
है, कि एक ज़माना ऐसा आनेवाला है, जब कि मनुष्यसंख्
जाने के कारण संसार की ऊसर से ऊसर ज़मीन में अ
बसेंगे; क्योंकि मनुष्य संख्या तो Geometrical ratio 'ज्य
सम्बन्ध' से बढ़ती है और भोज्य द्रव्य Arithmetical rat

-तर श्रेणी सम्बन्ध ' से, इस कारण बुद्धिमानी इसी में है कि जितनी ज़मीन हो सके अपनी जातिवालों के लिये भविष्य के वास्ते अभी से सुरक्षित रखनी चाहिये। स्थानाभाव से इस क्षुद्र पुस्तक में हम इस भ्रमपूर्ण सिद्धान्त का खण्डन नहीं कर सकते; लेकिन हम इतना अवश्य कहेंगे कि यह सिद्धान्त अमानुषिक और अन्याययुक्त है। अगर तर्क के लिये यह ठीक मान भी लिया जावे तब भी यह कहाँ की बुद्धिमानी है कि एक घटना के लिये, जिसका कि भविष्य में होना और न होना अनिश्चित है, वर्तमान बातों का खून किया जावे?

ब्रिटिश साम्राज्य में भारतीयों का स्थान

जहाँ पर दो जातियों का पारस्परिक संसर्ग होता है, वहां कितने ही राजनैतिक प्रश्न उठ खड़े होते हैं। राजनीति विज्ञान के प्रेमियों के लिये यह प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। एशिया का ही नहीं, बल्कि सारे संसार का राजनैतिक इतिहास हमारे इस कथन का प्रमाण है। वर्तमान महायुद्ध का कारण ट्यूटन और स्लेव जातियों का संघर्ष है। ब्रिटिश साम्राज्य भी दो प्रकार की जातियों से बना हुआ है, एक तो ब्रिटेन तथा उसके उपनिवेश और दूसरे भारत वर्ष। उपनिवेशों का ब्रिटिश साम्राज्य में भविष्य में क्या स्थान होना चाहिये, इस बात को निश्चित करना ब्रिटिश राजनीतिज्ञों के लिये बहुत कठिन नहीं है। असल में जिस प्रश्न की कसौटी पर इन राजनीतिज्ञों की बुद्धि की परीक्षा होगी वह यह है कि भविष्य में भारत का ब्रिटिश साम्राज्य में कौनसा स्थान होना चाहिये। ' इस समय ब्रिटिश साम्राज्यमें भारत का कौन स्थान है और भविष्य में क्या होना

तीसरी बात यह है कि जिन देशों में भारतीयों ने प्रवास किया है, वहाँ उनकी जाति से भिन्न जाति के लोग निवास करते हैं। परिस्थिति का मनुष्य पर जो प्रभाव पड़ता है, उसे बतलाने की जरूरत नहीं। हिन्दुस्तान में तो लोग जाति और धर्मके बन्धनों से बन्धे रहने के कारण मिले हुये रहते हैं, लेकिन उपनिवेशों में पहुँचने पर जातिबन्धन लगभग बिल्कुल टूट जाते हैं, धार्मिक मर्यादा नष्ट हो जाती है और धर्म का स्थान उच्छृंखलता ले लेती है। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्यों के जातीय गौरव के साथ उनकी संघशक्ति भी जाती रहती है। इसी वजह से गोरे जमीन्दारों का संगठित समूह इन पर मनमाने अत्याचार कर सकता है।

इन बातों से स्पष्ट है कि प्रवासी भारतीयों की परिस्थिति तीन कारणों से हानिकारक होती है; एक तो वह परतंत्र जाति के हैं और दूसरे कुलीप्रथा के कारण उनका जातीय गौरव नष्ट हो जाता है और तीसरे वह लोग धनाढ्य गोरों के संगठित समूह का विरोध करने में अत्यन्त असमर्थ होते हैं। इन तीनों कारणों के रहते हुये यदि हमारे प्रवासी भाईयों की राजनैतिक स्थिति खराब हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है?

भारतीय प्रवास के प्रश्नों में तीन प्रश्न ध्यान देने योग्य हैं (१) भारत सरकार का प्रवासी भारतीयों से क्या सम्बन्ध है? (२) उपनिवेशों में भारतीयों को किन किन कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है? (३) ब्रिटिश साम्राज्य में भारत का कौनसा स्थान है? इन तीनों प्रश्नों को ठीक तरह समझ लेना मानो भारतीय प्रवास के सभी प्रश्नों को समझ लेना है। जैसा कि हम पहिले बतला चुके हैं कि ब्रिटिश साम्राज्य में भारत के स्थान का प्रश्न सबसे अधिक उपयोगी है। जिस समय ब्रिटिश साम्राज्य में भारत को स्वतंत्र नागरिक के पूर्ण अधिकार प्राप्त हो जावेंगे उसी समय बाकी दोनों प्रश्न हल हो जावेंगे।

भारत सरकार का प्रवासी भारतीयों के साथ क्या सम्बन्ध है ?

हमारे प्रवासी भाईयों को भिन्न भिन्न उपनिवेशों में जो कष्ट उठाने पड़ते हैं उनका प्रभाव भारतवर्ष में बहुत पड़ता है। जिस समय दक्षिण अफ्रिका में सत्याग्रह का संग्राम चल रहा था, भारत में सैकड़ों ही सभायें हुई थीं, सहस्रों ही व्याख्यान दिये गये थे और कई लाख रुपये दक्षिण अफ्रिकावालों की सहायतार्थ इकट्ठे किये गये थे। इस आन्दोलन ने इतना ज़ोर पकड़ लिया था कि एङ्गलो इण्डियन लोग और भारत सरकार भी इसके प्रवाह में आ गये थे। यहाँ तक कि इङ्गलेण्ड में भी सर्व साधारण का ध्यान पहिली बार इस ओर आकर्षित हुआ था और इङ्गलेण्डवासी इस बात को जानने के लिये उत्सुक हो गये थे, कि दक्षिण अफ्रिका के प्रवासी हिन्दुस्तानियों और जनरल बोथा की सरकार में क्या झगड़ा चल रहा है। उदार दलवाले समाचार पत्रों में भारतीयों के लिये सहानुभूतिपूर्ण लेख छपे थे, और टाइम्स को भी इस बात की चिन्ता हो गई थी, कि किसी न किसी तरह यह झगड़ा तैय हो जाना चाहिये। लेकिन दक्षिण अफ्रिका में इस आन्दोलन का प्रभाव बहुत ही कम पड़ा। इसका कारण यह है कि जिस मार्ग से हमारे आन्दोलन का प्रभाव दक्षिण अफ्रिका तक पहुँचता था, वह मार्ग बड़ा ही गड़बड़ है। पहिले भारत सरकार देहली से इण्डिया आफिस के डाइरेक्ट हाल नामक कार्य्यालय को लिखती थी, फिर वहाँ से भारतसचिव औपनिवेशिक मंत्री को लिखते थे तत्-पश्चात् औपनिवेशिक मंत्री अपने डाउनिङ्ग स्ट्रीट के दफ्तर से दक्षिण अफ्रिका के गवर्नर जनरल को लिखते थे। इस प्रकार तीन चक्-

नियों में छनते छनते हमारे आन्दोलन के प्रभाव की शक्ति बिल्कुल जाती रहती थी। दक्षिण अफ्रिका के मामले ने यह बात निस्सन्देह सिद्ध कर दी थी कि विलायत के औपनिवेशक मंत्री का दबाव दक्षिण अफ्रिका पर बिल्कुल नहीं पड़ सकता। देहली से व्हाइट हाल और व्हाइट हाल से डाउनिङ्ग स्ट्रीट और डाउनिङ्ग स्ट्रीट से केपटाउन को बराबर पत्र भेजे थे, लेकिन यह सारी की सारी कार्रवाई व्यर्थ ही जाती थी। दक्षिण आफ्रिका वाले गोरों के कानों तक यह खबर पहुँचती भी न थी कि प्रवासी भारतीयों के इस प्रश्न ने भारतवर्ष में कितना घोर आन्दोलन उत्पन्न कर दिया है। यह बात ट्रान्सवाल और केपटाउन के उन दिनों के समाचारपत्रों के पढ़ने से ज्ञात हो सकती है। लेकिन इसके बजाय ज्यों ही लार्ड हार्डिञ्ज ने बड़े साहस के साथ यह मामला अपने हाथ में लिया और मद्रास में इस विषय में वक्तृता दी, त्यों ही दक्षिण अफ्रिका वालों के छक्के छूट गये। भला दक्षिण अफ्रिका के गोरे इस बात की आशा कब करते थे कि भारत के वाइसराय प्रवासी भारतीयों की सहायतार्थ बीच में दखल देंगे? यद्यपि लार्ड ऐम्पथिल ने भी "हाउस आफ कामन्स" में दक्षिण अफ्रिकावाले भारतीयों के पक्ष में बड़ी जोरदार वक्तृता दी थी, तथापि उसका दक्षिण अफ्रिका के गोरों पर कुछ भी असर नहीं पड़ा था; लेकिन ज्योंही भारत सरकार ने यह काम अपने हाथ में लिया कि बस इस झगड़े का स्वरूप ही दूसरा हो गया।

बात असली यह है कि भारतवर्ष एक परतंत्र देश है और उपनिवेश स्वतंत्र हैं। इस लिये जब भारतवर्ष और किसी उपनिवेश के बीच में झगड़ा आके पड़ता है तो भारतसचिव तो विलायत में बैठे बैठे भारत सरकार को चाहे जो आज्ञा दे सकते हैं; क्यों कि वह भारत के सोलहो आना कर्ता धर्ता हैं, लेकिन उपनिवेशों के स्वतंत्र होने की वजह से

औपनिवेशक मंत्री का उपनिवेशों पर बहुत ही कम दबाव पड़ सकता है।

इस सारी रामकहानी का नतीजा यह निकला कि जब तक, भारत सरकार पर विलायतके इण्डिया आफ़िस का पूर्ण अधिकार रहेगा, जब तक भारतसचिव भारतवासियों की सम्मतियों पर पूरा पूरा ध्यान देने के लिये बाध्य न होंगे, तब तक यह आशा करना कि भारतीय प्रवास के प्रश्न सन्तोषजनक रीति से हल हो जावें, दुराशा मात्र है। यदि भारतसरकार को इस बात की स्वतंत्रता दे दी जावे कि वह स्वयं ही उपनिवेशों के साथ अपने झगड़े तैय कर सके, तो फिर उपनिवेशों के साथ समझोता करने में विशेष कठिनाई न होगी। जिस समय तक यह सब कार्य्यवाही भारतसचिव के हाथ में रहेगी तब तक कुछ नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि भारत-सचिव विलायत Cabinet 'मंत्री महासभा' के एक सभासद् होते हैं और इस महासभा पर इङ्गलेण्ड के लोकमत का ज़बर्दस्त असर पड़ता है। इङ्गलेण्डवासी कितने ही धनाढ्यों के लाखों रुपये उपनि-वेशों में लगे हुये हैं, इसलिये जब कभी उपनिवेशों के विरुद्ध भारत-सचिव कुछ करना भी चाहें तो यह धनाढ्य उनके मार्ग में पूरी पूरी बाधा डालते हैं। 'मंत्री महासभा' इन धनाढ्यों से बहुत डरती है; क्योंकि समाचार पत्रोंद्वारा सभापर कटाक्ष करवाना इन लोगों के बाँये हाथ का खेल है।

इसके सिवाय यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि हमारी सरकार ने अब भारतीय प्रवास के प्रश्नों पर भारतीय दृष्टि से देखना प्रारम्भ कर दिया है। लार्ड हार्डिञ्ज ने जो युगान्तरकारी वक्तृता मद्रास में दी थी वह हमारे इस कथन का प्रमाण है। इसी लिये हम कहते हैं कि यदि भारतसरकार को इस बात की स्वतंत्रता दे दी जावे कि

यह इन कार्य्यों को स्वयं ही कर सके तो फिर भारतीय प्रवास के प्रश्नों को हल करने में बड़ी सुविधा होगी। इसका कारण यह है कि भारत गवर्नमेण्ट को भारतवासियों की सम्मति का कुछ न कुछ ख्याल करना ही पड़ता है। भारतसरकार इस बात को जानती है कि यदि सर्वसाधारण के प्रबल मत का घोर विरोध किया जावेगा तो इसका परिणाम अच्छा नहीं होगा। जिन लोगों ने श्रीमान् लार्ड हार्डिंज का वह खरीता पढ़ा है, जो उन्होंने इण्डिया आफिस को कुली प्रथा के विषय में भेजा था, वह कह सकते हैं कि भारतसरकार अब शिक्षित भारतवासियों की सम्मति का पहिले की अपेक्षा अधिक ख्याल करने लगी है। इस खरीते में एक जगह लिखा हुआ है:—

"But, after all, it is not the duty of the Government of *India to provide coolies for the Colonies*, but to insist that those who go there shall do so under conditions which are not repellent to be educated Indian opinion."

अर्थात्–"भारत सरकार का यह कर्तव्य नहीं है कि वह उपनिवेशों को कुली दिया करे, हाँ उसका कर्तव्य यह है कि इस बातको दृढ़ता पूर्वक कहे कि जो मजदूर उपनिवेशों को जावें वह ऐसी हालतों में जाने पावें जो कि शिक्षित भारतवासियों की सम्मति की प्रतिघातक न हों।"

भारतीय समाचारपत्रों ने कुली प्रथा के विरुद्ध जो घोर आन्दोलन किया था, उसी का परिणाम यह निकला कि लार्ड हार्डिंज व भारत सरकार की ओर से कुली प्रथा का बड़ा भारी विरोध करना पड़ा। इसके अतिरिक्त भारत सरकार को क्या पड़ी है कि वह बिना किसी स्वार्थ के प्रवासी भारतीयों के न्यायोचित अधिकार प्राप्त करने के मार्ग में बाधा डाले।

भारत सरकार के पुराने कार्य्य इस बात के साक्षी हैं कि कड़े कड़े शासकों को भी इस बात का ख्याल है कि भारत सरकार

औपनिवेशिक मंत्री का उपनिवेशों पर बहुत ही कम
सकता है।

इस सारी रामकहानी का नतीजा यह निकला कि ज
भारत सरकार पर विलायतके इण्डिया आफिस का पूर्ण अधिक
जब तक भारतसचिव भारतवासियों की सम्मतियों पर पू
ध्यान देने के लिये बाध्य न होंगे, तब तक यह आशा कर
भारतीय प्रवास के प्रश्न सन्तोषजनक रीति से हल हो जावें,
मात्र है। यदि भारतसरकार को इस बात की स्वतंत्रता दे दी
कि वह स्वयं ही उपनिवेशों के साथ अपने झगड़े तैय कर सके,
फिर उपनिवेशों के साथ समझौता करने में विशेष कठिनाई न हो
जिस समय तक यह सब कार्य्यवाही भारतसचिव के हाथ में र
तब तक कुछ नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि भार
सचिव विलायत Cabinet 'मंत्री महासभा' के एक सभासद होते
और इस महासभा पर इङ्गलेण्ड के लोकमत का जबर्दस्त अस
पड़ता है। इङ्गलेण्डवासी कितने ही धनाढ्यों के लाखों रुपये उपनि
वेशों में लगे हुये हैं, इसलिये जब कभी उपनिवेशों के विरुद्ध भारत-
सचिव कुछ करना भी चाहें तो यह धनाढ्य उनके मार्ग में पूरी पूरी
बाधा डालते हैं। 'मंत्री महासभा' इन धनाढ्यों से बहुत डरती है;
क्योंकि समाचार पत्रोंद्वारा सभापर कटाक्ष करवाना इन
बाँये हाथ का खेल है।

इसके सिवाय यह बात भी ध्यान देने योग्य है
ने अब भारतीय प्रवास के प्रश्नों पर भारतीय
कर दिया है। लार्ड हार्डिञ्ज ने जो
में दी थी वह हमारे इस कथन का प्रमाण
है। कि यदि भारतसरकार को इस बात

कहीं इन लोगों की संख्या और भी ज्यादा न बढ़ जावे एक क़ानून बना दिया है कि एशियावासी हमारे देश में नहीं घुसने पावेंगे। पहिले दक्षिण आफ्रिकावाले गोरों ने भी एशियावालों के विरुद्ध ऐसा ही क़ानून बनाया था लेकिन महात्मा गान्धी ने इसका घोर विरोध किया और अन्त में यूनियन सरकार को अपने इमग्रेशन एक्ट में से 'एशियाटिक' शब्द निकाल देना पड़ा। हम इस बात को स्वीकार करते हैं कि एक स्वतंत्र उपनिवेश को इस बात का अधिकार है कि वह ऐसा क़ानून बनावे कि अमुक योग्यता के मनुष्य हमारे यहाँ प्रवेश कर सकेंगे; लेकिन सब के सब एशियावासियों को केवल इसी कारण न घुसने देना कि वह एशियावासी हैं घोर अन्याय है।

जिस समय कनाडा वालों ने यह क़ानून बनाया था कि एशियावासी हमारे यहाँ नहीं घुसने पावेंगे तो भारतवासियों को इससे बड़ा क्रोध उत्पन्न हुआ था। सिक्ख जाति के एक धनाढ्य पुरुष सरदार गुरुदत्तसिंह ने कोमागाटा मारू नाम के एक जहाज़ को किराये पर लिया और उसमें बैठकर बहुत से सिक्खों के साथ वह वैंकोवर पहुँचे। वैंकोवर में कनाडा के राजकर्मचारियों ने उन्हें नहीं उतरने दिया। उस समय ऐसा दीख पड़ता था कि कोमागाटा मारू का मामला एक बड़े महत्त्वपूर्ण प्रश्न को हल करने में सहायता देगा, लेकिन महायुद्ध प्रारम्भ होने की वजह से ऐसा न हो सका। कनाडा में चीफ़ जस्टिस मेकडोनेल्ड ने इस बारे में जो फ़ैसला दिया था उसमें उन्हों ने साफ़ लिख दिया था कि 'कनाडावाले इस बात में पूर्ण स्वतंत्र हैं और साम्राज्य उनके इस अधिकार में दख़ल नहीं देसकता।'

लेकिन हमारा सवाल कनाडा वालों के अधिकार का नहीं है; हमारा सवाल तो यह है कि क्या ब्रिटिश साम्राज्य के प्रत्येक नागरिक का यह हक़ है कि वह साम्राज्य के किसी भाग में स्वतंत्रतापूर्वक जा सके?

इसके अतिरिक्त दूसरा प्रश्न यह भी है कि क्या कोई जाति भूमिके एक बड़े भाग को अपने लिये बिल्कुल रिज़र्व कराके रख सकती है ?

पहिले प्रश्न का तो उत्तर यह है कि सब के सब आदमियों को जो ब्रिटिश प्रजा हैं, भारतवर्ष में प्रवेश करने की स्वतंत्रता प्राप्त है। हमारी सिविल सर्विस में न केवल इङ्गलैण्ड, स्काटलैण्ड और आयर्लैण्ड के ही आदमी सम्मिलित होते हैं; बल्कि कनाडा, अफ्रिका व आस्ट्रेलियावाले तथा नीग्रो और यहूदी भी शामिल होते हैं। जब इन लोगों को भारतवर्ष में ब्रिटिश नागरिक के पूर्ण अधिकार प्राप्त हैं तो फिर हम भारतवासियों को इन लोगों के देशोंमें वैसे ही अधिकार क्यों न मिलने चाहिये !

कनाड़ा का एक पत्र, जिसका कि नाम 'Vancouver News Advertiser' वेंकोवर है, इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार देता है:—

"This doctrine carries its own refutation. It denies Canadian self-government."

अर्थात्—"इस सिद्धान्त का खण्डन अपने आप ही हो जाता है, अगर यह सिद्धान्त मान लिया जावे तो इसके मानी यह होंगे कि कनाडा को स्वराज्य करने का अधिकार नहीं है।"

इस पत्र के इस कथन का अभिप्राय स्पष्टतया यही हुआ कि 'हम कनाड़ावाले स्वतंत्र हैं, और तुम भारतवासी परतंत्र हो। हम लोग बिना किसी रोक टोक के भारत में प्रवेश करते हैं; क्योंकि हमारे ही भाईबन्धु भारत पर शासन करते हैं। हम तुम्हें अपने यहाँ नहीं घुसने देंगे; क्योंकि हम अपने घर के खुद मालिक हैं।'

जब इस प्रकार का उत्तर हम भारतवासियों को जो 'ब्रिटिश साम्राज्य के नागरिक' होने का दावा करते हैं मिलता है, तब हमारी

आंखें खुल जाती हैं, और हमें पता लगता है कि असल में इस समय ब्रिटिश साम्राज्य में हमारा कोई भी स्थान नहीं है; चाहे हम भले ही चिल्लाया करें कि 'हम भी ब्रिटिश साम्राज्य के नागरिक हैं।'

अब रहा यह प्रश्न कि 'क्या किसी जाति का यह अधिकार हो सकता है कि वह भूमि के एक बड़े भाग को केवल अपने ही लिये रिज़र्व करा ले।' सो इसका उत्तर यूरोपियन पालिसी अच्छी तरह दे सकती है। पहिले चीनी और जपानी लोग यही कहते थे कि हम किसी को अपने यहाँ नहीं घुसने देंगे, लेकिन क्या यूरोपीय जातियों ने उनके कथन को माना? और अमेरीका के संयुक्तराज्यों ने तो कामोडोर पेरी साहबको जापान के किनारे भेजकर इस प्रश्न को हलही कर दिया।

जब इस प्रकार के उदाहरण हमारे सामने मौजूद हैं तो फिर हम कैसे मान सकते हैं कि कनाडावाले गोरे, कनाडा को बिल्कुल अपने ही लिये रिज़र्व कराने के अधिकारी हैं?

जुलाई सन् १९१४ ई. में 'लन्दन टाइम्स' ने एशियावालों के विरुद्ध एक लेख लिखा था। यह लेख ढोङ्ग और अहंकार से भरा हुआ था। इसमें एक जगह फ़र्माया गया था:—

"Where the European is engaged in building up new communities, where he has to ask himself day by day whether the foundations are well laid and the growing fabric secure in each successive storey of structure, there he is compelled to exclude alien influence and the inevitably corrosive action of racial materials that resist assimilation."

अर्थात्-"जहाँपर यूरोपियन लोग नवीन प्रजाओं की रचना करने में लगे हुये हैं और जहाँ उन्हें हरदम इस बात पर ध्यान रखना पड़ता है कि हम जिस जनसमूहरूपी भवन को बना रहे हैं उसकी नींव कमज़ोर न होने पावे और यह भवन ज्यों ज्यों बढ़ता जावे अधिकाधिक

बाध्य होते हैं, इसका कारण यह है कि [illegible]
स समाजरूपी भवन के लिये अवश्यमेव नाशकारक होता है,
इन विदेशी लोगों की यूरोपियन लोगों के साथ एकता
सकती। ''
म्स' जैसा अहङ्कारी पत्र ही इस प्रकार की ढोङ्गभरी बात कह
। कल को 'टाइम्स' यह भी कह सकता है कि ' सारी की
नेया में हम यूरोपियन लोग नवीन Communities जनस
करना चाहते हैं बस इसलिये एशियावालों को अपने घर
काल प्रशान्त महासागर में फेंक देना चाहिये ! ' हम लो
म्स' का यह कथन आश्चर्यदायक भले ही मालूम पड़े, लेकि
ई शक नहीं है कि विलायत के कितने ही आदमी वस्तु
ते हैं कि सारी पृथ्वी पर यूरोपियन लोगों का ही आधि
चाहिये, जिससे कि वह पृथ्वी भर पर नवीन प्रजाओं ब
सकें ! कनाडावाले कहते हैं कि हम लोग सिर्फ हिन्दु
को ही अपने यहाँ आने से नहीं रोकते, बल्कि दूसरे यूरोपि
भी रोकते हैं। 'टाइम्स' ने अपने एक लेख में लिखा था:—

an utter misconception to think that the right of
is exercised by the Dominions exclusively against
tic subjects of the crown. That is not so. Canada
white men who are British citizens if they are not
suitable for admission. It would be well if this simple
more generally realised in India. "

-" यह ख्याल करना बड़ी भारी भूल है कि कनाडावाले
कार की केवल एशियावासी प्रजा को ही अपने यहाँ आनेसे
कनाडावाले उन गोरे आदमियों को भी, जो ब्रिटिश साम्राज्य
होते हैं, रोकते हैं यदि वह उन्हें अपने यहाँ घुसने के

अयोग्य समझें। यदि भारत वर्ष में सर्व साधारण इस सीधी सादी बात को समझ लें तो अच्छा हो।"

'टाइम्स' की इस 'सीधी सादी' बात का उत्तर हमें देने की आवश्यकता नहीं। आगे चल कर इसी पत्र ने जो कुछ लिखा है वही हमारा उत्तर है। 'टाइम्स' लिखता है:—

"Determination of the Dominions to exclude Asiatic subjects is directed against a race while the exclusion of white men is particular and is applied only in individual cases of undesirability."

अर्थात्—"कनाड़ावाले एक एशियावासी प्रजा के सारे के सारे आदमियों को अपने यहाँ आने से रोकते हैं, लेकिन गोरे आदमियों में केवल वह ही रोके जाते हैं, जो कनाड़ा में प्रवेश करने के अयोग्य समझे जावें।"

सौ बात की एक बात तो यह है कि हम लोगों को केवल इसी कारण से कि हमारा निवासस्थान एशिया में है, रोकना हमारा निरस्कार और हमारी जातीय सभ्यता का अपमान करना है। 'टाइम्स' हमारे इस अपमान को उचित समझता है और इसका कारण यह बतलाता है कि यूरोपियन लोग एशियावालों की अपेक्षा उच्चतर जाति के हैं, इस लिये हमें अब इस प्रश्न पर विचार करना है कि—

"क्या यूरोपियन लोग एशियावासियों से उच्चतर जाति के हैं ?"

एशियावासियों को विदेशों में जो जो कठिनाईयाँ उठानी पड़ती हैं, उनका एक कारण यह भी है कि यूरोपियन लोगों के दिमाग में यह भ्रमपूर्ण बात समा गई है कि एशियावासी हमसे नीच जाति के हैं। जहाज़ी कम्पनियाँ हिन्दुस्तानी यात्रियों को पूरे पूरे दाम

देने पर भी फर्स्ट क्लास का टिकिट नहीं बेचती, ज्यों ही एक हि
स्तानी बैरिस्टर किसी गाड़ी में अपना सामान ले जाता है, त्यों
यूरोपियन नाक भौं चढ़ाकर उसमें से बाहिर निकल जाता है
और रिआयत के कितने ही कालिजों में हिन्दुस्तानी छात्र भर्ती ही
नहीं हो सकते। इन सब बातों का भीतरी कारण यही है कि यूरोपि-
यन लोग अपने को उच्चजातीय समझते हैं और हम लोगों को नीच
जातीय। एक बार जनरल स्मट्स ने साम्राज्य सरकार को लिखा —
कि 'दक्षिण अफ्रिका के गौर वर्ण लोग इस बात को कदापि
कर सकते कि क़ानून की दृष्टि में यूरोपियन और हिन्दुस्तान
समझे जावें।'

हम पहिले बतला चुके हैं कि यूरोपियन राजनीतिज्ञ
यह भविष्यद्वाणी कि आगे चलकर यूरोपियनों और एशिया
में घोर युद्ध होगा, बिल्कुल ग़लत और निराधार है। अब
'उच्च जाति' के होने की बात सो यदि उच्चजातीय
के मानी यह हैं कि आपस में बड़ी बड़ी तोपों के साथ यु
किया जावे और एक दूसरे का सत्यानाश करके Survival of th
fittest (योग्यतम का विजय) नामक सिद्धान्त की डींग मारी
जावे, तो हम अवश्यमेव स्वीकार करेंगे कि यूरोपियन हम से उच्चतर
जाति के हैं; लेकिन अगर 'उच्च जाति' के मानी कुछ
केवल हम भारतवासी ही नहीं, बल्कि चीनी लोग भी
उच्च जातीय होने में हम कदापि किसीसे कम नहीं।
बात असल में यह है कि जो जातियाँ मनुष्य जाति
तोपों से नष्ट करने में असमर्थ हैं, उन्हें यूरोपियन लो
हैं। देखिये जापानियों ने बड़ी बड़ी तोपों का प्रयोग
रीछ के छक्के छुड़ा दिये थे, बस इसी लिये आज जाप

को कोई भी यूरोपियन जाति नीच कहने का साहस नहीं करती।
चीनी लोगों को जो जपानियों की अपेक्षा बहुतसी बातों में उन्नतर हैं, लेकिन जो मनुष्य जाति को नष्ट करने में असमर्थ हैं, सारी की सारी यूरोपियन जातियाँ नीच समझती हैं ! यदि Superior race (उच्च जाति) और Inferior race (नीच जाति) में दर असल यही भेद है कि जो मनुष्य जाति को तोपों से नष्ट करने में समर्थ हो वह ' उच्च ' और जो ऐसा करने में असमर्थ हो वह 'नीच,' तो कम से कम हम तो यही चाहेंगे कि यह ' उच्च जाति ' यूरोपियन *लोगों को ही मुबारिक हो, हम ऐसी उच्च जाति को दूर से ही नमस्कार* करते हैं। सांसारिक धन और सम्पत्ति के मद में अन्धे होकर यूरोपियन लोग ऐसा ख्याल करने लगे हैं, कि जो जातियाँ हमारा अनुकरण नहीं करतीं वह नीच हैं। यूरोपियनों का यह विचार इतना क्षुद्र है कि इसका उत्तर देने की आवश्यकता नहीं थी, लेकिन यहाँ हमने इसका उत्तर देना *इसलिये ठीक समझा कि जब यूरोपियन लोग* वादविवाद में हार जाते है तो आखिरी तर्क यही पेश करते हैं कि हम उच्च जाति के हैं और तुम एशियावासी नीच जाति के !

तीसरा कष्ट प्रवासी भारतवासियों को यह है कि उनके सामाजिक कार्य्य भी-उदाहरणार्थ विवाह और उत्तराधिकार के प्रश्न-वैदेशिक कानूनों और रीतिरिवाजों के अनुसार अनुशासित होते हैं। मोरीशस में प्रवासी भारतियों के उत्तराधिकार सम्बन्धी झगडे फ्रासीसी कानून-द्वारा तैय किये जाते है। *विवाह के विषय में हम* [illegible] *? मिस्टर* गोखले ने [illegible]

क्या हम ब्रिटिशसाम्राज्य के नागरिक हैं ?

उपर्युक्त प्रश्न का उत्तर यह है कि "हम इस समय ब्रिटिश साम्राज्य के नागरिक नहीं हैं, क्योंकि हमें नागरिक के अधिकार प्राप्त नहीं हैं, लेकिन हम नागरिक होने का दावा करते हैं।" जो साम्राज्य हमें आस्ट्रेलिया के ऊजड़ और निर्जन स्थानों में भी प्रवेश नहीं करने देता, जो साम्राज्य उन उपनिवेशों और द्वीपों में भी—जो कि हमारे ही मजदूरों के परिश्रम से फूले फले हैं—हमारा अपमान होते हुए देखकर भी चुपचाप रहता है, जो साम्राज्य हमें स्वदेश में भी ऊँची ऊँची पदवियों का अधिकारी नहीं बनाता, जो साम्राज्य हमें अपने ही देश में नागरिक के अधिकार नहीं देता, उस साम्राज्य के नागरिक हम इस समय अपने को किस तरह कह सकते हैं ? हाँ वह ज़माना कभी आवेगा जब कि हम 'ब्रिटिश साम्राज्य' के नागरिक कहला सकें, लेकिन इस समय तो हमारा साम्राज्य में कोई स्थान नहीं है। जब अपने घर भारतवर्ष में ही हमें यूरोपियनों के समान अधिकार प्राप्त नहीं हैं तो फिर सुदूर अफ्रिका में समान अधिकार हमें किस तरह मिल सकते हैं ? मिस्टर गोखले ने सन् १९०९ ई. में बम्बई में वक्तृता देते हुये कहा था:—

"The root of our present troubles in the colonies really lies in the fact that our status is not what it should be in our own country. Men who have no satisfactory status in their own land, can not expect to have a satisfactory status elsewhere. Our struggle for equal treatment with Englishmen in the Empire must therefore be mainly carried on in India itself."

अर्थात्—"उपनिवेशों में हम लोगों को जो कष्ट सहन करने पड़ते हैं
उनका मुख्य कारण यही है कि अपने देश भारतवर्ष ही में हमें वह स्थान
प्राप्त नहीं जो कि हमें प्राप्त होना चाहिये। जिन आदमियों को स्वदेश
ही में सन्तोषजनक पद प्राप्त नहीं, वह कहीं विदेश में सन्तोषदायक
पद मिलने की आशा कब कर सकते हैं। इस लिये हम
न्दोलन कि साम्राज्य में हमारे साथ अंग्रेजोंके समान व
जावे, मुख्यतया भारतवर्ष में ही होना चाहिये।

जिस समय भारतवासियों को साम्राज्य में युरोपियनों
अधिकार प्राप्त हो जावेंगे, उसी समय भारतीय प्रवास सम्ब
प्रश्न हल हो जावेंगे, लेकिन अभी इस कार्य्य में कितनी ही
हैं। एक बड़ी भारी बाधा यह भी है कि यूरोपियन लोग अ
'खुदा का बच्चा' समझते है, और ऐसा ख्याल करते हैं कि
लोगों को असभ्य से सभ्य बनाने के लिये ही ईश्वरने हमें इस
में भेजा है! हम हिन्दू लोग यूरोपियनों की इस ढोंग को कभी
मान सकते। अब वह ज़माना गया— और ईश्वर की कृपा से सदा के
लिये चला गया—जब कि हम लोगों की आखोंमें यूरोपिय सभ्यता के
रण चकाचौंध पैदा हो जाता था। अब हम में अपनी प्राचीन सभ्यता
उचित अभिमान आ गया है, और स्वाभिमान रक्षा के लिये भी
रे हृदय में कितने ही भाव उत्पन्न हो गये हैं, यही कारण है कि
निवेशक प्रश्नों से हमारे देश में बड़ा भारी आन्दोलन उत्पन्न ह
है। यद्यपि हम भारतवासी यूरोपियनों की तरह Politica
। 'राजनैतिक जीव' नहीं हैं तथापि जहाँ हमारे धर्म और
पर कोई कटाक्ष किया जाता है, वहाँ हम उसे एकाएकी
हीं कर सकते। उपनिवेशों वाले गोरे चिल्लाते हैं 'हिन्दुओं
ने यहाँ से निकाल बाहिर करो, उन्हें यहाँ मत घुसने
ब हम समझते हैं कि यह हमारे राजनैतिक जीवन

के लिये चेलेञ्ज नहीं बल्कि यह हमारी जाति के लिये, हमारे धर्म के लिये और हमारी सभ्यता के लिये चेलेञ्ज है। किसी हिन्दु की जातिया धर्म पर कटाक्ष करना मानों उससे दिल को चुमनेवाली बात कहना है। इस प्रकार की बातों में हम ऐसा कदापि नहीं कर सकते कि हार मान लें और हाथ पर हाथ धरे बेठे रहें। ऐसी बातों में हार मान लेना यूरोपियन राजनीतिज्ञों के सामने हार मानना नहीं है, बल्कि यूरोपियन सभ्यता के सामने अपनी प्राचीन सभ्यताको नीचा दिखलाना है। इसी विचार से महात्मा गान्धी ने दक्षिण अफ्रिका के यूनियन इमीग्रेशन ऐक्ट में से 'एशियाटिक' शब्द निकाले जाने के लिये घोर आन्दोलन किया था और वह अपने इस प्रयत्न में सफल भी हुये थे। इस ऐक्ट में Education test 'शिक्षासम्बन्धी परीक्षा' का नियम प्रत्येक व्यक्ति के लिये है, न कि अकेले हिन्दुस्तानियों के ही लिये। इसी वास्ते यह नियम हमारे लिये उतना हानिकारक और अपमानजनक नहीं हो सकता जितना कि 'कनाडा' वालोंका नियम है।

वास्तव में कनाडा वालों ने '.Exclude the Hindus' हिन्दुओं को बाहिर निकालो ' यह अपमानजनक शब्द कह कर बड़ी भारी भूल की है। इस प्रकार की घोषणाको सुन कर हम कभी भी पीछे नहीं हट सकते। यह घोषणा हमें जबर्दस्ती इस बात के लिये मजबूर करती है कि हम अन्त तक—जब तक कि हमारी विजय न हो—इसके विरुद्ध आन्दोलन करते रहें, क्योंकि यदि हम कनाडावालों की इस बात को मान लेंगे तो हमारी जाति के सिर पर नीचता और कलङ्कका टीका लग जावेगा।

इसी कारण सर रवीन्द्र नाथ ठाकुरने कनाडा में व्याख्यान देने के लिये आये हुये निमंत्रणों को स्वीकार करना अनुचित समझा और स्पष्ट कह दिया कि जहां भारतवासियों के प्रवेश प्रतिबंध किये जाते हैं वहां आना हम मानहानि समझते हैं।

सामाजिक प्रश्न

भारतीय प्रवास से सम्बन्ध रखनेवाले सामाजिक प्रश्न भी बड़े महत्त्वपूर्ण हैं। हम पहले बतला चुके हैं कि 'टाइम्स' भारतवासियों का कनाडा द्वारा बहिष्कृत होना इस लिये न्यायपूर्ण समझता है कि भारतवासियों की कनाडा वाले गोरों के साथ सामाजिक एकता नहीं हो सकती। अब हमें यह देखना है कि क्या सामाजिक एकता राष्ट्रीय संगठन के लिये अनिवार्य्य है। 'टाइम्स' और उसके भाई बन्धु कहते हैं, कि 'अमेरिकन' लोगों का राष्ट्रीय विकास सफलतापूर्वक इसी लिये हो सका है कि वहाँ की सभी यूरोपीय जातियों में 'सामाजिक एकता' है।

हमारी सम्मति में यह कथन बिल्कुल भ्रान्तिपूर्ण है। अमेरिका में कितने ही जर्मन बसे हुये हैं, क्या उनकी अन्य जातियों के साथ सामाजिक एकता है? आयर्लैण्ड के जो निवासी अमेरिका में बस गये हैं उनका भी अन्य जातियों के साथ सामाजिक ऐक्य नहीं है। कनाडा को ही लीजिये; वहाँ जो फ्रांसीसी रहते हैं उनका कनाडा प्रवासी अंग्रेजों के साथ बहुत कम सामाजिक सम्बन्ध है। कनाडा के फ्रांसीसियों और अंग्रेजों में एक दूसरे के साथ बहुत कम ही विवाह होते हैं। कनाडा एक ब्रिटिश उपनिवेश है, लेकिन तब भी वहाँ के फ्रेंचनिवासी एक भिन्न समाज की तरह वहाँ निवास करते हैं, उनकी मातृभाषा फ्रेंच भाषा है और एक भिन्न प्रकार की सामाजिक स्थिति में रहते हैं।

जब हम इस बात को मानते हैं कि हिन्दू लोगों की सामाजिक समता [illegible]

हिन्दू लोग जाते हैं वहाँ अपना छोटा सा समाज स्थापित कर लेते हैं और वह यही चाहते हैं कि अपने सामाजिक कार्य्यों में हम स्वतंत्र रहें। राष्ट्रीय संगठन के लिये जिस बात की आवश्यकता है, वह है 'राजनैतिक एकता' न कि 'सामाजिक एकता'। यहूदी लोगों की जो विलायत में बसे हुये हैं, दूसरी जातियों के साथ 'राजनैतिक एकता' है, इसी वजह से राष्ट्रसंगठन में वह उपयोगी सिद्ध हुये हैं। सारे संसार के यहूदियों का सामाजिक संगठन एक ही है, लेकिन उनके राजनैतिक मत अलग अलग हैं, जो यहूदी जिस देश में रहता है उसी देश से भक्ति करता है। इसी प्रकार यदि हिन्दू लोग कनाडा में बस जावें तो वह कनाडा देश के अवश्यमेव भक्त होंगे। यद्यपि धार्मिक और सामाजिक संगठन के लिये उन्हें अपने पूर्वजों की भूमि भारत से शिक्षा लेनी पड़ेगी, तथापि राजनैतिक बातों में वह वैसे ही पक्के कनेडियन बन सकेंगे, जैसे कि अँग्रेज़ या फ्रांसीसी कनेडियन हैं।

उपनिवेशों के क़ानून

हम पहिले कह चुके हैं कि उपनिवेशों में हिन्दुस्तानी प्रथाओं और क़ानूनों को ठीक नहीं समझा जाता, और यूरोपियन लोग बराबर इस बात का प्रयत्न करते हैं कि एशियावासियों के सामाजिक कार्य्य भी हमारे क़ानूनों के अनुसार अनुशासित होने चाहिये। इसका परिणाम सर्वदा भयंकर होता है। एलजियर्स में फ्रांसीसियों ने इस बात की सिरतोड़ कोशिश की थी कि वहाँ के असली निवासी फ्रेञ्च क़ानूनों के अनुसार चलें लेकिन इसका नतीजा बहुत ही ख़राब हुआ। इस अनुभव से फ्रांसीसियों ने शिक्षा ग्रहण की, और उन्हें अच्छी तरह पता लग गया कि मूलनिवासियों के सामाजिक

कानूनों में हस्तक्षेप करना और उनके ऊपर जबर्दस्ती कर
यूरोपियन कानूनों के अनुसार अनुशासित करना अन्त में बड़
कारक होता है। यही सोच समझकर ट्यूनिसके फ्रांसीसी
वहाँ के असली निवासियों के कानूनों और प्रथाओं के अनु
शासन करते हैं। इंडो चाइना में भी फ्रांसीसियोंने वहाँ
सियोंकी पुरानी प्रथाओं और व्यवस्थाओं को न्यायपूर्ण म
इसके अतिरिक्त भारतसरकार भी हिन्दुस्तानियों के धा
सामाजिक मामलों में हस्तक्षेप करना अनुचित समझती है
उपनिवेशों में हालत है? मोरीशस में हिन्दुस्तानियों के
कार के झगड़े फ्रांसीसी कानूनों के अनुसार तय किये
फिजी इत्यादि में हिन्दू धर्मानुसार किये हुये विवाह नाजाय
जाते हैं, और ट्रिनीडाड वगैरः में हिन्दुस्तानी विधि से
स्त्री पुरुषोंकी सन्तति वर्णसंकर समझी जाती है इन बातों
हमारा, हमारे देश भारतवर्ष का और हमारे राष्ट्रीय स
बड़ा भारी अपमान होता है। क्या यह अपमान हमें सिर न
सह लेना चाहिये?

यदि हम चाहते हैं कि उपनिवेशों में रहने वाले भार
के लिये गौरवस्वरूप हों तो हमें आन्दोलन करके इस अ
घोर विरोध करना चाहिये।

लोग पूँछ सकते हैं कि उपनिवेशों के गोरे निवासियों
पड़ी है कि वह हिन्दुस्तानी प्रथाओं और रीति रिवाजों का
है? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि यः गोरे लोग राष्ट्रसंग
सामाजिक एकता को अनिवार्य्य समझते हैं, और इस
उन के विचारानुसार यह भी आवश्यक है कि सारे के
एक ही कानून हो।

भारतीय प्रवास के जिन प्रश्नों को हम ने लिखा है, उन के सिवाय दो चार प्रश्न और भी हैं, जिनका हल करना प्रवासी भारतीयों के लिये अत्यन्त आवश्यक है। पहिला प्रश्न तो भिखमंगों का है। मिस्टर मेकनील और लाला चिम्मनलाल ने अपनी रिपोर्ट में कई जगह इस बात का ज़िक्र किया है कि कितने ही मोटे ताज़े मुसटण्डे साधु और भिखमंगे उपनिवेशों में पाये जाते हैं। हम यह नहीं कहते कि सब के सब साधु एक से ही होते हैं, उन में दो चार सच्चे और धार्मिक भी होते हैं; लेकिन अधिकांश मुफ्तखोर और आलसी होते हैं। यह लोग समाज की कितनी बुराई करते हैं, यह बतलाने की आवश्यकता नहीं। ज्यों ज्यों उपनिवेशों में इन भिखमंगों की संख्या बढ़ती जाती है, त्यों त्यों वहाँ की दूसरी जातियों की दृष्टि में भारतवासियों का सम्मान घटता जाता है। प्रायः भिखमंगों की सन्तान बहुत होती है और उनका कुटुम्ब बड़ा होता है, लेकिन यह लोग अपने उत्तरदायित्व को नहीं जानते; यह लोग नहीं समझते कि सन्तान उत्पन्न करके उसका ठीक तरह से पालन न करना घोर अन्याय और अत्याचार है। इसीलिये इन लोगों की वजह से समाज की नैतिक अवनति होती है। सबसे उत्तम उपाय यही है कि यह भिखमंगे भारतवर्ष को वापिस भेज दिये जावें और भीख माँगना क़ानूनन जुर्म बना दिया जावे। हम मानते हैं कि इस बात से सच्चे साधुओं को बड़ा कष्ट होगा, लेकिन इस कष्ट को दूर करने की तदबीर यही है कि सच्चे और धार्मिक साधु भिखमंगे न समझे जावें।

इसके अतिरिक्त और दूसरा प्रश्न और भी है, वह है बेकाम खाली हाथ बैठने का। इस समय तो उपनिवेशों में प्रतिज्ञाबद्ध कुली प्रथा जारी है, इस लिये वहाँ सभी शर्तबँधे मज़दूरों से बलात् काम लिया जाता है, लेकिन जब कुली प्रथा बन्द हो जावेगी तब कुछ

लोगों को खाली हाथ बैठना पड़ेगा। हमें अभी प्रयत्न करना चाहिये और ऐसे उपाय सोच निकालना चाहिये, जिससे कि इन्हें बहुत दिनों तक बेकाम न रहना पड़े। यदि प्रवासी भारतवासी 'श्रमजीवी सहायक सभा' स्थापित करें तो यह प्रश्न हल हो सकता है।

बड़े दुःख की बात है कि कुछ औपनिवेशिक भारतवासी माद द्रव्यों का बहुत सेवन करने लगे हैं। यदि यह रोग न रोका गया त इसका परिणाम यह होगा कि उनकी नैतिक अवस्था और भी ज्याद खराब हो जावेगी, क्योंकि जो जातियाँ मादक द्रव्यों का सेवन करती उनमें व्यभिचार बहुत फैल जाता है, और लड़ाई झगड़े भी ज्यादः होने लगते हैं। इस रोग को अभी से रोकने की आवश्यकता है, यदि यह बढ़ गया तो असाध्य हो जावेगा और प्रवासी भारतीयों का नैतिक उद्धार करना असम्भव हो जावेगा। इस विषय में फ़िजी सरकार ने अच्छा नियम बना दिया है; वहाँ मादक द्रव्य किसी हिन्दुस्तानी को मोल नहीं मिल सकते, यदि अन्य उपनिवेश भी ऐसा ही नियम बना दें तो बड़ी अच्छी बात हो। ऐसा नियम बन जाने से प्रवासी भारतीयों के बहुत से दुःख दूर हो जावेंगे।

यद्यपि हिन्दुस्तान में कितने ही लोग जुआ खेलते हैं, लेकिन इन लोगों की संख्या बहुत कम है, परन्तु उपनिवेशों में इसका प्रचार हो गया है। फ़िजी के विषय में मिस्टर ऐण्ड्रूज और मि. पियर्सन ने जो रिपोर्ट लिखी है उसमें उन्होंने लिखा है कि फ़िजी में हिन्दुस्तानी बड़े जुआरी हैं। मलाया स्टेट्स और स्टेटसेटलमेन्ट में भी हिंदुस्तानी बहुत जुआ खेलते हैं। सम्भवतः यह दुर्गुण नीच जातिके चीनी लोगों के संसर्ग से प्रवासी भारतवासियों में आ गया है। नीच जाति के चीनी लोगों के आचरण बड़े भ्रष्ट होते हैं और जहाँ कहीं वह जाते हैं, अपने अड्डे बना लेते हैं, वहाँ वह जुआ खेलते हैं, और शराब पीते

हैं। इन अड्डों को जड़मूलसे उड़ा देना चाहिये । जिस प्रकार एक गन्दी मछली सारे के सारे तालाव को गन्दा कर सकती है, उसी प्रकार एक जुआरी या शराबी सम्पूर्ण समाज को बिगाड़सकता है । ऐसे आदमियों को कठोर दण्ड देना चाहिये, और अगर उनका यह रोग असाध्य हो जावे तो फिर उन्हें उपनिवेश से निकाल बाहिर करना चाहिये ।

हमारे जो कर्तव्य हैं उनका हम पालन करें। मैं अपने प्रयत्न को बहुत सफल समझूंगा अगर आप लोगों में से जो मेरे लेख को सुन रहे हैं, कोई एक आदमी अथवा अधिक, सहानुभूति तथा उद्योग के भावों से प्रेरित होकर बारह लाख प्रवासी भारतीयों के साथ धंधे और व्यापार से उत्तमतर सम्बन्ध स्थापित करे।"

श्रीमान् महादेव गोविन्द रानडे ही पहिले भारतीय नेता थे जिनका ध्यान सर्व प्रथम इस प्रश्न की ओर आकृष्ट हुआ था। रानाडे के सिवाय अन्य भारतीय नेताओं ने इस ओर बहुत कम ध्यान दिया था। महात्मा गान्धी और राजर्षि गोखले ने जो कार्य्य प्रवासी भारत वासियों के लिये किया, उसे तो सब जानते ही हैं, लेकिन अभी भारतवासियों के इस विषय में बहुत कुछ कर्तव्य हैं। इन कर्तव्योंको हम कई भागों में विभक्त कर सकते हैं।

पहिला कर्तव्यः—भारतवासियों का यह है कि सर्वसाधारण को प्रवासी भारतीयों की स्थिति से परिचित करावें, और जनता को यह बतलावें कि उपनिवेशों से क्या क्या लाभ होते हैं और भविष्य में भारतीय उपनिवेश बन जाने से देश को किन किन लाभों के होने की सम्भावना है।

दूसरा कर्तव्यः—यह है कि भारतवर्ष से योग्य पुरुष उपनिवेशों को जावें, कि जिससे वहाँ के निवासी भारतीयों की, राजनैतिक सामाजिक और आर्थिक स्थिति सुधर जावे।

तीसरा कर्तव्यः—यह है कि उपनिवेशोंको मजूदूर भेजे जाने की जो प्रथा जारी होवे उसके गुण दोष सर्वसाधारण को बतलावें और भारतीय प्रवास के प्रश्नों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करें।

चौथा कर्तव्यः—यह है कि उनकी धार्मिक स्थिति को सुधारने के लिये प्रयत्न करें।

व्यय कर सकते हैं, वह यदि चाहें तो क्या फ़िजी जाकर अपने दीन हीन भाई बहिनों की हालत नहीं देख सकते ? लेकिन हमारे यहाँ के राजा रईसों को क्या पड़ी है कि वह ऐसा करें ? उनको इतना अवकाश ही नहीं कि वह इन बातों की ओर ध्यान दें। वह तो अपने निर्धन प्रवासी देशवासियों से यही कहते हैं:—

"तुम मर रहे हो तो मरो; तुमसे हमें क्या काम है ?
हम को किसी की क्या पड़ी है, नाम है, धन धाम है।
तुम कौन हो जिनके लिये, हमको यहाँ अवकाश हो।
सुख भोगते हैं हम, हमें क्या जो किसी का नाश हो!"

जिनके पूर्वजों ने प्राचीन कालमें बड़े बड़े उपनिवेश (उदाहरणार्थ जावा, सुमात्रा, बाली, लम्बक और कंबोडिया इत्यादि) स्थापित किये थे वह यह भी नहीं जानते कि उपनिवेशों से क्या क्या लाभ होते हैं, यह कितनी लज्जा की बात है! इस कारण यदि हम यहाँ दो चार बातें उपनिवेशों के लाभोंके विषय में लिखें तो यह अप्रासङ्गिक न होगा।

जब किसी देशमें मनुष्यों की संख्या बढ़ जाती है और उनके लिये काम नहीं मिलता, तो परिणाम यह होता है कि बहुत से आदमी भूखों मरने लगते हैं; अगर व्यापार वगैरा करके वे अपनी गुज़र कर भी लेते हैं तो फिर आगे की बाढ़ से उन्हें उसी कष्ट का सामना करना पड़ता है। संसार के अनेक देशों की यही दशा हुई है। आधुनिक समय में सबसे प्रथम इङ्गलेण्ड को यह ज़रूरत दीख पड़ी कि हमारे यहाँ जनसंख्या तो बढ़ती जाती है और जगह उनके रहनेके लिये कम होती जाती है। उन दिनों के धार्मिक झगड़ोंसे भी कितने ही लोग व्याकुल हो गये थे, इसलिये कितने ही आदमी नवाविष्कृत अमेरीका में जा बसे। इसी प्रकार कनेडा, और आस्ट्रेलिया की भी सृष्टि हुई। अब भी इङ्गलेण्ड से कितने ही आदमी इन देशों में बसने के लिये जाया करते हैं। इसलिये पहिला लाभ, उपनिवेशों

से यह होता है कि वह मातृभूमि की बढ़ी हुई संख्याको ग्रहण करके उसके बोझ को हलका करते हैं।

दूसरा लाभ उपनिवेशों से यह होता है कि उनसे मातृभूमि को कच्चा माल मिलता है और मातृभूमि की कारीगरी के समान को खरीद कर भी वह उसे लाभ पहुँचाते हैं।

इङ्गलेण्ड का व्यापार संसार में खूब बढ़ा चढ़ा है, इसका एक कारण यह भी है कि उसके उपनिवेशों की संख्या सबसे ज्यादा है। कनाड़ा, अफ्रिका तथा आस्ट्रेलिया में अंग्रेज़ी मशीनें, इंजिन, कल-पुर्ज़ेके सामान इत्यादि की खूब बिक्री होती है।

तीसरा लाभ यह है कि मातृभूमि की रक्षा के लिये उपनिवेशों से बड़ी सहायता मिल सकती है। इस समय युद्ध में जो जन और धन की मदद कनाडा और आस्ट्रेलिया से हमारी ब्रिटिशसरकार को मिल रही है वह इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। अँग्रेज़ों के उपनिवेश सारे संसार में पाये जाते हैं। इन उपनिवेशों में बड़े बड़े बन्दरगाह हैं, जिनसे ब्रिटिश जहाज़ों को बराबर कोयला मिल सकता है, यही कारण है कि अँग्रेज़ों का बेड़ा चाहे जहाँ आनन्द से भ्रमण कर सकता है।

चौथा लाभ मातृभूमि को यह होता है कि उसकी शक्ति पहिले की अपेक्षा बहुत बढ़ जाती है। अँग्रेज़ों के उपनिवेश मुख्यतया महाराणी विक्टोरिया के ज़माने में बहुत बढ़े थे। उपनिवेशों की वजह से यह इङ्गलेण्ड जो सन् १८९४ ई में दुनिया के छटवें भाग का मालिक था, आज संसार के चतुर्थ भाग का कर्ता, धर्ता और विधाता है। उपनिवेशों से प्रवासी लोगों को भी बहुत लाभ होते हैं। इङ्गलेण्ड में एक वर्ग एकड़ में इस समय ५३० मनुष्य बसते हैं, परन्तु कनेडा में इतनी ही भूमि में केवल दो आदमी बसते हैं। अमेरीका में भूमि इतनी ज्यादा है कि औसत लगाने पर हर आदमी पीछे २८ एकड़ भूमि पड़ती है।

यद्यपि अभी वह दिन बहुत निकट नहीं है जब कि अन्य राष्ट्रों की तरह भारत वर्ष के भी उपनिवेश बन जावें, क्यों कि अभी तो हमें भारतीय राष्ट्र संगठन करके स्वराज्य प्राप्त करना है, तब कहीं इस प्रश्न को हमें हल करना पड़ेगा। ब्रिटिश साम्राज्य में भारत को स्वराज्य अवश्य-मेव मिलेगा, इस लिये आवश्यकता इस बात की है कि अभी से हम इन प्रश्नों पर विचार करें। इस समय भी औपनिवेशक भारतीयों से मातृभूमि को थोड़ा बहुत लाभ होता ही है। दक्षिण आफ्रिकावाले भारतीयों ने हमें सिखलाया है कि अपने अधिकारों की रक्षा किस प्रकार की जाती है, और उन्होंने सत्याग्रह के संग्राम में विजय प्राप्त करके सारे संसार में भारत का मुख उज्ज्वल कर दिया है। इसके सिवाय इनसे भारत को आर्थिक लाभ भी होता है। जो लोग विदेशों को जाते हैं वह प्रायः अपने कुटुम्बियों को भारत में ही छोड़ जाते हैं। वहाँ जाकर जो कुछ यह लोग कमाते हैं, उसका कुछ भाग यह अपने घरवालों को भेजते हैं। इस प्रकार बहुतसा रुपया हिन्दुस्तान को आता है। सन् १९१२ ई. में भारत वर्ष को ट्रिनीडाड, फ़िजी, ब्रिटिश गायना और सुरीनाम से जो आमदनी हुई उसका ब्यौरा यह है:—

नाम उपनिवेश	जो रुपया वहाँ से भेजा गया	लौटते वक्त जो रुपया अपने साथ लाये
ट्रिनीडाड	५४००९	१३६,०००
फ़िजी	७२८००	२०८,५००
ब्रिटिश गायना	४०८१५	१३९,८००
सुरीनाम	७०००	८०,०००
योग	१७४,६२४	५६४,३००

best lands, and the river and road frontages are mostly theirs. They are changing the face of Fiji also. Everywhere their patches of cultivation appear. This month it is standing bush we see; the next month there are shoots of maize coming up between the stumps in the clearing. One may drive from Suva to Nausori, for example twelve miles- and not see one solitary Fijian village till the very end of the journey. Indians, Indians, Indians, along every mile of the road. There seems only one prospect for Fiji-it is that of becoming an Indian colony. Whether or not this is an end to be desired opinions vary. It is, however, seemingly inevitable."

अर्थात्—"आज फ़िजी में हिन्दुस्तानी ही हिन्दुस्तानी भरते जाते हैं। कितने ही ज़िलों में तो उनकी संख्या इस समय भी फ़िजियन लोगों से ज्यादा है। हिन्दुस्तानी लोग फ़िजी के आदिम निवासी जंगलियों की अच्छी अच्छी ज़मीनें पट्टे पर लेकर या ख़रीदकर उन को पीछे हटाते चले जाते हैं। नदी और सड़कों के किनारे की भूमि प्राय: भारतवासियों के ही हाथमें है। फ़िजी की शकल को भी हिंदुस्तानी बदलते जाते हैं। जहाँ देखो तहाँ उनके ही खेत दीख पड़ते हैं। इस महीने में जहाँ झाड़ी ही झाड़ी दीख पड़ती है तो दूसरे महीने में वहाँ ठूंठों के बीच में मक्का के छोटे छोटे पौधे दीख पड़ेंगे। सूवा से नौसूरी तक बारह मीलके दर्मियान में फ़िजी के आदिम निवासियों का एक भी गाँव नज़र नहीं आता। मील मील भर की दूरी पर सड़कके किनारे इण्डियन ही इण्डियन नज़र आते हैं। फ़िजी का भविष्य एक यही दीखता है कि फ़िजी भारतवासियों का उपनिवेश बन जावे। यह बात वाञ्छनीय है या नहीं इस बारे में लोगों की सम्मतियाँ भिन्न भिन्न हैं; लेकिन अभी तो यही दृष्टि आता है कि फ़िजी का भारतीय उपनिवेश बनना अनिवार्य है।"

फ़िजी को भारतीय उपनिवेश बनाना हमारे
हम भारतवासी अपने देश से अच्छे अच्छे उपदेश
निःस्वार्थ वकील फ़िजी को भेजें, तो फ़िजी का भवि
हो सकता है। मि. ऐण्ड्रूज़ ने फ़िजी से लौटते वक्त
जहाज़ से जो पत्र म. मुंशीरामजी को लिखा था, उ
यहाँ उद्धृत किया जाता है:—

"अवश्य ऐसी खराब है कि धार्मिक गिरावट के विष
करना कठिन है, परन्तु फ़िजी के सब द्वीपों को मिलाकर
कालोनी (उपनिवेश) बना लेना वैसा सुगम है, जैसे पहि
जावा और सुमात्रा नामी द्वीप थे। परन्तु वर्तमान अवस्था
नहीं!! सारी हिन्दू प्रजा अहिन्दू हो रही है। इसमें हिन्दूप
ी चिन्ह नहीं रहे। उत्तम हिन्दू गुण सब उड़ चुके हैं औ
पान लेने के लिये कुछ नहीं है।"

सच्चे धर्मप्रचारकों के बिना इस बोझ को कोई नहीं उठा
पात्मा इन प्रचारकों के हृदय में प्रवासी भाइयों के प्रति सहानुभ
फ़िजी एक भारतीय उपनिवेश बन जावे, यही हमारी प्रार्थन

अब दूसरे कर्तव्य को लीजिये। 'भारतवर्ष से योग्य पुरुष
निवेशों को जावें, जिससे वहाँ के निवासियों की राजनैतिक, आ
और सामाजिक दशा सुधार जावे।'

यदि अच्छे अच्छे सौदागर, वकील, डाक्टर और अध्यापक उपनिवे
में पहुँच जावेंगे तो एक लाभ तो यह होगा कि औपनिवेशिक यूरोपि
यनों की निगाह में प्रवासी भारतीयों का दर्जा उच्चतर हो जावेगा।
लेकिन जो लोग विदेशों को जावें

भूल जावें। हिन्दुस्तानी पुस्तकविक्रेताओं को चाहिये कि वह अपनी एजेंसी उपनिवेशों में खोलें, जिससे कि प्रवासी भारतीय हिंदुस्तानी अखबार और मासिकपत्र तथा उपयोगी पुस्तकें आसानी के साथ खरीद सकें। कितने ही उपनिवेशों में देशी भाषा की पुस्तकें बिल्कुल नहीं मिलतीं; उदाहरणार्थ फ़िजी, जमैका और ट्रिनीडाड में यदि कोई तुलसीकृत रामायण खरीदना चाहे तो उसे हिन्दुस्तान से मँगानी पड़ेगी। हमारी इस बेपरवाही का जैसा बुरा नतीजा होता है, उसका सहज ही में अनुमान हो सकता है। धार्मिक तथा सामाजिक प्रभावों से तो प्रवासी हिन्दुस्तानी प्राय: वञ्चित रहते ही हैं; जातीय साहित्य से भी अपरिचित होने के कारण उनके हृदय में से, स्वदेशभक्ति, जात्यभिमान और राष्ट्रीयता बिल्कुल जाती रहती है।

जो धर्मप्रचारक विदेशों को जावें वह स्वार्थी और धनलोलुप न होने चाहिये। जिन महाशयों के जीवन का मूलमंत्र "टका धर्म, टका कर्म" ही है, उनसे हम हाथ जोड़कर निवेदन करते हैं कि 'कृपानिधान! आप अपने चरणारविन्दों से उपनिवेशों को पवित्र न कीजिये।' इस प्रकार के महानुभाव बिचारे प्रवासी भारतीयों को ठगते तो खूब हैं, लेकिन उनकी उन्नति के लिये बिल्कुल प्रयत्न नहीं करते। श्रीयुत लाला लाजपतराय जी अपनी पुस्तक United States of America में लिखते हैं कि—

अमेरीका के सिक्ख और हिन्दू मजदूरों को धार्मिक और राजनैतिक नेताओं ने खूब ठगा है, लेकिन उन नेताओं ने इन मजदूरों की मानसिक और सामाजिक उन्नति करने के लिये कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। अहा! क्या ही उत्तम बात हो यदि कुछ योग्य भारतवासी इन मनुष्यों की सेवा के लिये अपने जीवन अर्पण कर दें, इनकी मानसिक और सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करें और इन्हें हानिकारक बातों से बचाते हुये इनके पथप्रदर्शक बनें।

जो आदमी इन लोगों की उन्नति के लिये अपना जीवन अर्पित करेगा, उसे बड़ी बड़ी कठिनाईयों का सामना करना पड़ेगा, और वह तभी सफल हो सकेगा जब कि वह निष्काम कर्म्म करनेवाला हो, उसे अपने देश से पूर्ण प्रीति हो और साथ ही साथ वह अपना समय इस कार्य्यके लिये स्वतंत्रतापूर्वक दे सके तथा इन बातों के अतिरिक्त बाहिर से वह इस कार्य्य के लिये रुपया भी इकट्ठा कर सके। जो लोग इनसे चन्दा देने के लिये कहते हैं, उनपर यह अत्यन्त सन्देह की दृष्टिसे देखते हैं। इन लोगों को इतनी बार धोखा दिया गया है और छलकपट के साथ ठगा गया है, कि अब इन लोगों से कोई देशभक्ति, परोपकार या धर्म के नाम पर कुछ भी माँगे तो यह इसका घोर विरोध करते हैं। इतना होनेपर भी अमेरीका में भारत-सम्बन्धी धार्मिक और राजनैतिक आन्दोलन इन्हीं की दी हुई सहायता के सहारे चलते हैं।"

जो बात लाला लाजपतराय जीने अमरीका के बारे में लिखी है वह अन्य स्थानों के विषय में भी ठीक जँचती है।

भारतवर्ष में जो आन्दोलन होते हैं, उनसे प्रवासी भाईयों का भी सम्बन्ध रहना चाहिये। इस बात के लिये प्रयत्न होना चाहिये कि प्रवासी भारतीय अपने प्रतिनिधि काँग्रेस में भेजा करें। यह प्रतिनिधि काँग्रेस के सामने अपने कष्ट निवेदन किया करें। यह तभी हो सकता है, जब काँग्रेस भी अपना कर्तव्य पालन करे। तीनसौ पैंसठ दिनों में चार पाँच दिन धूमधड़ाका करके और बड़े बड़े प्रस्ताव करके फिर बाकी ३६० दिन हाथ पर हाथ धरे बैठे रहने से काम नहीं चल सकता। क्या कभी काँग्रेस ने अपना एक भी प्रतिनिधि प्रवासी भारतीयों की हालत देखने के लिये उपनिवेशों में भेजा है? इधर कुछ थोड़े दिनों से काँग्रेस ने जनसाधारण के हितकी बातों पर विचार

करना आरम्भ किया है। सात वर्ष पहिले कॉंग्रेस ने कभी कुली प्रथा के विरुद्ध कोई प्रस्ताव पास नहीं किया था। यद्यपि उसका बंगाल और बम्बई से विशेष सम्बन्ध नहीं था, तथापि अवशिष्ट भारत इससे कष्ट पा रहा था। इसके बाद तिर्हुत के निलहे गोरों और प्रजा के सम्बन्ध की बात लीजिये। सरकार पचास साठ वर्ष से यह सम्बन्ध ठीक करना चाहती है, यह बात मि. मोर्शेण्ड की उस चिट्ठी से स्पष्ट है, जो उन्होंने चम्पारन के मजिस्ट्रेट को लिखी थी, पर आजतक कोई सन्तोषजनक निपटारा नहीं हुआ। हम पूँछते हैं कि अबतक कॉंग्रेस ने इस प्रश्न को अपने हाथ में क्यों नहीं लिया था? पिछली कॉंग्रेस के पहिले तो इसका प्रवेश भी कॉंग्रेस में नहीं हुआ था! चाहे किसी को बुरी लगे या भली, बात असल में यह है कि अँग्रेजी पढ़े लिखे ही राजनैतिक आन्दोलन करते हैं और इनका किसानों से बहुत कम सम्बन्ध है, न यह उनके सुख में सुखी और न यह उनके दुख में दुखी होते हैं। बिचारे किसान जानते ही नहीं कि कॉंग्रेस क्या बला है और सिविलसर्विस किस चिड़िया का नाम है। लगभग ८० वर्ष से बिचारे गरीब किसान बहकाये जाकर उपनिवेशों को भेजे जाते हैं, लेकिन कॉंग्रेस ने इस प्रथा के विरुद्ध अभी थोड़े ही दिनों से प्रस्ताव पास किये थे। सन् १९१४ ई. की कॉंग्रेस में बमुश्किल तमाम दो व्याख्यान इस विषय पर हुये थे, एक तो मि. ऐफ़. जी. नटेसन का और दूसरा पं. तोताराम सनाढ्य का। ऐसी स्थिति में क्या हम आशा करें कि प्रवासी भारतीयों के उद्धारार्थ कॉंग्रेस अपने प्रतिनिधि उपनिवेशों को भेजा करेगी? आर्य्यसमाज, ब्राह्मसमाज, रामकृष्ण विवेकानन्द मिशन इत्यादि का यह कर्तव्य है कि अपने अपने प्रचारकों को उपनिवेशों में भेजें। उपनिवेशों की धार्मिक स्थिति कितनी खराब है, इसका वर्णन तो हम आगे चलकर करेंगे, लेकिन यहाँ हम इतना

अवश्य कहेंगे कि अगर यह अवसर हमने छोड़ दिया तो इसके लिये भविष्य में हमें पछताना पड़ेगा, और संसार भी हमें कर्तव्यभ्रष्ट समझ कर हमारी निन्दा करेगा।

अगर भारतवासी अपने उत्तरदायित्व को समझ कर तदनुसार प्रवासी भाईयों की सहायता करें तो निस्सन्देह प्रवासी भारतीय हमारे राष्ट्रीय संगठन में बहुत कुछ मदद दे सकते हैं। इसके सिवाय जब हम लोग अपने प्रवासी भाईयों की सहायता करेंगे तो उपनिवेशों के गोरे लोग उन पर अत्याचार भी नहीं कर सकेंगे; और जिस दिन औपनिवेशक गोरों के अत्याचार बन्द हो जावेंगे उसी दिन भारतीय प्रवास के सब प्रश्न हल हो जावेंगे और सम्पूर्ण साम्राज्य की एकता के बीच में जो बाधायें हैं उनमें से एक बड़ी भारी बाधा दूर हो जावेगी।

तीसरा कर्तव्य यह है कि उपनिवेशों को मजदूर भेजे जाने की जो प्रथा जारी होवे उसके गुण दोष सर्व साधारण को बतलावें और भारतीय प्रवास के प्रश्नों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट करें। इस कर्तव्य की ओर हमने बहुत ही कम ध्यान दिया है। पर इस समय वस्तुतः यही सबसे आवश्यक कर्तव्य है। इस समय शर्तबन्दी की कुली प्रथा तो सदा के लिये बन्द कर दी गई है, लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं है कि युद्ध के बाद किसी प्रकार की भी प्रथा नहीं जारी की जावेगी। हमारा अनुमान है कि युद्ध के बाद फेडरेटेड मलाया स्टेट्स की प्रथा का अनुकरण करके एक नवीन प्रथा बनाई जावेगी। परमात्मा ऐसा न करे! यदि ऐसा हुआ तो हम यही समझेंगे कि रसायनशास्त्र का यह सिद्धान्त कि 'हम कोई वस्तु उत्पन्न या नष्ट नहीं कर सकते, पर केवल उसका स्वरूप बदल सकते हैं।' अक्षरशः सत्य है। इस स्थान पर दो चार बातें हम 'भावी प्रथा' के

विषय में कह देना उचित समझते हैं। यह बात सच है कि मलाया स्टेट्स में एक महीने का नोटिस देकर मजदूर अपना काम छोड़ सकता है, पर जो ऐग्रीमेण्ट (गिरमिट) महीने महीने कुलियों को लिखना पड़ता है उसमें वैसे ही दण्ड नियमों का समावेश रहता है, जैसे फ़िजी में रद कर दिये गये हैं। 'इण्डियन ऐमीग्राण्ट' (मद्रास) नामक मासिक पत्र के मार्च से जून १९१६ ई. तक के अङ्कों के देखने से पता लगता है कि मलाया स्टेट्स का स्वतंत्र प्रवास (Free Emigration) केवल मृगमरीचिका मात्र है। भर्ती करने, डिपो में रखने, जहाज़ पर चढ़ाने और राह में सभी जगह कुलियों के साथ अन्याय होता है। कई महीने हुये फ़िजी के भारतवासियों ने सुवा की इण्डियन ऐमीग्रेशन कमेटी को एक प्रार्थनापत्र भेजा था। इस पत्र में उन्हों ने बतलाया था कि मलाया द्वीप की प्रथा के जारी हो जानेसे वह ही बातें फिर होने लगेंगी जो फ़िजी में पहिले थीं और मजदूरी करानेवालों को अधिकार होगा कि मजदूर को स्याली या असली हुक्म उदूली या गुस्ताखी के लिये गिरफ़्तार करा सकें। इस अधिकार का दुरुपयोग होगा और मजिस्ट्रेटों को इन अपराधों के लिये दण्ड देने का जो अधिकार होगा, उसका भी दुरुपयोग होगा। देश के नेताओं से हमारा निवेदन है कि वह 'नवीन प्रथा' के विषय में पूरा पूरा हाल जान लेवें और फिर लेखों, पुस्तकों और व्याख्यानों द्वारा सर्वसाधारण को उससे परिचित करा देवें। हमारा कर्तव्य है कि हम अपने मजदूरों को यह स्पष्टतया बतला देवें कि यदि तुम उपनिवेश में पहुँच कर काम न करोगे अथवा कम काम करोगे या अन्य कोई साधारण अपराध करोगे तो तुम्हें वहाँ पर शारीरिक अथवा आर्थिक दण्ड दिया जावेगा। साथ ही साथ उन्हें यह भी बतला देना चाहिये कि उपनिवेशों में आटा, दाल, चाँवल

स भारतवासियों के कार्य्यों का हमारे राष्ट्रीय जीवन पर बड़ा भाव पड़ता है, और यह लोग भारतीयराष्ट्र निर्माण में बड़े सहायक हो सकते हैं। हमें अपने उत्तरदायित्व को समझ कर मिल जुल कर सा प्रयत्न करना चाहिये कि जिससे प्रवासी भारतीयों के मार्ग की आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक कठिनाईयां दूर हो जावें। हमें अपने देश के मजदूर उन्हीं जगहों को भेजने चाहिये, जहाँ का जलवायु उनके लिये उपयुक्त है और जहाँ वह अच्छी तरह कमा खा सकें। हमें उचित है कि हम प्रवासी भारतीयों के विषय में जितनी बातें जान सकें, जानने का प्रयत्न करें।

विभिन्न भारतीय प्रवास के प्रश्नों पर विचार करना और अपने इन विचारों को पबलिक के सामने रखना यह भी एक आवश्यक कर्त्तव्य है।

चौथा कर्त्तव्य यह है कि 'प्रवासी भारतवासियों की धार्मिक स्थिति को सुधारने का प्रयत्न करें।'

इस कर्त्तव्य के विषयमें कुछ भी लिखने के पहिले हम यह कह देना चाहते हैं कि हम हिन्दू हैं, इसलिये हम हिन्दू धर्म के ही प्रचार के विषय में लिखेंगे। इसके साथ ही साथ हम यह भी कहेंगे कि हम ईसाइयों या मुसलमानों के धर्मप्रचार के विरोधी नहीं हैं; वह उपनिवेशों में भले ही अपने धर्म का प्रचार करें, लेकिन हम अपने प्रवासीय हिन्दुओं का विधर्मी होना धार्मिक और राष्ट्रीय दृष्टि से भी हानिकारक समझते हैं। हमारा विश्वास है कि धार्मिक बातों में पूर्ण मतभेद होते हुये भी राजनैतिक कार्यों में सब प्रवासी भारतवासी एक हो सकते हैं। उपनिवेशों में हिन्दू धर्म की जो स्थिति है वह अत्यन्त शोचनीय है। दक्षिण अफ्रिका में भी जहाँ के भारतवासी अन्य स्थानों के भारतवासियों की अपेक्षा अधिक जागृत हैं, हिन्दू लोगों की धार्मिक

इसी ख्याल से उन्होंने अपने धार्मिक चिन्ह को उड़ा देना ठीक समझ लिया है। कितने ही प्रवासी हिन्दू लोग इस फ़िक्र में परेशान हैं कि हम किस तरह हिन्दूधर्म के चिन्हों को तिलाञ्जलि देकर स्वच्छन्द (या स्वेच्छाचारी ?) बन जावें !

हाँ इतना धर्म रह गया है कि कभी कभी भिक्षुक लोग उपनिवेशों में पहुँच जाते हैं और वहाँ के हिन्दुओं से कहते हैं "हम ब्राह्मण हैं, इसलिये तुम सब हिन्दू लोग हमें दान दो, हम भी ठाकुर जी या शिवजी का मन्दिर मथुरा, काशी अथवा द्वारिका पुरी में बनवाना चाहते हैं या टूटे हुये मन्दिर की मरम्मत कराना चाहते हैं, इसलिये हमें दस हज़ार रुपये दिलवाइये।" यह लोग कुछ न कुछ ठेरी मारते हैं। यह लोग तो इस प्रकार कुछ पूँजी बनाकर अपने घर की राह लेते हैं, लेकिन इससे प्रवासी भाईयों को कुछ भी लाभ नहीं होता। कभी कभी तो काला अक्षर भैंस बराबर समझनेवाले मथुरा के चौबे लोग भी उपनिवेशों में पहुँच जाते हैं और दो चार हज़ार रुपये ठग कर घर को वापिस चले आते हैं।

यदि सच्चे स्वार्थत्यागी ब्राह्मण उपनिवेशों में पहुँच जावें तो फिर प्रवासी भारतवासियों के उद्धार होने में कुछ भी देर न लगे, परन्तु भिक्षुकों के पहुँचने से तो हानि ही हानि है। इन अशिक्षित ब्राह्मणों को देखकर मूर्ख [illegible] लोग वहाँ [illegible] करते हैं कि "हिन्दुओं के गुरु महाराज और अशिक्षित न होंगे तो और कौन होगा ?" यदि [illegible] और [illegible] पढ़े हुये दो चार ब्राह्मण उपनिवेशों में पहुँच जावें तो अब भी [illegible] को [illegible] और प्रवासी भारतवासियों का [illegible] हो सके।

श्रीयुत [illegible] जी एक जगह लिखते हैं "एक दिन मुलाक़ात एक महाशय से हुई और वह कुछ पण्डिताई करने लगे। आप [illegible] ने उत्तर दिया "[illegible]"। [illegible]

दृष्टि से उन्हें विधर्मी हो जाने से रोकना चाहिये, नहीं तो जो कुछ दानपुण्य उन्हें हिन्दू लोगों से मिलता है वह विधर्मी होने से जाता रहेगा। पर यह सब तो तब हो जब हमारे धार्मिक नेता पढ़े लिखे हों और वह आगाखानी मत के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त करके अपनी धार्मिक पुस्तकों से उनका मुकाबिला करें और तब उन्हें समझावें कि 'देखो भाई, यह तो हो नहीं सकता कि तुम हिन्दू भी बने रहो तथा आगाखानी भी हो जाओ। यदि तुम लोग हिन्दू नहीं बनोगे तो थोड़े दिनों में तुम्हें मुसलमान हो जाना पड़ेगा। समय तुम्हें ऐसा हो जाने के लिये बाध्य करेगा। इसलिये आओ हमारे साथ निर्णय कर लो और अगर अपना हिन्दू धर्म ठीक जँच जावे तो दुरङ्गी चाल छोड़ कर पूरे हिन्दू बन जावो।'

हम अपनी ओर से इस पर आलोचना करने की आवश्यकता नहीं समझते। इसे हम विचारवान् हिन्दू जनता के सामने रखते हैं और उससे पूँछते हैं 'क्या यह स्थिति वांछनीय है? यदि नहीं तो फिर इस दुर्दशा को दूर करने का आप ने क्या उपाय सोचा है?'

अब फ़िजी की हालत देखिये। यहाँ की धार्मिक स्थिति अत्यन्त खराब है। मिस्टर सी. ऐफ. ऐण्ड्रूज़ अपनी रिपोर्ट के द्वितीय भाग के पाँचवें पृष्ठ पर लिखते हैं:—

"There is a worse cruelty, however ignorant and unconscious, than the destruction of the body of a people. There is a cruelty of neglect and indifference which kills, not the body, but the soul. The danger among Hindus in Fiji is this,—they are losing the soul of their religion, and, with the overthrow of religion, morals are going shipwreck also. I have seen and heard of things done here by decent Hindus that I could hardly have believed credible when I left India, things that have eaten into the heart of the people. I am

वह अपना काम शुरू करता है और शनैः शनैः कटाक्ष करने लगता है कि हिन्दू धर्म में कुछ सुधार करने की आवश्यकता है, और मैं बतला सकता हूं कि कौन कौन से सुधार उसमें होने चाहिये। आखिरकार एक न एक हिन्दू चुंगलमें फँस जाता है; वह मुसलमान उसे अपने घर ले जाता है और उसके साथ अपनी लड़की की शादी कर देता है। यह हिन्दू कभी फिर अपने पुराने हिन्दू धर्म को वापिस नहीं जाता। जब उस हिन्दू के सम्बन्धी उसे तङ्ग करते हैं तो वह मुसलमान उसे साहस दिलाता है और कहता है कि "दृढ़ बने रहो, देखो जब हज़रत मुहम्मद साहब और अबू बकर को उनके दुश्मनों ने घेरा था, और वह गुफ़ा में जा छुपे थे तब हज़रत मुहम्मद साहब ने कहा था "भाई अबू बकर तुम डरते क्यों हो, अभी हम दो हैं लेकिन खुदा की महरबानी से हम तीन हो जावेंगे।"

जो लोग विदेशोंमें हिन्दू धर्म प्रचारक भेजने के विरोधी हैं, उन महात्माओं से हम पूछते हैं कि क्या आप हिन्दुओं का इस प्रकारसे विधर्मी हो जाना ठीक समझते हैं? यदि नहीं तो फिर आप ने अपनी जातिवालों की रक्षा का क्या उपाय सोचा है?

उपनिवेशों में कितने ही ईसाई मिशनरी भी पहुँच गये हैं, और उन्हों ने कितने ही हिन्दुओं को ईसाई बना लिया है। ईसाई लोग इस बात पर विचार करने लगे हैं कि भविष्य में उपनिवेशों के निवासी भारतवासी मुख्यतया किस धर्म के अनुयायी होंगे। कितने खेद की बात है कि हम लोग तो अपने भारतीय भाई बहिनों के भविष्य का कुछ भी विचार नहीं करते, और ईसाई लोग अभी से इस बात के लिये सिर-तोड़ परिश्रम कर रहे हैं कि किसी तरह साम दाम दण्ड भेद से भारतवासी क्रीष्ट धर्मानुयायी बन जावें। मिस्टर जे. डबल्यू ने अपनी पुस्तक Fiji of To-day के २५६ वें पृष्ठ में लिखा है:

एक उल्लेखयोग्य बात यह है कि मिशनरी सुसाइटी इस प्रश्न की आवश्यकता को समझ कर जागृत होगई हैं, यद्यपि इस ओर अभी पूर्णतया ध्यान नहीं दिया गया। नौ वर्ष हुये जब कि फ़िजीप्रवासी भारतवासियों में ईसाई धर्म का प्रचार करनेवाला एक भी मिशनरी नहीं था, यद्यपि भारतवासियों को फ़िजी में आये हुये ३० वर्ष हो गये थे। निस्सन्देह यह बात ईसाई धर्म के प्रचारकों के लिये अत्यन्त लज्जास्पद है। लेकिन आज फ़िजी में ६ प्रोटेस्टेण्ट मिशनरी पुरुष और ५ मिशनरी स्त्रियाँ हिन्दुस्तानियों को ईसाई बनाने के काम में लगी हुई हैं। रोमन कैथोलिक मिशनरियों ने भी इस विषय में कुछ प्रयत्न किया है। मिशन स्कूल खोले जा रहे हैं, जिनमें कि हिन्दुस्तानी बालकों को अँग्रेज़ी और हिन्दी उर्दू की शिक्षा दी जाती है। एक अनाथालय खोला गया है, जिसमें कि हिंदुस्तानी भर्ती किये जाते हैं। मिशनरी लोगों का प्रभाव बढ़ता तथा दृढ़ होता जाता है, और अब हिंदुस्तानी लोग समझने लगे हैं कि मिशनरी लोग जो कुछ करते हैं, हमारी भलाई के ही लिये करते हैं।"

यद्यपि इस समय ईसाइयों को फ़िजी में अपना धर्म फैलाने में पूर्ण सफलता नहीं प्राप्त हुई है, तथापि वह निरंतर उसी उद्योग में लगे हुये हैं और यदि हम लोग जागृत नहीं हुये तो वह दिन दूर नहीं जब कि प्रवासी हिन्दू लोग अपने धर्म को छोड़कर ईसाई बन जावेंगे। इस समय ईसाइयों के मार्ग में कितनी ही बाधायें हैं; स्वयं बड़े बड़े मिशनरी इस बातको स्वीकार करते हैं कि हिन्दू लोगों को ईसाई बना लेना अत्यन्त कठिन है, लेकिन यह बाधायें ऐसी नहीं हैं, जो अनवरत अध्यवसाय और निरंतर परिश्रम से दूर न हो सकें।

इस विषय में बर्टन साहब ने जो कुछ लिखा है, वह प्रवासी भारतीयों के प्रत्येक शुभचिन्तक को पढ़ना चाहिये। बर्टन साहब अपनी पुस्तक के ३३४ वें पृष्ठ में लिखते हैं:—

"*लेकिन ईसाई लोगों के लिये यह काम अत्यन्त कठिन है कि* वह भारतवासियों को ईसाई बना लें। यह भारतवासी कोई सीधे सादे आदमी नहीं हैं जो झट ईसाई हो जावें। यह दुनियाँ की एक सब से अधिक सूक्ष्मदर्शी और तीव्र बुद्धि जाति के हैं। यह लोग फ़िजियन लोगों की तरह, जिनके पुरखे, थोड़े दिन हुये, नरमांस भक्षण करते थे, नहीं हैं। यह लोग उस समय में पूर्णतया सभ्य होने का अभिमान कर सकते थे, जब हम लोगों के पूर्वज भेड़ियों की खाल पहिने हुये और अपने शरीर को चित्रित किये हुये जंगलों में घूमते थे। भारतवासियों का इतिहास धर्मसम्बन्धी घटनाओं से भरा पड़ा है। सम्भवतः इस समय भी भारतवासी दुनियाँ भर में सबसे अधिक धार्मिक हैं। इन *लोगों के हृदय में अदृश्य और अध्यात्म के लिये अद्भुत भी शक्ति है। यह लोग* बराबर ध्यानमग्न रहे हैं और इन लोगों ने पृथ्वी पर ही स्वर्ग है और सब स्थानों में परमात्मा व्यापी है इस बात का अनुभव किया है। यह लोग सदा से गूढ़ बातों को सोचते रहे हैं। इन्हीं के यहाँ गौतम बुद्ध और गौतम बुद्ध के बराबर के दस बारह ऋषि उत्पन्न हुए थे। इन लोगों ने ऐसे ऐसे मन्दिर बनवाये, जिनकी शान के मन्दिर दुनियाँ में और कहीं नहीं पाये जाते। इनका साहित्य इतना उत्तम और विस्तीर्ण है कि उसके अध्ययन में कितने ही सर्वोत्तम यूरोपियन विद्वानों के जीवन व्यतीत हो गये हैं। हम लोग भले ही अपने शेक्सपियर, शैली और ब्राउनिङ्ग का अभिमान करते रहें, लेकिन जबतक वेद, रामायण, महाभारत और श्रीभगवद्गीता विद्यमान हैं, तब तक हिन्दुस्तान को अपना माथा

नीना करने की आवश्यकता नहीं है। यह लोग धर्म के लिये यूरोपियनों की शरण में नहीं आ सकते। अपने मार्ग में कितनी ही बाधाओं के होते हुये भी, इन्होंने अंग्रेज़ों के मुकाबिले में जो बुद्धिमत्ता दिखलाई है, उसे देखकर आश्चर्य होता है .... फ़िजीयन लोगों ने तो जो कुछ अँग्रेज़ों ने कहा उस पर विश्वास कर लिया और झट ईसाई हो गये, क्यों कि अँग्रेज़ लोग उनसे अधिक तीक्ष्ण बुद्धि जाति के हैं, लेकिन भारतवासी इस तरह कभी मान सकते, वह गौरवर्ण लोगों की प्रत्येक बात पर प्रश्न करते हैं। भारतवासी कहते हैं कि "यह अँग्रेज लोग जो कल जंगलियों की तरह घूमते थे, जो कि मृत गाय या सुअर का माँस खाते हैं, यह लोग जो बड़ी बेहूदा तरह से भद्दी हँसी हँसते हैं, जिनके आचरण अशिष्ट हैं और जिनकी स्त्रियाँ वक्र स्वभाव-वाली हैं, यह लोग जिनका कि लालन पालन चन्दरोज़ के नवीन धर्म की गोद में हुआ है, यह भला हमें भारतवासियों को, जो कि अत्यन्त प्राचीन जाति के हैं, और जिनके यहाँ तत्त्वविद्या के सैंकड़ों सिद्धान्त निकाले गये थे, क्या धर्म पढावेंगे।"

इसके आगे चलकर बर्टन साहब ने फिर २३७ वें पृष्ठ पर लिखा है:— "भारतवासी बिना ईसाई धर्म के ही बिल्कुल सन्तुष्ट हैं, बाइबिल उनके लिये क़िस्सा कहानी मात्र है, और उसे वह उसी दृष्टिसे देखते हैं जिस दृष्टि से कि वह किसी हिन्दू धर्म की कल्पित कथाओं को देखते हैं। जिन लोगों का भारतवासियों से घनिष्ट सम्बन्ध नहीं रहा वह इस बात को कदापि नहीं जान सकते कि भारतवासियों पर धार्मिक प्रभाव डालना कितना कठिन है, और जिन लोगों का धार्मिक सम्बन्ध रहा भी है, उनमें से भी केवल थोड़े से ही इस बातको समझते हैं।"

कि वह फिर २३९ वें पृष्ठ पर बर्टन साहब लिखते हैं:—

" भारतवासियों को ईसाई बनाने में जो दूसरी कठिनाई पड़ती है वह यह है कि वह हर बात में सन्देह करनेवाले होते हैं। वह दूसरों के भावों और उद्देश्यों पर सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। वह कहते हैं कि मिशनरी लोग धर्मप्रचार करने की नोकरी करते हैं और इसी की तनख्वाह पाते हैं; जिस तरह कोई शक्कर तयार करने की, कोई घर बनाने की और कोई रोटी बनाने की नोकरी करता है, उसी तरह ईसाई पादरी दूसरोंको ईसाई बनाने की नोकरी करते हैं; बस यही भेद है। वह लोग दूसरे आदमियों के आचरण के दोष अथवा उनकी भाषा के दोष निकालने में बड़े चतुर होते हैं। हिन्दुस्तानी लड़के भी बड़े सन्देह करनेवाले होते हैं । एक मिस साहबा इतवार के दिन हिन्दुस्तानी लड़कों को ईसाई धर्म्म की शिक्षा दे रही थीं । क्लास में एक तस्वीर टँगी हुई थी । जिसमें कि इब्राहीम अपने लड़के को परमेश्वर के सामने बलिदान करता हुआ दिखलाया गया था । वह ईसाई मिस लड़कों को यह कथा समझा रही थीं कि बीच में छेदी नामक एक लड़का बोला ' मिस साहबा, पादरी साहब तो कहते हैं कि ईश्वर भला है, तो फिर ईश्वर ने इब्राहीम को अपना लड़का बलिदान करने के लिये जो आज्ञा दी यह बात तो कोई भलाई की नहीं है । ' मिस साहबा बोलीं ' हाँ छेदी ईश्वर भला है, लेकिन बात यह है कि उसने इब्राहीम के विश्वास की जाँच करने के लिये ऐसी आज्ञा दी थी ।' छेदी बोला ' लेकिन आप तो कहती थीं कि ईश्वर सब बातों को जानता है, और हम सब के दिल के विचारों को जान सकता है, इसलिये वह बिना आज्ञा दिये ही यह जान सकता था कि इब्राहीम का विश्वास कैसा है, तो फिर उसे आज्ञा देने की क्या जरूरत पड़ी थी ? मैं इस बात पर विश्वास नहीं करता । "

इन उदाहरणों से यह स्पष्टतया प्रगट होता है कि ईसाई लोग

अपने मार्ग की कठिनाईयों को स्पष्टतया अनुभव कर रहे हैं, और उनको दूर करने के लिये तन-मन-धन से प्रयत्न कर रहे हैं। लेकिन दूसरी ओर भारतवासियों के धर्मगुरु क्या कर रहे हैं इसका भी एक दृष्टान्त सुन लीजिये। बर्टन साहब अपनी पुस्तक के ३६० वें पृष्ठ पर लिखते हैं:—

"एक भारतवासी की छाती पर बड़ा भारी भयानक घाव होगया था। वह एक मिशनरी के पास गया और बोला 'साहब मुझ पर महरबानी कीजिये और कुछ दवाई दीजिये'। चमड़ा बिल्कुल जल गया था। और घाव अत्यन्त भयंकर बन गया था। साहब ने कहा 'ओः फो क्या हुआ ! तुम भी कैसी आफत में पड़ गये हो ! कहो तो सही यह घाव कैसे हो गया ?'

भारतवासी बोला 'साहब मुझ पर कृपा कीजिये, हँसिये नहीं; अँग्रेज़ लोग हम भारतवासियों को बिल्कुल मूर्खसमझते हैं।'

साहब 'हाँ, यह तो मैं सब जानता हूँ, लेकिन बताओ तो सही यह घाव कैसे हुआ ?'

भारतवासी बोला साहब मैं सच कहता हूँ। मुझे अपनी मुक्ति की चिन्ता थी, इस वास्ते मैं अपने गुरु के पास गया, और मैंने उनसे कहा 'गुरू जी बतलाइये मैं क्या करूं, जिससे मैं मुक्ति पाने के योग्य बनूँ'। गुरू जी ने धर्मग्रन्थों में देखकर मुझे मुक्ति पाने का एक उपाय बतलाया। गुरू जी ने कहा 'आम के पेड़ की तीन छोटी छोटी लकड़ियाँ लो। पहिले लकड़ियों को त्रिभुज की शक्ल में छाती पर रक्खो, और उनके बीच में आम की सूखी पत्तियाँ रक्खो। इसमें आग लगा दो। जब तक कि आग सब धधकने न लगे तब तक पड़े पड़े राम का नाम जपते रहो'। साहब मैंने गुरु जी की आज्ञानुसार यही काम किया। इसी कारण यह घाव हो गया, [illegible]

घाव से मेरे दर्द होता है, लेकिन मेरी आत्मा आनन्द में है। साहब-मुझे कोई दवाई दीजिये जिस से यह घाव अच्छा हो, परमात्मा आपका भला करेगा।'

इस की आलोचना करते हुये बर्टन साहब लिखते हैं "वास्तव में इस भारतवासी का यह कार्य्य मूर्खतायुक्त और अन्धविश्वासपूर्ण है, मैं इस बात को मानता हूँ। लेकिन इस भारतवासी की आत्मिक शक्ति पर तो ध्यान दीजिये। जो आदमी एक तुच्छ आदर्श के लिये इस प्रकार कष्ट सहन कर सकता है, वह एक उच्च आदर्श के लिये इससे अधिक कष्ट सहना स्वीकार न करेगा?" बर्टन साहब ने एक जगह और भी लिखा है "भारतवासी सैंकड़ों वर्षों से संन्यास के लिये अभ्यस्त हैं और वह इसी कारण धर्म के लिये भोगविलास और सुख छोड़ने के लिये अधिक उद्यत हैं। आज भी हज़ारों भारतवासी आध्यात्मिक आदर्शों के लिये जंगलों और गुफाओं में पड़े पड़े कष्ट उठा रहे हैं। उनकी अध्यात्मविद्या और तत्त्वविद्या को हम भले ही झूठी और अवास्तविक समझें और उनके उद्देश्य हमें भले ही मूर्खतापूर्ण प्रतीत हों, पर यह बात तो माननी पड़ेगी कि उन में spirit स्प्रिट तो है।"

इस अवतरण से यही बात स्पष्टतया प्रगट होती है कि ईसाई लोगों के हृदय में यह बड़ी भारी अभिलाषा है कि किसी प्रकार प्रवासी भारतीय ईसाई बन जावें तो बड़ी अच्छी बात हो, क्योंकि वह लोग धर्म के वास्ते पूर्ण स्वार्थत्याग कर सकते हैं; इसलिये यदि वह ईसाई हो जावेंगे तो फिर ईसाई धर्म प्रचार की धुन उन्हें तन-मन-धन से लग जावेगी।

मोरीशस में कितने ही भारतवासी रोमन केथेलिक मिशनरियों के प्रयत्न से ईसाई हो गये हैं। जो भारतवासी मोरीशस में जन्मे हैं वह

इन्डो मोरीशियंस कहलाते हैं। ११६१७ (ग्यारह हज़ार छसौ सत्रह) इंडो मोरीशियंस ने ईसाई धर्म स्वीकृत कर लिया है। ९० फ़ीसदी इण्डो मोरीशियंस किरोल भाषा को, जो एक बिगड़ी हुई फ़्रेंच ज़बान है, बोलते हैं। यही अब इनकी मातृभाषा है। यह लोग हिन्दी को बिल्कुल भूल गये हैं। इन लोगों की स्थिति का वर्णन श्रीयुत महानन्दजी पुरी ने, जो स्वयं मोरीशस में कुछ दिन निवास कर चुके हैं, जुलाई सन् १९१२ ई. की 'मर्यादा' में इस प्रकार किया है:—

"इन लोगों के लिये हिन्दी वैसी ही कठिन और अपरिचित है जैसे हम लोगों के लिये अँग्रेज़ी इत्यादि। हा! इससे भी बढ़ कर शोक का विषय क्या हो सकता है कि आज यह मिर्च के देश में आनेवाले हिन्दू अपनी मातृभाषा हिन्दी कोही भूल गये! जिस हिन्दी को हम भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं। उसे उसके केन्द्र स्थान काशी प्रयाग आदि के निवासी यहाँ आकर भूल गये। क्या यह महाशोक की बात नहीं है?.........वह हिन्दू जो यहाँ जन्मे हैं इस टापू को अपना स्वदेश और भारत को विदेश मानते हैं। उनमें जो थोड़े बहुत लिख पढ़ गये हैं वह प्रायः यह कहा करते हैं कि 'यह विदेशी (भारतवासी) लोग आ आकर हमारे स्वदेश मोरीशस को हानि पहुँचा रहे हैं। व्यापार आदिद्वारा यहाँ का धन वह खींचे लिये जा रहे हैं। इत्यादि' इन कृतघ्नों को इतनी समझ नहीं है कि अगर एक मास भी भारत से स्टीमर नाज लादकर यहाँ न लावे तो वह सारे हि[illegible] छट पटा कर मर जावें। क्या यह लोग केवल शक्कर चीनी फाँक क[illegible] जी सकते हैं? हा! जिस भारत से इनके पूर्वजों ने आकर यहाँ इ[illegible] लोगों को जन्म दिया उसके और अहसानों को यदि वह न भी मान[illegible] तो कम से कम उन उपकारों को तो मानना चाहिये था, जो आ[illegible] दिन भी उस देश द्वारा हो रहा है। जो भारतवर्ष मोरीशस को धान

नहीं वरन् चावल, गेहूँही नहीं वरन् मैदासूजी, अरहर, उर्द मूँग के दानेही नहीं बल्कि दली दलाई दाल तथा घी, तेल, मसाला इत्यादि सभी वस्तुयें भेजकर वहाँ के निवासियों की जीवन रक्षा कर रहा है, उसी भारत वर्ष को विदेश कहना क्या हमारे घावपर निमक छिड़कना नहीं है ! यहाँ के हिन्दुओं में हिन्दुस्तान का प्रेम, हिन्दू जात्यभिमान, भारत से आनेवालों के साथ सहानुभूति करने का विचार तथा भारतदेश को किसी भी प्रकार की सहायता करने का ख़याल इत्यादि नाममात्र को भी नहीं पाया जाता।"

मोरीशस में हिन्दु धर्म का लोप हो रहा है। स्वामी स्वतंत्रानन्द ने –जिन्हे वहाँ का बहुत कुछ अनुभव है–अपने एक व्याख्यान में कहा था:–

"मोरीशस में जब कोई लड़का विवाह करना चाहता है और पुरोहित के पास जाता है तो पुरोहित जी पहिले इस बात का निश्चय करते हैं कि उस लड़के के बाप का भी ठीक रीति से विवाह हुआ था या नहीं। अगर इस बात का सन्तोषजनक निश्चय नहीं हुआ तो वह पुरोहित उस लड़के के मृत पिता का विवाह पहिले करता है, और तत्पश्चात् उस लड़के का विवाह कराता है। मृत पिता का विवाह कैसे हो इस कठिन प्रश्न को पुरोहित जी बड़ी आसानी के साथ हल कर लेते हैं। वह उस मृत मनुष्य का विवाह केले के वृक्ष या कुंद के साथ कर देते हैं। विवाह का बन्धन बहुत ही ढीला पड़ गया है और विवाह संस्कार की पवित्रता अधिकांश में नष्ट हो गई है।"*

इन सब बातों के जानते हुये भी यदि हमने अपने प्रवासी हिन्दू भाइयों के उद्धारार्थ धर्मप्रचारक न भेजे तो अवश्यमेव हम कर्तव्य भ्रष्ट समझे जाने चाहिये। इन धर्मप्रचारकों को वहाँ पहुँचकर कितने ही

* देखिये 'वैदिक मैगज़ीन' फरवरी सन् १९१७ ई. का अङ्क।

सामाजिक प्रश्न हल करने होंगे इसलिये अगड़म बगड़म पंडितों और बकीझकी महाशयों के भेजने से काम नहीं चलेगा। प्रवासी भारतियों की सामाजिक अवस्था इतनी पतित हो गई है कि उसको ठीक ढङ्ग पर लाना सहज नहीं है। श्रीयुत मंगलानन्द जी पुरी एक जगह लिखते हैं:—

" क्या ट्रान्सवाल और क्या आफ्रिका के दूसरे प्रान्त सभी जगह का हाल हम देखते हैं कि अधिकांश भारतवासी देश से तो अकेले ही आते हैं और यहाँपर बहुधा काफिर यानी अफ्रिका की जंगली जातियों की स्त्रियों से सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। इनमें जो क्वाँरे आते हों और वह ऐसा करें तो विशेष हर्ज नहीं, पर शोक के साथ कहना पड़ता है कि सैंकड़ों दुष्ट ऐसे हैं, जिनकी धर्मपत्नी देशमें बैठी हुई इनके नाम की माला जपा करती हैं और यह महाशय विदेश में दस दस पन्द्रह पन्द्रह वर्ष तक गुलछर्रे उड़ाते रहते हैं। यह कैसा भारी अनर्थ है! इन पापियों ने जहाँ अपनी विवाहिता स्त्रियों को आठ आठ आँसू रुलाते हुये भारत का भार बढ़ाया है, वहाँ उससे भी भारी अनर्थ इनका यह है कि जो सन्तान वह यहाँ की अफ्रिकन लेड़ी से पैदा करते हैं, उनकी दशा और भी खराब करते जाते हैं। जो मुसलमान यहाँ की जंगली स्त्रियों को बैठा लेते हैं, वह अपनी सन्तानों को मुसलमान बना कर साथ हिन्दुस्तान को भी ले जा सकते हैं और अफ्रिका में भी जाति के साथ रख सकते हैं, पर हिन्दुओं की कमबख्ती है, वह उन सन्तानों का क्या करें? अगर साथ देश को ले जावें उसके कारण स्वयं भी जाति पाँति से बाहिर निकाल दिये जावें, अगर विदेश में ही छोड़कर चले जावें तो वह जंगली हो जावें, वे . . यह करते हैं कि सन्तानें पैदा करके, खिलापिला कर, पाल स कर मुसलमानों के हवाले कर देते हैं।"

हिंदू पुरुष और जंगली काफ़िर स्त्री के संयोगसे उत्पन्न हुई वर्ण-

संकर सन्तान के साथ, हिन्दूसमाज का बर्ताव कैसा होना चाहिये, यह बात हिन्दूधर्म सुधारक ही कह सकते हैं; यदि हम इस विषयमें कुछ लिखें तो यह हमारी अनधिकार चेष्टा होगी। जो कुछ हम कहना चाहते हैं, वह यह है कि यह सन्तान यदि हिन्दूसमाज के लिये शक्तिका कारण न हो, तो कमसे कम निर्बलता का कारण तो न होनी चाहिये। पेश्तर इसके कि हम इस अध्यायको समाप्त करें, हम प्रवासी भारतीयों की सामाजिक दुर्दशा पर दो चार बातें और लिखना चाहते हैं। ट्रिनीडाड़, जमैका, सुरीनाम, ब्रिटिश गायना और फिजी इत्यादि में जहाँ भारतीय मज़दूर रहते हैं, हिन्दुओं की सामाजिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय है। हम यहाँ पर फिजी के ही विषयमें दो चार बातें लिखेंगे। यद्यपि अन्य उपनिवेशों की भी सामाजिक स्थिति बहुत खराब है, लेकिन फ़िजी के विषयमें मिस्टर ऐण्डूज़ और मि. पियर्सन की रिपोर्ट ने बहुत कुछ प्रकाश डाला है इसलिये हम भी उसीका भावार्थ पाठकों के सामने पेश करते हैं। मिस्टर ऐण्डूज़ और मि. पियर्सन लिखते हैं:-

"It would be scarcely too much to say, that these marriage evils have almost obliterated the ideal of the married life from the memory of Hindus in Fiji. They spoke to us of marriage and of women in a way that would be revolting to Hindus in India. The tragedy of it all was this, that the whole Hindu fabric had gone to wreck on this one rock of marriage, and there were no leaders to bring the people back into the right paths. The best Hindus we met were in despair about it."

अर्थात्-" फ़िजी में विवाहसम्बन्धी जो बुराइयाँ फैली हुई हैं उनके कारण हिन्दू लोगों के ध्यान से वैवाहिक-जीवन के आदर्शों का लगभग पूर्णतया लोप होगया है। इस उपर्युक्त कथन में अत्युक्ति

कुछ लिखा है वह इतना उपयोगी है कि हम उसे यहाँ दिये बिना नहीं रह सकते। आप लिखते हैं:—

"Every thing that could be recognized as Hindu, has departed, and with this the religious spirit has departed also. The yearly round of the sacred festivals, which from so much of the brightness of a Hindu woman's life in India, is confined in Fiji to a couple of days, of which the greatest is no Hindu Festival at all. The impoverishment of life, which has taken place, can hardly be understood, in all its paths, except by Hindus themselves. One who had recently come out to Fiji from Madras, a man of education, wrote as follows:-"These festivities are meaningless in Fiji, with no object but to partake in sweetmeats and rowdy cries. Indian women are present with no intent to worship, but to a great degree as a spectacle to the white population, who view with an inborn hateful laugh the coolie Indians and their so-called religion. Hindu degradation could not go lower."

अर्थात्–" प्रत्येक बात—जिसमें हिन्दूपन था—चली गई है, और उसके साथ ही साथ धार्मिक भाव भी जाता रहा है। भारतवर्ष में सालभर में जो उत्सव और त्योहार होते हैं–जिनकी वजह से हिन्दू स्त्रियों के जीवन इतने पवित्र और रुचिर बन जाते हैं—उन उत्सवों और त्योहारों की जगह फिजी में दो दो दिन के दोतीन त्योहार होते हैं और इन फिजी के त्योहारों में जो सब से बड़ा हिन्दू त्योहार होता है वह तो असल में हिन्दू त्योहार है ही नहीं। फिजी के हिन्दुओं का जीवन जिस प्रकार से क्षीण और विभवहीन बन गया है, उसके हृदयद्रावी कारणों को पूर्णतया समझने में कोई हिन्दू ही समर्थ हो सकता है; अन्य धर्मावलम्बी उसे ठीक तरह से नहीं समझ सकता। एक शिक्षित हिन्दू, जो हालही में मद्रास से फिजी में आये थे, लिखते हैं:—

कुछ लिखा है वह इतना उपयोगी है कि हम उसे यहाँ दिये बिना नहीं रह सकते। आप लिखते हैं:—

"Every thing that could be recognized as Hindu, has departed, and with this the religious spirit has departed also. The yearly round of the sacred festivals, which from so much of the brightness of a Hindu woman's life in India, is confined in Fiji to a couple of days, of which the greatest is no Hindu Festival at all. The impoverishment of life, which has taken place, can hardly be understood, in all its paths, except by Hindus themselves. One who had recently come out to Fiji from Madras, a man of education, wrote as follows:—"These festivities are meaningless in Fiji, with no object but to partake in sweetmeats and rowdy cries. Indian women are present with no intent to worship, but to a great degree as a spectacle to the white population, who view with an inborn hateful laugh the coolie Indians and their so-called religion Hindu degradation could not go lower."

अर्थात्—"प्रत्येक बात—जिसमें हिन्दूपन था—चली गई है, और उसके साथ ही साथ धार्मिक भाव भी जाता रहा है। भारतवर्ष में सालभर में जो उत्सव और त्योहार होते हैं–जिनकी वजह से हिन्दू स्त्रियों के जीवन इतने पवित्र और रुचिर बन जाते हैं—उन उत्सवों और त्योहारों की जगह फ़िजी में दो दो दिन के दोतीन त्योहार होते हैं और इन फ़िजी के त्योहारों में जो सब से बड़ा हिन्दू त्योहार होता है वह तो असल में हिन्दू त्योहार है ही नहीं। फ़िजी के हिन्दुओं का जीवन जिस प्रकार से क्षीण और विभवहीन बन गया है, उसके हृदयद्रावी कारणों को पूर्णतया समझने में कोई हिन्दू ही समर्थ हो सकता है; अन्य धर्मावलम्बी उसे ठीक तरह से नहीं समझ सकता। एक शिक्षित हिन्दू, जो हालही में मद्रास से फ़िजी में आये थे, लिखते हैं:—

" फिजी के यह उत्सव निरर्थक होते हैं, और इनका उद्देश्य मिठाई खाना और असभ्यतापूर्ण ऊधम और गुलगपाड़ा मचाना होता है। हिंदुस्तानी स्त्रियाँ जो इन मेलों में आती हैं वह पूजा करने के विचार से नहीं आतीं, बल्कि अधिकतर उनका समूह गोरों के लिये एक दृश्य बन जाता है। यह गोरे लोग हिन्दुस्तानी कुलियों को और उनके नाममात्र धर्म को स्वाभाविक घृणा और उपहास की दृष्टि से देखते हैं। हिन्दुओं की अवनति की बस हद्द हो गई, इससे ज्यादा अवनति हो ही नहीं सकती। "

फिजी में वैवाहिक बन्धन कैसा शिथिल हो गया है, इस बात के जानने के लिये निम्नलिखित शर्तनामोंपर एक दृष्टि डालना ही पर्याप्त होगा। यह शर्तनामे और पत्र मि. एण्ड्रूज़ और मि. पियर्सन साहब की रिपोर्ट में से लिये गये हैं।

---

(१) त्यागका प्रतिज्ञापत्र

यह शर्तनामा जम्मू और पार्वती में जो क्रमशः पुरुष और स्त्री हैं तारीख़ १८ अप्रेल सन १९१३ ई. को किया गया।

समझ बूझकर और राज़ीके साथ निम्न लिखित शर्ते है हुई।

(अ) चूँकि आजके रोज़ पार्वती ने जम्मू को दस पौण्ड दे दिये हैं इस लिये जम्मू, अपने कुल अधिकारों को, जो वह पति की हैसियत से पार्वती पर रखता है, छोड़ता है और पार्वती को इस बात की आज्ञा देता है कि उसकी राज़ी हो जहाँ जावे और चाहे जिसके साथ रहे। जम्मू किसी न्यायालय में पार्वती के ऊपर हानि के लिये धावा.

नहीं करेगा और पार्वती के विरुद्ध कोई क़ानूनी कार्रवाई न करेगा।

(ब) पार्वती, अपने कुल-अधिकारों को, जो वह पत्नी की है-सियतसे, जम्मू पर रखती है छोड़ती है और जम्मू को इस बात की आज्ञा देती है कि उसकी राज़ी हो जहाँ जावे और चाहे जिसके साथ रहे। पार्वती किसी न्यायालय में जम्मू के ऊपर हानि के लिये दावा नहीं करेगी और जम्मू के विरुद्ध कोई क़ानूनी कार्रवाई नहीं करेगी।

जम्मूके अँगूठे का निशान	सरकारी मुहर	पार्वती के अँगूठे का निशान

इस पर टिप्पणी करते हुये मिस्टर एण्ड्रूज़ और मि. पियर्सन लिखते हैं:-
" यह शर्तनामें फ़िजी द्वीप में खूब प्रचलित हैं और यह Divorce विवाहोच्छेद का काम देते हैं। शर्तबँधे कुली यही समझते हैं कि यह विवाहोच्छेदक पत्र (तलाक़नामे) हैं। सूवा में वकालत करनेवाले कुछ बैरिस्टर इन्हें लिखते हैं और उन्ही की उपस्थिति में इन पर दस्तख़त अथवा अँगूठे के निशान किये जाते हैं। गवर्मेण्ट के स्टाम्प की वजह से तथा उस क़ानूनी ढङ्ग से जिसमें कि यह लिखे जाते हैं---इन दोनों सामग्रियों से---आशिक्षित कुलियों को यह विश्वास हो जाता है कि यह फ़ार्म अदालत में क़ानूनन ठीक है। पीछे हम को फ़िजी के वकील लोगोंसे पता चला है कि इन पत्रों का उतना भी मूल्य नहीं, जितना कि उस काग़ज़ का, जिस पर कि यह लिखे जाते हैं, यह बिल्कुल निरर्थक हैं। लेकिन तब भी कुलियों से इनकी लिखाई पाँच पौण्ड ली जाती है।

---

(२) इमीग्रेशन के एजेण्ट जनरल के नाम पत्र

श्रीमान

अमुक नाम का एक आदमी भारतवर्ष को जाना चाहता है। इसकी पुत्री जगवन्ती का विवाह मेरे पुत्र नाथू के साथ हिन्दूधर्मानुसार हो गया है, इस विवाह की रजिस्ट्री इस उपनिवेश के कानून के अनुसार करानी होगी।

मैंने इस विवाह के लिए तीस पौण्ड व्यय किये हैं। अब मुझे बात की आशंका है कि उस लड़की की माँ जमुनी उसे किसी दू आदमी को बेच देना चाहती है, इसलिये मैं आपसे अर्ज करता कि आप मेहरबानी करके मुझे अमुमे इस तरहका शर्तनामा लिख लेनेमें मदद दें कि उसकी (अमु की) गैर हाजिरी में कोई ऐसा काम न हो कि जिससे मेरा उसकी लड़की जगवन्ती के ऊपर जो अधिकार है, वह जाता रहे।

मैं इस बात की तजवीज करता हूँ कि अमु से ऐसा स्वीकारपत्र लिखवा लिया जावे कि जगवन्ती की शादी में नाथू के पिताने इतने पौण्ड खर्च किये।

---

(३) कानूनी कार्रवाई करने के लिये धमकी का पत्र

तीसरे फ़जिल्का नामक जहाज़ द्वारा हिन्दुस्तान से आई हुई ळछमी नामक स्त्री के नाम।

लक्ष्मी,

तुम मेरी विवाहिता स्त्री हो। तुम ने मुझे बिना किसी वजह या सबब के छोड़ दिया है। मैं तुमको इत्तिला देता हूँ कि इस नोटिस के पहुँचने के बाद एक हफ्ते के अन्दर तुम को मेरे घर पर वापिस आना होगा और मेरे साथ सम्भोग करना होगा। अगर तुम ऐसा न करोगी तो तुम को बीस पौण्ड की क़ीमत के गहने वापिस देने होंगे, जो कि तुमने पहनने के लिये मुझ से लिये थे, इसके सिवाय तुम्हें तीस पौण्ड लौटाने पड़ेंगे जो कि तुम हमेरे घर से ले गई हो, और साथ ही साथ तुम को मेरी लड़की सुन्दर बसिया को जिसकी उम्र सात वर्ष की है और जो दस पौण्ड का गहना पहने हुये है, वापिस देना होगा।

इन्दुराके अँगूठे
का निशान.

(४) शर्तनामा

यह शर्तनामा ईदू (नं. ३६१९३), उसकी पत्नी राजवन्तिया (नं. ३६९८७) और लछमन, इन तीन आदमियों के बीच हुआ है।

चूँकि आज के दिन लछमन ने ईदू को पाँच पौण्ड दे दिये हैं और उसकी यानी इदू की औरत राजवन्तिया ने ईदू को गहने वापिस दे दिये हैं, इस लिये अब ईदू अपने सब अधिकारों को, जो वह राजवन्तिया के ऊपर बहैसियत स्वाविन्द के रखता है, छोड़ता है..........

(५) सरदार का एक मामला

पहिला पत्र

इमीग्रेशन के ऐजेण्ट जनरल साहब के नाम।
ता. २२ जून सन् १९१४ ई.

श्रीमान्,

लछमनिया नामक स्त्री और पूरन नामक पुरुष की अर्ज़ है कि—

(१) जब से लछमनियां इस उपनिवेश फ़िजी में आई है तभी से वह काम से बरी कर दी गई है। पहिले लछमनियां से कहा गया था कि तू देवीसिंह के साथ रह, लेकिन पीछे से सरदार की कहासुनी से लछमनियां ने देवीसिंह को छोड दिया और पूरन नामक बैरे (Bearer) के घर बैठ गई। पूरन ने इसके बदले में एक साल तक लछमनियां को काम से बरी करने के लिये अपने पास से दो पौण्ड दस शिलिङ्ग दे दिये।

(२) अब यह सरदार यह चाहता है कि लछमनियां पूरन को छोड दे और मेरे साथ रहने लगे।

(३) यह औरत (यानी लछमनियां) पूरन को नहीं छोड़ना चाहती..........

दूसरा पत्र

इमीग्रेशन विभाग की ओर से। २७ जून सन् १९१४ ई.

श्रीमान्,

पूरन ने पहिले भी इमीग्रेशन विभाग को इस बात की शिकायत भेजी थी कि सरदार लछमनियां के साथ इस प्रकार का व्यवहार करता है। इस शिकायत के अनुसार जो जांच पडताल की गई तो पता

लगा कि जो दोष सरदार पर आरोपण किये गये थे वह असत्य थे।

तीसरा पत्र

मेनेजर साहब की ओर से। १८ नवम्बर सन् १९१४ ई.

(उसी सरदार और जगवन्ती नामक एक अन्य स्त्री के सम्बन्धमें)

आप का पत्र मिला। यह मालूम होता है कि आपने यह पत्र इस भ्रम में लिखा है कि उस समय, जब कि सरदार ने जगवन्ती से अपने साथ रहने की प्रार्थना की थी, भोला और जगवंती में पति पत्नी का सम्बन्ध था। भोला ने हमें इस बात की सूचना दी है कि सरदार ने यह प्रार्थना जगवन्ती से मेरी राजी से ही की थी। चूँकि अब भोला और जगवन्ती का विवाह हो गया है, इस लिये अब भविष्य में सरदार जगवन्ती से कुछ सम्बन्ध न रक्खेगा।

चौथा पत्र

उसी सरदार की ओर से। २९ मार्च सन् १९१५ ई.

श्रीमान्

मैं आप को सूचना देता हूँ कि आज सुबह के वक्त भोला मेरे पास आया था और रुपये के वास्ते मुझ से प्रार्थ की, लेकिन मैंने उसे आप के पास जाने के लिये कहा। मैंने जगवन्ती से कहा कि चलो विवाह के लिये कचहरी को चलें, लेकिन जगवन्ती ने कहा कि धीरे धीरे इस बात का प्रबन्ध किया जावेगा। उसके इस कथन से मुझे ऐसा समझ पड़ता है कि वह रुपये मिलने पर माधो नामक पुरुष के साथ रहना चाहती है। रुपये के बारे में मुझे कुछ नहीं कहना, आप चाहे जो कीजिये। क्या आप मेहरबानी करके मेरे, भोला और जगवन्ती के बीच के शर्तनामे में यह शर्त रख देंगे कि मेरे द्वारा रुपये चुकाये जाने पर, यदि कोई उस औरत को अपने घर में रक्खेगा, तो उसे मुझको पचास पौण्ड देने पड़ेंगे।

अर्थात्–"इस देश की (यानी फ़िजी की) हिन्दू स्त्रियों का समाज एक ऐसी किश्ती के समान है जिसमें पतवार नहीं हैं, जिसका मस्तूल टूट गया है, और जो चट्टानों की ओर बही चली जा रही हैं, अथवा वह एक ऐसी डोंगी के समान है, जो कि एक बड़ी भारी नदी की तेज़ धारा के प्रवाह में चक्कर खाती हुई नीचे चली जाती है और जिसका कोई खेवैया नहीं है। फ़िजी की हिन्दू स्त्रियाँ एक पुरुष को छोड़ कर दूसरे पुरुष के पास चली जाती हैं और इस पतिपरिवर्तन से उनको बिल्कुल लज्जा नहीं आती। हिन्दू पुरुषों का भी समाज छिन्नभिन्न हो गया है और मुख्यतया सब से बड़ी बात तो यह है कि ग्राम्य जीवन का संगठन बिल्कुल नष्ट भ्रष्ट हो गया है। यह लोग इस प्रकार से रहते, चलते फिरते और जीवन व्यतीत करते हैं मानों यह कोई भिन्नभिन्न निस्सहाय अकेले आदमी हों; सामाजिक संगठन का तो नामो निशान नहीं रहा। जाति पाँति बिल्कुल नष्ट हो गई है, लेकिन उसके खाली स्थान को भरने के लिये कोई संस्था स्थापित नहीं हुई। जातिपाँति के बिल्कुल सत्यानाश होने के साथही हिन्दूधर्मानुसार किये हुये विवाहों में श्रद्धा का चिन्ह तक नहीं रहा। पत्नी बिसौंतगीरी और क्रयविक्रय–खरीद फरोख्त–की एक वस्तु बन गई हैं और उसके लिये लोग आपस में लड़ते हैं, आत्मघात करते हैं, पारस्परिक ईर्ष्याद्वेष करते हैं और एक दूसरे की हत्या करते हैं। हत्या, आत्मघात और घोर अपराधों की, जो पतिपत्नी की लड़ाई के कारण होते हैं, संख्या अत्यन्त भयंकर है। इस संख्या के अङ्क इस भयोत्पादक बात को स्पष्टतया सिद्ध करते हैं कि प्राचीन हिन्दू पद्धति की आज्ञायें, निग्रह और नियम बिल्कुल टूट गये हैं और उस पुरातन पद्धति की केवल टूटी फूटी स्मृति ही शेष रह गई है। फ़िजी के हिन्दू लोग अपनी इस अवनति और दुर्दशा को जानते हैं और अनुभव करते हैं।"

है कि वह इस प्रकार के क़ानून बनावें, जिनसे प्रवासी हिन्दू लोगों को, जो वैवाहिक बन्धनों के शिथिल करने और तोड़ डालने के अपराधी हों, कठोर दण्ड दिया जावे।

(३) **तीसरा उपाय** यह है कि भारतवासियों के छोटे छोटे गाँव बसाने में सहायता दी जावे। ग्राम्य जीवन से सामाजिक सुधार में बड़ी भारी मदद मिलेगी। यदि प्रवासी भारतवासी उपनिवेशों में भारतीय ग्राम्यजीवन के प्रेमी बना दिये जावें, और छोटे छोटे भूमिखण्ड देकर उन्हें उक्त प्रकार का जीवन व्यतीत करने के लिये उत्साहित किया जावे तो इसमें शक नहीं कि सामाजिक दुर्दशा अधिकांश में दूर हो जावेगी।

(४) **चौथा उपाय** यह है कि ग्राम्य जीवन के साथ ही साथ पंचायत प्रथा का भी प्रचार किया जावे, छोटे छोटे अभियोग पंचायतों के सुपुर्द कर दिये जावें और पंचों को इस बात का अधिकार दिया जावे कि वह कह सुनकर वैवाहिक बन्धनों को शिथिल होने से बचावें।

(५) **पाँचवाँ उपाय** यह है कि ग्रामों में स्कूल खोले जावें और डाकख़ाने तथा शफ़ाख़ानों का भी समुचित प्रबन्ध किया जावे। इनके बिना उन्नति होना असम्भव है। घर कुली लैनोंमें अलग अलग बनाये जावें, और नदियों और तालावों के किनारे घाट बनवा दिये जावें, जिससे कि गाँववालों को वहाँ स्नान करने और पूजा पाठ करने में सुभीता हो। उपनिवेशों की सरकारों को चाहिये कि मुर्दों के जलाने को क़ानूनन अपराध न समझें। मुर्दों को जलाने की प्रथा बहुत ही अच्छी है, इस बात को बड़े बड़े पाश्चात्य डाक्टरों तक ने स्वीकृत कर लिया

है, फिर हम नहीं समझते कि औपनिवेशिक सरकारें मुर्दों के जलाने को क्यों बुरा समझती हैं।

जो लोग प्रवासी भारतवासियों में धर्मप्रचारार्थ जाना चाहें, उन्हें उपर्युक्त बातों पर ध्यान देना चाहिये। सनातन धर्म, आर्य्यसमाज, ब्राह्म समाज और रामकृष्ण मिशन इत्यादि समाजों का कर्तव्य है कि वह अपने अपने प्रचारक उपनिवेशों को भेजें। आर्यसमाज ने इस विषय में थोड़ा बहुत कार्य्य किया है। जो जो आर्य समाजी धर्म-प्रचारार्थ विदेशों को गये हैं, उनका धर्म के लिये स्वार्थत्याग प्रशंसनीय है।

पाँचवाँ कर्तव्य भारतवासियों का यह है कि उपनिवेशों से लौटे हुये भारतवासियों के साथ अच्छा बर्ताव करें। अबतक इस विषय में हम लोगों की नीति बहुत ही अनुदार और संकुचित रही है। पं. तोता-राम जी सनाढ्य ने मेरे अपनी पुस्तक 'फिजी द्वीप में मेरे २१ वर्ष' में एक दुर्घटना लिखी है। पाठकों के विचारार्थ उसे हम यहाँ उद्धृत करते हैं। पंडितजी लिखते हैं:—

"कितने ही स्त्री और पुरुष अपने गिरमिट को पूरा करके और ५ वर्ष और रहकर अपनी मातृभूमि को लौटना चाहते हैं, तो वह इस विचार से नहीं लौटते कि वहाँ पहुँचकर कोई हमें जाति में तो मिलावेगा नहीं और व्यर्थ ही जात्यपमान वहाँ सहना पड़ेगा, इस लिये मृत्युपर्य्यन्त उन्हें वहीं कष्ट उठाने पड़ते हैं। हमारे देश के भाई समुद्रयात्रा की दफ़ा लगाकर टापुओं से लौटे हुये अपने भाइयों को जाति से च्युत करके उनको इतना कष्ट देते हैं कि जिससे दुःखित होकर, वह फिर टापुओं को लौट कर चले जाते हैं, और उनके धन को जो कि उन्होंने परदेश में जाकर मारपीट सहकर, अनेक अपमानों को सहन कर और आधे पेट खा खा कर कौड़ी कौड़ी मुश्किल से जमा किया है,

कुछ तो भाईबन्धु लेते हैं और कुछ टकार्थी पुरोहितजी प्रायश्चित्त कराने में बेदर्द होकर खर्च करवा डालते हैं। अपने देशबन्धुओं को मैं इसका एक उदाहरण देता हूँ। मेरे घर के पास फ़िजी टापू में एक गुलज़ारी नाम का कान्यकुब्ज ब्राह्मण रहता था। उसने बड़े परिश्रम से ८ वर्ष में लगभग २००) रु. इकट्ठे किये। इसको ब्राह्मण जानकर सब लोग प्रायः महीने की पूर्णमासी को सीधा दे दिया करते थे। यह कन्नौज के रहनेवाले थे। इनके घर से इन के भाई ने पत्र भेजा उसमें लिखा था कि तुम चले आओ। इस साल में तुम देश को नहीं आओगे तो तुम को १०१ गौ मारे की हत्या होगी। गुलज़ारीलाल ने भाई की लिखित ऐसी शपथ जब देखी तब ब्राह्मणधर्म सोच कर वह देश को चले आये। चलते समय इनको लोगों ने कुछ और दक्षिणा दी। जब यह भारतवर्ष पहुँचे तो दूसरे घर में ठहराये गये। रुपया पैसा सब भाई को सौंप दिया। तीन चार दिन बाद पुरोहितजी बुलाये गये। यह महाशय क़ानून की पुस्तक साथ लेकर आये। गाँव के बड़े बूढ़े सब मिलकर बैठे। समुद्रयात्रापर विचार हुआ। गुलज़ारी ने घरसे निकलने से लेकर फ़िजी में पहुँचने तक जहाज़ का खाना पीना बयान किया। फ़ैसले में सब तीर्थ बतलाये गये। भागवत सुनने को बतलाई गई और लगभग पाँच छ गाँव का भोज बतलाया गया। कोई सातसौ या आठसौ के लगभग खर्च करने का फ़ैसला दिया गया। गुलज़ारी ने खर्च करने के लिये भाई से अपने दिये हुये रुपये माँगे। भाईने कोरा जबाब दिया। जातिवालों ने अलग कर दिया। गुलज़ारी के साथ गाँववाले बड़ी घृणा करने लगे। भाई लोग कट्टर शत्रु हो गये और बोले कि तुमने कुछ हम लोगों से रुपया छिपा लिया है वही खर्च करो, यह रुपया हम नहीं देंगे। लाचार गुलज़ारी ने फ़िजी में अपने इष्ट मित्रों को

था कि 'मैं तुम्हें अच्छी अच्छी नौकरियाँ दिलवा दूँगा, मैं तुम्हें पुलिस में अथवा और किसी जगहपर दरवान की नौकरी पर रखवा दूँगा। तनख्वाह खूब मिलेगी और तरक्की की भी उम्मेद है।' बहुत दिनों तक वह हमें इसी तरह उकसाता रहा। आखिरकार हम लोग इस बात पर राज़ी हो गये।........लालमोहन ने कहा 'हम तुम सबको मजिस्ट्रेट के पास ले चलेंगे, तुम लोग यह कहना कि हम ग़रीब अनाथ हैं। हमारा पालन पोषण करनेवाला कोई नहीं है इसलिये हम काम करके पेट भरना चाहते हैं' लालमोहन ने हमें ऐसी बड़ी बड़ी आशायें दिलाई कि हम लोग उसके कथनानुसार मजिस्ट्रेट के सामने यही कहने को राज़ी हो गये। तब वह हमें कोर्ट को ले गया। माजिस्ट्रेट ने कहा 'तुम लोगों को शर्तबन्दी में ५ वर्ष तक काम करना पड़ेगा, अगर तुम अच्छी तरह काम नहीं कर सकोगे, तो तुमको सज़ा मिलेगी।' ये इसके बाद छपे हुए काग़ज़ पर हमारे हाथ के अँगूठे की छाप ली गई। लालमोहन ने यह काग़ज़ हमें पढ़ने नहीं दिया। तब रेल के द्वारा हम सब स्त्री पुरुष कलकत्ते लाये गये और डिपो में रक्खे गये, जहाँ कि हम एक महीने तक रहे। इस बीच में एक दिन डाक्टर आया और हमारी परीक्षा ली। फिर ग्रान साहब भी एक दिन आये और उसने स्त्रीं पुरुषों से पूँछा 'क्या तुम राज़ीसे जा रहे हो।' बड़े बड़े लोगों ने 'हाँ' कहा, इसलिये मैंने भी उन्हीं की तरह 'हाँ' कह दिया; यद्यपि उस समय मुझे यह कुछ भी नहीं मालुम था कि हम लोग कहाँ भेजे जावेंगे। पीछे से मुझे यह ज्ञात हुआ कि हमें एक टापू को जाना पड़ेगा। 'गंगा' नामक जहाज़ में ६०० दूसरे स्त्री पुरुषों के साथ मैं हिन्दुस्तान से रवाना हुआ। जहाज़ में मुझे पता चला कि हम लोग डमराए टापू को भेजे जा रहे हैं। ४२ दिन के सफ़र के बाद हम लोग डमराए पहुँचे।"

इसके बाद श्रीयुत रामनारायण तिवारी ने डमराए में भोगे हुये कष्टों का वर्णन किया है, हम उन्हें यहाँ लिखकर पाठकों का जी नहीं दुखाना चाहते। जब अनन्त कष्टों को सहन कर तिवारी जी भारत वर्ष को लौटे तो उनकी जातिवालों ने उनके साथ क्या बर्ताव किया यह उन्हीं के शब्दों में सुन लीजिये " शर्तबन्दी के खतम करने के बाद मैं डमराए में ५ वर्ष तक और रहा, और पुरोहित बन कर अपनी गुज़र चलाता रहा। मुझे भारतवर्ष में लौटे हुये दो वर्ष हुये। मेरी जाति ने मुझको नहीं मिलाया, मैं अब जाति पतित हूँ; अब मेरा साथी कोई नहीं है। यद्यपि मेरे माता पिता और भाई जीवित हैं, भारतवर्ष छोड़ने के पहिले ही मेरा विवाह हो गया था। मेरी स्त्री अपनी माँ के घर है। अगर लालमोहन नामक आरकाटी ने मुझे न बहकाया होता, तो आज न तो मेरी और न मेरी पत्नी की ही यह दुर्दशा होती जो आजकल हम दोनों की हो रही है। "

मिस्टर ऐण्ड्रूज़ अपनी रिपोर्ट में लिखते हैं " फ़िजी में हमको एक नेटाल का कुली मिला, जो शर्तबन्दी में वहाँ आया था। इस कुलीने हम से कहा कि मैं नेटाल से अपने घर को जो मद्रास प्रान्त में है, वापिस आया था। मैंने वहाँ अपना विवाह करने और स्थायी होकर रहने का विचार किया था, लेकिन मुझे लोगों ने जाति से बाहिर निकाल दिया। कोई आदमी मुझे अपने पास नहीं बिठलाता था क्यों कि मैं जाति से पतित हो गया था। जो थोड़ासा धन मैं लाया था, उसे मैंने जाति में मिला लिये जाने की आशा से व्यय कर दिया, लेकिन तब भी किसी ने मुझे जाति में नहीं मिलाया। जब मेरा सब धन नष्ट हो गया और मैं बिल्कुल निराश हो गया तो इसी हालत में मुझे एक आरकाटी मिला। नाउम्मेद होकर मैंने शर्तबन्दी में फ़िजी को आने का निश्चय किया।"

जब हम इस प्रकार के दृष्टान्त पढ़ते हैं तो हमें क्रोध आता है उन जातिवालों पर, जो बिचारे निस्सहाय दीन दुखी मज़दूरों को, जो विदेशों में १० वर्ष तक शर्तबन्दी में काम करके वापिस आते हैं, जातिसे बाहिर निकाल देते हैं। इन वज्रहृदय जातिवालों ने कभी किसी आरकाटी को भी जाति से बाहिर निकाला है? यदि आप मथुरा, कानपुर, बनारस इत्यादि में जावें और आरकाटियों की स्थिति का पता लगावें, तो आप को ज्ञात होगा कि इन आरकाटियों का सम्मान अपनी जाति में दूसरे मनुष्यों की अपेक्षा बिल्कुल कम नहीं होता, बल्कि ज्यादा ही होता है; क्योंकि आरकाटी लोग, बिचारे भोलेभाले आदमियों को बहकाकर और उनसे रुपये ठगकर खूब धनवान् बन जाते हैं।

मनुष्यों को गुलाम बनाकर बेचनेवाले, अपने भाइयोंके गले पर छूरी फेरनेवाले, अपनी देशभगिनियों के सतीत्व का विक्रय करनेवाले और दूसरों को सब्ज़ बाग दिखाकर जहन्नुम को भेजनेवाले बेईमान आरकाटी तो मूँछों पर ताव देते हुये जाति में रहें और बिचारे निरपराध मज़दूर जो धोखे द्वारा विदेशों को भेज दिये गये थे, जाति से बहिष्कृत कर दिये जावें!!! धिक्कार है सहस्रवार उन जातियों पर जो इस प्रकार के अन्याय करती हैं!!

छटवाँ कर्तव्य हमारा यह है कि हम प्रवासी भाइयों को उनके उद्धार के उपाय बतलावें। इस विषय की छोटी छोटी पुस्तकें छपवा कर उपनिवेशों में बँटवानी चाहियें। यहाँ पर हमारे पास इतना स्थान नहीं है कि हम विस्तारपूर्वक इस बारे में कुछ लिख सकें, लेकिन तब भी दो चार बातें संक्षेप में यहाँ लिखी जावेंगी।

प्रवासी भारतवासियों से हमारा पहिला निवेदन यह है कि आप अपनी भारतीय भाषा और भेष को न भूलें। यदि आप का "हिन्दुस्तानीपन" जाता रहा तो फिर सारा प्रयत्न व्यर्थ जावेगा।

आप लोग पाश्चात्य देशों के निवासियों का भले ही अनुकरण करें, लेकिन अनुकरण करते वक्त इस बात का ख्याल रक्खें कि हमें केवल गुणों का ही अनुकरण करना चाहिये, अवगुणों का नहीं। आप लोग यहूदियों के चरित्र से शिक्षा ग्रहण कीजिये। यहूदी लोग अपने धर्म, रीतिरिवाज, भाषा, और परम्परागत गाथाओं के बडे पक्षपाती होते हैं। चाहे उन लोगों में 'अंग्रेज़ीपन' थोडा बहुत आ जावे, लेकिन तब भी वह रहते 'यहूदी' ही हैं। इसी प्रकार उपनिवेशों में उत्पन्न हुये भारतवासियों को अपनी 'राष्ट्रीयता' की रक्षा करनी चाहिये। A christopher ने 'इण्डियन ओपीनियन' के स्वर्णाङ्क में लिखा है:—

"The attractions of the West appear to be gaining in strength, and the risk of Colonial born Indian eventually in the course of generations losing his power to withstand them even partilly, is very great. The position however is not hopeless, if the communication that existed between India and south Africa by the immigration and emigration of Indians is restored, in any case for the present. by the organization of a means by which Colonial-born Indian boys and girls may spend some years of their life in India, learning as much as is possible during those years of something of India, its wealth of intellectual and spiritual knowledge, its greatness and its resources, past and present, and, if he or she dare peep into its future."

अर्थात्—"उपनिवेशों में उत्पन्न हुये भारतीयों के हृदय को पाश्चात्य ढङ्गों और रीतिरिवाजों ने अपनी ओर आकर्षित करना प्रारम्भ कर दिया है, और इस बात का बड़ा भारी खतरा है कि दो तीन पीढ़ी में उपनिवेशों के भारतीयों में इतनी शक्ति नहीं रहेगी कि वह पश्चिम की इन आकर्षक बातों का थोडा सा भी विरोध कर सकें। लेकिन तो भी इस समय यह स्थिति ऐसी नहीं है कि हम बिल्कुल निराश हो जावें। यदि भारतवर्ष से दक्षिण अफ्रिका को आदमी बराबर

आते जाते रहें, जैसा कि पहिले होता रहा है, तो निराश होने का कारण न रहेगा। एक ऐसी संस्था स्थापित होनी चाहिये, जिसके द्वारा उपनिवेशों में पैदा हुये भारतीय बालके और बालिकायें, अपने जीवन के कुछ वर्ष भारतवर्ष, में व्यतीत कर सकें । इन वर्षो में यह बालक और बालिकायें, जो कुछ भारतवर्ष के विषय में जान सकें, जान लें। भारतवर्ष के महान् मानसिक और आध्यात्मिक ज्ञान से यथाशक्ति परिचित हो जावें, भारतीय महत्त्व और उसके साधनों के विषय में ज्ञान प्राप्त कर लें, भारतवर्ष के भूत काल और वर्तमान काल से जानकार हो जावें और अगर हो सके तो उसकी भावी दशा का भी निरूपण कर लें।"

क्या ही अच्छा हो यदि औपनिवेशक बालक और बालिकाओं को भारतवर्ष में कुछ वर्ष तक अध्ययन करने का मौक़ा मिले। भारतवर्ष में कुछ वजीफ़े ऐसे कायम हो जाने चाहिये, जो प्रवासी भारतीयों के बालक और बालिकाओं को मिलें । भारत के राष्ट्रीय संगठन में प्रवासी भारतीयों से बड़ी सहायता मिल सकती है, इस लिये भारत-वासियों का कर्तव्य है कि वह इन बालक बालिकाओं की सहायता करें।

दूसरा निवेदन हमारा यह है कि आप लोग स्वदेश भारतवर्ष से प्रेम रक्खें। महात्मा गान्धी जब दक्षिण अफ्रिका में थे, तब वह प्रायः कहा करते थे "मेरा शरीरही केवल यहां है, पर मेरी आत्मा तो उस पुण्यवती सजला, सफला भारतमाता की गोदमें भटक रही है।" महात्मा गान्धी जी को भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यताका बड़ा अभिमान है। एक वार एक सज्जन कविता बनाकर जोहान्सबर्ग में गान्धी जी के पास ले गये। उस कविता का एक पद्य यह था:—

"युवक अब देश रक्षा हित सहेंगे कष्ट कैदों में।
हमारा देश अब यूरप के माफिक होनेवाला है॥"

इस पद को सुन कर गान्धी जी ने कहा " यह तुम्हारी मूल हमारा पवित्र हिन्द जो हिमालय के गगनचुम्बित शिखरों से शो है, जहाँ पर गङ्गा, यमुना और सरयू की पवित्र धारायें बह रही और जो संसार में सभ्यता का प्रचार करनेवाली कर्मभूमि है, यदि वह यूरोप की प्रवृत्ति पर आरूढ़ हुआ तो समझो कि उसने अपने गौरव को खो डाला।" लेखक ने ऐसा समुचित उत्तर पाकर उस पद को दूसरी तरह से बदल दिया।

तीसरा निवेदन यह है कि भारतवर्ष में जो आन्दोलन होते हैं, उनके साथ आप सहानुभूति रक्खें और उन आन्दोलनों में यथाशक्ति सहाय्यता भी दें। आजकल भारतवर्ष में स्वराज्य का आन्दोलन हो रहा है। प्रवासी भाइयों का कर्तव्य है कि यथाशक्ति इस आन्दोलन में सहायता दें। हर्ष की बात है कि दरबन (दक्षिण आफ्रिका) में होम-रूल लीग नामक एक सभा भी स्थापित हो गई है। दूसरा आन्दोलन राष्ट्रभाषा हिन्दी का है। इस विषय में भी दक्षिण आफ्रिकाने अग्रणी बनकर प्रशंसनीय कार्य्य किया है। दक्षिण अफ्रिका में हिन्दी साहित्य सम्मेलन का एक जलसा हो भी चुका है। यदि उपनिवेशों में राष्ट्रभाषा हिन्दीके स्कूल खुल जावें तो बड़ा भारी लाभ हो। यदि वहाँ के तैमिल, गुजराती या मराठी जाननेवाले प्रवासी भारतीय हिन्दी भी सीख लें तो उनके कार्य्य में बड़ी भारी सुविधा हो सकती है। मि. ऐंड्रूज़ और मि. पियर्सन ने अपनी रिपोर्ट के १५ वें पृष्ठ पर लिखा है:—

"The recent immigration of Madrasi coolies, who speak Telegu, Tamil, Malayalam and canarese, has led to the greatest possible confusion. In a trial for murder before chief Justice, held while we were in suva, the accused prisoner only knew Malayalam. The court Interpreter only knew Tamil and English. A third party, therefore, had to be called in who knew Malayalam. The chief Justice, was, in this way, twice

removed by language barriers from the prisoner at the bar. Yet, in these faulty circumstances he was obliged to try the Madrasi for his life, and actually to condemn him to death."

अर्थात्–"पिछली बार जो तैलंगी, तैमिल, मळायलम और कनाड़ी भाषा बोलनेवाले मद्रासी कुली भारतवर्ष से फ़िजी पहुँचे हैं उनकी वजह से बड़ी भारी गड़बड़ मचगई है। जब कि हम सुवा में थे, वहाँ हमारे सामने चीफ जस्टिस की अदालत में एक खून का मुकद्दमा हुआ था। अभियुक्त केवल मलायलम भाषा जानता था, और अदालत में जो दुभाषिया था वह तैमिल और अँग्रेजी जानता था। इसलिये एक दूसरा आदमी बुलाना पड़ा जो कि मलायलम भाषा का ज्ञाता था। इस प्रकार अभियुक्त की बात चीफ जस्टिस के पास दो भाषाओं के विघ्नों को पार करती हुई पहुँचती थी। लेकिन इस दोषपूर्ण स्थिति में भी चीफ जस्टिस को मद्रासी का मुकद्दमा करना पड़ा और वास्तव में उसे फांसी का हुक्म सुनाना पड़ा।"

यदि उपनिवेशों में राष्ट्रभाषा हिन्दीका प्रचार होता तो इस प्रकार की गड़बड़ न होती।

चौथा निवेदन प्रवासी भारतवासियों से यह है कि आप लोग निर्भयतापूर्वक अपने स्वत्वों की रक्षा के लिये सदा कटिबद्ध रहें।

यद्यपि भारतवर्ष आप की सहायता के लिये सर्वदा उद्यत रहेगा तथापि आप के स्वत्वों की रक्षा होना आप के ही स्वार्थत्याग, दृढ़-निश्चय, और प्रयत्न पर निर्भर है। १५ नवम्बर सन् १९१२ ई. को प्रिटोरिया में राजर्षि गोखले ने जो उपदेश दक्षिण अफ्रिकावालों को दिया था, वह इतना सारगर्भित था कि उसे हम यहाँ दिये बिना नहीं रह सकते। श्रीमान् मि. गोखले ने कहा था:—

"यदि आप लोगों के साथ न्याय नहीं किया जावे, अथवा आप के ऊपर किया · · आप को इसके लिये संग्राम करना

केवल तूफ़ान मचाने पर तुले हुये थे। सभा में एक वक्ता अंटबंट बक रहा था। प्रधान ने उसे अधिक समय देने से इंकार किया। इतने में हेरल्ला मचगया, बिजली की रोशनी बुझा दी गई और महात्मा गान्धी पर पिस्तोल का वार होने लगा, पर इस धीर पुरुषका एक बाल भी बाँका न हुआ। अपने अपने स्थान से सब उठकर भागे। तत्काल पुलिस वहाँ आ पहुँची। महात्मा गान्धी को किसी प्रकार सही सलामत बाहर लाया गया। उस समय पर गान्धी जी विरोधी पक्ष के उन मनुष्यों के पास जाना चाहते थे, जिन्हों ने गान्धी जी को लक्ष्य करके पिस्तोल की आवाज़ की थी। गान्धी जी उन आततायिओं के पास जाकर अपना स्तक झुकाकर कहना चाहते थे कि "लो मुझे जानसे मारकर अपना लेजा ठंडा कर लो।" भला इस धीरता और सहन शीलता की कोई ीमा है। उनके साथियों ने बहुत प्रयास करके उन्हें ऐसा करनेसे का; पुलिस उन्हें गाड़ी पर बैठा कर मकान पर छोड़ आई। उस मय उनके ऊपर आक्रमण होने की आशंका बनी रहती थी। इस ठये उनके प्रिय शिष्य मिस्टर केलनबेक गान्धीजी से छिपाकर, उन ी अङ्गरक्षा के लिये, एक पिस्तोल रक्खा करते थे। जब इस बात ा भेद महात्मा गान्धी को मिला तो उन्हों ने मि. केलनबेक से पिस्तोल रखवा ली।

पाँचवाँ निवेदन यह है कि आप लोग अपने रहन सहन के ढङ्ग में समयानुसार उन्नति करें। मिस्टर पियर्सन साहब ने दक्षिण अफ्रिका के बारे में जो रिपोर्ट लिखी थी, उसमें एक जगह वह कहते हैं:—

"I have met Indians in South Africa who contribute largely to rates and taxes, but who, in their carelessness of sanitary conditions, and lack of cleanliness in dress, make it difficult for Europeans to understand or be [illegible]lerant with them. Let the Indian in South [illegible] that an English men judge a great [illegible]

चाहे आप सनातनधर्मी हों या आर्य्य समाजी, हिन्दू हों या मुसलमान, राजनैतिक आन्दोलनों में आप को एक होकर काम करना चाहिये। धार्मिक विभिन्नता संसार से कभी हट नहीं सकती। न तो सम्पूर्ण संसार हिन्दू ही बन सकता है और न मुसलमान लोग ही सारी दुनियाँ को मुसलमान बना सकते हैं। जो लोग संसार भर को शुद्ध करके वैदिक धर्मी बनाने की चिन्ता में लिप्त हैं, अथवा जो सारी दुनियाँको दीन इस्लाम के झंडे के नीचे लाना चाहते हैं वह हमारी सम्मति में झूंठे स्वप्न देख रहे हैं।

हमने सुना है कि फ़िजी में दो पार्टी हैं, एक तो स्वामी राम मनो-ानन्द की पार्टी और दूसरी डाक्टर मणिलाल की। अगर यह बात क है तो यह पारस्परिक विरोध वास्तवमें फ़िजी प्रवासी भारतीयों लिये हानिकारक होगा। दक्षिण अफ्रिका में भी दो पार्टियाँ बन गई ं। एक तो स्वामी शङ्करानन्दजी की पार्टी और दूसरी महात्मा ान्धी की पार्टी। इसका कारण सम्भवतः यह था कि स्वामीजी ासी हिन्दुओं की उन्नतिके लिये मुसलमानों का विरोध करना ा नहीं समझते थे और गान्धीजी का सिद्धान्त यह था कि हिन्दू सलमानों में मेल रहना ही चाहिये। हम यह नहीं कह सकते कि ौनसी पार्टी दोषी थी, लेकिन तो भी हम यह अवश्य कहेंगे कि इस कार की पार्टीबन्दी कदापि लाभदायक नहीं हो सकती।

सातवाँ निवेदन यह है कि आप लोग सत्याग्रह—निष्क्रियप्र-तिरोध के महत्त्व को समझें। इस विषय में दक्षिण अफ्रिका के भारत-ासी हमारे गुरु हैं। दक्षिण अफ्रिका के भारतवासियों को सत्याग्रह े गुण बतलाना मानो सूर्य्य को दीपक ... ेकिन अन्य पनिवेशों के निवासियों से, जो ... जानते, ें कुछ निवेदन करना है।

सामने सिर झुकाना पड़ा था, और पार्लीमेण्ट में इण्डियन रिलीफ़ ल के दूसरी बार पेश करने के प्रथम इन्हीं जनरल स्मट्स ने बात-त करते समय महात्मा गान्धी से कहा था:—

"This time there must be no misunderstanding, no mental servation on either side. Let us have all the cards on the ble; and I want you to tell me where you think a particular ıssage does not read according to your light, and it shall amended."

अर्थात्—"इस बार कोई मिथ्या संभावना या दुविधा की बात नहीं नी चाहिये, और दोनों पक्षों में से किसी का कोई विचार गुप्त नहीं हना चाहिये। सब बातें खुल्लमखुल्ला-स्पष्टतया होनी चाहिये। मैं गहता हूँ कि जहाँ कहीं कोई वाक्य इस इण्डियन रिलीफ़ बिल में गप की सम्मति के अनुसार ठीक न हो तो आप उस वाक्य को झे बतला दें। उस वाक्य में अवश्य सुधार कर दिया जावेगा।"

सत्याग्रह का हथियार ही ब्रह्मास्त्र है। यह अमोघ है, कभी व्यर्थ हीं जाता है। जिन जनरल बोथा ने बोर युद्ध में बड़ी वीरता दिख-ाई थी, वह भी इस हथियार के सामने पछाड़ सा के गिरे थे। सत्या-ह के पहिले सन् १९०७ ई. में इन्होंने स्टेण्डर्टन में कहा था:—

"If my party is returned to power we will undertake to lrive the coolies out of the country within four years. I uggest the means to that end to be expropriation of their nterests in the country by means of arbitration."

अर्थात्—"यदि मेरा पक्ष फिर अधिकारारूढ़ हो जावे तो फिर हम स बात का ज़िम्मा लेते हैं कि हम चार वर्ष में कुली लोगों को अपने देश से बाहिर निकाल देंगे। इस उद्देश्य की सिद्धि का उपाय मैं यह बतलाता हूँ कि भारतवासियों के दक्षिण आफ्रिका में जो अधिकार हैं वह स्वेच्छानुसार छीन लिये जावें।"

म्भव है। निदान इस प्रश्न के निर्णय करने का उत्तरदायित्व सरकार के ऊपर है।"

देखिये पाठक, सत्याग्रह के अस्त्र ने क्या काम किया है। लेकिन सत्याग्रही बनना कोई सहल काम नहीं है; कुछ लोगों का ख्याल है कि सत्याग्रह कमज़ोर आदमियों के लिये है। यह ख्याल बिल्कुल भ्रमपूर्ण है। महात्मा गान्धी, जिन्हें हम संसार के सब से बड़े सत्याग्रही कह सकते हैं, लिखते हैं "*यदि कोई कहे कि सत्याग्रह निर्बल मनुष्यों के लिये है तो उसका यह अज्ञान है;* सत्याग्रह सर्वोपरि है। वह अस्त्रशस्त्रों की अपेक्षा अधिक काम करता है, फिर उसे निर्बलों का हथियार कैसे कहा जा सकता है। सत्याग्रहियों में जितना पुरुषार्थ और अन्तरङ्ग बल होता है उतना हथियारवालों में नहीं। जो तोप चलाकर दूसरे का ख़ून करते हैं वह अच्छे हैं अथवा जो हँसते हुये ख़ुद ही तोप के मुँह पर चले जाते हैं, वह अच्छे हैं ? वीर वही है जो दूसरे को न मार कर ख़ुदही मर जाता है। पुरुषार्थहीन एक घड़ी भर भी सत्याग्रही नहीं रह सकता है। इस में सन्देह नहीं कि चाहे शरीर निर्बल हो किन्तु आत्मा बलवान् हो तो वह सत्याग्रही बन सकता है .... केवल आत्मिक बल के भरोसे पर जब सत्याग्रही गर्जने लगता है, तब उसके शत्रुओं का भी हृदय थर्रा उठता है। सत्याग्रह सर्वोपरि हथियार है। वह किसी का ख़ून नहीं निकालता, किन्तु उसका परिणाम इस से अधिक होता है, उसके रखने के लिये मियान की दरकार नहीं। उसे कोई छीन भी नहीं सकता। राजा लोग हथियार का व्यवहार करते हैं, उन्हें हुक्म चलना पड़ता है किन्तु आज्ञा के पालन करनेवाले को हथियार की ज़रूरत नहीं। संसार के अधिकांश मनुष्य आज्ञा पालनेवाले होते हैं। जहाँ की प्रजा ने सत्याग्रह को सीखा है उनके ऊपर राजा का जुल्म नहीं चल सकता है। प्रजा

तलवारबल से वश हुई नहीं और न हो सकती है। उन्हें तलवार चलाना आता नहीं और वह दूसरे की तलवार से डरते नहीं। मौत को हमेशा अपने तकिये के नीचे रखकर सोनेवाली प्रजा महान् है। जिसने मृत्यु का भय छोड़ा उसे फिर किस बात का डर है? सत्याग्रही को शारीरिक बल बढ़ाना उचित है। इससे मानसिक बल बढ़ता है; और मानसिक बल से आत्मिक बल की वृद्धि होती है, जिसकी सत्याग्रह के लिये नितान्त ही आवश्यकता है। सत्याग्रही बनना सहज है, पर जितना सहज है उतना कठिन भी है। मैंने चौदह वर्ष के बालक को सत्याग्रही बनते देखा है, रोगी पुरुष भी सत्याग्रही बने यह भी मैंने देखा, किन्तु बलवान तथा सुखी मनुष्य इस सत्याग्रह पर नहीं टिक सके, यह भी मेरा अनुभव है। मैंने अनुभव से जाना है कि जो देशहित के लिये सत्याग्रही बनना चाहें, उन्हें ब्रह्मचर्य्य का पालन करना चाहिये, निर्भयता को गले लगाना चाहिये, सत्य के सेवन में तत्पर रहना चाहिये और विरक्तता पर दृढ़ रहना चाहिये, सत्याग्रह का मुख्य सिद्धान्त यही है।"

प्रवासी भारतियों में जो नेतृत्व का काम करना चाहते हैं, उ हमारा निवेदन है कि वह कष्ट सहने के लिये सर्वदा तैयार रहें। दे सेवा करना कोई सहजका मठा नहीं है कि जिसे हाथमें लिया गट गट पीके झट समाप्त कर डाला। यह बड़ी टेढ़ी खीर देशसेवा के लिये कभी जेल भी जाना पड़ता है वहाँ मोटा, खुर और खराब कपड़ा पहनना होता है, खराब खाना खाने के मिलत और भूखों मरना पड़ता है। प्रवासी भारतियों के म ों से हमारी प्रार्थना है कि जब तक आप महात्मा गान्धी . न कहने लगें कि:—

यह कारागार पूज्य अतिशय मेरे हित।
जहाँ जन्म ले किया कृष्णने था पुरुषोचित॥"

तब तक नेता बनने का नाम भी न लें। देखिये महात्मा गान्धी क्या लिखते हैं:—

"देशहित के नाम पर, मानरक्षा के लिये, और धर्म के निमित्त मुझे जेल जाना पड़े तो यह मेरे सौभाग्यका सूचक है। जेल में दुख किस बातका? यहाँ तो मुझे बहुतों की तावेदारी करनी पड़ती है। उसके एवज् जेलमें अकेले दारोग़ा की ही सेवा करनी पड़ती है। जेल में न मुझे किसी बात की चिन्ता, न खाने कमाने की फ़िक्र। वहाँ तो और लोग रोज़ वक़्त पर खाना पकाते हैं और शरीर की रक्षा स्वयं सरकार करती है। उन सब के लिये मुझे कुछ देना भी नहीं पड़ता। काम ऐसा मिलता है कि ख़ासा व्यायाम हो जाता है। सारे व्यसन सहज ही छूट जाते हैं। मन स्वतंत्र रहता है। ईश्वरभजन का लाभ सहज ही मिल जाता हैं। वहाँ शरीर मात्र बन्दी होता है, और आत्मा तो अधिक स्वतंत्र हो जाता है। मैं नियम से रोज़ उठता हूँ। शरीरकी रक्षा का भार उसी पर है, जिसने उसे बन्दी बनाया है। इस प्रकार हर तरह मैं आज़ाद हूँ। अब मुझ पर मुसीबत आती है या पापी दारोग़ा मार पीट कर बैठता है, तब मुझे धीरज धरनेका अभ्यास होता है। मैं यह समझकर खुश होता हूँ कि उनका सामना तो करना पड़ता है। ऐसे विचार से जेल पवित्र और सुखदायक स्थान जान पड़ता है। उसे सुखदायक वा दुखदायक मानना या बनाना तो अपने ही हाथ में है। मन की दशा विचित्र है। थोडे ही में वह दुखी और थोड़े ही में वह सुखी हो जाता है। मुझे आशा है कि मेरी यह कहानी पढ़कर पाठक यही निश्चित करेंगे कि देश के लिये अथवा धर्म के नाम पर जेल आना, वहाँ तकलीफ़ उठाना और तरह तरह के संकट सहन करना अपना कर्तव्य है। इसी में हमें सुख है।"

आठवाँ निवेदन यह है कि आप लोग यथाशक्ति गौ रखने का

प्रयत्न करें। जो लोग हिन्दू हैं उनके लिये गौ माता आवश्यक ही नहीं वल्कि अनिवार्य्य है। हर्ष की बात है कुछ उपनिवेशों में हमारे भाई गौ पालते हैं। वेस्ट इण्डीज में दूध बेचनेवाले भारतवासी ही हैं। और पैर मोरीशो में दूध का व्यापार विल्कुल हिन्दुस्तानियों के ही हाथ में है।

नवाँ निवेदन हमारा तिजारत के विषय में है। एक तो अँग्रेजी भाषा के न जानने और दूसरे अन्य प्रकार की शिक्षा की कमी के कारण अभी हमारे प्रवासी भाई विदेशों से व्यापार करना जानते ही नहीं। हमारी समझ में जो स्वतंत्र भारतवासी उपनिवेशों में बसे हुये हैं उन्हें अपने लड़कों को हिंदुस्तान में भेज कर अँग्रेज़ी की शिक्षा दिलवानी चाहिये, और व्यापारिक ढङ्ग सिखलाने चाहिये। उपनिवेशों में भीतर की तिजारत करने में तो हिन्दुस्तानियों ने अच्छी सफलता प्राप्त की है। दक्षिण अफ्रिका में जो सत्याग्रह का संग्राम हुआ था उसका एक कारण यह भी था कि हिन्दुस्तानियों ने फ़ेरी और बिसाँत गीरी द्वारा वहाँ के छोटे मोटे व्यापारों को अपने हाथ में लेलिया था जो उपनिवेश हिन्दुस्तानके निकट हैं उन में कुछ सिंधी और गुजराती सौदागर पहुँचे हुये हैं। यह लोग बड़ी चतुरता के साथ तिजारत करते हैं और हिन्दुस्तानसे सौदा मँगा मँगा कर अपने देशवासियों की आवश्यकता पूर्ण करते हैं। ब्रिटिश सेण्ट्रल आफ्रिका में कितने ही वनिये बड़ी योग्यता के साथ व्यापार करते हैं। मध्य अफ्रिका सम्बन्धी सरकारी रिपोर्ट में एक जगह लिखा हुआ है:—

"In every town in British Central Afica Protectorate there are what are called the "Bania Quarters" large colonies of these merchants."

(Parliamentary Blue Book Central Africa 1907,)

अर्थात्—"मध्य अफ्रिका के रक्षित राज्यके प्रत्येक नगर में व्यापारी बनियों के मुहल्ले बसे हुये हैं।"

दसवाँ निवेदन हमारा यह है कि आप लोग श्रमजीवी दल संगठित करें, मजदूरों की सभायें बनावें। बिना संगठन के इस संसार में कोई काम ठीक तरह से नहीं चल सकता। संघशक्तिद्वारा बड़े बड़े कठिन कार्य्य बड़ी आसानी के साथ हो सकते हैं। यूरोप के भिन्न भिन्न देशों में बड़े बड़े प्रभावशाली मजदूरदल संगठित हैं। प्रवासी भारतीय मजदूरों में संगठन नहीं है और उनकी शक्ति छिन्नभिन्न हो रही है। इससे भारतीयों की हानि और गोरे प्रभुओं का लाभ होना अनिवार्य्य है। जितने भारतीय गोरों के यहाँ नौकरी करते हैं, उन्हें एक आदर्श और एक ही विचार से प्रेरित होकर काम करना चाहिये। मजदूरों की संस्थायें स्थापित हो जानी चाहिये। इन संस्थाओं का कर्तव्य होगा कि वह यह निश्चित करें कि अमुक काम को कितने घंटे तक और कितना वेतन लेकर करना चाहिये।

हर्ष की बात है कि इसी उद्देश्य से मि. गोर्डन ली ने दक्षिण आफ्रिका में 'इण्डियन वर्कर्स यूनियन' नामक एक संस्था स्थापित की है। फ़िजी ट्रिनीडाड इत्यादि अन्य उपनिवेशों में भी इसी प्रकार की संस्थायें संगठित होनी चाहिये। बिना संगठन के प्रायः यह देखने में आता है कि एक भारतीय जिस काम को दो पौण्ड में करता है उसी काम को करने के लिये दूसरा आदमी ड्रेढ पौण्ड में तैयार हो जाता है। यदि यूरोप, अमरीका और जापान की तरह प्रवासी भारतीय श्रमजीवी दल संगठित हो जावें तो बड़ा भारी लाभ हो। यदि किसी भारतीय मजदूर को कोई गोरा मालिक दुःख देवे अथवा बुरा बर्ताव करे तो उसका उचित विरोध करना मजदूरों की संस्थाओं का कर्तव्य होगा। किम्बहुना भारतीय श्रमजीवी दल संगठित हो जाने पर कोई गोरा मालिक हिन्दुस्तानी मजदूरों पर अत्याचार नहीं कर सकेगा।

पीड़ित हों, चाहे वह विदेश गये हों या नहीं ? विदेशियों को बुरा कहना सहल काम है, लेकिन जो विदेशियों को बुरा कहते हैं उनका कर्तव्य है कि पहिले अपनी ओर भी देखें और इस बात पर विचार करें कि हम लोग स्वयं अपने भाइयों के साथ कैसा बर्ताव करते हैं। क्या हम इस बात में बिल्कुल निर्दोष हैं ? भारत के भिन्नभिन्न प्रान्तों में नीच जातियों के साथ बहुत बुरा बर्ताव किया जाता है। मैं पूँछता हूँ कि जो लोग अपने देश में स्वयं अपने भाइयों पर कलंक कर व निंद्य अन्याय व अत्याचार होते हुये देख कर उसे सहन कर लेते हैं, वह किस मुँह से दक्षिण अफ्रिका के विदेशियों की निन्दा कर सकते हैं ?"

वास्तव में महात्मा रानाड़े का कथन बिल्कुल सत्य है। हम लोगों ने अपने इस कर्तव्यकी ओर बहुत कम ध्यान दिया है। आसाम को वर्षों से मजदूर शर्तबन्दी में बँध कर जाते थे और वहाँ इन पुरुषों और स्त्रियों को जो जो कष्ट सहन करने पड़ते थे, यदि वह उपनिवेशों के कष्टों से ज्यादा नहीं थे तो कम भी नहीं थे। लेकिन पहिले तो हमारा ध्यान इधर गया ही नहीं और गया भी तो बहुत दिनों के बाद। पहिले पहिल श्रीयुत बाबू योगेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय ने 'चा-कुलीर आत्मकाहिनी' (चाय के कुलियों की आत्मकहानी) लिखकर सर्व साधारण का बड़ा उपकार किया था। *

नील की खेती करनेवाले गोरों ने बंगाल और विहार में जो जो अत्याचार किये हैं, उनकी कथा बड़ी ही हृदयवेधक है।

स्वर्गीय राय दीनबन्धु मित्र ने अपने 'नीलदर्पण' नामक नाटक में इन अत्याचारों का हूबहू वर्णन किया है। इस नाटक ने सम्पूर्ण

* इस पुस्तकका हिन्दी अनुवाद काशीनिवासी श्रीयुत गंगाप्रसादजी गुप्त ने छपवाया है।

बङ्ग प्रदेश में हलचल मचा दी थी। एक रोमन कैथोलिक पादरी ने जिसका नाम 'लाङ्ग' था, नीलदर्पण का अँग्रेजी अनुवाद किया था। सरकार ने उस पादरी पर अँग्रेजी अनुवाद करने के कारण मुकद्दमा चलाया था और पादरी को दो महीने की जेल और एक हज़ार रुपये के जुर्माने की सज़ा मिली थी। बंगभाषामें महाभारत के प्रसिद्ध अनुवादक स्वर्गीय काली प्रसन्नराय ने पादरी के जुर्माने का एक हज़ार रुपया दिया था। पादरी लाङ्ग हँसते हँसते जेल में गया और उसने कहा "जो कुछ मैंने आज किया है, वह मैं जेल से लौट ने पर भी करूँगा।" सचमुच पादरी लाङ्ग की तरह परोपकारी जीव संसार में बहुत ही कम पैदा होते हैं।

चम्पारन में निलहे गोरों के अत्याचार लगभग ६० वर्ष से ज्यों के त्यों जारी हैं, लेकिन अब महात्मा गान्धीजी ने उनको दूर करने के लिये प्रयत्न किया है। काँग्रेस को इस देश में स्थापित हुये ३१ वर्ष से अधिक हो गये, पर क्या कभी काँग्रेस ने अपना एक भी प्रतिनिधि चम्पारन के निवासियों के दुःखों की जाँच करने के लिये भेजा? गान्धी जी के सिवाय भारत में कितने ही नेता हैं, पर क्या कभी किसी को चम्पारन जाने की सूझी? बात वास्तव में यह है कि हम लोगों में बढ़ बढ़ कर बातें मारनेवाले बहुत हैं और असली काम करनेवाले थोड़े। यही कारण है कि हमारी आँखों के सामने अत्याचार होते रहते हैं और हमारे कानों पर भी जूँ नहीं रेंगती। सर्व साधारण की यही हालत है। सेठ जी कपड़े की दूकान करते हैं, एक आरकाटी कुछ बहकाई हुई औरतों को जिस दूकान पर लाता है और उन औरतों से कहता है कि "तुम्हारा जी चाहे उस कपड़े का दुपट्टा और लँहगा बनवा लो। बस अब तुम्हारे भाग्य का उदय है, फ़िजी, ट्रिनीडाड, जमैका इत्यादि में तुम्हें इससे भी बढ़िया कपड़े पहिनने को

मिलेंगे। हां लाला जी दिखलाइये तो सही कोई अच्छा सा कपड़ा।" लाला जी सरासर जानते हैं कि यह दुष्ट आरकाटी इन औरतों को बहका रहा है, पर क्या मजाल कि लालाजी उन औरतों के बचाने का कुछ भी यत्न करें!

मुफ़्त का माल खाखाकर मोटे और मुस्टण्डे हुये चौबे जी मथुरा में जै जमना मैया की करते हैं, और उनकी आखों के सामने ही सैंकड़ों ग्रामनिवासी स्त्रियों और पुरुषों को आरकाटी बहकाया करते हैं। इन दीन हीन भोले भाले भाईयों और बहनों को बचाना तो दूर रहा, यह लोग कभी कभी आरकाटियों से दक्षिणा पाकर उन्हें बहकाने में सहायता और देते हैं!

स्वयं हमारे देश में ही फेक्टरियों के मालिक अपने मजदूरोंसे इतना काम लेते हैं कि उन बेचारों का खून सूख जाता है। गवर्नमेंण्ट ने पंजाब, पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश, और दिल्ली प्रान्त की फेक्टरियों के विषय में लिखा है:—

"It is disappointing to learn that Indian employers still show a marked indifference to the well being of their employees as evidenced by their refusal to allow a proper rest interval, the deliberate disregard of the weekly holiday, the sweating of women and children and the squalid and insanitary nature of the housing accomodation provided."

अर्थात्—" यह बात बड़ी निराशापूर्ण है कि फेक्टरियों के हिन्दुस्तानी मालिक लोग अपने नोकर मजदूरों के प्रति अत्यन्त उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। इन मालिकों की इस उदासीनता और उपेक्षा का प्रमाण यही है कि यह लोग कार्य्य के बीच में मजदूरों के आराम के लिये थोड़ासा वक़्त देने से इंकार करते हैं। सप्ताह में एक दिन छुट्टी देने का जो नियम है, जान बूझ कर उसका यह लोग उल्लंघन करते

बहुत ही बुरा प्रभाव डालता है, जिनका इन कुली लेनों के आदमियों से थोड़ा सा दूरका भी सम्बन्ध है।"

इसके आगे चलकर फिर डाक्टर कैम्पबेल ने कहा:--

"Want of necessaries of life compells them to leave the seclusion of their village and in a community that claims to be civilised we have a right to demand for their conditions of existence which will not outrage their idea of propriety, but will make it possible for them to maintain their selfrespect, and foster aspirations after higher grade of social life."

अर्थात्—"जीवननिर्वाह के लिये आवश्यक साधन न मिलने के कारण इन मजदूर लोगों को अपने एकान्त ग्राम को छोड़ना पड़ता है। और जो जाति सभ्य होने का दम भरती है, उस जाति से हमें यह कहने का अधिकार है कि तुम इन मजदूरों के लिये इस प्रकार की परिस्थिति बनाओ, जो उनके न्याय और आचरणसम्बन्धी विचारों को भ्रष्ट करनेवाली न हो, बल्कि वह परिस्थिति ऐसी हो जिससे वह आत्मसम्मान की रक्षा करने में समर्थ हों और उत्तमतर कोटि का सामाजिक जीवन व्यतीत करने के लिये उनके हृदय में आकांक्षा हो।"

इन अवतरणों से स्पष्टतया प्रगट होता है कि कोयले के खेतों पर काम करनेवाले मजदूरों की स्थिति अच्छी नहीं है; क्या इस ओर ध्यान देना हमारा कर्तव्य नहीं है?।

सुनते हैं कि मलाबार में एक प्रकार की गुलामी ही प्रचलित है। अभी थोड़े दिन हुये मद्रास प्रान्त के अन्तर्गत उत्तर मलाबार में एक मोपले ने दूसरे मोपले के हाथ पुलियन जाति का एक गुलाम बेचा था। मामला चलने पर दौरा अदालत से प्रत्येक को एक एक वर्ष की कड़ी कैद की सजा मिली। मद्रास के हाईकोर्ट में इस मामले के पेश होने

पर मिस्टर जस्टिस रहीम ने कहा था कि ऐसी ऐसी घटनायें पुलियनों में बराबर हुआ करती हैं, और मिस्टर नेवियर ने यह बतलाया था कि अभियुक्त को यह विश्वास था कि हम जायज़ काम कर रहे हैं।

हम लोगों को जो शर्तबन्दी की गुलामी के विरोधी हैं, इस घर की गुलामी को भी शीघ्र ही जड़ मूल से नष्ट कर देना चाहिये।

कुमाऊँ प्रान्त में पुश्त दर पुश्त के लिये शर्तबँधे मज़दूर होते हैं, और यह मज़दूर सरकार के होते हैं। हमारे शिक्षित भारतीय भाइयों में से कितने ऐसे हैं जिन्हें इस बात का पता हो कि हमारे देश भारतवर्ष में ही एक प्रान्त ऐसा भी है, जहाँ पुश्त दर पुश्त के लिये शर्तबँधे मज़दूर होते हैं, जिन की सारी सम्पत्ति, और भूमि मज़दूरी करने से इनकार करने पर ज़ब्त की जा सकती है, चाहे वह बेरिस्टर हों, कलेक्टर हों, जज हों, रायबहादुर हों, सी. आई. ई. हों या व्यवस्थापक सभाके मेम्बर हों! यदि अफ्रिका और कनाडा तक की बात समझनेवाले हमारे शिक्षित भाइयों को अपने घर की इस अजीब गुलामी की प्रथा का परिचय नहीं, तो उनको हम सशोक सूचित करते हैं कि यह प्रान्त हमारे उदार ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत का वह प्रान्त है, जो इस समय यूरोपीय महायुद्ध में सबसे अधिक वीरता का परिचय दे रहा है, जो धार्मिक दृष्टि से अत्यन्त पवित्र है और जहाँ के नदी नालों तीर्थों और मन्दिरों से हिन्दू धर्म का घनिष्ट सम्बन्ध है।

कुमाऊँ प्रान्त की इस गुलामी का वर्णन १९ फर्वरी सन् १९१६ ई. के 'गढ़वाली' नामक समाचार पत्र में बड़ी खूबी के साथ किया गया है। उसी से कुछ बातें लेकर हम यहाँ लिखते हैं।

सैटिलमेण्ट में सरकार ने कुमाऊँ प्रान्त के निवासियों के साथ सरकारी तथा गैर सरकारी बोझा ढोने के लिये प्रत्येक ज़मीन्दार को बाध्य करने की शर्त रक्खी है, जिसका स्पष्ट अर्थ . . .

के हुक्म से बोझा ढोने से इनकार करने पर उनकी भूसम्पत्ति ज़ब्त हो सकती है। इस शर्त के अनुसार कुमाऊँ प्रान्त का प्रत्येक मुख्तार चाहे वह किसी पद पर क्यों न हो, सरकारी हुक्म से या तो बोझा ढोने के लिये मजबूर है या भूसम्पति छोड़ने के लिये!

कुमाऊँ प्रान्त के लोगों ने कितनी ही बार इस कुली प्रथा को दूर करने का आन्दोलन किया, किन्तु प्रत्येक बार यही कहा गया कि कुमाऊँ में बिना इस शर्त के काम नहीं चल सकता। इस पर भी कुमाऊँ प्रान्तवालों ने हिम्मत नहीं छोड़ी, उन्होंने कुली एजंसी क़ायम की और सरकार को कार्य्यद्वारा दिखला दिया कि बिना शर्त के भी बहुत उत्तम रीति से काम चल सकता है।

सरकार की ओर से यह भी कहा गया कि कुमाऊँ में भूमि-कर बहुत कम है, और वह इस लिये रक्खा गया है कि सरकार का बोझा ज़बर्दस्ती ढोना पड़ेगा। इस पर हमारी प्रार्थना यह है कि यदि ज़मीन की कठिनता का लिहाज़ न करके भूमि-कर कम रखा गया है तो सरकार उसको पूरी हद तक बढ़ा ले और इस गुलामी से कुमाऊँ प्रान्त को कृपापूर्वक मुक्त कर दे। कुमाऊँ निवासी इस कुली बेगार की प्रथा से इतने दुःखी हैं कि वह अधिक भूमि-कर देकर भी इस दुःखदायी शर्त से बचना चाहते हैं। गढ़वाल तो इस प्रथा से इतना घबरा गया था कि वहाँ के भले आदमियों ने उसे परित्याग करने का ही संकल्प कर लिया था। किन्तु इसी बीचमें एजन्सी खोलने की स्कीम पेश हुई। कुली एजंसी खोली गई और लोगों को शान्ति मिली। यदि उस स्कीम के अनुकूल ही कार्य्यवाही होती तो सारे गढ़वाल के लोगों का कष्ट सममाव से दूर होता, पर उस समय अनुभव करने के लिये एजंसी एक स्थान में खोली गई और पीछे असली स्कीम को अ

कुली ऐजेंसी की कमेटी स्थापित की गई, उसके प्रेसीडेण्ट डिप्टी कमिश्नर निर्वाचित हुये। यह कमेटी ही कुली ऐजेंसी की अधिकारिणी हुई। इसी की इच्छा व मंजूरी पर एजंसी खुलने लगी। किन्तु यह कमेटी एजन्सी खोलने में इतनी अनुदार है कि लोग एजंसी एजंसी चिल्ला रहे हैं तो भी एजंसी की यह महारानी उधर ध्यान नहीं देती।

बड़े आश्चर्य की बात है कि लोग अपना रुपया खर्च करके कुली एजंसी खोलना चाहते हैं, तो भी यह कमेटी उसमें टाँग अड़ाती है!

हम अपने भारतीय नेताओं का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं और उनसे प्रार्थना करते हैं कि वह अपने देश के एक प्रान्त को पुश्त दर पुश्त की गुलामी से मुक्त करावें। यदि कुमाऊँ वालों पर कोई अत्याचार होता है, तो उसे हमें अपने ऊपर किया हुआ अत्याचार समझना चाहिये; क्योंकि कुमाऊँ भी तो भारतमाता का एक भाग है, भाग ही क्यों, बल्कि एक सर्वशिरोमणि अङ्ग है।

मध्यप्रदेश के देशी राज्यों में बेगार प्रथाः—वैसे तो भारत के सभी प्रान्तों में थोड़ी बहुत बेगार की प्रथा जारी है, लेकिन मध्यप्रदेश और मध्यभारत के राज्यों में इसका खूब ही प्रचार है। जहाँ कहीं छावनी होती है, वहाँ बेगार का क्या पूँछना है? पोलिटिकल ऐजण्ट साहब जिस वक़ दौरे के लिये निकलते हैं, बिचारे चालीस पचास गाड़ीवालों की आफ़त आ जाती है। इन गाड़ीवालों को किराया आधा देते हैं और काम दूना लेते हैं। जो लोग बेगार में काम करते हैं वह इस अस्वाभाविक और निष्ठुरतापूर्ण कार्य्य को करने की वजह से इतने आत्मबलरहित बन जाते हैं और उनकी स्प्रिट इतनी मुर्दा हो जाती है कि वह यह समझने लगते हैं कि बेगार में काम करना हमारा कर्तव्य ही है। जिस समय अमेरिका में काले हबशियों को स्वतंत्रता प्रदान की गई थी, उस समय कुछ हबशी ऐसे थे, जो यह चाहते

थे कि हम को स्वतंत्रता न दी जावे और हम हमेशा गुलाम ही बने रहें। कुछ हबशियों ने अपने स्वाधीनकर्ताओं से यह उपर्युक्त प्रार्थना भी की थी। इसी तरह जब कोई आदमी बेगारी में—और बेगारी भी एक प्रकार की अल्पकालीन गुलामी है—काम करते रहते हैं तो फिर उनकी आत्मा बिलकुल निर्बल होती जाती है।

श्रीयुत मथुरा प्रसाद सिंह बी. ए, बी. एल. ने 'अभ्युदय' के २० जनवरी, २७ जनवरी और ३ फर्वरी सन् १९१७ई. के अङ्कों में बेगार की प्रथा के विषय में बहुत अच्छे लेख लिखे थे। मध्य प्रदेश के अन्तर्गत जो छत्तीसगढ़ के देशी रजवाड़े हैं, वहां की बेगार प्रथा का इन लेखों में खूब अच्छी तरह वर्णन किया गया था। इस वर्णन को पढ़कर हमारे हृदय को बड़ा खेद हुआ था। पाठक गण, आप भी इस बेगार की प्रथा का कुछ हाल सुन लीजिये।

"बेगारी का दस्तूर इन रजवाड़ों में बड़ा ही अन्धेर कर रहा है। कृषक बेचारों को अपना घर बार छोड़, खेती के काम से मुख मोड़ और बाल बच्चों से नाता तोड़ कर महीनों जंगल जंगल भटकना पड़ता है। इस पर भी खूबी यह कि खर्चा भी घर ही से ले जाना पड़ता है। इन जगहों के कृषकों की जो दुर्दशा है उसे देख कर कठोर से कठोर हृदय भी विदीर्ण हो सकता है। इस दुर्दशा के मूल कारण कई हैं, जिनमें प्रधान कारण निम्नलिखित हैं।

(१) देशी रईसों, चीफ़ों व ज़मीन्दारों की अधिकारलोलुपता।

(२) रियासत के अफ़सरों या पोलिटिकल हुक्कामों के दौरे का विचित्र इन्तज़ाम।

(३) सड़कों का और बार बरदारी का ठीक ठीक इन्तज़ाम न होना।

(४) इन रियासतों में रैयत और इलाक़ेदारों का विचित्र सम्बन्ध। इन्हीं कारणों से यह अन्धेर इस प्रकाशमय बीसवीं शताब्दी में भी हमारी आँखों में धूल झोंक रहा है।

प्रथम कारण:—रईसों की बदइन्तजामी। यहाँ के रईसों को दो दिन के लिये भी कहीं जाना हुआ तो सौ दो सौ कृषकों को घर छोड़कर, घर से चाँवल दाल बाँध कर एक सप्ताह तक भटकना पड़ेगा। गाँव के सम्बन्ध में यदि किसी ठेकेदार के साथ बन्दोबस्त हुआ था वह किसी खोर पोशदार को दिया गया तो उसी वक़्त रसद और बेगार का पक्का वादा करा लिया जाता है। यहाँ के ज़मीन्दारों जो पट्टा चीफ लोगों की तरफ़ से मिलता है, उसमें भी बेगारी जुटाने की शर्त प्रधान रहती है। बेगारी यहाँ पर दस बीस करके नहीं माँगे जाते, फ़रमाइशें होती हैं १००, २०० या अधिक की। थोड़ी दूर जाते हुये भी केवल रास्ते के लिये एक वा दो पलङ्ग आठ बेगारियों के सिर पर चढ़ते हैं। और भी कितनी ही चीजें जिनका रास्ते में टिक जाने की जगहों पर बख़ूबी इन्तज़ाम हो सकता है, बेगारियों के सिर पर लादी जाती हैं।

अमले व सिरिश्तेवाले, ज़मीन्दार और राजा साहब सभी कुछ कुछ खेती करते हैं। यह खेती कृषकों को पकड़ पकड़ कर बेगारी के द्वारा कराई जाती है। जिस समय बेचारों को अपनी खेती करनी थी, उसी समय वह अपने अफ़सरों की खेती करने के लिये पकड़ लिये जाते हैं। घास काटने, छप्पर छाने, और मिट्टी खोदने के लिये यह लोग ही पकड़ बुलाये जाते हैं।

द्वितीय कारण:—रियासत के अफ़सरों या पोलिटिकल हुक्कामों के दौरे। इन दौरों के भी समय में किसानों की जान पर आफ़त आ जाती है। दौरा शुरू होने के महीनों पहिले रसद और बेगार की धूम पड़ जाती है। मचान तैयार होते हैं, झाले बनाये जाते हैं, चट्टी

और रसद की शर्तों पर दिया जाता है। मालगुज़ारी कोई चीज़ नहीं।' एक कारण बेगारी के जारी रहने का यह भी है।"

बेगारियों की दुर्दशा

इस के आगे चलकर बा. मथुराप्रसाद सिंह बी. ए., बी. एल्. लिखते हैं "इन बेगारियों की क्या दशा है ? इनकी हालत से पशुओं तक की हालत बहतर कही जा सकती है। 'साला' तो इन बेचारों का नाम है। कोड़े पड़ते हैं, और पीठकी हड्डी दुरुस्त हो जाती है। भूमिकी उन्नति की ओर कृषक तनिक भी ध्यान नहीं दे सकते, क्योंकि खेतों पर उनका कुछ भी हक़ नहीं है।......इन की दुर्दशा का और हाल सुनिये। इस देश में कहीं कहीं तीन फ़सलें होती हैं, मगर प्रायः दो ही फसलों की प्रधानता है। खेती में परिश्रम करने का समय आश्विन और कार्तिक है और उधर जेठ आषाढ़ है, और फ़सल जमा करने का समय भादों, अगहन, पूस और चैत्रके महीने हैं। मगर इन्हीं समयों में ज़मीन्दार और दर्बारियों की भी खेती होती हैं इससे बेचारे कृषक काम करने नहीं पाते।

भारी अन्धेर हाकिमाना दौरा है। फाल्गुन चैत्र से आरम्भ होकर ज्येष्ठ आषाढ़ तक चला जाता है और इसी समय बिचारे किसानों की शामत आ जाती है। झाला बनाओ और खेमे ढोओ, यहाँ तक कि सिपाहियों और ख़ानसामों तक को बेगारियों की जरूरत पड़ जाती है.........इन बेगारियों को खाना या मज़दूरी नहीं दी जाती; घरसे खाने पीने का सामान बाँध कर लाना पड़ता है। खेती करने तो पाते नहीं, जो कुछ समय चोरी से बचाकर थोड़ा बहुत अन्न उप-

छत्तीसगढ के देशी राज्यों के निवासी कृषकों पर होते हैं। भारत भूमि, पवित्र भारतभूमि और ब्रिटिश साम्राज्य के भीतर मध्य प्रदेश के देशी रजवाडे ठीक नेटाल, ट्रान्सवाल और ट्रिनीडाड की तरह हो रहे हैं।"

आशा है कि ब्रिटिश सरकार इन देशी राज्यों पर दबाव डालकर इस बेगार की प्रथा को शीघ्र ही दूर करवा देगी।

भारतवासियों के अन्तिम कर्तव्य यानी 'किसानों के सुधार' के विषय में दो चार बातें लिखकर हम इस अध्याय को समाप्त करेंगे।

विदेश को जो लोग जाते हैं उनमें अधिकांश किसान होते हैं। यदि इन किसानों को भरपेट भोजन मिले तो फिर यह क्यों द्वीप द्वीपान्तरों में मारे मारे फिरें। हमें खेद के साथ कहना पडता है कि किसानों की शोचनीय अवस्था का हमें बहुत कम ज्ञान है। इस समय हिन्दुस्तान में ७१ फ़ीसदी आदमी खेती में लगे हुये हैं और पिछली तीस वर्षों से किसानों की संख्या बराबर बढती ही जाती है। यद्यपि हमें विश्वास है कि ज्यों ज्यों नये नये उद्योग धंधे जारी होते जावेंगे त्यों त्यों अधिकाधिक किसान उनकी ओर खिंचते जावेंगे, लेकिन तो भी खेती के व्यवसाय में शीघ्र ही कोई बडी भारी कमी होगा असम्भव है। हम लोगों को समझ लेना चाहिये कि किसानों की स्थिति के सुधरे बिना देश की उन्नति कदापि नहीं हो सकती। किसानों को साथ लिये बिना हमारे राजनैतिक आन्दोलन भी सफल नहीं हो सकते। यदि किसान लोग अज्ञान-अन्धकार में डूबे रहे तो कांग्रेस और कान्फ्रेंसों की सिंहगर्जन वक्तृताओं से क्या लाभ होगा? आवश्यकता इस बात की है कि देश के नेता लोग अपने बँगलों और भवनों से निकल कर फूसकी झोपड़ियों में रहनेवाले निर्धन कृषकों के उद्धार का उपाय करें। इन लोगों की दुर्दशा ज्यों की त्यों

बनी हुई है, यह लोग अब भी बाबा आदम के ज़माने का हल काम में लाते हैं, अब भी इनके लिये काला अक्षर भैंस बराबर है और ब्याज खानेवाले महाजन अब भी इन्हें अपना शिकार बनाते हैं। ऋणग्रस्त किसान ही आरकाटियों के फन्दे में बड़ी आसानी के साथ फँस जाते हैं और द्वीपद्वीपान्तरों में जाकर बे-मौत मरते हैं। इस लिये सबसे पहिले हमारा यह कर्तव्य है कि किसानों को ऋणग्रस्तता से बचावें। किसानों की ऋणग्रस्तता के कई कारण हैं उनमें मुख्य मुख्य निम्नलिखित हैं।

सबसे प्रथम कारण उनका अज्ञान है। वह गाँव के बनिये से क़र्ज़े पर क़र्ज़ा लेते चले जाते हैं, जब कि उसको चुकाने की शक्ति उनमें नहीं होती।

दूसरा कारण उनका अपव्यय है। व्याह और गमी के वक़ पर यह लोग बे हिसाब ख़र्च कर डालते हैं।

तीसरा कारण मुक़द्दमेबाज़ी है।

चौथा कारण यह है कि पुलिस और तहसील के सिपाही उन पर दबाव डालकर उनसे रुपये ठगते हैं।

पाँचवाँ कारण यह है, कि मनुष्यों की संख्या तो बढ़ती जाती है, लेकिन खेतों की उपज नहीं बढ़ती है।

छटवाँ कारण यह है कि ज़मीन की क़ीमत बढ़ जाने से अब क़र्ज़ आसानी से मिल जाता है, इससे भी ऋणग्रस्तता की प्रवृत्ति बढ़ती है।

महाजनों की संख्या भी पहिले से अधिक हो गई है।

इन कारणों के दूर करने की आवश्यकता है; इनके दूर करने के उपाय यह हैं। (१) देश में प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य की जावे, (२) जगह जगह सहयोग समितियाँ स्थापित की (३) पंचायतों की प्रथा का उद्धार किया जावे, और (४)

खेतों की पैदावार बढ़ाने के लिये भिन्नभिन्न प्रकार की खादों का प्रयोग किया जावे, तथा नये नये वैज्ञानिक यंत्र काम में लाये जावें।

बिना इन उपायों को किये किसानों की आर्थिक दशा ठीक नहीं हो सकती, जब तक इन लोगों की आर्थिक दशा ठीक नहीं होवेगी तब तक वह ऋणग्रस्त बने रहेंगे और ऋणग्रस्त किसान ही विदेशों को मजदूरी करने के लिये जावेंगे और वहाँ जाकर असह्य यातनायें सहन करेंगे।

प्रिय पाठकगण, हमने इस अध्याय में 'प्रवासी भारतीयों' के प्रति हमारे जो कर्तव्य हैं उनका संपेक्ष में वर्णन किया है। अब सरकार का क्या कर्तव्य है और हम क्या चाहते हैं, यह बात हम अगले अध्याय में लिखेंगे।

का विरोध किया था, उस समय ही यदि सरकार इस प्रथा को बन्द कर देती तब भी बहुत अच्छा होता, लेकिन सरकार ने सन् १८३७ई. के पाँचवें और कम्पनी सरकार के ३२ वें ऐक्ट को मंजूर करके गुलामी प्रथा को विधिविहित स्वरूप दे दिया और फिर सन् १८४३ई. के पाँचवें ऐक्ट को पास करके इस दासत्व प्रथा पर एक नवीन पोशाक और चढ़ा दी। सरकार ने मोरीशस, जमैका, ब्रिटिश गायना इत्यादि ब्रिटिश उपनिवेशों को तो कुली भेजेही, पर फ्रेंच और डच लोगों के साथ भी भलाई करने में कसर नहीं की!

जब सरकार ने भारत से कुली इकट्ठे करने को एक राज्यमान्य धंधा बना कर आरकाटियों को यह काम सौंपा, तब उसे सोचना चाहिये था कि इसका क्या परिणाम होगा?

यदि ब्रिटिश सरकार अपने विलायती आरकाटियों के दुष्कर्मों पर ख्याल करती तो उसे फौरन पता लग सकता था कि आरकाटी कैसे कैसे अत्याचार कर सकते हैं। Stories of the Nation series की वेस्ट इण्डीज़ नामक पुस्तक के १४५-१४७ पृष्ठों में इन विलायती आरकाटियों के विषय में अच्छा वर्णन दिया हुआ है। जब वेस्ट-इण्डीज़ (पश्चिमीय द्वीपसमूह) के निवासी गोरे प्लाण्टरों को मज़-दूरों की आवश्यकता हुई थी, और कहीं मज़दूर नहीं मिलते थे, तब विलायत में भी कुछ आरकाटी पैदा हो गये थे, जो स्काटलैण्ड और आयरलैण्ड के किनारों से गोरे मज़दूरों को पकड़ पकड़ कर वेस्टइण्डीज़ को भेज देते थे। उपर्युक्त पुस्तक में लिखा है:—

"वेस्टइण्डीज़ के अँग्रेज़ प्लाण्टरों को मज़दूर नहीं मिलते थे, और मज़दूरों की बड़ी भारी आवश्यकता थी। कहीं न कहीं से मज़दूर आने ही चाहिये। इस लिये इन प्लाण्टरों ने सोचा कि 'यदि अँग्रेज़ मज़दूर अपनी राज़ी से उपनिवेशों में मज़दूरी करने के लिये नहीं आना

चाहते तो फिर उन्हें बहकाकर यहाँ लाना चाहिये।' इसका नतीजा यह हुआ कि बहुत से गुंडों की एक संस्था स्थापित हो गई। यह लोग स्काटलेण्ड और आयरलेण्ड के किनारे जहाज़ों को ले जाते थे और जब उन्हें मौक़ा मिलता था तो यह बदमाश लोग भोलेभोले आदमियों को उड़ा देते थे।

इसका परिणाम यह हुआ कि चारों ओर से पबलिक ने हाय तोबा मचाना शुरू किया और गवर्नमेण्ट को इस मनुष्य-चोरी के बन्द करने के लिये उपाय सोचने पड़े। सन् १६६१ ई. में अंग्रेज़ों की प्रवासी-समिति ने यह विचार किया कि किस तरह के आदमियों को विदेश भेजना चाहिये। आख़िरकार इन लोगों ने यह निश्चित किया कि छोटे छोटे अपराधों के करनेवाले मनुष्य और मोटे ताज़े भिखमंगे उपनिवेशों को भेज दिये जावें। फलतः कितने ही पुरुष, स्त्रियाँ और बालक बालिकायें बहकाई जाकर विदेशों को भेजी जाने लगीं। अन्त में ब्रिस्टल के मेयर साहब ने और लन्दन के लार्ड मेयर ने महाराजाधिराज से प्रार्थना की कि हम लोगों को यह अधिकार दिया जावे कि हम सब उन जहाज़ों की जाँच कर सकें, जिन में कि भर्ती किये हुये लोग विदेशों को भेजे जाते हैं, और इस बात का पता लगा सकें कि वे लोग अपनी राज़ी से जाते हैं या बहकाकर भेज दिये जाते हैं। लोग कहते थे कि सैकड़ों ही आदमी अपनी स्त्रियों को छोड़कर उपनिवेशों को चले गये और सैकड़ों ही औरतें अपने पतियों को छोड़कर विदेशों को चली गईं। इसके अतिरिक्त कितने ही लड़के और उम्मेदवार लोग घर से लापता हो गये थे, और अनेक अन्धविश्वासी और मूर्ख लोग, आदमियों की चोरी करनेवाले आरकाटियों द्वारा बहकाये जाकर वेस्टइन्डीज़ को भेज दिये गये थे। बहुत से उठाईगीरे, उचक्के और डाकू लोग जेलखानों से निकल कर वेस्ट-

इण्डीज़ को भाग गये थे। भर्तीवालों ने कितने ही नवयुवकों को छल कपट से देश के बाहिर भेज दिया था। इन सब बातों का नतीजा यह हुआ कि लन्दन में बड़ा होहल्ला मच गया, शान्ति भङ्ग होने की आशङ्का हुई और आदमियों की जान जोखम में पड़ गई। इन बुराइयों का परिणाम यह हुआ कि सितम्बर सन् १६६४ ई. में कौंसिल ने यह क़ायदा पास कर दिया कि जो लोग अपनी राज़ी से विदेश जाना चाहें उन्हें अपने नाम रजिस्टर कराने चाहिये। इसलिये लार्ड हाई ऐडमिरल और बन्दर गाह के अफ़सर कमिश्नर के पद पर नियुक्त किये गये और उन्हें रजिस्ट्री करने और सार्टीफिकेट देने का काम सौंपा गया। लेकिन इतना होने पर भी मनुष्यों का चुराया जाना बन्द न हुआ! सन् १६६८ ई. में सर ऐन्थनी ऐशले कूपर साहब से लोगों ने प्रार्थना की कि आप हाउस आफ़ कामन्स में यह प्रस्ताव करें कि भर्तीवालों को फाँसी की सज़ा दी जावे। सर ऐंथनी साहब ने यह प्रस्ताव पेश करते हुये कहा कि "मेरे एक प्रार्थी ने बड़े ख़र्चे और बड़ी दिक़्क़त के बाद एक लड़के को बचाया है, लेकिन इसके सिवाय कितने ही लड़के उसी जहाज़ पर हैं और अन्य जहाज़ों पर भी वही काम कर रहे हैं। अगर मातापिताओं को अपने लड़के मिल भी जाते हैं तो भी वह उन्हें धनाभाव के कारण नहीं छुड़ा सकते। यदि यह क़ानून बना दिया जावे कि भर्तीवालों को प्राणदण्ड दिया जावेगा तो यह निस्सहाय और अज्ञान बालक इस नियम के बनानेवालों को आशीर्वाद देंगे। प्रथम मार्च सन् १६७० ई. को यह क़ानून बना दिया गया कि जो आदमी किसी भी मनुष्य को बहका कर विदेश को भेजेगा उसे प्राणदण्ड की सज़ा दी जावेगी और कोई पादरी उस के शव के साथ नहीं जावेगा।"

यदि ब्रिटिश सरकार भारतीय आरकाटियों को भी प्राणदण्ड

देने का नियम बना देती तो फिर हजारों और लाखों अभागे मनुष्यों की जान बचती और हमारे देश भारत के सिर पर दासत्व प्रथा का कलंक न लगता।

दूसरी भूल जो सरकार ने की वह यह है कि उपनिवेशों को कुली भेजना अपना कर्तव्य समझ लिया। बल्कि गवर्नमेण्ट बराबर इस बात के लिये चिन्तित रहती है कि किसी न किसी तरह उपनिवेशों को कुली भेजे जाने चाहिये। बंगाल के मजिस्ट्रेट लोगों को जो सरकारी हुक्म मिले हैं, वह हमारे इस कथन के प्रमाण हैं। २ मार्च सन् १९१७ ई. के 'लीडर' में ये हुक्म छपे हुये हैं। देखिये सरकार क्या कहती है:—

"The attitude of the Government in regard to colonial emigration has been in some particulars misunderstood by local officers, and it is therefore necessary to state that the Government is anxious to promote emigration to colonies. Direct official aid can not be given to recruitment, but no obstacle should be needlessly put in its way and the officers should do their best to facilitate the operation of the agencies by speedily registering, in accordance with the act and the rules, the emigrants brought before them, and by disposing all emigration business generally without delay."

'A magistrate has no power to cancel a license.'

'A magistrate need not ordinarily enquire into the character, of a recruit before counter-signing his license.'

अर्थात्–" उपनिवेशों को कुली भेजने के विषय में सरकार की जो नीति है उसे स्थानीय अफसरों ने ठीक तरह नहीं समझा है; इस लिये यह बतला देना आवश्यक है कि गवर्नमेण्ट उपनिवेशों को कुली भेजने के लिये चिन्तित है। यद्यपि सरकारी अफसर कुलीम भर्ती के काम में मदद नहीं दे सकते, लेकिन तो भी अफसर

गों को उचित है कि वह बिना किसी ख़ास आवश्यकता के कुली भर्ती
रनेवाली एजेन्सियों के मार्ग में बाधा न डालें और जहाँ तक हो
के वहाँ तक उनके काम के लिये सुविधा करें, कानून और कायदों
मुताबिक़ जल्दी से उन लोगों की, जो विदेश जा रहे हैं, रजिस्ट्री
रें और ऐमीग्रेशन सम्बन्धी जो कुछ कार्य्य उनके सामने लाया जावे
से साधारणतः बिना किसी देर के पूरा कर दें।'

'मजिस्ट्रेट को लैसंस के रद्द करने का अधिकार नहीं है।'

'मजिस्ट्रेट को साधारणतया इस बात की आवश्यकता नहीं है
के वह भर्तीवाले लैसंस पर हस्ताक्षर करने के पहिले उसके चाल-
चलन के बारे में जाँच करे।'

इन हुक्मनामों से सरकार की नीति बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है।
हम इस नीति को अत्यन्त निन्दनीय समझते हैं। लार्ड हार्डिञ्ज ने
१५ अक्टूबर सन् १९१५ ई. के खरीते में भारतसचिव को बहुत ही
ठीक लिखा था:—

"But, after all it is not the duty of the Government of India to provide coolies for the colonies."

अर्थात्—"उपनिवेशों को कुली भर्ती कर कर के भेजना यह भारत
सरकार का कर्तव्य नहीं है।" यदि भारत सरकार प्रारम्भ से ही यह
बात समझ जाती तो बड़ी अच्छी बात होती। ख़ैर अब भविष्य में हमें
देखना है कि सरकार अपनी पुरानी नीति के अनुसार काम करती है
या लार्ड हार्डिञ्ज के कथन पर ध्यान देती है।

तीसरी भूल जो सरकार ने की वह यह है कि सरकार ने
प्रजा से वसूल किये हुये टैक्सों का उपयोग प्रजा को कुली बनाने के
लिये किया।

४००) रु. कमीशन में दिये गये और १८१७–१८ में ७८०) रु. देने का अनुमान किया गया है। इस प्रकार क्लार्कों का वेतन और कमीशन मिलाकर १५०० रु. होते हैं। जो रकम क्लार्कों से बचाई गई, प्रायः वही कमीशन में दे दी गई; क्योंकि १९१५–१६ में ऐमीग्रेशन खाते में १६३४) रु. और १८१६–१७ में १७००) रु. खर्च किये गये थे। इसके सामने जमा की ओर कोई रकम नहीं है, जिससे मालूम हो कि यह धन कहाँ से आया; हाँ ३५००) रु. की रकम जमा है, पर ऐमीग्रेशन खाते में क्या जमा है पता नहीं। यदि फाइनेनशल सेक्रेटरी यह बता सके कि १५००) रु. की रकम ऐमीग्रेशन एजेण्टों से वसूल की जाती है, और प्रजा के धन से नहीं दी जाती, तो मेरा प्रस्ताव व्यर्थ हो जायगा।"

इस प्रस्ताव के विरुद्ध सरकार के कई मेम्बर यहाँतक कि अध्यक्ष भी बोले, पर किसी ने ऐसी बात नहीं कही जिस से १५००) रु. का व्यय न्याय्य ठहरता। जो भारतवासी कुली प्रथा के विरोधी हैं, उन्हीं के धन से इसमें प्रत्यक्ष वा परोक्ष रूप से क्यों सहायता दी गई? हमारे भाइयों को कुली बनाने में हमारे ही धन का उपयोग करना घोर अन्याय है। जिस काम को हम अच्छा नहीं समझते उसके लिये हम एक भी कौड़ी देने को राज़ी नहीं हैं।

अब मि. चिन्तामणि के प्रस्ताव पर वोट लिये गये तब १६ निर्वाचित सदस्यों ने और एक मनोनीत सदस्य ने प्रस्ताव के पक्ष में वोट दिये, और लाटसाहब, १६ अफ़सरों, और ४ मनोनीत सदस्यों ने इसका विरोध किया। विरुद्ध मत देनेवालों में बनारस के कुँवर साहब और जहाँगीराबाद के राजा साहब भी थे!!

वास्तव में सरकार की यह बड़ी भारी भूल थी, कि उसने प्रजा से वसूल किये हुये रुपयों का ऐसा दुरुपयोग किया।

तर ऐस. पी. सिनहा भी इस में भाग लेते यदि उन्हें जल्द ही भारत को वापस न आना होता। इन्हीं इण्डिया आफिसवाले लोगों ने बिना भारतीय लोकमत को जाने हुये उपनिवेशों को कुलियों के भेजने के लिये एक नई प्रण खड़ी कर दी है। यदि सरकार इस कान्फ्रेंस में महात्मा गान्धी को सम्मिलित कर लेती तो इस में क्या हानि थी?

पाँचवीं भूल जो सरकार ने की है, और अबतक कर रही है, वह यह है कि सरकार ने उपनिवेशों को जिस पङ्क्ति में बिठलाया है उस पङ्क्ति में भारत को नहीं बिठलाया। यह पंक्ति-प्रपंच वास्तव में अनुचित और अन्यायपूर्ण है। साम्राज्य की भावी रचना के सम्बन्ध में साम्राज्यपरिषद् ने जो निश्चय किया है वह इस प्रपंच का एक ताज़ा उदाहरण है। साम्राज्य परिषद् ने साम्राज्य की भावी रचना के मूल सिद्धान्त अभी से निश्चित कर दिये हैं। वह सिद्धान्त यह हैं– "उपनिवेशों के पहले के प्राप्त स्वतंत्र स्वराज्य के सभी हक़ बहाल रक्खे जावें, उनके भीतरी कारोबार के सम्बन्ध में जो नाम मात्र अधिकार उन्हें अब तक नहीं मिले थे, वह भी आगे से उन्हें सौंप दिये जावें, तथा पर-राष्ट्रों से इङ्गलेण्ड का जो सम्बन्ध रहेगा, उसके विषय में उपनिवेशों को अपना मतामत प्रकट करने का अधिकार दिया जावे।" इन प्रस्तावों को पढ़कर हमारे मन में यही भावना उत्पन्न होती है कि उपनिवेशवाले स्वराज्य के पूरे पूरे हक़दार बनेंगे, वह अनन्त काल तक स्वराज्य-सुख का भोग करेंगे तथा अबतक इसमें जो कमी रह गई है उसे भी पावेंगे, पर भारत के लिये स्वराज्य की चर्चा करना पाप समझा जाता है। इस प्रस्ताव में कहा गया है:—

"Full recognition of dominions as autonomous nations of the Imperial Commonwealth and of India as an important portion there of."

चौथी भूल सरकार ने यह की कि कुली प्रथा की जाँच के लिये जो कमीशन नियुक्त किये उनमें शिक्षित भारतवासियों को सम्मिलित नहीं किया। मिस्टर मैकनील के साथ सरकार ने लाला चिम्मनलाल को उपनिवेशों में जाँच करने के लिये भेजा था। जिस दिन हम ने सुना कि श्रीयुत चिम्मनलालजी सेठ नत्थीमल के भतीजे हैं, जो युक्तप्रदेश की कौंसिल के एक 'हाँ हुजूर' मेम्बर थे, उसी दिन हमने समझ लिया था कि कुली प्रथा के कमीशन की रिपोर्ट कैसी निकलेगी। आखिर हुआ भी वही; चिम्मनलालजी ने कुली प्रथा की बड़ी प्रशंसा की, और इसके क़ायम रखने की सिफ़ारिश भी की!! भला हो लार्ड हार्डिञ्ज का कि उन्हों ने मिस्टर मैकनील और लाला चिम्मनलाल के सदुपदेशों पर ध्यान न देकर शर्तबन्दी की प्रथा को बन्द कर दिया।

अभी थोड़े ही दिन हुये, लन्दन में जो कान्फ्रेंस नवीन कुली प्रथा पर विचार करने के लिये की गई थी उस में भी कोई ग़ैर सरकारी हिन्दुस्तानी सम्मिलित नहीं किया गया था। हमारी वर्तमान शासनप्रणाली के शासक इतनी बड़ी भ्रान्ति कदापि नहीं कर सकते कि ऐसे विषय में भी, जिसमें भारतवर्ष की मान मर्यादाका करने का सवाल हो, भारतवासियों को लोकमत प्रगट करने का अवसर दें। शायद इन शासकों ने समझ लिया है कि मालवीय जी और गान्धी जी अपने देश के हित और अनहित को उतनी खूबी के साथ कदापि नहीं समझ सकते, जितनी खूबी के साथ कि लन्दन में पला हुआ और लन्दन में ही बैठा हुआ एक अँग्रेज़ हाकिम समझ सकता है!! विधि की विडम्बना है हम को अपनी भलाई का ज्ञान नहीं हो सकता, इस ज्ञान का ठेका तो हमारे हाकिमों को ही परमात्मा ने दे दिया है!!

इसी वजह से ही इस कान्फ्रेंस में केवल इण्डिया आफ़िस और उपनिवेश विभाग के प्रतिनिधि सम्मिलित थे। सर जेम्स मेस्टन और

सर ऐस. पी. सिनहा भी इस में भाग लेते यदि उन्हें जल्द ही भारत को वापस न आना होता। इन्हीं इण्डिया आफिसवाले लोगों ने बिना भारतीय लोकमत को जाने हुये उपनिवेशों को कुलियों के भेजने के लिये एक नई प्रश्न खड़ी कर दी है। यदि सरकार इस कान्फ्रेंस में महात्मा गान्धी को सम्मिलित कर लेती तो इस में क्या हानि थी?

पाँचवी भूल जो सरकार ने की है, और अबतक कर रही है, वह यह है कि सरकार ने उपनिवेशों को जिस पङ्क्ति में बिठलाया है उस पङ्क्ति में भारत को नहीं बिठलाया। यह पंक्ति-प्रपंच वास्तव में अनुचित और अन्यायपूर्ण है। साम्राज्य की भावी रचना के सम्बन्ध में साम्राज्यपरिषद् ने जो निश्चय किया है वह इस प्रपंच का एक ताज़ा उदाहरण है। साम्राज्य परिषद् ने साम्राज्य की भावी रचना के मूल सिद्धान्त अभी से निश्चित कर दिये हैं। वह सिद्धान्त यह हैं– "उपनिवेशों के पहले के प्राप्त स्वतंत्र स्वराज्य के सभी हक़ बहाल रक्खे जावें, उनके भीतरी कारोबार के सम्बन्ध में जो नाम मात्र अधिकार उन्हें अब तक नहीं मिले थे, वह भी आगे से उन्हें सौंप दिये जायँ, तथा पर-राष्ट्रों से इङ्गलेण्ड का जो सम्बन्ध रहेगा, उसके विषय में उपनिवेशों को अपना मतामत प्रकट करने का अधिकार दिया जावे।" इन प्रस्तावों को पढ़कर हमारे मन में यही भावना उत्पन्न होती है कि उपनिवेशवाले स्वराज्य के पूरे पूरे हक़दार बनेंगे, वह अनन्त काल तक स्वराज्य-सुख का भोग करेंगे तथा अबतक इसमें जो कमी रह गई है उसे भी पावेंगे, पर भारत के लिये स्वराज्य की चर्चा करना पाप समझा जाता है। इस प्रस्ताव में कहा गया है:—

"Full recognition of dominions as autonomous nations of the Imperial Commonwealth and of India as an important portion there of."

अर्थात्–" उपनिवेशों को पूर्णरूप से साम्राज्य के स्वराज्यप्राप्त राष्ट्रों की हैसियत में स्वीकार करना और भारतवर्ष को साम्राज्य का एक महत्त्वपूर्ण भाग मानना।" हमारी समझ में 'महत्त्वपूर्ण भाग' के मानी नहीं आ सकते। क्या इसका महत्त्व इस लिये है कि यह हर समय अपने ही खर्च से एक ऐसी फ़ौज तैयार रखता है जो चाहे जब और जिस भाँति साम्राज्य के काम में आ सकती है? क्या इसका महत्त्व इसलिये है कि यह विलायतवालों के पेट भरने के लिये गेहूँ और उनके कारखानों के लिये कपास देता है? क्या इसका महत्त्व इस लिये है कि इसकी रत्नगर्भा भूमि से सहज में बहुत सा सोना और दूसरे बहुमूल्य पदार्थ विलायत भेजने के लिये मिल जाते हैं! क्या इसका महत्त्व इसलिये है कि इसके बाज़ारों में हर साल करोड़ों रुपये के मूल्य के विलायती पदार्थों की खपत होती है?

अगर 'महत्त्वपूर्ण भाग' का अर्थ यही है तो हम यही कहेंगे कि जिस महत्त्व में स्वराज्य के स्वत्व का समावेश नहीं होता वह महत्त्व हम से दूर ही रहे!

कभी कभी सरकार यह भी कहती है कि स्वराज्यप्राप्त उपनिवेशों को हम किसी प्रकार नहीं दबा सकते, चाहे वह भारतवासियों के साथ कैसा ही बर्ताव क्यों न करे। इसका उत्तर हम यह देते हैं कि 'वह तुम्हारा उपनिवेश है, तुमने उसे स्वराज्य दिया है, पर यह स्वराज्य इसलिये नहीं है कि तुम्हारे अधीन होकर भी वह तुम्हारी प्रजा पर अत्याचार अथवा उसके साथ अन्याय करे। प्रत्युत्तरमें अँग्रेज़ राजनीतिज्ञ यह कह देते हैं कि हमारे यहाँ स्वराज्यप्राप्त उपनिवेश को किसी बात में दबाने का नियम नहीं है। इसका उत्तर हम यह देते हैं। 'तुम्हारा नियम ठीक नहीं है, उसका संशोधन करो। यदि अमेरिका अपने एक राज्य को कुछ काम करने के लिये दबा सकता है

फिर तुम अपने स्वराज्यप्राप्त उपनिवेश को क्यों नहीं दबा सकते ?" इसका जवाब कुछ नहीं मिलता। बात असल में यह है कि नोकर के लिये अपने सयाने लड़केको कोई नहीं मारता। जिसदिन भारत को स्वराज्य मिलेगा, उसी दिन यह भेदमात्र और पंक्तिप्रपंच दूर होगा।

छटवीं भूल जो सरकार ने की वह यह है कि इस विषय में सरकार ने अपनी नीति को बहुत गड़बड़ रखा है। जिन लोगों ने मि. चेम्बरलेन का खरीता और लार्ड चेम्सफोर्ड की स्पीच पढ़ी हैं वह कह सकते हैं कि या तो सरकारको इस विषयका बहुत ही कम ज्ञान है अथवा वह जानबूझ कर अज्ञान बनती है। पहिले लार्ड चेम्बरलेन के खरीते को ही लीजिये। लार्ड हार्डिञ्ज की सरकार ने जो ज़ोरदार खरीता कुली प्रथा के विषय में भारत सचिव को भेजा था उसके उत्तर में मि. चेम्बरलेन ने लिखा था "सैण्डरसन कमेटी की रिपोर्ट पढ़ने के बाद मैं आप का कुली प्रथा उठा देने का प्रस्ताव सुनने को तैयार न था।" जिस समय हमने यह वाक्य पढ़ा उस समय हम समझ गये कि 'न्यू इण्डिया का मि. चेम्बरलेन को 'नोन थिङ्क चेम्बरलेन कहना अत्युक्ति नहीं है। शर्तबन्दी कुली प्रथा की जाँच के लिये लार्ड सैण्डरसन की अध्यक्षता में कमेटी बैठे दस वर्ष हो गये और कोई नौ वर्ष हुये जब उसकी रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी। इन नौ वर्षों में कुली प्रथा के विषय में भारत में कितना घोर आन्दोलन हुआ और इस प्रथा की कौन कौन सी बुराइयाँ प्रगट हुईं, तथा भारत में कितना स्वाभिमान घटा इन बातों को जानना मि. चेम्बरलेन ने अपना कर्तव्य नहीं समझा। मिस्टर ऐण्ड्रूज़ और मि. पियर्सन की रिपोर्ट की तो बात ही क्या, मिस्टर चेम्बरलेन के कथन से तो ऐसा मालूम होता है कि उन्हों ने मिस्टर मैकनील और लाला चिम्मनलाल की भी रिपोर्ट को नहीं पढ़ा!

कुली प्रथा को जड़ से नष्ट कर देने का आन्दोलन भारतवासी क्यों कर रहे थे, यह भी मिस्टर चेम्बरलेन की समझ में नहीं आया था। आप ने लिखा था कि 'शायद भारतवासी कुली प्रथा का विरोध इस लिये करते हैं कि स्वराज्यप्राप्त उपनिवेश भारतवासियों को अपने यहाँ नहीं आने देते।' इसके बाद आपने फर्माया था:—

"The attitude of Canada and Australia towards free immigration is due to deeper causes than the existence of indentured labour in the West Indies and Fiji, and will not be affected by the discontinuance of the System."

अर्थात्—"कनेडा और आस्ट्रेलिया जो भारतवासियों को स्वतंत्रतापूर्वक अपने यहाँ नहीं घुसने देते इसके कारण भीतरी हैं; वेस्टइण्डीज़ और फ़िज़ी में शर्तबन्दी की मजदूरी का होना इसका कारण नहीं है। यदि इन जगहों को कुलियों का जाना बन्द कर दिया जावेगा तो कनेडा और आस्ट्रेलिया पर इसका कुछ प्रभाव न पड़ेगा।"

हम पूछते हैं कि आप से यह किसने कह दिया था कि स्वराज्यप्राप्त उपनिवेशों पर प्रभाव डालने के लिये हम कुली प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन कर रहे हैं? बात असली यह थी कि मि. चेम्बरलेन इस विषय से बिल्कुल अनभिज्ञ थे इसी लिये उन्होंने अपनी कल्पना का भूत खड़ा किया और फिर उसके पछाड़ने की कोशिश की। मि. चेम्बर लेन को इस बातका पता नहीं था कि हम लोग कुली प्रथा की सैकड़ों बुराइयों की ही वजह से उसे नष्ट करने के लिये आन्दोलन करते थे। एक जगह मि. चेम्बरलेन ने लिखा था कि:—

"There is a vague belief sometimes expressed, that the Status of indentured women exposes them to ill-treatment."

अर्थात्—"यह विश्वास संदेहयुक्त है कि शर्तबन्द मजूरिनों की स्थिति के कारण उन पर अत्याचार होते हैं।"

यदि मि. चेम्बरलेन, मि. ऐण्ड्रूज़ और मि. पियर्सन की रिपोर्ट पढ़ने का कष्ट उठाते तो उनको भारतीय स्त्रियों की दुर्दशा का पता लग सकता था। इसके सिवाय यदि वह अपने शाही दिमाग को ज़रा तकलीफ़ ही देते तो भी उन्हें ऐसी अज्ञानतापूर्ण बात न लिखनी पड़ती। पहिली बात तो यही है कि सैंकड़ा पीछे अस्सी से अधिक स्त्रियाँ ऐसी जाती थीं, जिनके पति नहीं जाते थे और इन स्त्रियों पर कुली डिपो से ही कुदृष्टि पड़नी आरम्भ हो जाती थी, भला ऐसी स्थिति में उनके सतीत्व की रक्षा कैसे हो सकती थी? न जाने कितनी स्त्रियों पर गोरे ओवरसियरों और हिन्दुस्तानी सरदारों ने बलात्कार किये, न जाने कितनी स्त्रियों के कारण खून और आत्मघात हुये, और न जाने कितनी स्त्रियाँ अपने पतिके जीते जी दूसरों के नीचे बैठ गई, पर मिस्टर चेम्बरलेन को प्रमाण नहीं मिलते! उनको यह बातें सन्देहयुक्त दीख पड़ती हैं!!

मि. ऐण्ड्रूज़ और मि. पियर्सन अपनी रिपोर्ट के २५ वें पृष्ठ में लिखते हैं:—

"We found pitiable cases of men, who had been living with one woman after another in Fiji, while their own truly married wives and their legitimate children were deserted in India. We found equally pitiable cases of Hindu and Muhammadan wives reduced to leading a life of shame, while their true husbands were still living in India."

अर्थात्—"हमने ऐसे कितने ही करुणापात्र पुरुष देखे, जो फ़िजी में एक स्त्री को छोड़ दूसरी स्त्री के साथ और दूसरी को छोड़ तीसरी के साथ रहते थे, जब कि उनकी असली विवाहिता स्त्रियाँ और असली बच्चे हिन्दुस्तान में छूट गये थे। उतनी ही करुणापात्र हिन्दु और मुसल्मान स्त्रियाँ हमने देखीं जो कलंकपूर्ण जीवन व्यतीत कर रही थीं, जब कि उनके सच्चे पति हिन्दुस्तान में मौजूद थे।"

क्या मि. चेम्बरलेन की सम्मति में यह बात भी Vague यानी सन्देहयुक्त है ?

लार्ड चेम्सफोर्ड की फर्वरी सन् १९१७ई. की स्पीच भी हमें बहुत गड़बड़ ज्ञात हुई। हम स्वीकार करते हैं कि बहुत प्रयत्न करने पर भी श्रीमान् वाइसराय साहब का उद्देश्य हमारी समझ में नहीं आया। लोगों ने इस स्पीच के भिन्न भिन्न अर्थ लगाये थे। विलायत के 'Manchester Guardian' ने तो इस स्पीच का यह मतलब निकाला था कि लार्ड चेम्सफोर्ड ने लार्ड हार्डिञ्ज की नीति को बिल्कुल पलट दिया है। 'मेनचेस्टर गार्डियन' ने कुली प्रथा की बुराइयाँ करते हुये अन्त में लिखा था:—

"It will be interesting to learn on what grounds Lord Chelmsford has reversed the policy of his predecessor."

अर्थात्—"यह जानने के लिये हम उत्सुक हैं कि किन किन आधारों पर लार्ड चैम्सफ़ोर्ड ने लार्ड हार्डिञ्ज की नीति को पलट दिया।"

इस स्पीच में लार्ड चैम्सफोर्ड ने एक जगह कहा था:—

"Both the Colonial office and the colonies which they represent are therefore entitled to full recognition of the spirit in which they have met us and to generous consideration in the many difficulties they have to meet, and I should deprecate most strongly any display of suspicion of their good faith or any failure to acknowledge the real difficulties which they have to confront."

अर्थात्—"औपनिवेशिक विभाग और वह उपनिवेश जिनके कि वह प्रतिनिधि हैं, दोनों इस बात के अधिकारी हैं कि जिन भावों के साथ वह आगे बढ़कर हम लोगों से मिले हैं उन को अंगीकार किया जावे, और इन उपनिवेशों को जिन जिन कठिनाइयों का सामना करना ... है उन पर उदारता की दृष्टि से ध्यान दिया जावे; यदि कोई

आदमी उपनिवेशवालों की प्रतिज्ञाओं पर अविश्वास करे और उनकी सच्ची कठिनाइयों को, जिनका उन्हें सामना करना पड़ता है, स्वीकार न करे, तो मैं उसके इस विचार को बड़ी दृढ़ता से निवारण करूँगा।"

एक जगह इसी स्पीच में वाइसराय साहब ने बतलाया था:—

" Any low restricting emigration to other countries must obviously affect wider interests than the mere internal politics of British India."

अर्थात्--"यदि कोई क़ानून दूसरे देशों को भारतीय प्रवास के रोकने के लिये बनाया जावेगा तो उसका प्रभाव केवल ब्रिटिश भारत की ही राजनीति पर नहीं पड़ेगा, बल्कि स्पष्टतया उसका असर 'अन्य देशों के हित' पर भी पड़ेगा।"

हमारी समझ में नहीं आता कि सरकार को 'Wider interests' 'अन्यदेशों के हित' की क्या पड़ी थी ?

लार्ड चैम्सफ़ोर्ड ने यह भी कहा था कि 'यदि हम क़लम के ज़ोर से इस प्रथा को उठा सकते तो बड़ी प्रसन्नता से उठा देते।' यद्यपि लाटसाहब को करना वही पड़ा, लेकिन इन सब बातों से सर्वसाधारण को यह प्रगट हो गया कि सरकार जो कुछ करेगी, झख मार कर करेगी। प्रजाके हृदय में इस प्रकार के भाव का उत्पन्न होना सरकार के लिये हानिकारक है।

सातवीं भूल जो सरकारने की वह यह है कि सरकार ने भारतीय लोकमत का उचित आदर नहीं किया। जिस समय स्वर्गीय मि. गोखले ने कुली प्रथा के विरुद्ध कौंसिल में प्रस्ताव पेश किया था, उसी समय सरकार को चाहिये था कि इसे बन्द कर देती। उस समय व्यवस्थापक सभा के सभी गैर सरकारी मेम्बरों ने एक स्वर से कुलीप्रथा का घोर विरोध किया था, लेकिन सरकार ने लोकमत को पददलित करके इस प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया।

लार्ड हार्डिञ्ज द्वारा माननीय मालवीय जी का कुली प्रथा के उठा देने का प्रस्ताव स्वीकृत होने के बाद माननीय रावबहादुर पी. केशव पिल्ले ने मद्रास की व्यवस्थापक सभा में यह प्रस्ताव उपस्थित किया था कि 'हिन्दुस्तान से बाहर जानेवाले मज़दूरों की असली हालत देखने के लिये एक कमेटी नियुक्त की जाय और उसको डिपो की जाँच करने का अधिकार दिया जाय। इस प्रस्ताव के पक्ष में लगभग सभी देशी सदस्यों ने तथा कुछ यूरोपियन सदस्यों ने भी अनुकूल मत दिये। लोकनियुक्त पक्ष के सब सदस्यों ने कहा कि 'इन डिपो से तो सरकारी क़ैदख़ाने ही अच्छे होते हैं, क्योंकि वहाँ पर क़ैदी अपने इष्ट मित्रों से मिल जुल सकता है। परन्तु इस ऐहिक यमलोक में फँसे हुये मज़ूर अपनी राज़ी से बाहर जाते हैं या नहीं अथवा उनके साथ डिपो में कैसा बर्ताव किया जाता है, यह जानने के लिये एक कमेटी की नितान्त आवश्यकता है।' परन्तु खेद के साथ लिखना पड़ता है कि इस सीधे सादे प्रस्ताव को भी सरकार ने रद्द कर दिया। सरकार की इस बेजा कार्रवाई से यदि प्रजा के हृदय में यह भाव उत्पन्न हो जावे कि हमारी गवर्मेण्ट उपनिवेशों की नाराज़गी का बड़ा ध्यान रखती है और शायद हिन्दुस्तान के ख़ज़ाने से अधिकारियों को वेतन इसी लिये मिलता है कि वह यहाँ की प्रजा की अपेक्षा उपनिवेशों की प्रजा का अधिक ख़्याल रक्खें, तो इस में प्रजा का क्या दोष होगा?

क्या हमें उपनिवेशों के भी आधिपत्य में रहना होगा? इस समय साम्राज्य के सारे अङ्ग युद्ध के बाद राजनैतिक संगठन के लिये चिल्ला रहे हैं। उपनिवेशों के प्रतिनिधि ब्रिटिश सरकार से कहते हैं कि "जिस साम्राज्य की रक्षा के लिये तुम हमें जान लड़ानेके वास्ते कहते हो, उस साम्राज्य के संगठन में हमें भी कोई मुख्य भाग मिलना चाहिये। लड़ाई तथा शान्ति के प्रश्न और साम्राज्य के शासन पर

साम्राज्य की काया पलट होगी और स्वराज्यभोगी उपनिवेश अन्तर्देशीय और युद्ध एवं शान्ति के प्रश्नों पर सम्मति देने के अधिकारी बन जावेंगे, उस समय उनको पराधीन राष्ट्रों के भी शासनभार को स्वीकार करना पड़ेगा।"

उपनिवेशवाले शायद अभी तक यह समझ रहे हैं कि हिन्दुस्तानी बिना किसी बाधा के इस स्थिति को स्वीकृत कर लेंगे। उनका यह ख्याल करना स्वाभाविक ही है। वह अपने मन में सोचते हैं:—

"भारतवासी पराधीन हैं, वह कुछ कर नहीं सकते। ८० वर्षतक भारतवर्ष हमें शर्तबन्धे गुलाम भेजता रहा है और अब भी भविष्य में हम वहीं से कुली मँगावेंगे, चाहे शिक्षित भारतवासी इस बातका कितना ही विरोध क्यों न करें।

हम भारतवासियों को अपने यहाँ उपनिवेशों में नहीं घुसने देते, लेकिन भारतवर्ष में हम लोग मज़े के साथ व्यापार करते हैं, कारखाने खोलते हैं, और आई. सी. ऐस्.की परीक्षा पास करके कलक्टरी करते हैं। भारतवर्ष हमारा कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकता; क्योंकि हमारे भाईबन्धु ही वहाँ राज्य करते हैं।"

बात असल में यह है कि हमारी पराधीनता ही उपनिवेशों को इस प्रकार के विचार करने का मोका देती है। यदि हमें स्वराज्य प्राप्त होता तो वह कदापि इस प्रकार के धृष्टतापूर्ण विचार न कर सकते। हम निर्बल हैं। हम में सामर्थ्य नहीं है कि हम उपनिवेशों की बुराइयों का बदला दे सकें। उपनिवेशवाले हमारी इस निर्बलता का अनुचित लाभ उठाते हैं और उल्टे हमारे ही ऊपर शान जमाते हैं कि भारतवर्ष हमारे प्रति किसी विरोधपूर्ण नीति का प्रयोग नहीं कर सकता। मिस्टर जैब साहब देखिये, क्या फ़र्माते हैं:—

"In practice however, there would be little likelihood of any merely retaliatory policy on the part of India. The

economic fact is that Europeans are welcome not only as visitors but also as residents in Asiatic countries, for the sake of money they bring in, and the lead they can give in commrcial organization; whereas Asiatic residents, who are generally drawn from a lower class of their native society, are unwelcome to European communities owing to the money they take out and the impediment of their cheap labour to the progressive advance of industrial and social standards, let alone the impossibility of assimilating them to western democracy."

अर्थात्–"भारतवर्ष की ओर से किसी विरोधपूर्ण नीति के प्रयुक्त होने की बहुत कम सम्भावना है। इसका आर्थिक कारण यह है कि एशिया के देशों में यूरोपियनों का स्वागत किया जाता है, केवल यात्रा के ही लिये नहीं, बल्कि यूरोपियन लोग वहाँ स्थायी रूप से रहने के लिये जावें तो भी एशियावासी उनके आगमन को अच्छा ही समझते हैं, क्योंकि यूरोपियन लोग अपने देश से वहाँ रुपया देश ले जाते हैं और इसके सिवाय व्यापारिक कार्य्यों में भी वह नेता बन-कर काम करते हैं; लेकिन दूसरी तरफ़ देखिये, जो एशियावासी अपने देश से यूरोपियनों के देशों को जाते हैं, तो यूरोपियन लोग उनका आना अच्छा नहीं समझते; क्यों कि यह एशियानिवासी मुख्य-तया अपने यहाँ की नीच जातियों के होते हैं और यह लोग रुपया खींच कर अपने देश को ले जाते हैं। इसके सिवाय इनकी कम मज़दूरी व्यापारिक और सामाजिक नियमों की उन्नति में बाधा डालती है; एशियावासियों के विचारों का, पाश्चात्य प्रजातन्त्रवादी भावों से साम्य करना तो असम्भव है ही।"

हमारी यह आशङ्का कि 'क्या हमें उपनिवेशों की शरण पड़ेगी?' निराधार नहीं है।

विलायत के अनेक राजनीतिज्ञों का अनुमान है कि युद्ध के बाद केवल ग्रेटब्रिटेन ही साम्राज्य की रक्षा का भार सहन नहीं करेगा, अतएव उपनिवेशों को अपने ऊपर टेक्स लगा कर, ग्रेटब्रिटेन का हाथ बटाना पड़ेगा। अब यह विचार करना है कि क्या उपनिवेश बिना किसी स्वार्थ के अपने ऊपर कर लगाना पसंद करेंगे ? कम से कम हमारी समझ में तो यह बात आती नहीं। अँग्रेज लोग चाहे दुनियाँ के किसी कोने में रहते हों, वह एक सिद्धान्त को अपने प्राणों से भी प्यारा समझते हैं। वह सिद्धान्त है:—

"No taxation without representation."

अर्थात् 'बिना सम्मति के टेक्स देना अनुचित है।' अठारहवीं शताब्दी में इसी सिद्धान्त को जब इङ्गलेण्ड के राजाओं ने अस्वीकृत किया था, तभी अमेरीका के उपनिवेशों ने स्वदेश इङ्गलेण्ड के विरुद्ध बगावत का झंडा खड़ा किया था। आखिर अमेरीका ब्रिटिश साम्राज्य से निकल कर स्वतंत्र हो गया। तब से इङ्गलेण्ड की आखें खुल गई हैं, और अब भविष्य में वह ऐसे घातक मार्ग का अनुसरण नहीं कर सकता। इस लिये यदि स्वराज्यप्राप्त उपनिवेशों को साम्राज्य की रक्षा का भार लेना पड़ेगा तो उनको 'साम्राज्य की महासभा' में भी उचित स्थान अवश्य देना पड़ेगा। एक के बिना दूसरे का होना सर्वथा असम्भव है। स्वराज्य प्राप्त उपनिवेश इङ्गलेण्ड के दास कदापि नहीं बन सकते। वह कहेंगे कि 'हम तो बराबरी के हकदार हैं, हमें बराबरी का आसन दो।'

इन सब बातों पर विचार करने से प्रश्न यह पैदा होता है कि उस हालत में हिन्दुस्तान मिस्र आदि पराधीन राष्ट्रों की क्या स्थिति होगी ? क्या स्वराज्यभोगी उपनिवेश पराधीन राष्ट्रों को अपने ऊपर हुकूमत करने का अधिकार देने में कोई आनाकानी नहीं करेंगे ?

इस विषय में हमारा क्या कर्तव्य है ?

इस प्रश्न का उत्तर हम अपनी ओर से न देकर श्रीयुत दीवान बहादुर एल्. ए. गोविन्द राघव ऐयर के वह स्मरणीय वचन उद्धृत किये देते हैं, जो उन्हों ने लखनऊ की कांग्रेस में कहे थे। आपने कहा था:—
"इस लिये यह आवश्यक है कि हम लोग अपनी तरफ़ से साफ़ साफ़ कह दें कि जहाँ तक हमारे वश में है, हम उपनिवेशों के प्रभुत्व को, जब तक वह अपनी पुरानी लीक नहीं बदलते, अपने ऊपर नहीं बढ़ने देंगे। हम यह विचार दो शर्तों पर बदल सकते हैं। पहिला यह कि उपनिवेश हमें भी अपने भीतरी या बाहरी मामलात में उसी प्रकार के अधिकार दें, जैसे कि वह हमारे मामलों में चाहते हैं। दूसरा यह कि वह अपनी कार्रवाइयों से यह बात साबित करें कि जो कुछ वह इस बारे में कहते हैं सच्चाई के साथ कहते हैं। वह अपने चरित्र और दृष्टिकोण को बदलें और हमारे साथ नीचों और गुलामोंका सा बर्ताव करना छोड़ दें। हमें वह यह न समझें कि हम उनकी जरूरतों के पूरा करने या उनको आराम पहुँचा ने मात्र के साधन हैं। हमारी उसी स्वतंत्रता, उसी स्वाधीनता, उसी शिक्षा और उसी प्रमाणत्व को जिसके हम अधिकारी हैं, तसलीम करें।" अब प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि क्या उपनिवेश अपने चरित्र और दृष्टिकोणको स्वयं ही बदल सकते हैं ?

हमारा यह विश्वास है कि उपनिवेश ऐसा नहीं कर सकेंगे। यद्यपि हम सदा परमात्मा से यही प्रार्थना करते हैं कि परमात्मा उपनिवेशों को सद्बुद्धि दे जिससे वह हमारे साथ न्याययुक्त और मनुष्योचित बर्ताव करना सीखें, तथापि जब हम देखते हैं कि वर्तमान महायुद्ध ने भी औपनिवेशिक लोगों के हृदय में विशेष परिवर्तन नहीं किया, तो हमारी सारी आशायें निराशामें परिणत हो जाती हैं।

इसके सिवाय जब हम उपनिवेशों की बाज़ बाज़ अन्धाधुन्ध कार्रवाई को देखते हैं तो हमारी यह निराशा और भी बढ़ जाती है।

जनरल स्मट्स इन दिनों विलायत में साम्राज्य के दृढ़ीकरण विषय पर लम्बे लम्बे व्याख्यान झाड़ रहे हैं और साम्राज्य परिषद् में भारतीय प्रतिनिधियों का प्रवेश होने पर भारत को बधाई दे रहे हैं, पर वर उन्हीं के दक्षिण अफ्रिका में कैसी कैसी शोचनीय दुर्घटनायें हो रही हैं, इसकी ओर देखने की शायद उन्हें फुर्सत ही नहीं।

नेटाल के दरबन स्थान की म्युनिसिपेल्टी ने वहाँ के हिंदुस्तानियों को युनिसिपेलिटी के चुनाव में जो मताधिकार था, उसे छीनने का निन्द्नीय प्रयत्न आरम्भ कर रक्खा है। यह वर्णविद्वेष यहीं पर नहीं रुका। कहीं कहीं तो यह हद से ज्यादा बढ़ गया है। इसका एक दृष्टान्त सुन लीजिये। जून सन् १९१७ ई. के महीने में जोहान्सबर्ग नगर में एक हिंदुस्तानी ट्राम गाड़ी पर यात्रा कर रहा था। उस ट्राम पर एक गोरा भी सवार था। इस गोरे को किसी काले आदमी का अपनी बगल में बैठना सह्य न हुआ। इस लिये उसने उस काले आदमी को उठाकर बेधड़क चलती ट्राम से नीचे फेंक दिया। गरीब हिंदुस्तानी रास्ते में गिरकर धक्केसे बेसुध हो गया और वहीं उसके प्राणपखेरू भी उड़ गये! गोरा पकड़ा गया, उस पर अभियोग चलाया गया, लेकिन पचास पौण्ड जुर्माने पर वह छोड़ दिया गया! इस पर टिप्पणी करते हुये 'मद्रास मेल' नामक एक एङ्ग्लो इण्डियन पत्र ने लिखा थाः—

"We are not surprised that indignation has been aroused in this country by reports of a scandalous case in south Africa, in which a European who assaulted an Indian on a tramcar, flung him off it while it was in motion, and caused his death, was merely fined £50, The case, of course, was not one of murder; but it was a very bad case of unprovoked

assault, in which the assailant acted in a manner he must have known was likely to cause grave injury. This is the worst thing of its kind that we have heard of from South Africa; but it is, we fear, by no means uncommon for Indians to be assautled on public vehicles there...... When such assaults have serious consequence the legal punishment should be adequate."

अर्थात्—"हम को यह देखकर आश्चर्य नहीं हुआ कि इस देश में दक्षिण अफ्रिका के एक निन्दनीय और कलंककर अभियोग की वजह से अत्यन्त क्रोध उत्पन्न हो गया है। एक यूरोपियन ने, एक भारतवासी पर जो ट्राम गाड़ी पर चढ़ा हुआ था, आक्रमण किया और चलती हुई ट्रामगाड़ी में से उसको बाहिर फेंक दिया, जिससे उसकी मौत हो गई। इस यूरोपियन पर सिर्फ़ पचास पौण्ड जुर्माना हुआ। यह अभियोग यद्यपि हत्या का नहीं है, लेकिन यह मारपीट का बहुत ही बुरा मामला था, जिसमें कि अभियुक्त ने बिना किसी कारण के मारपीट की। अभियुक्त यह जानता होगा कि ऐसा करने से उस आदमीको भयंकर चोट लग सकती थी। दक्षिण अफ्रिका से जिन दुर्घटनाओं के समाचार आते हैं उनमें यह सबसे बुरी है, लेकिन दक्षिण अफ्रिकाकी गाड़ियों में हिन्दुस्तानियों का इस तरह अपमानित होना कोई असाधारण बात नहीं है...... जब इस प्रकार की मारपीट का बहुत बुरा परिणाम हो, तो अपराधी को दण्ड भी उसके अपराध के अनुकूल मिलना चाहिये।"

अभी चार ही दिन पहले कनाडाके प्रधान सर राबर्ट बोर्डन ने वहाँ की पार्लमेण्ट में वक्तृता देते हुये कहा था कि 'युद्ध-परिषद् में भारतीय प्रतिनिधियों की विचारशीलता और न्यायप्रियता देखकर कनाडा की गवर्नमेण्ट ने निश्चय किया है कि भारतवासियों के भी कनाडा में वही अधिकार हों, जो कनाडावालों के भारत में हैं।' इस

पर हमने अनुमान किया था कि अब कनाडा का दर्वाज़ा भारतवासियों के लिये बन्द न रक्खा जावेगा। कनाडावालों के लिये हिन्दुस्तान के दर्वाज़े हमेशा खुले हुये हैं, और आजतक कैनेडियन लोगों का विरोध करनेवाला एक भी कानून नहीं गढ़ा गया। इसी लिये हमने समझा था कि भारतवासियों को भी कनाडा में यही रियायतें मिलेंगी। पर ऊपर लिखा हुआ आश्वासन-वाक्य मुँह से निकलने भी नहीं पाया था कि खास कनाडा गवर्नमेंण्ट की एक आश्चर्योत्पादक आज्ञा हमारे देखने में आई। इस आज्ञा में फ़र्माया गया है कि भारतीय मज़दूर और कारीगर ३० सितम्बर सन् १९१७ ई. तक कोलम्बिया की भूमि पर पैर नहीं रक्खें। हमें बताया जाता है कि इस पालिसी का वर्णभेद से कोई सम्बन्ध नहीं। चाहे यह आज्ञा जातिभेद के कारण हो अथवा अपनी स्वार्थबुद्धि के कारण, हमारे लिये कनाडा में प्रवेश करने की जो मनाही थी, वह तो ज्यों की त्यों रही। "हमारे साथ तुम्हारा जैसा बर्ताव है, वैसा ही बर्ताव हम भी तुम्हारे साथ रक्खेंगे" यह वाक्य मुँह से बाहर होते हुये थोड़ी भी देर नहीं हुई थी कि झट भारतवासियों का प्रवेश रोकनेवाली आज्ञा पर सही करने के लिये हाथ बढ़ा दिया गया। इस रहस्य को परमात्मा ही समझ सकता है, हमारी मोटी बुद्धि इसके समझने में असमर्थ है।

उपनिवेशों के समाचारपत्र हिन्दुस्तानियों के विषय में तरह तरह की बातें कहते हैं। ज्यों ही हमें कोई ऐसा समाचार मिलता है कि अब भविष्य में उपनिवेशों में हमारे साथ अच्छा बर्ताव किया जावेगा तो हमें हर्ष होता है, लेकिन दूसरे ही दिन हमें बिल्कुल उसके विरुद्ध विचार पढ़ने को मिलते हैं। आस्ट्रेलिया के 'रजिस्टर' नामक पत्र में जब हमने नीचे लिखी हुई बात पढ़ी थी तो हमें बड़ी खुशी हुई थी।

उठ खड़े होंगे। अगर हमने हिन्दुओं को अपने देश में प्रवेश करने दिया तो भविष्य में हम केवल अपने लिये ही नहीं, बल्कि सारे साम्राज्य के लिये नानाप्रकार के झगड़े मोल ले लेंगे।

दक्षिण अफ्रिका में जो पिछली घटनायें हुई हैं, उनसे हमें इस विषय में बहुत काफ़ी चेतावनी मिलती है। चाहे साम्राज्य के हाथ से भारतवर्ष भले ही जाता रहे, लेकिन तब भी हम उन रुकावटों को जो भारतवासियों के यहाँ प्रवेश करने में होती हैं, दूर नहीं कर सकते।"

इस प्रकार के दुराग्रही पत्रों पर वर्तमान महायुद्ध का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ सकता। जब हम इस तरह के दृष्टान्त पढ़ते हैं तो सहसा हमारे हृदय में यही विचार उत्पन्न होता है कि यदि भारतवर्ष का विदेशों में सम्मान होगा तो वह हमारे आत्मत्याग और हमारे घोर आन्दोलन की ही वजह से होगा। 'निराली दृष्टि' New angle of vision (नवीन दृष्टि-कोण) के ढकोसलों को सुन सुन कर फूल जाना अव्वल दर्जे की मूर्खता है। 'विक्टोरिया टाइम्स' की तरह के दुराग्रही पत्रों की मानसिक प्रवृत्ति को 'नवीनदृष्टि-कोण' तो क्या ब्रह्मा भी नहीं बदल सकता। और जब तक औपनिवेशिक लोगों की मानसिक प्रवृत्ति नहीं बदलेगी तब तक भारतवासियों के साथ वह अच्छा बर्ताव कदापि नहीं कर सकते। जिस समय कनाडावालों ने सर रवीन्द्र नाथ टाकुर को अपने टोरोण्टो और माण्ट्रील नामक नगरों में निमंत्रित किया था तब उन्होंने कहा था:—

"जब तक मेरे देशवासियों के साथ कनाडा और आस्ट्रेलिया में, वैसा ही व्यवहार किया जावेगा जैसा कि आजकल किया जाता है, तब तक मैं वहाँ की भूमि पर पैर नहीं रक्खूँगा और न

मुझे इस बात की आशा ही है कि इन स्थानों के भारतवासियों की स्थिति में परिवर्तन होगा जब तक कि सब जातियों की मानसिक प्रवृत्ति ही न बदल जावे।"

२७ अप्रैल सन् १९१७ ई. को कोलोनियल आफिस में एक स— हुई थी; इस सभा में 'उपनिवेशों और भारत में समानता का बर्ता— विषय पर वादविवाद हुआ था। मिस्टर Massey और स— Joseph Ward ने जो न्यूज़ीलेण्ड के प्रतिनिधि होकर इसमें सम्मिलित हुये थे, भारतवर्ष और भारतवासियों के लिये बड़ी सहानुभूति दिखलाई थी। *

इस मौखिक सहानुभूति का असली कार्रवाइयों से क्या सम्बन्ध सो भी पाठकों को जान लेना चाहिये। १२ फर्वरी सन् १९१७ई. 'भारत मित्र' में 'लार्ड चेम्सफार्ड सुन' इस शीर्षक का एक बहुत —आ लेख प्रकाशित हुआ था। इस लेख का साराश यहाँ — है—

जब से महा समर छिड़ा है, तब से समस्त साम्राज्य में —ा भाव बड़ा प्रबल हो रहा है। जब फिजी के भारती— —के गोरे लड़ाई पर भेजे जा रहे हैं तो उनमें कुछ ने कहा — जाना चाहिये। उन्हों ने फिजी की सरकार से प्रार्थना की —लड़ाई पर भेजिये, पर उत्तर मिला कि अभी ज़रूरत नहीं —त होगी तब तुम बुलाए जाओगे। यहाँ से कुछ होश —इस चार भारतवासी स्वराज्यशासित न्यूज़ीलेण्ड उपनिवेश — आकलेण्ड टापू को चले गए और वहाँ लड़ाई के लिये —लिये गये। पर देश का दुलार भारतीयों के सौभाग्य को —र्वरी सन् १९१७ ई. के 'बोडर' ने इस सभा का विवरण दिया

और कल्लू, नसीरुद्दीन और रम्यू नामक तीन भारतवासी अपने खर्च से उसी तरह आकलेण्ड़ पहुँचे। उनकी उम्र कम थी, इस लिये वह भर्ती न हो सके। जब नसीरुद्दीन और कल्लू भर्ती न हो सके तो उन्हों ने सोचा कि यदि हम फिर फिजी लौट जावेंगे, तो हमारे यार दोस्त हँसी उड़ावेंगे, इस लिये आकलेण्ड़ में ही रहकर कुछ काम ना चाहिये। परन्तु वहाँ भारतवासियों का गुज़र नहीं, क्योंकि े कर्मचारियों ने अपना संघ बना रक्खा है, और जो कोई रङ्गीन ' आदमी को नौकर रखता है, तो यह कर्मचारी हड़ताल रने की धमकी देते हैं। कल्लू ने एक गोरे के यहाँ काम करना ाहा, तो मैनेजर ने सार्टीफिकट देखकर कहा कि, तुम ' यूनियन ' ार्थात् ' संघ ' के मेम्बर हो आओ तो तुम्हें काम देंगे। कल्लू मेम्बर ो आया, तब गाड़ी पर बिठाकर मैनेजर ने उसे काम दिखाया सरे दिन जब कल्लू ने काम करना चाहा तब फ़ोरमैन ने कहा कि, ' मारा अपना आदमी आनेवाला है, इस लिये तुम इस समय चले ाओ, जब कोई और जगह ख़ाली होगी हम तुम्हें बुला लेंगे। इस ात से कल्लू को सन्तोष न हुआ और वह मैनेजर के पास हुँचा। मैनेजर ने कहा कि मैं तुम्हें रखने को तय्यार हूँ, पर यूनियनवालों के मारे नहीं रख सकता, क्योंकि वह हड़ताल करने कहते हैं। कल्लू बोला कि मैं तो यूनियन का मेम्बर हो चुका, अब यूनियनवाले क्यों आपत्ति करते हैं। इसके बाद कल्लू ने सेक्रेटरी से भेंट करनी चाही, पर वह यूनियन की मीटिङ्ग में था। कल्लू मेम्बर था, पर उसे मीटिङ्ग में उपस्थित होने का अधिकार नहीं मिला और उससे कहा गया कि तुम अन्त में आना। जब कल्लू गया तब मीटिङ्ग हो चुकी थी, केवल आठ मुख्य सदस्य बैठे थे। कल्लू ने कहा कि मैं तो यहाँ काम करने नहीं आया था।

मेम्बर मि. डिकसन को कल्लू और नसीरुद्दीन ने मि. रसेल के पास भेजा और उन्हों ने पासपोर्ट देखकर कहा कि मैं प्रधान मंत्री को लिखूँगा कि जब फ़िजी की सरकार ने ही पासपोर्ट दिया है, तो उनके लौटने में यह बाधा क्यों दे रही है ?

इस दृष्टान्त से हमें यही शिक्षा मिलती है कि भारतवासियों की ठ उपनिवेशों में किसी तरह नहीं गल सकती। और राजकीय ानिवेश तभी तक भारत से कुली चाहते हैं, जब तक इनके बिना रका काम नहीं चल सकता।

अब हम भारत सरकार से पूँछते हैं कि जो उपनिवेश हमारे भाइयों : साथ ऐसा स्वार्थपूर्ण और निन्दनीय बर्ताव करते हैं, क्या उनकी ठिनाइयों पर ध्यान देना और उनकी खातिर करना हमारा र्तव्य है ?

हम सरकार से निवेदन करते हैं कि जब कभी साम्राज्य के पुनर्गठन का सवाल पेश हो तो सरकार उपर्युक्त बातों पर अच्छी तरह ध्यान दे ले। यदि पुनर्गठित साम्राज्य में भारतवर्ष को उपनिवेशों से नीचा दर्जा दिया गया तो इसका परिणाम साम्राज्य के लिये हितकर नहीं होगा। बिना भारतवर्ष को ठीक तरह सम्मिलित किये साम्राज्य का पुनर्गठन हो ही नहीं सकता। श्रीयुत महाशय विपिनचन्द्र पाल के लखनऊ काँग्रेस में कहे हुये निम्नलिखित वाक्य सरकार और प्रजा दोनों के पढ़ने योग्य हैं:—

" आप साम्राज्य के पुनर्गठन का जिक्र कर रहे हैं, किन्तु मैं यह जानना चाहता हूँ कि बिना भारत के यह साम्राज्य है ही क्या ? भारत के बिना भी कोई ब्रिटिश साम्राज्य है ! मनुष्य बल की बात लीजिये। अँग्रेज़ी राज्य का मनुष्य बल (पन्द्रह से पैंतालीस वर्ष

के पुरुषों को मिलाकर) ११ करोड़ है, जिनमें डेढ़ करोड़ गोरड़ जाति के लोग हैं और ९३ करोड़ भूरे-काले चर्मधारी। मैं पूछता हूँ कि यदि भारत वर्ष के यह साढ़े नौ करोड़ आदमी निकाल लिये जायें तो ब्रिटिश साम्राज्य रह क्या जाता है ? आप मस्तिष्क बल की बात करते हैं, तो साम्राज्य का मस्तिष्कबल कहाँ है ! हालत यह है कि हमें अपने मस्तिष्कबल के अभ्यास का अवसर ही नहीं मिलता, हम संसार के सामयिक बड़े प्रश्नों के हल करने में अपनी बुद्धि को लगा ही नहीं सकते। राजनीतिज्ञों की सभा में हमारा कोई भी स्थान नहीं। यदि स्थान होता तो हम अपनी शक्तियों को उसी प्रकार सिद्ध कर दिखाते, जैसे हमने कानून के पेशे में और अन्य मार्गों में की है। जहाँ हमें अवसर मिला है, तहाँ हमने सिद्ध कर दिखाया है कि भारतीय मस्तिष्क ऐसी वस्तु नहीं है, कि साम्राज्य में उसकी उपेक्षा की जा सके..............साम्राज्य का पुनर्गठन असम्भव है, यदि भारत वर्ष का उसमें स्थान नहीं है। यदि ऐसा हुआ तो एक ओर तो भारत की राष्ट्रीय आकांक्षाओं की मृत्यु हो जायगी और दूसरी ओर साम्राज्य की आकांक्षाओं की। तीस वर्ष पहिले यह सम्भव था कि भारतवर्ष को साम्राज्य में बराबरी का स्थान न दिया जाता, वह गुलाम की तरह रक्खा जाता, वह पानी भरनेवाला और लकड़ी चीरनेवाला बनाया जाता, परन्तु आज इस नवीन राष्ट्रीय जागृति, सचेत देशभक्ति के भाव बूढ़े और जवानों सभी के हृदयों में होते हुये ऐसा होना अचिन्त्य है, और अँग्रेज़ी सम्बन्ध की पुष्टि के लिये खतर नाक और घातक है।"

षष्ठ अध्याय

साम्राज्य में भारतवर्ष का क्या स्थान है?

यह प्रश्न ऐसा है कि जिस पर एक स्वतंत्र पुस्तक लिखी जा सकती है, परन्तु यहाँ पर हमारे पास इतना स्थान नहीं है कि हम विस्तारपूर्वक इस विषय पर लिख सकें, तथापि दो चार मुख्य मुख्य बातें स्पष्टतया लिखने का प्रयत्न करेंगे।

जब कभी उपनिवेशों के निवासी इस प्रश्न पर कि साम्राज्य : भारतीयों का क्या स्थान है, विचार करते हैं, तो वह हमेशा पहिले इ बात को मान लेते हैं कि भारतवर्ष को वह अधिकार नहीं हैं, जो ह प्राप्त हैं, इसलिये भारतवर्ष का स्थान पीछे करना चाहिये।

हम इस बात को मानते हैं, कि इस समय उपनिवेशों की स्थिति भारतवासियों की स्थिति की अपेक्षा कहीं अच्छी है। इसका कारण यह है कि उपनिवेशों में गोरों के भाई बन्धु गोरे लोग ही रहते हैं, और हें ब्रिटिशसरकार ने स्वतंत्रता प्रदान कर दी है।

लेकिन अँग्रेज़ों के लिये असल में भारतवर्ष का जो महत्त्व है, वह पनिवेशों का कदापि नहीं हो सकता।

'बम्बई क्रानीकल' के सम्पादक मि. बी. जी. हार्नीमेन ने जनवरी न १९१४ ई. में स्टूडेण्ट ब्रदरहुड के सामने व्याख्यान देते हुये कहा था:—

" The Indian Empire is—I say it as an Englishman and am prepared to justify it in every possible way of far greater importance to the British Empire than any of the self-governing dominions. In the first place India is a valued

possession of the British Empire long before any for the self-governing dominions began to be of any importance all, and for the last 150 years India has been contributin to the wealth of the British Empire, and mainly to th wealth of the United kingdom in a way that leaves thes striplings of self-governing dominions far behind."

अर्थात्–"मैं एक अँगरेज़ की हैसियत से कहता हूँ और जो कुछ मैं कहता हूँ उसको प्रमाणों से यथासम्भव सिद्ध करने के लिये भी तैय्यार हूँ कि भारतवर्ष का राज्य ब्रिटिश साम्राज्य के लिये, स्वराज्य प्राप्त उपनिवेशों की अपेक्षा कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है। पहिली बात तो यह है कि भारतवर्ष उस समय से, जब कि स्वराज्यप्राप्त उपनिवेशों का कुछ भी महत्त्व नहीं था, ब्रिटिश साम्राज्य के अधिकार में एक बहुमूल्य वस्तु रहा है; और पिछले १५० वर्ष से भारतवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य के धनवैभव को बराबर बढ़ाता रहा है, और ख़ास करके यूनाइटेड किंगडम की सम्पत्ति में तो भारतवर्ष के कारण इतनी ज्यादा वृद्धि हुई है कि उसके सामने कल के छोकरे उपनिवेशों का कुछ भी महत्त्व नहीं है।"

इसमें सन्देह नहीं कि भारतवर्ष की सहायता ब्रिटिश साम्राज्य के लिये वैसीही रही है, जैसी एक मुख्य स्तम्भ की सहायता किसी भवन के लिये होती है। इसी भारतवर्षरूपी आधारस्तम्भ की वजह से स्वराज्यप्राप्त उपनिवेशों ने साम्राज्य रूपी भवनकी छाया में तरक़्क़ी की है और स्वतंत्र संस्थाओं को प्राप्त किया है।

अब ज़रा अङ्कों पर ध्यान दीजिये। यूनाइटेड किंगडम (स्काटलैण्ड, इङ्गलैण्ड और आयर्लैण्ड) से प्रतिवर्ष ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य सब भागों के साथ २७५,६५९,००० पौण्ड की तिजारत होती है, इसमें से ११३,८८५,००० पौण्ड की तिजारत सिर्फ [illegible] के ही साथ होती है। दक्षिण आफ्रिका के संयुक्त राज्य की

ारत ११,१५१,००० पौण्ड की होती है, जो भारतवर्ष की ारत का दसवाँ हिस्सा है। आस्ट्रेलिया की तिजारत २६,१२०,००० ड की होती है, जो हिन्दुस्तान की तिजारत के तिहाई के बराबर । उत्तरी अमेरीका के सभी उपनिवेशों की, जिनमें कनाड़ा तथा न्य उपनिवेश शामिल हैं, तिजारत २८,०००,००० पौण्ड की ती है, जो भारतवर्ष की तिजारत के तिहाई से भी कम है। न्यू- ़लैण्ड की तिजारत २०,०००,००० पौण्ड की होती है, जो भार- वर्ष की तिजारत के पाँचवे हिस्से के भी बराबर नहीं है। इन ङ्कों से भारतवर्ष का महत्त्व स्पष्टतया प्रगट हो जाता है। अब एक ात और लीजिये। यदि हिन्दुस्तान ब्रिटिश लोगों के हाथ से बिल्कुल ाता रहे तो फिर ब्रिटिश साम्राज्य की क्या दशा होगी? मिस्टर ार्नीमेन ने अपने व्याख्यान में कहा था:—

"If India were taken away from the British Empire, the British Empire would receive such a Staggering blow that it is doubtful whether it would ever recover from it, . d the United kingdom in its material welfare would receive such a blow that it would possibly, should such a thing happen, which God forbid have to take its place with Small States like Holland & Belgium. If on the other hand you take away any single one of the self-governing dominions of the British Empire, Australia, or Canada or the Union of South Africa, I can not see that the injury-which the United Kingdom and which the British Empire would suffer, would be of such huge importance that the United kingdom could not manage to recover from it after a shortwhile."

अर्थात्–"ब्रिटिश साम्राज्य में से हिंदुस्तान जाता रहे, तो ब्रिटिश साम्राज्य को ऐसा भारी धक्का लगेगा कि इस बात में मुझे सन्देह है कि कभी ब्रिटिश साम्राज्य इस धक्के को सहकर जीवित रहे, और

रा साम्राज्य की रक्षा के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है।
वर्ष से प्रतिवर्ष दो करोड़ रुपये सेना के लिये व्यय किये जाते
भारतवर्ष की रक्षा के लिये जो ब्रिटिश सेना रक्खी जाती है,
का भी खर्च कौड़ी कौड़ी भारतवर्ष ही को देना पड़ता है इसके
ाय ब्रिटिश जहाजी बेड़े के लिये भी भारतवर्ष को १५ लाख
प्रतिवर्ष देने पड़ते हैं। साउथ अफ्रिका ने अब थोड़ेही दिनों से
हजार पौण्ड अपनी रक्षा के लिये प्रतिवर्ष देने प्रारम्भ किये हैं
इसी प्रकार अन्य उपनिवेशों ने भी अभी हाल ही से अपनी रक्षा
लिये थोड़ा बहुत देना शुरू किया है। अगर ब्रिटिश साम्राज्य की
द्वारा रक्षा न हो, तो एक भी उपनिवेश एक महीने तक भी अपनी
न कर सके। भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है, जो अपनी रक्षा
लिये बराबर अपने ही ऊपर निर्भर है। हम यह नहीं कहते कि
टेश साम्राज्य द्वारा भारत की कुछ भी रक्षा नहीं होती, ऐसा
ना बड़ी भारी भूल होगी; हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि
टेश साम्राज्य में युनाइटेड किंगडम को छोड़कर भारतवर्ष ही एक
अङ्ग है, जो अपनी रक्षा के लिये पूरी पूरी सेना रखता है और
का सारे का सारा व्यय अपने आप ही चलाता है। सन् १८९९ ई.
नेटाल की रक्षा भारतीय सेना ने ही की थी। इसके सिवाय
ऐ मौके पर भारतवर्ष ने ब्रिटिश साम्राज्य के लिये बहुत कुछ
या है। इस महायुद्ध में भी भारत ने ब्रिटिश साम्राज्य के लिये जो
[illegible]

श साम्राज्य की रक्षा के लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। तवर्ष से प्रतिवर्ष दो करोड़ रुपये सेना के लिये व्यय किये जाते भारतवर्ष की रक्षा के लिये जो ब्रिटिश सेना रक्खी जाती है, का भी खर्च कौड़ी कौड़ी भारतवर्ष ही को देना पड़ता है इसके ाय ब्रिटिश जहाज़ी बेड़े के लिये भी भारतवर्ष को १५ लाख प्रतिवर्ष देने पड़ते हैं। साउथ अफ्रिका ने अब थोड़ेही दिनों से हज़ार पौण्ड अपनी रक्षा के लिये प्रतिवर्ष देने प्रारम्भ किये हैं इसी प्रकार अन्य उपनिवेशों ने भी अभी हाल ही से अपनी रक्षा लिये थोड़ा बहुत देना शुरू किया है। अगर ब्रिटिश साम्राज्य की द्वारा रक्षा न हो, तो एक भी उपनिवेश एक महीने तक भी अपनी न कर सके। भारतवर्ष ही एक ऐसा देश है, जो अपनी रक्षा लिये बराबर अपने ही ऊपर निर्भर है। हम यह नहीं कहते कि टिश साम्राज्य द्वारा भारत की कुछ भी रक्षा नहीं होती, ऐसा ना बड़ी भारी भूल होगी, हमारे कहने का अभिप्राय यह है कि टिश साम्राज्य में युनाइटेड किंगडम को छोड़कर भारतवर्ष ही एक अङ्ग है, जो अपनी रक्षा के लिये पूरी पूरी सेना रखता है और का सारे का सारा व्यय अपने आप ही चलाता है। सन् १८९९ ई. नेटाल की रक्षा भारतीय सेना ने ही की थी। इसके सिवाय के मौके पर भारतवर्ष ने ब्रिटिश साम्राज्य के लिये बहुत कुछ या है। इस महायुद्ध में भी भारत ने ब्रिटिश साम्राज्य के लिये जो

उपनिवेशों के साथ व्यवहार (पारस्परिक समानता।)*
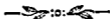
भूतपूर्व भारतसचिव चेम्बरलेन ने कहा था कि भविष्य में साम्राज्य की मंत्री सभा का जो वार्षिक अधिवेशन हुआ करेगा उसमें भारतवर्ष का भी प्रतिनिधि रहा करेगा। एक तो स्वयं भारतसचिव और दूसरे भारत गवर्मेण्ट द्वारा चुना हुआ एक आदमी, इस सभामें प्रतिनिधित्व का काम करेंगे। यह 'चुने हुये महाशय' साधारणतः भारतवासी ही होंगे, किन्तु विशेष अवस्था में अंग्रेज भी मनोनित हो सकेंगे। यह विशेष अवस्था क्या होगी तो समझमें नहीं आता। मि. चेम्बरलेन का ख्याल है कि इस प्रकार प्रतिनिधित्व का अधिकार पालेने से ब्रिटिश साम्राज्य में भारतवर्ष का स्थान खूब ऊँचा हो जायेगा। हमारी समझ में यह बात नहीं आती। यदि हम लोगों को होमरूल मिल जावे और हम लोग साम्राज्य की मंत्री सभा के वार्षिक अधिवेशन में भारतीय जनता के प्रतिनिधियों में से कोई प्रतिनिधि स्वयं निर्वाचन करके विज्ञापन भेज सकें तब तो हम अवश्य मान सकते हैं कि इस समय की अपेक्षा साम्राज्य में भारतवर्ष का स्थान अधिक ऊँचा हो जायेगा।

ब्रिटिश साम्राज्य की मंत्रणा सभा में भारतसचिव भारतवर्ष के प्रतिनिधि हुये थे। उनको परामर्श देने के लिये और उनकी सहायता करने के लिये भारतगवर्नमेण्ट ने बीकानेर के महाराज, सर सत्येन्द्र प्रसन्न सिंह और सर जेम्स मेस्टन साहब को भेजा था। इन लोगों को मंत्रणा सभा में उपस्थित रहने और मंत्रणा करने का भी अधिकार [illegible]

महाराज और सर जेम्स मेस्टन साहब भारतवर्ष के प्रतिनिधि कदापि नहीं कहे जा सकते। न तो हम लोगों ने इनका निर्वाचन किया था, और न हम लोगोंने और न हमारे प्रतिनिधियों ने इन लोगों को यह बतलाया था कि आप लोग साम्राज्य सभा में हमारी तरफसे यह बात कहना, यह न कहना। इस लिये जो कुछ उन सरकारी प्रतिधियों ने कहा सुना होगा, उसको अंगीकार करने के लिये भारतीय जनता बाध्य नहीं है। हाँ, यदि इन लोगों ने कोई अच्छी बात कही हो, तो उसके लिये हम इनके कृतज्ञ हो सकते हैं।

हम भारतवासियों को ब्रिटिश उपनिवेशों में जाकर व्यापार अथवा मज़दूरी करने या किसी दूसरे तरीके से धनोपार्जन करके जीवन व्यतीत करने की स्वतंत्रता प्राप्त नहीं और न वहाँ हमें बसने का अधिकार है; इसके सिवाय कहीं कहीं तो अब अधिक भारतवासी जा भी नहीं सकते। कितने ही वर्ष हुये जब बहुत से भारतवासी कनाडा में जाकर बसे थे, लेकिन अब तक यह लोग अपने कुटुम्बवालों को वहीं नहीं ले जा सके। इसके विपरीत दूसरी और औपनिवेशक लोग स्वच्छन्दतापूर्वक उस देश में आ सकते हैं, चाहे जो व्यापार कर सकते हैं और चाहे जहाँ रह सकते हैं। यह नीति न्याययुक्त नहीं कही जा सकती।

भारतवर्ष के तीन प्रतिनिधियों ने 'भारतवर्ष तथा उपनिवेशों के सम्बन्ध' के विषय में कुछ प्रस्ताव मंत्रणा सभा में पेश किये थे। मंत्रणा सभा ने यह प्रस्ताव भिन्न भिन्न उपनिवेशों की सरकारों के पास भेज दिये हैं और साथही साथ इस बातकी सिफारिश भी की है, कि इन प्रस्तावों पर अनुग्रहपूर्वक विचार किया जावे।

प्रथम प्रस्ताव यह है कि "जो भारतवासी स्थायीरूप से इन उपनिवेशों में बस गये हैं, वह अपने स्त्री बच्चे लाने पावें, और अन्य विषयों में उनके अधिकार वहाँ बसे जापानियों से कम न हों। प्रत्येक मनुष्य की एक ही स्त्री हो और लड़के नाबालिग़ हों।"

यह प्रस्ताव ठीक है लेकिन इसमें एक खराबी है, वह यह कि यदि किसी पुरुष ने कई विवाह किये हों तो उसकी एक से अधिक स्त्री को अथवा उसकी सन्तान को उपनिवेश में प्रवेश करने का अधिकार न होगा । हम इस बात को मानते हैं कि बहु विवाह की प्रथा अत्यन्त घृणित और निन्दनीय है । प्रचलित ईसाई धर्म के अनुसार यह प्रथा अवैध है । हम स्वीकार करते हैं कि क्रिश्चियन देशों का यह अधिकार न्यायसङ्गत है कि वह बहु विवाह की निकृष्ट प्रथा को अपने यहाँ किसी प्रकार भी जारी न होने दें। लेकिन यदि कोई ऐसा भारतवासी किसी उपनिवेश का स्थायी बाशिन्दे बन गया है, जिसके एक से अधिक स्त्री हैं तो वह क्या करे? किस स्त्री को छोड़ जावे और किसको ले जावे! इसलिये हमारी समझ में यह नियम बन जाना चाहिये कि वर्तमान समय में जो भारतीय किसी उपनिवेश के स्थायी बाशिन्दा बन चुके हैं, उनमें से अगर किसी ने उस उपनिवेश में आने से पहिले एक से अधिक विवाह किये हों तो वह एक निर्दिष्ट समय के भीतर अपनी स्त्रियों और बालबच्चों को उस उपनिवेश में ला सकता है, फिर इस निर्दिष्ट समय के बाद यह किसी को अधिकार न होगा कि एक से अधिक स्त्री या उसकी सन्तान यहाँ लासके । विवाहिता स्त्रियों के प्रति सुविचार करने के लिये ही हम इस नियम का बन जाना उचित समझते हैं ।

इस प्रस्ताव में जो यह बात कही गई है कि अन्यान्य विषयों में स्थायी भारतीय बाशिन्दों की सुविधा और उनके अधिकार स्थायी जापानी बाशिन्दों के अधिकारों से कम न होने चाहिये, सो पूर्णतया संतोषजनक नहीं । ब्रिटिश सरकार को यह बात समझ लेनी चाहिये कि हम लोग ब्रिटिश साम्राज्य के अधिवासी हैं, जापानी नहीं हैं, इसलिये

दूसरा प्रस्ताव यह है कि "अगर सम्भव हो सके तो भविष्य में उपनिवेशों में मजदूरी करने के लिये अथवा बसने के लिये भारतवासियों का प्रवेश, अन्य किसी एशियावासी जाति के आदमियों के प्रवेश की अपेक्षा कम सुविधाजनक कायदों द्वारा नियंत्रित न किया जावे।"

यह प्रस्ताव अत्यन्त आपत्तिजनक है। इसमें दो बातों का विरोध करना हमारा कर्तव्य है। एक तो 'अगर सम्भव हो सके तो' यह वाक्य हमें बहुत खटकता है। इस अनिश्चित बात के क्या मानी होते हैं? क्या ब्रिटिश सरकार हमको साम्राज्य के नागरिक नहीं मानती? यदि मानती है तो फिर अगर मगर लगाने की क्या ज़रूरत है? इसके सिवाय दूसरी बात यह है कि हम ब्रिटिश साम्राज्य के अधिवासी हैं, इस लिये हमारी तुलना एशियानिवासी किसी अन्य जाति से करना बड़ी भारी भूल है। अन्य एशियावासियों की अपेक्षा हमको ज्यादा सुविधा अवश्यमेव होनी चाहिये। इसके सिवाय यूरोपियन लोगों ने यह कैसे समझ रक्खा है कि हम यूरोपियन लोग एशियावासियों की अपेक्षा उन्नतर जातिके हैं? यूरोप के श्वेतकाय भिखमंगे तक को एशिया के सभ्य मनुष्यों की अपेक्षा, सब ब्रिटिश उपनिवेशों में प्रवेश करने, रहने और मजदूरी करने के लिये अधिकतर सुविधायें प्राप्त हैं! यह धर्मविरुद्ध और अन्यायपूर्ण है।

तीसरा प्रस्ताव यह है कि "यदि द्वितीय प्रस्ताव के अनुसार काम करना असम्भव हो तो मजूरी या स्थायी वास के लिये भारत और प्रत्येक उपनिवेश में 'पारस्परिक समानता' का व्यवहार किया जावे। यदि इन दो प्रकार के भारतीयों को कोई उपनिवेश न आने देने का निश्चय करे तो भारत भी उस उपनिवेश से वैसा ही व्यवहार कर सकता है। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि

दिया और उसने एक सुराही में शोरवा रक्खा। अब सारस तो मजे के साथ अपनी चोंच से शोरवा सा सकता था, लेकिन गीदड़ योंही मुँह देखता रह गया; क्यों कि उसका मुँह सुराही के भीतर पहुँच ही नहीं सकता था। जिस प्रकार सारस ने गीदड़ से बदला लिया, उसी तरह हम लोग भी यदि उपनिवेश वालों से बदला ले सकें तब तो 'पारस्परिक समानता' का वर्ताव ठीक समझना चाहिये, अन्यथा वही हाथी और बाघ की सी कहानी हो जावेगी। कहा जाता है कि जब पहिले हाथी और बाघ में मित्रता थी, तो इन दोनों ने इस बात की प्रतिज्ञा की थी कि यदि भविष्य में हम दोनों में लड़ाई हो जावे, तो हम दोनों में से कोई भी किसी प्रकार के अस्त्र का व्यवहार नहीं करेंगे। धूर्त बाघ बोला कि बस हम लोग पंजा मारकर ही युद्ध करेंगे। बेवकूफ हाथी इसी बातपर राजी हो गया। आगे चल कर जब बाघ और हाथी में शत्रुता हुई, तो उस समय बाघ ने अपने थपेड़ों से हाथी के नाक में दम कर दिया और उसका माँस नोंच नोंच कर खाना शुरू किया, क्यों कि हाथी अपने अकेले पाँवों से बाघ को कुछ भी नुकसान नहीं पहुँचा सका। यदि हाथी बुद्धिमान् होता तो जिस समय बाघ से मित्रता थी उस समय इस बात को तैय कर लेता कि जब युद्ध होगा तब मैं सूँड और पाँव दोनों से युद्ध करूंगा।

इस प्रस्ताव में जो यह बात कही गई है कि Racial prejudice (जातीय कुसंस्कार) की वजह से कोई किसी का विरोध नहीं करता, सो बिल्कुल हास्यजनक है, क्यों कि आजकल औपनिवेशिक लोग बराबर यूरोप और एशिया के लोगों के बीच जातीय कुसंस्कारों की वजह सेही भेद करते हैं।

कोई कोई एङ्गलो इण्डियन पत्र लिखते हैं कि 'औपनिवेशिक लोग

भारत में कल कारखाने स्थापित करते हैं, जिससे अनेक मजदूरों का पालन पोषण होता है और देश के लोगों का उपकार होता है, लेकिन यदि भारतवासी उपनिवेशों में मजदूरी करने के लिये जाते हैं तो वहाँ मजदूरी की दर कम हो जाती है, जिससे वहाँ के गोरे श्रमजीवियों को बड़ी असुविधा होती है।' इसका उत्तर यह है कि विदेशी लोग इस देश में जितने ही कल कारखाने स्थापित करते हैं, उतना ही हमारा कार्य्यक्षेत्र संकुचित होता जाता है, और हमारे उन कार्य्यों में प्रवृत्त होने और उनसे लाभ उठाने के मार्ग में विदेशी लोग बाधा डालते हैं। इसके सिवाय सब औपनिवेशिक लोग कल कारखाने ही स्थापित करने के लिये थोड़े ही आते हैं, कितने ही दूसरे काम करते हैं। उदाहरणार्थ संयुक्त प्रान्त की पुलिस के इंसपैक्टर जनरल साहब मि. मॅरिस किसी उपनिवेश के ही निवासी हैं।

अब दूसरी ओर लीजिये। मजदूरों की वजह से उपनिवेशों का बड़ा उपकार होता है। हिन्दुस्तानी मजदूरों ने कितने ही उपनिवेशों को नष्ट होने से बचाया है।

ट्रिनीडाड और ब्रिटिश गायना का उद्धार हमारे मजदूरों ने ही किया था। West Indies नामक पुस्तक में लिखा है कि "दासत्व प्रथा के बन्द हो जाने पर वहाँ के गोरे प्लाण्टरों की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय हो गई थी; क्यों कि उनको कहीं से मजदूर नहीं मिलते थे। पहिले तो इन प्लाण्टर लोगों ने अफ्रिका से मजदूर लाने का विचार किया, लेकिन दासत्व प्रथा के विरोधी भला कब इस बात को मान सकते थे कि अफ्रिका से मजदूर भर्ती किये जावें, क्यों कि उन्हें इस से अनेक बुराइयों के पैदा हो जाने का डर था। तब भारतवासी मजदूरों पर तजरुबा किया गया। भिन्न भिन्न लोगों ने कितने ही कुली भारतवर्ष से मँगवाये; खास करके जान ग्लेडस्टन

साहब हमराता को भारतीय कुली भर्ती करके ले गये, लेकिन फिर दासत्व प्रथा के विरोधियों ने गुलामी की आवाज़ उठाई। कारण इसका यह था कि खेतों के गोरे मेनेजर लोग इन नये आये हुये मज़दूरों को हिन्दुस्तानी सरदारों के हाथों में छोड़ देते थे। कहा जाता है कि यह सरदार अपने अधीनस्थ मजदूरों को खूब मारते पीटते थे, लेकिन इस बात की सारी ज़िम्मेवारी प्लाण्टरों के सिर थी, इसी लिये कुछ दिनों तक वहाँ कुली जाना बन्द रहा। प्लाण्टर लोगों की बड़ी दौड़धूप के बाद इन जगहों को फिर कुली जाना प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार इन मजदूरों के जाने से ट्रिनीडाड और ब्रिटिश गायना सत्यानाश होने से बचे। हबशी लोग मजदूरी करने के लिये जितना वेतन माँगते थे उतना वेतन देना प्लाण्टरों की शक्ति से बाहिर था। शक्कर की क़ीमत के देखे इतनी अधिक मजदूरी नहीं दी जा सकती थी। अब बस दो ही बातें रह गई थीं या तो सस्ते मजदूर मिल जावें और नहीं तो फिर प्लाण्टर लोग अपनी जीविका से हाथ धो बैठें। हिन्दुस्तानी मजदूरों के पहुँच जाने की वजह से ब्रिटिश गायना और ट्रिनीडाड नष्ट होते होते बचे, यही नहीं बल्कि हिन्दुस्तानी मजदूरों के आ जानेसे कुछ बातों में इन उपनिवेशों की दशा उस समय से भी अच्छी हो गई, जब कि दासत्व प्रथा का उच्छेद नहीं हुआ था।"

फ़िजी को भी भारतीय मज़दूरों ने ही बचाया

मि. बर्टन साहब अपनी पुस्तक Fiji of to day में लिखते हैं:—

"The Indian is wanted in Fiji. He has come at our solicitation, and we are under some sort of compliment to him for coming to us in our extremity—though we would

rather die than admit it to him. He is here because capital must have labour to carry out its plans and the native labour is out of the question."

अर्थात्–" फ़िजी में भारतवासियों की आवश्यकता है, और हमही ने प्रार्थना करके भारतवासियों को यहाँ बुलाया है। हम उनके ऋणी हैं, क्यों कि उन्होंने हमारी कष्टावस्था में आकर हमें सहायता दी, लेकिन हम लोग ऐसे हैं कि चाहे मर जावें लेकिन, इस बात को भारतवासियों के सामने स्वीकृत नहीं करेंगे कि तुमने (भारतवासियों ने) हमारे कष्ट में आकर हमें मदद दी है।

भारतवासी फ़िजी में इस लिये आये हैं कि पूँजी से कारख़ाने खोलने और उद्योगधंधों के चलाने के लिये मजदूरों की बड़ी ज़रूरत होती है और फ़िजी के आदिम निवासी जंगलियों से मज़दूरी कराना असम्भव है।"

बर्टन साहब ने लिखा है कि फ़िजी के गोरे लोगों ने पहिले जंगलियों से मज़दूरी कराने का प्रयत्न किया था, लेकिन वह सफल नहीं हुआ। इसके बाद भारतवर्ष से कुली मँगाये गये और उन्हों ने आकर फ़िजी के सारे कारख़ानों और उद्योगधंधों को चलाया। इस समय भी भूखों मर मर कर भारतीय कुली ही फ़िजी के गोरे कुलपतियों को लाखों और करोड़ों का लाभ करा रहे हैं। मि. बर्टन लिखते हैं—

"The Indian coolie was given a trial. Though he has nobody to speak of, and seemingly still less soul, he has shown himself to be so satisfactory that for thirty years he has supplied the labour for the principal projects in Fiji. At the present time over three thousand Indians per annum are needed to carry on the business of the colony...... The Indian is counted on the whole, very satisfactory 'labour.' If he were withdrawn from Fiji many important commercial enterprises would collapse altogether. The majority are

tireless workers at their own speed—and their powers of endurance are far beyond the ordinary. There are no food troubles a very important point in this connection. They 'find' themselves out of their modest wages, and though the fare is scanty enough, the Indian is fairly well satisfied, for he is not a Fijian—nor yet an Englishman."

अर्थात्—"फिर हिन्दुस्तानी कुलियों से जाँच के लिये काम कराया गया। यद्यपि इनके शरीर बहुत पतले दुबले होते हैं और ऐसा दीखता है कि मानों आत्मा तो इनमें है ही नहीं, तथापि इन लोगों ने इतनी सन्तोषजनक रीति से कार्य्य किया है कि पिछले तीस वर्षों से यही फिजी के खास खास व्यापार सम्बन्धी कारखानों में मजदूरी का काम करते हैं। फिजी के उद्योग धंधों को चलाने के लिये वर्तमान समय में लगभग तीन सहस्र भारतवासियों की प्रतिवर्ष आवश्यकता है...... भारतवासी मजदूरों का काम अधिकांश में बहुत सन्तोषजनक समझा जाता है। अगर इस समय भारतवासी फिजी से वापिस बुला लिये जावें तो कितने ही मुख्य मुख्य तिजारती कामों का मटियामेंट—सत्यानाश हो जावेगा। ज्यादा तर भारतवासी अपने कार्य्य करने के ढङ्ग के मुताबिक अनथक परिश्रमी होते हैं, और इनकी सहनशक्ति मामूली से कहीं ज्यादा होती है। इनकी मजदूरी के बारे में एक बड़ी उल्लेखयोग्य बात है, वह यह कि यह खाने के लिये नहीं झगड़ते। अपने थोड़े से ही वेतन में यह अपनी गुजर कर लेते हैं। यद्यपि भारतीय मजदूरों को बहुत कम खाना मिलता है, तो भी वह साधारणतया सन्तुष्ट रहते हैं, क्योंकि वह कोई फिजियन या अंग्रेज तो है ही नहीं।"

केवल ब्रिटिश गायना, ट्रिनीडाड और फिजी ही नहीं, बल्कि दक्षिण अफ्रिका, डच गायना इत्यादि सभी उपनिवेशों के अभ्युदय के कारण भारतीय मजदूर ही हैं।

चौथा प्रस्ताव यह है कि "ऐसे प्रवेश निषेध के साथ ही सैर करनेवालों, विद्यार्थियों और इसी प्रकार के लोगों के प्रवेश तथा कामकाज के वास्ते अस्थायी रूप से बसने के लिये पूरे सुभीते किये जावें, लेकिन यह लोग न तो मज़दूरी कर सकेंगे और न स्थायी बाशिन्दे बन सकेंगे।"

अमेरीका में हमारे कितने ही छात्र मज़दूरी करके शिक्षा का व्यय चलाते हैं, इसी प्रकार यदि वह कनाडा अथवा अन्य किसी उपनिवेश में मज़दूरी करके पढ़ना चाहें तो उन्हें ऐसा करने की आज्ञा देनी उचित है। इस प्रकार यदि सौ दो सौ विद्यार्थी उपनिवेशों में मज़दूरी करके शिक्षा प्राप्त करें तो उनकी प्रतियोगिता से गोरे मज़दूरों की कोई बड़ी भारी हानि तो होगी नहीं।

भारतीय प्रतिनिधियों की करतूत

भारतीय प्रवास के मैमोरेण्डम पर एक दृष्टि

भारतीय प्रतिनिधियों ने अपने मैमोरेण्डम में जो मुख्य चार प्रस्ताव किये हैं उन पर हम विचार कर चुके हैं, अब हमें इन प्रतिनिधियों की करतूत को स्पष्ट करना बाक़ी रह गया है। मि. पोलक, मि. ऐण्ड्रूज़ और मि. गान्धी के से योग्य महानुभावों के होते हुये भी सर. ऐस. पी. सिनहा का प्रतिनिधि चुना जाना हम भारतवासियों के लिये बड़े दुर्भाग्य की बात थी। यह 'प्रथमग्रासे मक्षिकापातः' हुआ। सर ऐस. पी. सिनहा 'भारतीय प्रवास' के विषय में बिल्कुल कोरमकोर हैं; हम यह बात पाहिले से ही जानते थे और हमें इस बात की बड़ी आशङ्का थी कि कहीं यह महाशय सर जेम्स मेस्टन साहब से मिलकर ऐसा मैमोरेण्डम पेश न करें, जो भारत के राष्ट्रीय टाम के लिये घातक हो। आख़िर हुआ भी वही। मैमोरेण्डम के प्रस्ताव कैसे

लचर और असन्तोषजनक हैं, यह पाठक पढ़ चुके हैं, अब ज़रा इस मेमोरेण्डम पर एक सरासरी नज़र और डाल लीजिये।

इस मेमोरेण्डम में लिखा है:—

"That Asiatics of British nationality should at least not be less favourably treated than other Asiatics."

अर्थात्–"ब्रिटिश साम्राज्य के निवासियों के साथ कम से कम ऐसा बर्ताव तो न किया जावे जो दूसरे एशियानिवासियों के बर्ताव की अपेक्षा बुरा हो।" हम पूँछते हैं कि भारतवासियों के साथ जापानियों या चीनियों की बराबरी का ही क्यों, इन लोगोंकी अपेक्षा उत्तमतर व्यवहार क्यों न किया जावे? ख़ैर इस बात को तो छोड़िये क्योंकि इतनी दूर हमारे (?) प्रतिनिधियों की अक्ल नहीं पहुँच सकती। अब हमारा सवाल यह है कि क्या भारत सरकार इस बात के लिये लिखापढ़ी करेगी कि जापान के तिजारती लोगों के लिये दक्षिण आफ्रिका में जो सुविधायें हैं वह सुविधायें भारतवर्ष के भी व्यापारियों के लिये कर दी जावें? और यदि भारत सरकार इस बात के लिये लिखा पढ़ी करे भी तब भी क्या यूनियन सरकार इस बात को मान लेगी? युद्ध के बाद जिस तेज़ी के साथ जापानियों ने दक्षिण अफ्रिका में अपनी तिजारत को बढ़ाना शुरू किया है, उसे देख कर आश्चर्य होता है।

अभी दो तीन महीने हुये होंगे, जब कि दो भारतवासियों को जो कि केम्ब्रिज यूनीवर्सिटी के ग्रेजुएट थे, केपटाउन में उतरने की आज्ञा नहीं दी गई, लेकिन यूरोपियन और जापानी यात्रियों को उतरने की आज्ञा दे दी गई। सम्भवतः जापानी लोग स्वास्थ्य के लिये तो दक्षिण अफ्रिका गये ही न थे! ऐसी बातें देखते हुये हम लोग कैसे आशा

कनाड़ा में उसी प्रकार मँगा रक्खी जावेंगी, जिस प्रकार कि किसी देश में गौभैंसें लाई जाकर 'Breeding purpose' पशुवृद्धि के लिये रक्खी जाती हैं। अन्यथा यह स्त्रियाँ विवाह के लिये नहीं, बल्कि किसी अन्य अभिप्राय के लिये मँगाई जावेंगी !

ो भी ' बिल्ली को ख्वाब में भी छिछड़े ' की तरह दिन रात राजनैतिक आन्दोलनकारी ही नज़र आया करते हैं ? वास्तव में कनाडा गलों के लिये यह बात अत्यन्त लज्जाजनक है कि वह प्रवासी सिक्खों को अपनी स्त्रियों को कनाडा में नहीं लाने देते।

ब्रिटिश साम्राज्य के लिये भी यह बात कलंककर है। यदि राजनैतिक आन्दोलन करनेवालों ने इसके लिये हलचल की तो इसमें उन्होंने कोनसी बुराई का काम किया ? अथवा क्या इन आन्दोलनकारियों के आन्दोलन की वजह से कनाडा के सिक्खों के अपनी स्त्रियों को निकट रखने के अधिकार में कुछ कमी हो गई ? चाहे आन्दोलन होता या न होता, पर कनाडा प्रवासी भारतीयों के न्यायोचित अधिकार कम नहीं हो सकते, हाँ यह दूसरी बात है कि कनाडा सरकार मनुष्यता को पेरों तले कुचलते हुये इस अधिकार को उनसे भले ही छीन ले।

सन् १९१२ ई. में बम्बई में जो सभा दक्षिण अफ्रिका के प्रवासी भाइयों के साथ सहानुभूति प्रकट करने के लिये हुई थी, उसमें सर जमशेदजी जीजीभाई ताता के सभापतित्व में यह प्रस्ताव पास हुआ था, कि कनाडाप्रवासी भारतीयों को भारत से अपनी स्त्रियों के ले जाने का अधिकार देना चाहिये। क्या सर जमशेद जी पोलिटिकल ऐजीटेटर (राजनैतिक आन्दोलनकारी) कहे जा सकते हैं ? अथवा क्या सर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ही राजनैतिक आन्दोलनकारी कहे जा सकते हैं, जिन्हों ने कनाडा की भूमि पर पैर रखने से इस लिये इंकार कर दिया कि हमारे भाइयों के साथ वहाँ बुरा बर्ताव किया जाता है !

इस मैमोरेण्डम में इस बात की भी सिफ़ारिश की गई है कि शिक्षित भारतवासियों को यात्रा, अध्ययन अथवा किसी अन्य कार्य्य

१६

के लिये अस्थायी निवास के वास्ते सुविधा की जावे। यह सिफ़ारिश ठीक है, लेकिन हम पूँछते हैं कि शिक्षित भारतवासियों को ब्रिटिश साम्राज्य में कहीं भी प्रवेश करने या निवास करने की स्वतंत्रता क्यों न प्रदान की जावे? इन शिक्षित भारतवासियों की वजह से कनाडा की सामाजिक स्थिति को कौनसा धक्का पहुँचेगा? यह लगभग असम्भव है कि लाखों या हज़ारों ही शिक्षित भारतवासी कनाडा या आस्ट्रेलिया में अपने डेरे जा जमावें, इस लिये यह डर कि शिक्षित भारतवासियों के ढ़ेर के ढ़ेर हमारे गोरे देश में आकू देंगे, बिल्कुल निराधार है।

यह अत्यन्त आवश्यक है कि जहाँ जहाँ बहुत से भारतवासी बसे हुये हैं, वहाँ शिक्षित भारतवासियों को स्थायी निवास के अधिकार दिये जावें। प्रवासी भारतवासियों को शिक्षित भारतीयों की बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि बिना शिक्षित नेताओं की सहायता के हमारे प्रवासी भाई उन्नति के पथ पर अग्रसर नहीं हो सकते; लेकिन जब तक शिक्षित भारतवासियों को स्थायी निवास का अधिकार नहीं मिलेगा, तब तक भला वे किस तरह विदेश जाकर नेता का काम कर सकेंगे? मान लीजिये कि आज देशभक्ति से प्रेरित होकर एक सिग्रुस मेजुएट कनाड़ा को जाता है; वहाँ पहुँचकर यदि वह अपने प्रवासी भाइयों के साथ सहानुभूति प्रगट करता है, और कनाडा सरकार के किसी अन्यायपूर्ण कानून का विरोध करता है, तो फ़ौरन कनाडा की सरकार उसे कनाडा से निकाल बाहिर करेगी। ऐसी दशा में कौन शिक्षित भारतवासी कनाड़ा में जाकर अपना अपमान करावेगा?

sympathetic कृपापूर्ण और सहानुभूतियुक्त वर्ताव किया जावे। Kindly और Sympathetic यह दोनों ही शब्द हमारे कानों में खटकते हैं। जब कनाडा और भारत में अथवा आस्ट्रेलिया और भारत में समानता के बर्ताव की नीति काम में लाये जाने की सिफा रिश की गई है तो फिर 'कृपापूर्ण और सहानुभूतियुक्त बर्ताव' के क्या मानी होते हैं? यदि कनाडावाले बुरा बर्ताव करें तो हमें भी यह अधिकार होना चाहिये कि हम भी उनके साथ वैसा ही बर्ता कर सकें। यदि वह अच्छा बर्ताव करें तो हम भी उनके साथ अच्छ ही बर्ताव करेंगे; इसमें दया और सहानुभूति की भीख माँगने की क्या ज़रूरत पड़ी थी?

इस में शक नहीं कि हमारे भारतीय प्रतिनिधियों ने बड़ी खा सारी और आजिज़ी के साथ, अपने मालिकों के हुक्मों की फ़र बरदारी की है। जिसे हमारी बात पर यक़ीन न हो वह इनका मैमो रेण्डम पढ़ ले। इस मैमोरेण्डम को पढ़ कर दक्षिण अफ्रिका के 'इण्डिय ओपीनियन' नामक पत्र ने बहुत ठीक लिखा है:—

"One might expect such remarks from the Pioneer or th Madras Mail but not from special representatives of th people of India."

अर्थात्—"इस प्रकार की बातों की आशा 'पायोनियर' या 'मद्र मेल' से की जा सकती थी, भारतवर्ष के ख़ास प्रतिनिधियों से ऐसे वचनों की आशा नहीं थी।"

एक जगह इन प्रतिनिधियों ने लिखा है कि "यदि इमीग्रे विभाग के अफ़सर लोग भारतवासियों के साथ सहानुभूति का बर्ता करेंगे तो शिक्षित भारतवासियों को कष्ट का अनुभव कम होगा, क्यों उन्हें (शिक्षित भारतवासियों को) निस्सन्देह इस बात से बड़ी

सूब ! जर्मन पूर्वीय अफ्रिका के ज्वराकान्त प्रदेश, जो कि मुख्यतया भारतीय सिपाहियों के ही प्रयत्न से जीते गये हैं, अगर हमें मिल भी जावें तो क्या इस से भारतीय-प्रवास के प्रश्नों के हल करने में कोई बड़ी भारी सुविधा होगी ?

कनाडा में हिन्दू लोग अपनी स्त्रियों और बाल बच्चों के लिये तरस रहे हैं, और दक्षिण अफ्रिका में भारतवासियों के अधिकार छीने जा रहे हैं, लेकिन इन असन्तुष्ट लोगों को सन्तोष देने के लिये हमारे प्रतिनिधि जर्मन पूर्वीय अफ्रिका की दलदलमय भूमि के टुकड़े देना चाहते हैं !

भारत के राष्ट्रीय सम्मान को आघात पहुँचानेवाले इस मैमोरेण्डम को पढ़ कर हमें बड़ी निराशा उत्पन्न हुई और सहसा हमारे मुख से यही शब्द निकल पड़े 'हे परमात्मन् उन मनुष्यों से, जो हमारे प्रतिनिधि होने का दम भरते हैं और इस प्रकार के विचार प्रगट करते हैं, हमारी रक्षा कर।' इस मैमोरेण्डम में जो समानता के व्यवहार की बात कही गई है वह हमें तो केवल आडम्बर मात्र दीख पड़ती है। ट्रान्सवाल में भारतवासी कोई जायदाद नहीं खरीद सकते और म्युनिसपैलिटी में राय देने का उन्हें अधिकार नहीं है। क्या इस मैमोरेण्डम में कहीं यह भी लिखा है कि ट्रांसवाल के जो यूरोपियन भारतवर्ष में बसना चाहेंगे वह यहाँ कोई जायदाद नहीं खरीद सकेंगे ?

नेटाल में भारतवासियों को तिजारत करने के लिये लैसंस लेना पड़ता है और म्युनिसपैलिटी को यह अधिकार है कि वह लैसंस देवे या न देवे। इस पर भी तुर्रा यह कि म्युनिसिपैलिटी इस बात का सबब बतलाने के लिये बाध्य नहीं है कि लैसंस क्यों नहीं दिया गया, और म्युनिसपैलिटी के इस हुक्म की कहीं अपील भी नहीं हो सकती। क्या इस मैमोरेण्डम में कहीं यह भी लिखा है कि नेटाल के जो यूरोपियन भारतवर्ष में व्यापार करना चाहेंगे उन्हें यहाँ की

चुंगियों से लैसंस के लिये प्रार्थना करनी पड़ेगी, और इन चुंगियोंको यह इख्तियार होगा कि चाहे लैसंस दें या न दें?

दक्षिण अफ्रिका के आन्तरिक विभाग के मंत्री को इस बात का अधिकार है कि वह 'आर्थिक कारणों' से किसी भी भारतवासी को दक्षिण अफ्रिका में बसने से रोक सकता है। क्या इस मैमोरेण्डम में इस बात की कहीं सिफ़ारिश की गई है कि दक्षिण अफ्रिका के गोरों के साथ भारतवर्ष में ऐसा ही व्यवहार होना चाहिये? क्या इस मैमोरेण्डम में कहीं इस बातका ज़िक्र भी किया गया है कि जिस प्रकार दक्षिण अफ्रिका के गोरों ने 'यूनियन इमी ग्राण्ट रेगूलेशन ऐक्ट' बना लिया है वैसा ही भारतवर्ष में भी 'इण्डियन इमीग्राण्ट रेगूलेशन ऐक्ट' बनाया जावे और इस ऐक्ट को उसी प्रकार काम में लाया जावे, जिस प्रकार कि दक्षिण अफ्रिका के गोरे अपने ऐक्ट को काम में लाते हैं? क्या इस मैमोरेण्डम में कहीं यह भी कहा गया है कि कनाडावालों को भारतवर्ष में तब तक नहीं आने दिया जावेगा, जब तक कि वह सीधे कनाडा से एक ही जहाज़ पर चढ़कर भारतवर्ष को न आवें? क्या इस मैमोरेण्डम में कहीं यह भी लिखा गया है कि आस्ट्रेलिया के निवासी भारतवर्ष में तभी प्रवेश करने पावेंगे जब कि वह भारतवर्ष में पैर रखते ही 'शिक्षा सम्बन्धी परीक्षा' पास कर लें, जो कि संस्कृत भाषा या 'टोडा' भाषा में होगी? हमने इस मैमोरेण्डम को आदि से अन्त तक पढ़ा, लेकिन हमें उपर्युक्त बातों में से एक भी उसमें न दीख पड़ी। हमने अपने दिल में सोचा कि क्या हमारे वर्षों के आन्दोलन का फल यही मैमोरेण्डम है? क्या सचमुच यही मैमोरेण्डम भारतवर्ष के प्रतिनिधियों का दिया हुआ है? यदि भारतवर्ष स्वतंत्र होता तो क्या आज इस प्रकार मैमोरेण्डम भेजा जाता?

अब यह वही मेमोरेण्डम है जिसकी हम बड़ी उत्सुकता के साथ बाट जोह रहे थे।

किसी ने ठीक कहा है—

"बहुत शोर सुनते थे पहलू में दिल का
जो चीरा तो एक कतरए ख़ूँन निकला"

फिर हमने अपने उद्दण्ड दिल को समझाया

"इस प्रकार के विचारों में क्या रक्खा है ? पराधीन जाति के व्यक्तियों को यह अधिकार नहीं कि वह इस प्रकार के विचारों में मग्न हों। ठहरो और देखो कि आगे चलकर क्या क्या होता है, कौन कौन सी कुली प्रथा जारी होती है, अभी तो प्रारम्भ ही है।

"इब्तदाये इश्क है रोता है क्या।
आगे आगे देखिये होता है क्या॥"

क्या कोई 'आज़ाद' कुली प्रथा जारी होगी ?

हमारे पाठकों ने यह समाचार तो सुन ही लिया होगा कि अब 'कुमाऊँ की कुली प्रथा' सदा के लिये उठ गई। इस समाचार के [illegible] निश्चिन्त भी हो गये होंगे और [illegible] ८० वर्ष बाद इस [illegible] की [illegible] अब कोई फिक्र की बात नहीं है।' [illegible] है कि [illegible] [illegible] अब हो चुकी है, लेकिन उसका पुनर्जन्म [illegible] है। [illegible] नवीन कुली-प्रथा की स्कीम को पढ़ा है [illegible] का एक रूपान्तर मात्र [illegible] हिन्दू' में इस स्कीम के बारे में

दस वर्ष बाद उसे ज़मीन के बेचने या उसे रहन रखने का परिमित अधिकार होगा। मजदूरी की शर्तें भी शर्तबन्दी की प्रथा की शर्तों से कम आपत्तिजनक प्रतीत नहीं होती हैं। साधारणतः ६ महीने बाद वह जिस जगह चाहे नौकरी कर सकता है, और यदि वह दूसरी जगह जाना चाहे तो एक महीने का नोटिस देकर वहाँ जा सकता है। शर्तें तोड़ने के लिये उसके ऊपर फ़ौजदारी का मुकद्दमा नहीं चलाया जावेगा, र्ई दीवानी में दावा दायर हो सकता है। मजदूरी का परिमाण भी श्चित होगा। गर्भवती स्त्रियों को ६ महीने तक मुफ्त रसद मिलेगी। १ वर्ष से कम उम्र के लड़कों को वहाँ पहुँचने पर १२ महीने तक हुन खाना और ५ साल से कम लड़कों को मुफ़्त में दूध मिलेगा, ब तक उनके मातापिता चुने हुये मालिकों के यहाँ काम करते रहें। वाहित आदमियों के रहने के लिये अलग मकानों का प्रबन्ध किया विगा। दवा दारू का वर्तमान प्रबन्ध क़ायम रहेगा। भर्ती की शर्तों कुछ परिवर्तन हुआ है, यह नियम तोड़ दिया गया है कि सौ आदमियों पीछे चालीस स्त्रियाँ जानी ही चाहिये। डिपो में, भर्ती होने वाले और उनके दोस्त आज़ादी से आ जा सकेंगे मजिस्ट्रेट या मजिस्ट्रेट के भेजे हुये डिपटी मजिस्ट्रेट डिपो में जा सकेंगे, लेकिन प्रथ की तरह कलकत्ते जाने के पहिले मजिस्ट्रेट के सामने कुलियों का पेश करना आवश्यक न होगा। जाने के पहिले प्रत्येक कुली को काम का छपा हुआ विवरण समझा दिया जावेगा। तीर्थस्थानों में कुलियों की भर्ती मेलों के समय में रोक दी जावेगी; यदि भारत सरकार चाहे तो जिस जहाज़ में भर्ती के कुली रवाना होंगे उस में हिन्दुस्तानी डाक्टर भी नियुक्त किये जा सकते हैं। लौटने के लिये कुली को तीन वर्ष के बाद आधा, ५ साल के बाद तीन चौथाई और सात वर्ष के बाद पूरा भाड़ दिया जावेगा, लेकिन यदि किसी कुली ने मारपी की.

दस वर्ष बाद उसे ज़मीन के बेचने या उसे रहन रखने का परिमित अधिकार होगा। मजदूरी की शर्तें भी शर्तबन्दी की प्रथा की शर्तों से कम आपत्तिजनक प्रतीत नहीं होती हैं। साधारणतः ६ महीने बाद वह जिस जगह चाहे नौकरी कर सकता है, और यदि वह दूसरी जगह जाना चाहे तो एक महीने का नोटिस देकर वहाँ जा सकता है। शर्तें तोड़ने के लिये उसके ऊपर फ़ौजदारी का मुकद्मा नहीं चलाया जावेगा, सिर्फ़ दीवानी में दावा दायर हो सकता है। मजदूरी का परिणाम भी निश्चित होगा। गर्भवती स्त्रियों को ६ महीने तक मुफ्त रसद मिलेगी। ११ वर्ष से कम उम्र के लड़कों को वहाँ पहुँचने पर १२ महीने तक मुफ्त खाना और ५ साल से कम लड़कों को मुफ्त में दूध मिलेगा, जब तक उनके मातापिता चुने हुये मालिकों के यहाँ काम करते रहें। विवाहित आदमियों के रहने के लिये अलग मकानों का प्रबन्ध किया जावेगा। दवा दारू का वर्तमान प्रबन्ध कायम रहेगा। भर्ती की शर्तों में कुछ परिवर्तन हुआ है, यह नियम तोड़ दिया गया है कि सौ आदमियों पीछे चालीस स्त्रियाँ जानी ही चाहिये। डिपो में, भर्ती होने वाले और उनके दोस्त आज़ादी से आ जा सकेंगे मजिस्ट्रेट या मजिस्ट्रेट के भेजे हुये डिप्टी मजिस्ट्रेट डिपो में जा सकेंगे, लेकिन अब की तरह कलकत्ते जाने के पहिले मजिस्ट्रेट के सामने कुलियों का पेश करना आवश्यक न होगा। जाने के पहिले प्रत्येक कुली को काम का छपा हुआ विवरण समझा दिया जावेगा। तीर्थस्थानों में कुलियों की भर्ती मेलों के समय में रोक दी जावेगी; यदि भारत सरकार चाहे तो जिस जहाज़ में भर्ती के कुली रवाना होंगे उस में हिन्दुस्तानी डाक्टर भी नियुक्त किये जा सकते हैं। लौटने के लिये कुली को तीन वर्ष के बाद आधा, ५ साल के बाद तीन चौथाई और सात वर्ष के बाद पूरा भाड़ दिया जावेगा, लेकिन यदि किसी कुली ने माफ़ी की

ज़मीन मंजूर करली तो उसका भाड़ेका अधिकार जाता रहेगा। एक मुख्य बात यह भी है कि वह ग़ैर सरकारी प्रतिष्ठित हिन्दुस्तानी डिपो में जा सकेंगे, जिनको ज़िला मजिस्ट्रेट इस काम के लिये नामज़द करें।

संक्षेप में इस नवीन कुली प्रथा के यही लक्षण हैं। हमें तो यह दासत्व प्रथा का तृतीय संस्करण ही दीख पड़ती है। इससे कितनी ही मिलती जुलती प्रथा सीलोन और फेडरेटेड मलाया स्टेट में है, लेकिन वहाँ के नाम मात्र स्वतंत्र कुलियों की दशा शर्तबन्दे कुलियों की दशा से कुछ कम ख़राब नहीं है।

नवीन प्रथा के दोष

करके विदेशों को भेजे जावें । बम्बई के मिल वाले और आसाम के चाय की खेती वाले बराबर मजदूरों के लिये रोते रहते हैं फिर बतलाइये भारत वर्ष को क्या आवश्यकता पड़ी है कि वह आरकाटियों द्वारा अपने निवासियों को उपनिवेशों को भिजवावे ? इस नवीन प्रथा का उद्देश्य बतलाया गया है 'भारतवासियों को उपनिवेशों में जाकर रहने के लिये उत्तेजित करना ।' हमारी समझ में नहीं आता कि जब हमको अपने देश के छोड़ने की आवश्यकता ही नहीं है तो फिर यह उत्तेजना हमें क्यों दी जारही है ? हम औपनिवेशक लोगों की इस 'बेजा महरबानी' को दूर ही से नमस्कार करते हैं । इस रिपोर्ट के विषय में महात्मा गान्धीजी ने कई मार्के की बातें कही हैं । गान्धीजी लिखते हैं—"वास्तव में इस कान्फ्रेंस का *प्रधान लक्ष्य भारतीय कुलियों के हिताहित पर विचार करना नहीं था।* इस लिए यह नवीन प्रथा उपनिवेशों को लाभ पहुँचाने की इच्छा से निकाली गई है । कम से कम वर्तमान समय में भारत की जनता को विदेशों में जाने की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है इसके अतिरिक्त यह बात विवादास्पद है कि उक्त चार उपनिवेश, भारतवासियों के रहने के लिये उपयुक्त हैं या नहीं । अतएव भारतवासियों की दृष्टि में सब से अच्छी बात यही है कि भारत से उपनिवेशों को कुली भेजने की कोई प्रणाली न रहे, उस अवस्था में भारत से जो लोग बिल्कुल स्वतंत्र होकर अपनी ही जिम्मेदारी पर और अपनी ही मति गति के भरोसे उपनिवेशों को जाना चाहेंगे तो चले जायंगे । अतीत काल के अनुभव से यह बात मालूम होती है कि इस दशा में इतनी दूर उपनिवेशों में जाकर रहने की हिम्मत कोई भी भारतवासी नहीं करेगा । इस नवीन प्रणाली का उद्देश्य है भारतवासियों के प्रवास में सहायता देना, 'सहायता देने' के मानी इस रिपोर्ट में कमसे कम 'उत्तेजना

देने ' के तो हैं ही। भारत के उद्योग धंधोंके लिये मज़दूरों की बड़ी भारी आवश्यकता है, और भारत की विभूतियों (द्रव्यसाधनों) के विकसित करने के लिये जो अब तक योंही पड़ी हुई हैं, असंख्य मज़दूरों की ज़रूरत पड़ेगी। इस दशा में भारतवासियों को दूसरे उपनिवेशों में जाने के लिये उत्तेजित करने का विचार पागलपन नहीं तो क्या है? बर्मा और सीलोन में जाने वाले भारतीयों को तो वहाँ के कष्ट और यंत्रणाओं से बचाने के लिये आजतक सरकार या अन्य कोई शक्ति समर्थ नहीं हो सकी, तो क्या काले कोसों जाकर फ़िजी इत्यादि द्वीपों में और उपनिवेशों में बसने वाले भारतवासियों को वहाँ के अत्याचारों से बचाने में कोई शक्ति सहायक हो सकेगी? इसलिये भारतीय नेताओं को साफ़ साफ़ और दृढ़ता के साथ कह देना चाहिये कि हमें उपनिवेशों को कुली भेजने की आवश्यकता नहीं है। कोई कोई कहेंगे कि भारत ब्रिटिश साम्राज्य का एक अङ्ग विशेष है, इसलिये साम्राज्य के अन्यान्य भागों की आवश्यकताओं का हमें ध्यान रखना चाहिये। किन्तु यह कोई बड़ी भारी दलील नहीं है। भारत को स्वयं अपने सब मज़दूरों की ज़रूरत है, इसलिये साम्राज्य के दूसरे देशों की सहायता करने से भारत कुछ जानबूझकर मुँह नहीं मोड़ता बल्कि इसकी वजह यह है कि उसमें दूसरे देशों को कुली देने की सामर्थ्य ही नहीं है।"

वास्तव में महात्मा गान्धी जी का कथन सर्वथा सत्य है। हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि यह नई प्रथा जारी हुई तो इसकी बुराइयाँ शीघ्र ही भयंकर रूप धारण करलेंगी। हम नहीं चाहते कि सारे संसार के सामने हमारे सिर 'कुली प्रथा' का टीका चिरस्थायी रूप से दिया जावे। जब तक अपने देश में हमें दायित्व पूर्ण स्वराज्य मिलेगा तब तक विदेशों में हमारा सम्मान होना असम्भव है। गान्धीजी लिखते हैं:—

" An additional reason a politician would be justified in using is that so long as India does not in reality occupy the *position* of an equal partner with the *colonies* and *so long as* her sons continue to be regarded by Englishmen in the colonies and English employers even near home, to be fit only as *hewers of wood and drawers of water, no scheme of* emigration to the colonies can be morally advantageous to Indian Emigrants. If the badge of inferiority is always to be worn by them, they can never rise to their full status and any material advantage they will gain by emigrating can, therefore be of no consideration. "

अर्थात्–" एक भारतीय राजनीतिज्ञ के लिये यह भी कहना न्याय-सङ्गत होगा कि वास्तवमें जब तक साम्राज्य में भारतवर्ष को उपनिवेशों के बराबर पद न मिले, जब तक उपनिवेशों के रहने वाले अँग्रेज़ लोग तथा यहाँ के अँग्रेज धनपति भारतवासियों को केवल लकड़ी चीरने व पानी भरने के योग्य समझते हैं, तब तक उपनिवेशों को कुली भेजने की कोई प्रथा प्रवासी भारतवासियों के लिये नैतिक रूप से लाभदायक नहीं हो सकती। यदि भारत वासियों को हमेशा 'हीनता' की चपरास लगानी है तो फिर वह अपनी योग्यताके अनुकूल उच्च पद कदापि प्राप्त नहीं कर सकते (उनकी योग्यता पूर्णरूप से कदापि विकसित नहीं हो सकती), और प्रवास करने से उन्हें चाहे कितना ही आर्थिक लाभ हो, वह लाभ किसी काम का नहीं हो सकता। "

सबसे बड़ा दोष इस प्रथामें यह है कि इसकी वजह से आरकाटियों की रोज़ी ज्यों की त्यों बनी रहेगी, बल्कि इससे उनका रुतबा-पद और भी ज्यादा बढ़ जावेगा। अब तक तो कुली भर्ती के एजेण्ट और आरकाटियों को उपनिवेशों की सरकारों से तनख्वाह

मिलती थी, लेकिन अब भविष्य में सम्भवतः इन लोगों को भारत सरकार से वेतन मिला करेगा। १२ सितम्बर सन् १९१७ ई. के अर्ध-साप्ताहिक 'लीडर' में एक सम्पादकीय लेख में लिखा है:—

"Under the scheme proposed by the inter-departmental committee, *the Indian Government is presumably to appoint* such agenes and to Pay the cost out of the public revenues. The future recruiting agents with their enhanced powers and prestige of being government servants, will carry greater terror into the villages and will be almost irresistible."

अर्थात्–अन्तर्विभागीय कमेटी ने जो स्कीम (व्यवस्था) बनाई है, *उससे अनुमान होता है कि भारत सरकार आरकाटियोंको नौकर रक्खेगी* और उनकी तनख्वाह, सर्वसाधारण पर जो कर लगाया जाता है, उसमें से देगी। हमारे भावी आरकाटियों की शक्तियाँ और भी बढ़ जावेंगी, तथा उन्हें सरकारी नौकर होने की इज्ज़त हासिल हो जावेगी। फिर क्या है! गावों में तो वह भयंकर रूप धारण कर लेंगे और उन को रोकना लगभग असम्भव हो जावेगा।"

और सुनिये, इस स्कीम में लिखा है "हर एक ज़िले में, जहाँसे *कि भारतीय मज़दूर उपनिवेशोंको जाने के लिये भर्ती किये जावेंगे*, एक डिपो खोली जावेगी, जहाँ के भर्ती करनेवाले, कुलियों को इकट्ठा किया करेंगे। योग्य इन्सपैक्टरों द्वारा यह कुली जाँचके बाद पास किये जावेंगे।" इस प्रकार आरकाटियोंके पेशे का और भी अधिक महत्व बढ़ जावेगा, और स्वयं गवर्नमेण्ट उपनिवेशों को कुली भेजने का काम करेगी। डिपो ज्योंकी त्यों बनी रहेंगी, बल्कि उनकी संख्या पहिलेसे और भी ज्यादा बढ़ जावेगी। जिस भर्ती की प्रथा के मेटने के लिये हम लोगों ने इतना आन्दोलन किया था, वह फिर भी ज्यों की त्यों बनी रहेगी। केवल इतनी ही बात से कि डिपो में भर्ती हुये आदमी तथा

उनके साथी आ जा सकेंगे, और भर्ती हुये आदमी किसी बन्धनमें नहीं रक्खे जावेंगे, कोई विशेष लाभ नहीं हो सकता। पहिले मजिस्ट्रेट के सामने कुलियों के जाना पड़ता था, इससे तो भी कुछ बचाव की आशा रहती थी, क्योंकि जो कुली मजिस्ट्रेटके सामने मुकर जाता था वह छूट जाता था, लेकिन अब यह नियम उड़ा दिया गया है। अब मजिस्ट्रेट के पास कुलियों के जाने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। फिर क्या है, आरकाटियों की पाँचों अँगुली घी में हैं! इस रिपोर्ट में लिखा है:—

"Emigration agents will be paid a fixed salary, with possibly in addition small money grants at the end of the year to reward meritorious work."

अर्थात्—"ऐमीग्रेशन ऐजेण्ट लोगों को नियत वेतन मिला करेगा और सम्भवतः इसके साथ ही साथ वर्ष भर के अन्त में प्रशंसनीय कार्य करने वालों को थोड़े से रुपये और भी इनाम में दिये जावेंगे।" बस, आरकाटियों के दोनों हाथ लड्डू हैं। हमारी समझ में नहीं आता कि इसे पढ़कर हमें अपने कर्म ठोंकना चाहिये या आरकाटियों को बधाई देना चाहिये?

आगे चलकर इस रिपोर्ट में लिखा है:—

"Non official gentlemen of standing will be appointed visitors to each depot."

अर्थात्—"प्रत्येक डिपो के लिये गैर सरकारी प्रतिष्ठित सज्जन निरीक्षक नियुक्त किये जावेंगे।" हमारे दुर्भाग्य से भारतवर्ष में ऐसे 'हाँ हुजूर' 'प्रतिष्ठित सज्जन' हजारों की संख्या में मिल सकते हैं, जो कि डिपो के निरीक्षक बनने में अपनी बड़ी भारी शान समझेंगे और यह ख्याल करेंगे कि 'देखो सरकार का हम, पर कितना विश्वास है कि उसने हमें यह माननीय पद दिया। यह प्रतिष्ठित सज्जन कहेंगे कि "भाई हम को क्या पड़ी है कि हम डिपोवालों के कार्य

में ज्यादा तीन पाँच लगावें ? बिचारे उपनिवेश वालों को मज़दूर भेजने के मार्ग में बाधा डालने से, हमारा क्या लाभ होगा ।"

इस कान्फ्रेंस की राय में मज़दूरों के कुटुम्बों को भर्ती करके भेजने पर ज़ोर देना दुष्कर है। बात असली यह है कि यदि यह नियम बनादिया जावे कि 'वह ही लोग भर्ती किये जावेंगे जो अपने कुटुम्बको साथ लेजाने के लिये राज़ी हों।' तो आरकाटियों का काम अत्यन्त कठिन हो जावेगा और इसके सिवाय उपनिवेशों के गोरोंको को यह मज़दूर तेज़ भी पड़ेंगे। १०० पुरुष पीछे चालीस स्त्रियों के भेजने का नियम टूट जाने का परिणाम यह होगा कि ज्यादातर पुरुष ही भर्ती [illegible]

की रक्षा के लिये एक मालिक नियत किया जावेगा। मुझे यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि भावी मजदूर इस रक्षा को, जिसका प्रबन्ध उसके लिये किया गया है, कभी भी अनुभव नहीं करेगा। इस रिपोर्ट में आगे चलकर लिखा है कि 'मजदूर को इस बात के लिये उत्साह दिलाया जावेगा कि वह पहिले ३ वर्ष तक कोई कृषि सम्बन्धी कार्य्य करे। अगर वह यह मंजूर करेगा तो उसे आगे चलकर स्थायी निवासी बनने के लिये अनेक मुख्य मुख्य सुविधायें कर दी जावेंगी।' यह शर्तबन्दी के लिये एक दूसरा प्रलोभन है। इस प्रकार की व्यवस्थाओं को मैं अच्छी तरह समझता हूँ, और मैं गवर्नमेण्ट को और पबलिक को विश्वास दिलाता हूँ कि इस प्रकार के प्रलोभन रूपी हथकण्डों से चालाक मालिक लोग बिचारे अज्ञान और मूर्ख भारतीय मज़दूरों से ज़बरदस्ती काम लिया करेंगे।"

भारत सरकार से हम निवेदन करते हैं कि परमात्मा के लिये, अब तो इस कुली-प्रथा से हमारा पिण्ड छुड़ाइये। ८० वर्ष तक भारत के सिर पर यह कलंक का टीका लगा रहा है। अब गान्धी जी, मि. ऐण्ड्रूज़ इत्यादि के आन्दोलन से यह ज्यों त्यों करके मिटा है। अब महरबानी करके फिर इस टीके को हमारे सिर न लगाइये। भारतीय जनता के लिये कुली प्रथा हर तरह से हानिकारक है चाहे वह शर्तबन्दी की प्रथा हो, अथवा चाहे सीलोन कैसी नाम मात्र के लिये स्वतंत्र प्रथा। हमारी सजला सफला शस्य श्यामला भारतमाता जो साढ़े इकत्तीस करोड़ आदमियों को भोजन देती है, इन चार पाँच हज़ार को भूखों नहीं मरने देगी। हमारे जो भाई अपनी राज़ी से विदेशों को जाना चाहें वह स्वतंत्र रूप से भले ही जावें, उन्हें हम कदापि नहीं रोकेंगे, लेकिन आरकाटियों की नौकरी लगवाना हमें कदापि मंज़ूर नहीं हो सकता। यदि नवीन प्रथा स्वीकृत हुई तो हमारा सारा

आन्दोलन व्यर्थ हो जावेगा, और आरकाटी सरकारी नौकर बन जावेंगे। इस पर हम क्या कहें !! अपना दुर्भाग्य और आरकाटियों का सौभाग्य!

अन्तमें हम सरकार से कहे देते हैं कि यदि सरकार ने इस नवीन कुली–प्रथा को स्वीकृत किया तो देश में ऐसा घोर आन्दोलन होगा जैसा कि आजतक कभी नहीं हुआ । इस आन्दोलन से तङ्ग आकर सरकारको नवीन प्रथा बन्द करनी ही पड़ेगी । तब इसमें सरकार की क्या शान रहेगी ?

हम क्या चाहते हैं ?

यदि कोई हमसे पूछे "भारतीय प्रवास के प्रश्नों को हल करने के लिये आप क्या चाहते है ?" तो हम इस प्रश्न का उत्तर केवल एक शब्द में देंगे 'स्वराज्य'। 'स्वराज्य' के मिल जाने पर यह सब झगड़े अपने आप निबट जावेंगे। जब हम को स्वराज्य मिल जावेगा तब उपनिवेशों के गोरे निवासी हमारे साथ कदापि बुरा बर्ताव नहीं कर सकेंगे, अगर वह ऐसा करेंगे तो इसका फल भी भोगेंगे। जब हम को 'स्वराज्य' मिल जावेगा तो फिर देहली से 'ह्वाइट हौल' और 'ह्वाइट हौल' से 'डाउनिङ्ग स्ट्रीट' और 'डाउनिङ्ग स्ट्रीट' से उपनिवेशों को खरीते भेजने की लचड़धोंधों प्रथा उठ जावेगी। उस दशा में यदि कोई उपनिवेश भारतवासियों के साथ अन्याय करेगा तो हम लोग वाइसराय के द्वारा एक खरीता सीधा उपनिवेश को भिजवावेंगे। मजाल क्या है किसी उपनिवेश की कि वह स्वराज्यप्राप्त भारतवर्ष के निवासियों पर कोई अन्याय कर सके ? हमारे नेताओं को चाहिये कि सरकार से स्पष्टतया कहदें कि जब तक हमें 'स्वराज्य' नहीं मिलेगा तब तक हम 'कुली-प्रथा' की किसी भी स्कीम को स्वीकार नहीं कर सकते।

कोई कोई 'साम्राज्यवादी' कहते हैं कि "यदि भारतवर्ष से

उपनिवेशों को कुली नहीं जावेंगे तो फिर उपनिवेशों के सारे उद्योग-धंधे–कारोबार नष्ट होजावेंगे। उपनिवेश साम्राज्य के अङ्ग हैं, इस लिये भारतवर्ष का कर्तव्य है कि उनकी सहायता करे। ऐसे महानुभावों से हम लार्ड हार्डिञ्ज के १५ अक्टूबर सन् १९१५ ई. के खरीते को पढ़ने की प्रार्थना करते हैं। इस खरीते में स्पष्टतया लिख दिया गया है कि "उपनिवेशों को कुली भेजना भारतसरकार का कर्तव्य नहीं है।" इसके सिवाय यह बात भी निराधार है कि यदि उपनिवेशों को कुली नहीं भेजे गये तो वहाँ के सारे कारोबार नष्ट हो जावेंगे। इसी खरीते में भारत सरकार ने 'ट्रिनीडाड' के विषय में लिखा है:—

"The demand thus appears, on the whole to be declining and a further deminution of the supply while it would no doubt affect the plantations adversely, could scarcely make plantation agriculture impossible"

अर्थात्–"ट्रिनीडाड में कुलियों की माँग कम होती चली जाती है। यदि कुली भेजना और भी कम कर दिया जावेगा, तो यद्यपि प्लान्टरों की खेती पर इसका बुरा प्रभाव पड़ेगा लेकिन इससे वहाँ खेती करना असम्भव थोड़े ही हो जावेगा।"

ब्रिटिश गायना के बारे में इसी खरीते में लिखा है—:

"The injury to colonial interests, even if Indian Emigration were stopped altogether, which we do not propose, would thus apparently not be fatal."

अर्थात्–"यदि भारतवर्ष से मज़दूरों का भेजना बिल्कुल बन्द कर दिया जावे (जैसा कि हम प्रस्ताव नहीं करते) तो इससे ब्रिटिश गायना के स्वार्थों को ऐसा धक्का नहीं लगेगा कि उसके सारे कारोबार नष्ट हो जावें।"

जमैका के बारे में इस खरीते में लिखा है:—

" Here prohibition must be a matter of in difference to the colony."

अर्थात्—"जमैका के लिये कुलियों का भेजना और न भेजना बराबर होगा। यह उनके लिये एक उपेक्षणीय बात है।"

जमैका के प्लाण्टर लोग तो भारतीय कुलियों की अब अपने यहाँ आवश्यकता नहीं समझते। अभी एक वर्ष हुआ जब जमैका के प्लाण्टरों ने कहा था कि हम डेढ़ दो लाख टन चीनी तैयार कर सकते हैं यदि (१) और चीनी के रहते हुये भी अँगेरेज़ों की तैयार की हुई चीनी ख़रीदी जावे (२) बीट चीनी इकट्ठी न की जावे (३) बिल्कुल नये ढङ्ग के बड़े बड़े कारख़ाने बनाये जावें और (४) हिन्दुस्तानी मज़दूरों से काम न लिया जावे। *

इस समय जमैका में २० हज़ार टन चीनी तैयार होती है, लेकिन भारतीय मज़दूरोंसे काम न लेने पर वहाँ दो लाख टन चीनी तैयार हो सकती है, फिर हमारी समझ में नहीं आता कि सरकार जमैका को भारतीय कुली क्यों भेजना चाहती है?

हमारी समझ में सरकार का इस झगड़े में पड़ना ठीक नहीं है। सरकार को उचित है कि यह कार्य्य सर्वसाधारण की सम्मति पर छोड़ दे। मद्रास की Colonial Society इस कार्य्य को उचित रीतिसे कर सकेगी।

सरकार से जो कुछ निवेदन हमें करना था, हमने निजकर्तव्यानुसार कर दिया। अब आगे देखना है कि सरकार क्या करती है।

---

* देखिये ३० अक्टूबर सन् १९१६ ई. का साप्ताहिक 'भारत मित्र'।

सप्तम अध्याय ।

प्रवासी भारतवासियों का भविष्य

And all is well, tho' faith and form,
Be thundered in the night of fear.
Well roars the storm to those that hear,
A deeper voice across the storm.

टेनीसन-

प्रवासी भारतीयोंका भविष्य निम्न लिखित बातों पर निर्भर है--

(१) प्रवासी भारतियों का मेल, संगठन शक्ति और आन्दोलन।
(२) भारतवर्ष की राजनैतिक स्थिति।
(३) शिक्षा प्रचार और धर्म प्रचार।
(४) भारतवर्ष से सहायता।
(५) ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की चतुरता।

प्रवासी भारतीयों का मेलः—प्रवासी भारतीयों का भविष्य मुख्यतया उन के मेल, संगठन शक्ति और आन्दोलन पर निर्भर है। अब तक तो शर्तबन्दी की वजह से हिन्दू और मुसलमान दोनों पर उपनिवेशोंमें अत्याचार होते रहे हैं, इस लिये अभी तक प्रवासी हिन्दू और मुसलमानों में विशेष झगडे नहीं हुये, लेकिन भविष्य में जब शर्तबन्दी की प्रथा बन्द हुये बहुत दिन हो चुकेंगे, और प्रवासी भारतीयोंकी आर्थिक दशा कुछ सुधरेगी, तब सम्भवतः हिन्दू मुसलमानोंमें थोडे बहुत झगडे जरूर होंगे। हमारा यह कर्तव्य है कि हमलोग जहाँ तक हो सके इन झगडोंको रोकें। इन झगडोंकी थोडीसी झलक

हमें दक्षिण अफ्रिका के वृत्तान्तों से दीख पड़ती है। स्वामी मङ्गलानन्दजी पुरीने अपनी पुस्तक में इस विषय पर थोड़ा बहुत प्रकाश डाला है। उन की इस अप्रकाशित पुस्तक के एक लेख को उद्धृत करने के पहिले हम पाठकों से निवेदन करते हैं कि वह यह न समझें कि हम पुरी जी की सब बातों से सहमत हैं। यद्यपि हमारा विश्वास है कि श्रीयुत मङ्गलानन्द जी पुरी की कई बातें समयानुकूल नहीं हैं, तथापि वह इस योग्य अवश्य हैं कि उन पर अच्छी तरह ध्यान दिया जावे। पाठकोंसे हमारी प्रार्थना है कि वह इस लेख पर अच्छी तरह विचार करें, और फिर ऐसे उपाय सोचें जिनसे प्रवासी हिन्दुओं और मुसलमानों में फूट न फैलने पावे।

श्री मंगलानन्द जी पुरी लिखते हैं–" भारत के सुधार में हिन्दू और मुसलमानों के मेल का प्रश्न एक बड़ा टेढ़ा प्रश्न है। जब तक हिन्दू मुसलमानों में ऐक्य न हो तब तक देश की कुछ भी भलाई नहीं हो सकती। अतः यहाँ पर इस के विषय में लिखा जाता है। ट्रान्सवाल में मुसलमानों की संख्या यद्यपि हिन्दुओं से ज्यादा नहीं है, परन्तु वह व्यापारी हैं, अतएव धनाढ्य और प्रतिष्ठित हैं। हिन्दू केवल फलों की फेरी करने या दरज़ी हज्जाम इत्यादि के कामों में लगे हुये हैं; कुछ थोड़े पढ़े लिखे जो हैं वह उन्हीं मुसलमान व्यापारियों के यहाँ क्लार्क बने हुये हैं। एक फलों की फेरीवाले हिन्दू से हमने पूछा कि तुम लोग भी दूकान खोलकर मुसलमानों की भाँति व्यापार में क्यों नहीं लग जाते? उत्तर मिला कि 'हम हिन्दू लोग यहाँ घर बना कर बालबच्चों को बुलाकर नहीं रहना चाहते, हम तीन चार या छ वर्ष यहाँ कमाकर दो चार सौ पौण्ड लेकर देश को प्रस्थान कर देते हैं, वहीं पर घर गृहस्थी चलाते हैं, और कई एक ऐसे हैं कि एक भाई अफ्रिका में और दूसरा भाई देश में रहता है,

जब प्रथम जाता है तो दूसरा आकर काम सम्हालता है।' गरज़ यह कि कितने ही हिन्दू लोग ट्रान्सवाल में कमाते हैं और फिर घर पर उड़ाते हैं, पर मुसलमानों की तरह घर गृहस्थी बनाकर वहीं नहीं रहते।

यह भेद है दोनों की साधारण स्थिति में, जिससे पता लग सकता है कि ट्रान्सवाल के अधिकार मिलने इत्यादि का लाभ अधिकतर मुसलमान भाइयों को ही प्राप्त होना सम्भव है। पर हम देखते हैं कि इतने पर भी सत्याग्रह की लड़त में श्रीमान् गान्धी जी के हाथ बँटानेवाले सब के सब हिन्दू ही थे। मुसलमान जेल जाने को तैयार नहीं थे तो न सही पर वह धनाढ्य तो थे। यदि वह धन की सहायता देते तो भारत से अपील करके दान मँगाने की यहाँ कुछ ज़रूरत नहीं पड़ती, पर उन्होंने सहायता नहीं दी। अच्छा यह भी नहीं सही, पर केवल मुँह से ज़बानी जमा खर्च करके ही अगर हिन्दू सत्याग्रहियों की वह पीठ ठोंकते रहते कि 'हाँ बहादुरो संग्राम में डटे रहो, शाबाश पीछे न हटना इत्यादि।' तो भी हिन्दुओंके आँसू पुछ जाते, परन्तु यह सब तो दूर रहा, पाठक यह सुन कर आश्चर्य करेंगे कि यहाँ के मुसलमान मि. गान्धी तथा उनके कार्य्यों के कट्टर विरोधी थे। मुल्ला मौलवी लोग उनको भड़काते फिरते थे कि गान्धी तो हिन्दू काफ़िर है, तुम उसके अनुयायी बनने से पापी हो जावोगे। हमारे एक मित्र ने ठीक कहा कि अगर मोहनदास गान्धी के स्थान में मुहम्मद बख्श होता तो वह जो जो कहता सभी मानलेते। पर एक हिन्दू के पीछे वह चलें भला ऐसा कभी सम्भव है, ? कदापि नहीं। मुसलमान लोग जहाँ बात चली यही कहा करते थे 'गान्धी ने क्या कर दिया है ? उलटा हमें नुकसान ही पहुँचाया है, और चन्दा माँग माँग कर अपना घर

स्त्री के साथ यहाँ पर कराया जावे, उसे ही ठीक विवाह माना जावेगा, तो ऐसी दशा में अगर गान्धी जी ने यह कह दिया कि एक स्त्री को गवर्नमेण्ट हिन्दू मुसलमानी रीति से विवाहिता मान लेवे, दूसरी, तीसरी चौथी को भले ही न माने तो पाठक गण विचार कीजिये कि इसमें गान्धी जी ने क्या अपराध किया ? और कौनसा अपमान इस्लाम धर्म का कर दिया ? मुसलमानों की खोपड़ी में यह घुसा था कि अगर गान्धी जी एक स्त्री के जायज़ माने जाने पर राज़ी न हो जाते तो गवर्नमेण्ट चार भी स्वीकार कर लेती। पर इन भले आदमियों को इतनी बुद्धि नहीं कि चार तो क्या, एक भी अब, बार बार सत्याग्रहियों की लड़त के कारण कठिनता से मिली है।

गत रविवार ता. १५-३-१४ ई. को यहाँ एक मीटिङ्ग बुलाई गई थी, जिसमें श्रीमान् गान्धी जी के भाई के हाल में परलोक गमन पर शोक प्रगट होना था। मुझ से प्रयागजी देशाई यह कह गये थे कि ठीक समय पर आकर हम आपको वहाँ साथ ले चलेंगे, पर समय बीत गया, और वह न आये। मैंने सुना कि सभा विसर्जन हो गई। अतः मैंने उन से मिलने पर उलाहना दिया कि मैं बाट देखता ही रहगया कि तुम आकर मुझे साथ ले चलोगे। इसका जो उत्तर प्रागजी देशाई ने दिया, वह यह है ' हम आप को लेने नहीं आये कारण यह कि सभा आरम्भ होने के कुछ देर प्रथम हमें पता लगा कि मुसलमान भाई यहाँ मारकाट की तैयारी से आगये हैं। फिर आपको वहाँ बुलाकर क्या करते ? हमने शीघ्र ही सभा विसर्जन करके शान्ति-भङ्ग होने से बचाली। ' यह है दशा महा शोचनीय इस देशके हिन्दू मुसलमानों के ऐक्य और अनैक्य की। यद्यपि भारत में बैठे हुये हमारे भाई समझते होंगे कि दक्षिण आफ्रिका में हिन्दू मुसलमानों में बड़ी एकता होगी और राजनैतिक जोश भरा पड़ा होगा। गान्धीजी कहते हैं—

'भाई तुम भूल करते हो। अगर एक बाप के दो पुत्र हों और एक होशियार, समझदार तथा बुद्धिमान् हो और दूसरा बेवकूफ बेसमझ हो तो बाप क्या करेगा? अवश्य वह सोचेगा कि समझदार लड़का तो अपनी बुद्धि के बलसे अपना बेड़ा पार लगालेगा, अतः उसकी फ़िक्र करने की कुछ आवश्यकता नहीं, पर दूसरे बे समझ लड़के को सम्हालना और उसका पार लगाना वह अपना कर्तव्य समझेगा। इसी प्रकार भारतमाता के दो लड़के हैं, हिन्दू विद्वान समझदार हैं, पर दूसरा लड़का मुसलमान गावदी है। अतः हमें उसकी बेसमझी की परवाह न करके उसकी भलाई की ज्यादा फ़िक्र करनी चाहिये।'

श्रीमान् गान्धीजी के इस दृष्टान्त और इस बर्ताव से यद्यपि हमें उनके अन्तःकरण के शुद्ध भावों, तथा भारतसुधारके उद्योगमें तन्मय होने के प्रयत्न की प्रशंसा करनी पड़ती है, पर तो भी हम इसमें उनसे सहमत नहीं हो सकते। बाप दोनों पुत्रों को बराबर दृष्टिसे देखे। एक के साथ दया करना उसका पक्षपात होगा। अगर दो भाइयों में से एक मूर्ख बेवकूफ़ है, तो निस्संदेह उसको अपनी मूर्खता और बेवकूफ़ी का फल भोगने के लिये छोड़ देना चाहिये। हाँ समझा बुझाकर उसे सन्मार्ग पर लेजाना मात्र ठीक है, पर यह अन्याय होगा कि दूसरे भाई का हक़ केवल उसकी बेवकूफ़ी के कारण दे दिया जावे।"

नेटाल में हिन्दू-मुसलमान प्रश्न

नेटाल के हिन्दू मुसलमानों के झगड़ों के विषय में स्वामी मङ्गलानन्दजी लिखते हैं—" सन् १९०९ ई. में स्वामी शङ्करानन्द जी इङ्गलेण्ड होते हुये यहाँ (नेटाल) आये । उन्होंने देखा कि यहाँ के हिन्दुओं में हिन्दुत्व की गंध तक नहीं है, वह मुसलमानों के गुलाम बन रहे हैं । श्रीयुत मि. गान्धी तो राजनैतिक एकता के पक्षपाती थे, पर यहाँ की एकता भी क्या ही अच्छी थी कि धीरे धीरे मुसलमान लोग हिन्दुओं को हड़प करते चले जाते थे । मुसलमानों का ताज़िया निकलता था । हिन्दू सब उसे ही अपना धर्म कर्म मानते हुये उसी में दत्त चित्त थे । उसी की पूजा तथा उसके चलाने का प्रयत्न हिन्दू लोग किया करते थे । स्वामी शङ्करानन्द जी से यह न देखा गया । उन्होंने हिन्दुओं को समझाया कि तुम कैसी भारी भूल में पड़े हो । यह ताज़ियादारी तुम्हारा धर्म नहीं है, तुम चाहते ही हो तो श्री रामचन्द्र जी का रथ निकालो । निदान रथ का प्रस्ताव सब को पसंद आया, पर कुछ हिन्दू, मुसलमानों के ज़र ख़रीद गुलाम थे उन्हें साथी बनाकर मुसलमानों ने गवर्नमेण्ट के पास हाय तोबा मचाई कि 'यहाँ ऐसा अनर्थ (रामरथ निकालना) कभी नहीं हुआ था, और इस कार्यके अगुआ स्वामी शङ्करानन्द आर्य्यसमाजी हैं, जो इस देश में फ़िसाद फैलाने वाली जमाअत है, इसलिये सरकार उन्हें आज्ञा न देवे । ' उधर स्वामी जी स्वयं प्रथम ही गवर्नर इत्यादि से मिलकर अपना प्रभाव जमा चुके थे, इस कारण किसी की दाल न गली और रथ निकालाही गया ।

अब मुसलमानों ने यह शोर मचाया कि हमारी मसजिद के मार्ग से रथ न लाया जावे, लेकिन यह भी बात उनकी न चली । तत्-

अर्थात् उन्होंने फर्याद की कि हमारी मसजिद के पास बाजा जावे, नहीं तो बलवा मच जावेगा, सो पुलिस सुप्रिण्टेण्डन्ट समय पर आगया कि बलवा न होने पावे। लेकिन स्वामी जी बड़े मज़बूत शरीर और दृढ़ात्मा वाले पुरुष हैं, उन किसी की चलने वाली थी? सुनते हैं कि एक लम्बा लिये हुये वह मसजिद के पास खड़े हो गये और हिन्दु दिया कि शंखध्वनि इत्यादि विधिपूर्वक करलो। जिसे हो, प्रथम हमही परवार करे, और पुलिस सुप्रिण्टेण्डेण्ट को बगल में दबालिया और उससे कहा कि तुम चुपचाप रहो और तुम्हारी एवज़ हम रक्षा का काम देखेंगे। अगर होगी तो हम ज़िम्मेवार हैं। निदान इस घटना का प हुआ कि जहाँ हिन्दुओं में कुछ अपने हिन्दुत्व का स्या गया, वहाँ मुसलमानों से विरोध उमगया, परन्तु सच तो यह मिल कर भी हम हिन्दुओं को क्या लाभ पहुँचाते थे, कि मिल जुल कर शिकार उड़ा ले जाया करते थे (यान लिम बनाया करते थे) सो उनके दूर रहने से ही वस्तु कल्याण है। पर श्रीमान् गान्धीजी जैसे पोलिटिकल लहर वाले हिन्दू, मुसलमानों की एकता के विषय में ऐसे लवलीन हिन्दू जाति की भारी हानि-हिन्दुओं के मुसलमान होने को अनुभव ही नहीं कर सकते, इसलिये स्वभावतः यह बड़ी कड़वी प्रतीत हुई, पर इससे भी अधिक भारी घटना है, जो इस प्रकार है। मुसलमानों की मसजिद दरबन ना पर है। सुनते हैं कि वह ज़मीन, जहाँ मसजिद बनी हुई एक हिन्दू की थी। उस हिन्दू ने मुसलमानों को मसजिद देदी। बाहरी उदारता! उसी की बगल में कुछ मैदान प

इस नगर की मार्केट लगती थी। दूकानदार फल तरकारी बेचनेवाले अधिकांश हिन्दू थे। इस मार्केट से मसजिद फंड को ५०००) रु. वार्षिक का लाभ था। लोग वतलाते हैं कि गरीब हिन्दू स्त्रियों और कन्याओं के साथ जो वहाँ माल बेचने इत्यादि कारणों से आती थीं, मुसलमान धनाढ्यों का व्यवहार अच्छा न था, और शायद अनेक छलबल से कइयों को मुसलमानिन भी बनाया जाता था।

अस्तु, राम रथ निकलने के पीछे उस मार्केट के एक हिन्दु जसवन्तसिंह के साथ कुछ मुसलमानों की बातों बातों में तकरार हो गई और उसे घायल होकर अस्पताल जाना पड़ा, अब हिन्दुओंको क्रोध आगया और उन्होंने मार्केट की हड़ताल कर दी। स्वामी श्रद्धानन्द जीने इस अवसर पर यहाँ के हिन्दुओं को समझाया कि तुम्हारे धन से मसजिद फंड कि वृद्धि और गौ हत्या की पुष्टि होती है, इसलिये तुम लोग अपना अलग ही हिन्दु मार्केट बना लो। निदान उसके लिये उक्त स्वामीजीने पूरा प्रवन्ध करा दिया और गवर्नमेण्ट से आज्ञा पत्र प्राप्त होने का काम भी सारा ठीकठाक होगया था, पर कुछ नादान हिन्दुओं की अक्लमन्दी ने गुल खिलाया और यह बड़ा अच्छा लाभ हिन्दुओं के हाथ में आते आते रह गया। वह कथा इस प्रकार है कि उन दिनों यहाँ की कार्पोरेशन यानी म्युनिसिपैलिटी ने अच्छा मोका जान कर झट अपना एक मार्केट खोल दिया और यद्यपि स्वामीजी के रोकने से हिन्दु व्यापारी उस में न जाते थे, परन्तु मसल है कि 'घर का भेदी लङ्का ढावे'—कुछ दो चार हिन्दु (ब्राह्मण कहानेवाले) स्वार्थियों को उस कार्पोरेशनने धन का लालच देकर अपनी ओर मिलाया और इन्होंने फूट डाल दी। इन भले आदमीयोंने साधारण हिन्दुओंको भड़काया कि यह स्वामी आर्य्य समाजी हैं और मार्केट में तुम्हें बड़े कष्ट देंगे तुमको अपने धर्म में मिलावेंगे, लेकिन कार्पोरेशन के

र्केट में सारा सुखही सुख रहेगा । वह इस मपाड़े में आगये और एक
र करके कार्पोरेशन वाले मार्केट में जाने लगे । दूसरी चाल उन
ों ने यह चली कि इसी प्रकार कह सुनकर लोगों से एक ऐसे प्रार्थ-
पत्र पर हस्ताक्षर करालिये जिसमें लिखा था कि गवर्नमेण्ट स्वामी
शङ्करानन्द के प्रस्तावित हिन्दू मार्केट के खोलने की आज्ञा न देवे
क्योंकि हम हिन्दुओंको कार्पोरेशन के मार्केट से सुख है, दूसरा हमें
दरकार नहीं, इत्यादि । अवश्य ही गवर्नमेण्ट फिर क्यों आज्ञा देने
लगी ? इस प्रकार बनता काम बिगड़ गया ।

अब हमारे मुसलमान भाई कहा करते हैं ' लो क्या पागये ?
हमारा निवाला छीना और तुम्हें भी न मिला । दो बिल्लियों की
लड़ाई में तीसरे बन्दर के आकूदने वाली कहावत ठीक जँचती है ।'
इस पर श्री गान्धी जी के पक्ष वाले हिन्दू सज्जन भी यही कह क
स्वामी शङ्करानन्द जी तथा उनके पक्ष वालों का उपहास किया करते थे
हम से वहाँ कई लोगों ने कहा कि अगर ' हम अपने विधर्मियों
कृपा से ५ हजार रुपये का लाभ न पास के, तो मुसलमानों के
अनर्थों से तो, जो उस मार्केट में होते थे, बचगये । यही क्या
कम लाभ है ?'

एक बार ट्रिनीडाड में भी हिन्दू मुसलमानों में बड़ा भारी झगड़ा
होगया था । इस झगड़े का वृत्तान्त श्रीमान महात्मा रानाडे ने अपनी
पुस्तक Essays on Economics में लिखा है । श्री. रानाडे लिखते हैं
" सन् १८८४ ई. में ट्रिनीडाड में एक भयंकर झगड़ा होगया था ।
उस समय ट्रिनीडाड के भारतीय मजदूर मुहर्रम मना रहे थे, उस
समय यह फौजदारी हिन्दू मुसलमानों में होगई । इस फौजदारी
१२ हजार कुलियों ने भाग लिया था । पुलिस को गोली चला
कर झगड़ा शान्त करना पड़ा । बारह कुली मारे गये और ४०

कुली घायल हुये। सर हैनरी नार्मन नामक एक ऐङ्गलो इण्डियन साहब को, जो पहिले जमैका के गवर्नर रह चुके थे, इस बलवे के विषयमें जाँच करने का काम सौंपा गया। आपने जाँच करके लिखा था "ट्रिनीडाड में जितने हिन्दुस्तानी रहते हैं। उनमें पाँचवें हिस्से से भी कम मुसलमान हैं; बाकी हिन्दू हैं, हिन्दू कुलियों ने ताज़िये निकालने का बड़ा प्रयत्न किया था। कुछ मुसलमानों ने पहिले सरकार से अर्ज़ की थी कि मज़हबी वजूहात के सबब से हिन्दू लोगों की इस बेजा कार्रवाई को बन्द कर दिया जावे। लेकिन हिन्दू लोग ताज़िये निकालने को अपना राष्ट्रीय त्योहार समझते थे। ट्रिनीडाड में दो तिहाई हिन्दू हैं। एक ज़िले में जहाँ बलवा हुआ था, हिंदुस्तानियों की जनसंख्या आधे से भी ज़्यादा थी। इस बलवे की वजह यह थी कि कुली लोग ट्रिनीडाड में रहने की वजह से स्वतंत्र और उद्दण्ड बन गये हैं।"

वास्तव में नार्मन साहब को बड़ी दूर की सूझी थी। *शर्तबन्दी गुलामी भी किसी को स्वतंत्र और उद्दण्ड बना सकती है, यह बात* हमने आज ही सुनी है।

अस्तु, इन दृष्टान्तों से हम कई शिक्षायें ले सकते हैं। सब से पहिली शिक्षा तो यह है कि हिन्दू लोग अपने राष्ट्रीय त्योहारों से अनभिज्ञ हैं। उनकी यह अनभिज्ञता वस्तुतः उनकी कमज़ोरी का लक्षण है। दूसरी शिक्षा यह है कि हम हिन्दुस्तानी लोग जहाँ जाते हैं, अपने देश हिन्दुस्तान की मेवा 'फूट' को साथ लिये जाते हैं। तीसरी शिक्षा यह है कि जब तक पढ़े लिखे लोग उपनिवेशों को नहीं जावेंगे तब तक प्रवासी हिन्दू मुसलमानों में मेल होना सम्भव नहीं। निरक्षर भट्टाचार्य्य पण्डित जी और कोरमकोर मुल्ला साहब यह दोनों ऐसे जन्तु हैं, जो अपने दुराग्रह और ज़िद्द को नहीं छोड़ सकते।

हिन्दू मुसलमानों के मेल के विषय में महात्मा गान्धी जी के विचार ध्यान देने योग्य हैं। महात्मा गान्धी जी लिखते हैं, " हिन्दुस्तान में चाहे जिस धर्म के माननेवाले मनुष्य रह सकते हैं, इससे राष्ट्रीयता में कुछ भेद नहीं आ सकता। नया मनुष्य दाखिल होकर किसी राष्ट्र को भङ्ग नहीं कर सकता है, किन्तु उसमें लीन हो जाता है। एक राष्ट्र बनकर रहनेवाले मनुष्य एक दूसरे के धर्म में दखल नहीं देते। यदि वह एक दूसरे के विरुद्ध आवाज़ उठावें तो समझो कि उनमें राष्ट्रसंगठन की बुद्धि नहीं है। जो हिन्दू यह मानता है कि सारा हिन्द केवल हिन्दुओं से भर जावे तो यह उसका भ्रममात्र समझना चाहिये, और जो मुसलमान यह आशा रखते हैं कि समस्त भारत मुसलमान हो जावे, यह भी उनका केवल स्वप्न है। हिन्दू, मुसलमान, पारसी, ईसाई, आदि जो भारत को स्वदेश मानकर बसे हैं, वह सब एकदेशी और एकराष्ट्रीय हैं। उन्हें एक दूसरे के स्वार्थ के लिये भी एक मत होना चाहिये। संसार के किसी भी भाग में एक राष्ट्र का अर्थ एक धर्म का होना नहीं माना गया है। हिन्दू लोग मुसलमानी राज्य में, और मुसलमान लोग हिन्दू राज्य की छत्रछाया के नीचे रह चुके हैं। लड़ाई झगड़े से कोई धर्म नहीं छोड़ता; इससे राष्ट्र को हानि पहुँचती है। "

इसमें सन्देह नहीं कि महात्मा गान्धी जी के विचार अक्षरशः सत्य हैं। मूर्ख और जाहिल लोग ही धार्मिक विषयों के लिये लड़ मरते हैं, और राष्ट्रीयता को हानि पहुँचाते हैं। महात्मा गान्धी उन आदमियों में से हैं, जो हिन्दू मुसलमानों के मेल के लिये अपनी जान तक दे देनेकी भी पर्वाह नहीं करते।

सत्याग्रह की पहिली लड़ाई में जब महात्मा गान्धीजी को विश्वास दिलाया गया था कि यदि भारतवासी अपनी इच्छा के अनुकूल रजि-

स्टर में नाम दर्ज करा लेंगे तो सरकार सन् १९०७ ई. के खूनी कायदे को रद्द कर डालेगी, तब महात्मा गान्धी ने अपना उद्देश्य सफल होता हुआ देखकर लोगों को ऐसा उपदेश दिया कि अँगुलियों की छाप देकर नाम रजिस्टर करा लेने चाहिये। इस बात से कितने ही अबोध लोगों के हृदयमें यह विचार समा गया कि गान्धीजी सरकार से मिल गये हैं, यह कौम को बेच देना चाहिते हैं। इसी अज्ञान की वजह से एक पठान मुसलमान ने गान्धीजी को इतना मारा कि उनके दाँत टूट गये, सिर फट गया और शरीर घायल हो गया। लेकिन इतने पर भी महात्मा जी ने यही कहा कि 'अपने स्वदेश बान्धवों के ऊपर न्यायालय में हम अभियोग चलाना नहीं चाहते।' गान्धी जी जानते थे कि मुझे मारनेवाला मुसलमान है। जिससे हिन्दू मुसलमानों में झगड़ा न हो जावे और जाति के मध्य में वैमनस्य न उत्पन्न हो जावे, इस वास्ते म. गान्धी जी ने इण्डियन ओपीनियन में एक विज्ञप्ति प्रकाशित कराई थी। हिन्दू-मुसलमानों में मेल चाहनेवाले प्रत्येक भारतीय को चाहिये कि वह इस विज्ञप्ति का मनन करे। वह विज्ञप्ति निम्नलिखित है—

"महाशयो! मेरी तबियत ठीक है। मिस्टर और मिसेज़ डोक ने मेरी अत्यन्त सेवा की, और मैं थोड़े दिन के बाद नौकरी (देश-सेवा) के ऊपर चलूँगा। जिन्होंने मेरे को मारा है, उनके ऊपर मुझे क्रोध नहीं है। उन्होंने बिना विचारे ऐसा काम किया है। उनके ऊपर अभियोग चलाने की ज़रूरत नहीं है। दूसरे शान्त रहेंगे तो इस कथा से भी अपने को लाभ होगा। हिन्दुओंको अपने मन में रोष नहीं रखना चाहिये। इस घटना से हिन्दू और मुसलमानों के मध्यमें खटास पैदा होने के बदले मिठास होवे, ऐसा मैं चाहता हूँ। ईश्वर के पास से यही माँगता हूँ कि मेरे ऊपर मार पड़े और अधिक मार पड़े, तो भी मैं एकही सलाह

हूँगा, बस यह कि दश अंगुल का छाप देने से राष्ट्र त
निर्धनों का बड़ा तथा रक्षा होती है। यदि आप सच्चे सत्याग्रही हैं
तो भार से अपना भविष्य में दगा से तनिक न डरेंगे। जो दश अंगु
देने के विरोधी हैं, उन्हें मैं अज्ञानी समझता हूँ। मैं ईश्वर के पास
माँगता हूँ कि वह राष्ट्र का कल्याण करें और उसे सन्मार्ग में प्रेरि
करें तथा हिन्दू मुसलमानों को मेरे लोहू के पट्टा से सान दें। हिन्
के सेवक मोहनदास कर्मचन्द गान्धी"+ किम्बहुना, जब तक प्रवासी
हिन्दू और मुसलमान मिलकर आन्दोलन नहीं करेंगे तब तक प्रवासी
भारतीयों का भविष्य अन्धकार-मय ही रहेगा

भारत वर्ष की राजनैतिक स्थितिः—भारत की राजनैतिक स्थिति पर भी प्रवासी भारतवासियों का भविष्य कुछ अंशों में निर्भर है। यदि भारतवर्ष को स्वायत्तशासन के अधिकार मिल जावें तो फिर प्रवासी भारतवासियों की हालत बहुत कुछ सुधर जावेगी। इसलिये हमारा कर्तव्य है कि हम स्वराज्य के लिये तन-मन-धन से प्रयत्न करें। प्रवासी भारतीयों को भी चाहिये कि वह हमारी सहायता करें।

शिक्षाप्रचार और धर्मप्रचारः—जब तक उपनिवेशों में शिक्षा और धर्म का प्रचार नहीं होगा, तब तक प्रवासी भारतीयों का भविष्य अन्धकारमय रहेगा। भिन्न भिन्न उपनिवेशों में शिक्षा की क्या दशा है, इसका संक्षिप्त वृत्तान्त मि. मेकनील और मि. चिम्मनलाल की रिपोर्ट से लेकर यहाँ लिखते हैं।

ट्रिनीडाडः—ट्रिनीडाड में ५२ सरकारी और २०० साम्प्रदायिक पाठशालायें हैं। ४३ मदरसे खास तौरसे मिशनरी लोगों ने भारत-वासियों के लिये खोल रक्खे हैं। इन तेतालीस मदरसों में से चालीस का प्रबन्ध कनाडा की प्रैसबीटेरियन मिशन करती है, दो एङ्गलीकेन

+ श्रीयुत भवानी दयालजी लिखित 'महात्मा गान्धी' नामक पुस्तक देखिये।

मिशनरियों के द्वारा चलते हैं और एक रोमन कैथोलिक चर्च के हाथ में है। इन मदरसों में अंग्रेजी और उर्दू पढ़ाई जाती है। छात्रों की संख्या ८००० है, और हाज़रीका औसत ४५४२ है। शर्तबन्दी में काम करनेवाले भारतवासी अपने लड़कों को स्कूलों में नहीं भेजना चाहते थे। यह लड़के कोठियों के निकट घास काटकर दो चार आने रोज़ कमा लेते हैं, बस इसी लोभ से उन के माता पिता उन्हें मदरसे में नहीं भेजते।

ब्रिटिश गायनाः—लगभग सभी Estates कोठियों में स्कूल हैं। ६५७० हिन्दुस्तानी छात्र इन स्कूलों में पढ़ते हैं। स्कूल में जाने योग्य बालकों में केवल एक तिहाई शिक्षा पाते हैं। इसकी वजह यह है कि सात वर्ष के अथवा सात वर्ष से ज्यादा के लड़के घास खोदकर, गाय भैंसों को चराकर और खेतों पर हलका काम करके दो चार आने कमा सकते हैं। एक वजह और भी है, वह यह कि बहुतसे भारतवासी अपने बच्चों को किसी साम्प्रदायिक मदरसे में नहीं भेजना चाहते, खास करके हिन्दुस्तानी लोग अपनी लड़कियों को उन मदरसों में जहाँ कोई 'क्रियोल पुरुष'* पढ़ाता हो भेजते ही नहीं। यद्यपि यहाँ के एक कानून के अनुसार बालक बालिकाओंको पढ़ने के लिये स्कूलों में भेजना अनिवार्य्य है, लेकिन उपर्युक्त दो कारणों से शिक्षाविभाग के अधिकारी लोग इस कानून को समझ बूझकर काम में लाते हैं। नगरों में रहनेवाले भारतीय अपने लड़कों को मदरसों में पढ़ने के लिये रोज़ भेजते हैं, लेकिन मज़दूर लोग अपने लड़कों से मज़दूरी कराना पसन्द करते हैं। शिक्षा की तरफ़ हिन्दुस्तानीयों का ध्यान कम है। इसकी एक वजह यह भी है कि शिक्षा अँगरेज़ी भाषाद्वारा दी जाती है। दूसरी जातियों की तरह अगर हिन्दुस्तानी भी गावों में अपने स्कूल खोल

*'क्रियोल' एक प्रकार की वर्ण संकर जाति है।

दें और उनमें हिन्दी और अँग्रेज़ी पढावें तो बहुतसे बालिक बालिव शिक्षा प्राप्त कर सकेंगी। अमीर हिन्दुस्तानियों के लड़के जार्ज टा के क्वीन्स कालेज में पढ़ते हैं, लेकिन इन लड़कों की संख्या ब कम है। माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये हिन्दुस्ता छात्रों के मार्ग में कोई विशेष बाधा नहीं है, उन्हें इस विषय में वह अधिकार हैं, जो दूसरी जातियों को छात्रों के हैं।

सुरीनाम (डच गायना):—इस उपनिवेश में ६६ मदर हैं। इनमें २५ मदरसे तो पैरेमेरीबो में हैं, और ४१ गावों में हैं पैरेमेरीबो के मदरसों में ४४४३ लड़के और २२६४ लड़कियं शिक्षा पाती हैं, तथा गावों के स्कूलों में १६६१ लड़के और ९८ लड़कियाँ पढ़ती हैं। पैरेमेरीबो के स्कूलों में पढ़नेवाले हिन्दुस्तानि लड़कों की संख्या १४७ है और लड़कियों की संख्या २१ है। गावों के मदरसों में ५१० हिन्दुस्तानी लड़के और ५५ हिन्दुस्तानी लड़कियाँ पढ़ती हैं। स्कूल जाने योग्य उम्र के लड़कों में केवल आधे शिक्षा पा रहे हैं। किसी किसी स्कूल में अब 'हिन्दुस्तानी' भी पढ़ाई जाती है। जिन स्कूलों में 'हिन्दुस्तानी' पढ़ाने का प्रबन्ध किया गया है उनमें हिंदुस्तानी बालकों की संख्या बढ़ गई है। प्रायः स्कूलों में शिक्षा का माध्यम डच भाषा है; जो हिन्दुस्तानी लोग उपनिवेशों के स्थायी निवासी नहीं बनना चाहते वह अपने बच्चों को डच भाषा पढ़ाने की इच्छा नहीं करते। अभी थोड़े दिन हुये, रोमन कैथोलिक मिशन ने खास करके हिन्दुस्तानी लड़कों के लिये एक औद्योगिक स्कूल खोला है।

जमैका:—साधारण प्रायमरी स्कूलों में हिन्दुस्तानी लड़के और लड़कियाँ पढ़ सकती हैं। फ़ीस कुछ नहीं लगती। गवर्नर को इस बात का अधिकार है कि खास खास जगहों में ६ वर्ष से १४

वर्ष तक के बालक बालिकाओं के लिये शिक्षा अनिवार्य कर दे, लेकिन दो तीन जगहों को छोड़कर ऐसा कहीं नहीं हो सका। स्कूलों में पढ़नेवाले हिन्दुस्तानी बालक बालिकाओं की ठीक ठीक संख्या नहीं मिल सकी। जमैका में ६९९ स्कूल हैं, जिनमें से ४६९ स्कूलों ने खानापुरी करके अपने यहाँ का हाल भेजा था। इससे पता लगता है कि इन स्कूलों में ४५५ हिन्दुस्तानी बालक और २७२ बालिकायें शिक्षा पाती हैं। ९०० हिन्दुस्तानी लड़कियाँ और ९०० हिन्दुस्तानी लड़के ऐसे हैं, जो स्कूलों के निकट होने की सुविधा होने पर भी नहीं पढ़ते। थोड़े दिन हुये, हिन्दुस्तानी के बालक बलिकाओं के लिये मिशनरी लोगों ने तीन स्कूल खोले थे, जिनमें दो Society of Friends नामक मिशनरियों की संस्था के द्वारा संचालित होते थे, और एक प्रेस बीटेरियन चर्च के अधिकार में था। इन स्कूलों में हाज़री का औसत ९० था। हिन्दुस्तानी लोग अपने बच्चों को इन स्कूलों में बहुत कम भेजते हैं, इसकी वजह यह है कि इनमें हिन्दुस्तानी शिक्षक नहीं है, और हिन्दी उर्दू पढ़ाने का कोई प्रबन्ध नहीं है। कुछ लोग इस डरकी वजह से भी नहीं भेजते कि कहीं हमारे लड़के ईसाई न हो जावें, यद्यपि बाइबिल पढ़ना सबके लिये अनिवार्य नहीं है।

फिजी:—फ़िजी में शिक्षा का जो प्रबन्ध है, उससे फ़िजी प्रवासी भारतीय समाज ने बहुत कम लाभ उठाया है। फ़िजी में जो प्रारम्भिक मदरसे हैं, उन्हें सरकार से सहायता मिलती है। यह मदरसे प्रायः मेथोडिस्ट, रोमन कैथोलिक और ऐङ्गलीकेन मिशन के हाथ में हैं। सन १९०८ ई. में थोड़ी सी ज़मीन आर्यसमाज को भी स्कूल खोलने के लिये दी गई थी। थोड़े से हिन्दुस्तानी बच्चे प्रायमरी स्कूलों में पढ़ते हैं, लेकिन उन स्कूलों में जो फ़िजी निवासी जंगली और

मील पर है, और जिसका मूल्य ४० सहस्र रुपये है, गुरुकुल काँगड़ी की शाखा खोलने के लिये देना चाहते हैं। इस कार्य के लिये आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब और गुरुकुल काँगड़ी से पत्रव्यवहार हो रहा है।

क्या ही अच्छा हो यदि आर्य्य प्रतिनिधि सभायें, भारत धर्म महामंडल और ब्राह्मसमाजें अपने अपने यहाँ एक 'वैदेशिक प्रचार विभाग' खोल दें और प्रतिवर्ष शिक्षासम्बन्धी काम करने के लिये कुछ शिक्षक और उपदेशक विदेशों को भेजा करें।

बम्बई की 'इम्पीरियल सिटीजन शिप ऐसोसियेशन' इस समय क्या काम कर रही है? इस सभा के पास लगभग दो लाख रुपये हैं। यह रुपये, दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह-संग्राम के लिये जो धन भारत से भेजा गया था उसमें से बचे हैं। इस सभा का कर्तव्य है कि वह इन रुपयों को प्रवासी भारतीयों के हित के लिये व्यय करे। हमने कहीं पढ़ा था कि यह रुपये तीसरे दर्जे के मुसाफ़िरों के कष्ट दूर करने के लिये खर्च होंगे। यदि ऐसा हुआ तो बड़ी अनुचित बात होगी। यह हम मानते हैं कि भारत में तीसरे दर्जे के मुसाफ़िरों के कष्टों को दूर करना एक अत्यन्त आवश्यक कार्य्य है, लेकिन जो रुपये प्रवासी भाइयों के लिये इकट्ठे गये थे, वह इस कार्य्य में क्यों व्यय किये जावें? क्या प्रवासी भारतीयों की सारी आवश्यकतायें पूरी हो गई? इस समय फ़िजी, ट्रिनीडाड, जमेका इत्यादि में शिक्षा प्रचारकी बड़ी भारी ज़रूरत है। क्या 'इम्पीरियल सिटिज़नशिप ऐसोसियेशन' का ध्यान इस ओर आकर्षित न होगा? इस सभा के संचालकों से हम प्रार्थना करते हैं कि यदि आप तीसरे दर्जे के मुसाफ़िरों के कष्ट दूर करना चाहते हैं तो इसके लिये अलग चन्दा कीजिये, भारत में सैकड़ों हज़ारों धनीमानी सज्जन ऐसे हैं जो इस कार्य्य में आप को

हासज्ञ ब्रिटिश रेज़ीडेण्ट थे। जब यह महाशय 'बालि' द्वीप को गये थे, तो वहाँ के हिन्दुओं ने इनसे पूँछा था कि 'क्या भारतवर्ष में हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थ मिल सकते हैं ?'

आजकल जावा हालेण्डवालों के अधिकार में हैं, जिनकी राजनीति का मूलाधार आर्थिक लोलुपता है। डाक्टर वोइज़ साह ने अपनी पुस्तक "Some Notes on java" में लिखा हैं "ह लोग अपनी जावानिवासी प्रजा की भलाई के लिये प्रयत्न नहं करते। हालेण्ड ने इस बात का निश्चय कर लिया है कि हम अपन पूर्वीय प्रजा को जहाँ तक हो सके अज्ञान और मूर्ख बनाये रक्खेंगे अपने उपनिवेशों की आमदनी का तृतीयांश तो हालेण्ड बतौर Tirbute 'कर' के ले लेता है।" हालेण्डवालों की यह स्वार्थयुक्त नीति निन्दनीय है, लेकिन साथ ही साथ हम भारतवासियों का आलस्य और अनुदारता भी अत्यन्त निन्दनीय है। हम लोगों ने उन्हें अपनी सभ्यता और धर्म का अनुयायी तो बना लिया लेकिन हमने उनकी रक्षा के लिये कोई प्रयत्न नहीं किया। क्या हिन्दू विश्वविद्यालय जावा निवासी हिन्दुओं के लिये कुछ नहीं कर सकता ? यदि हिन्दू विश्वविद्यालय उद्देश्य हिन्दू धर्म के महत्त्व को संसार पर प्रगट करना है, तो निस्सन्देह उसका कर्तव्य है कि वह जब कभी और जहाँ-कहीं मौक़ा मिले हिन्दु सभ्यता के प्रचार को उत्तेजना दे। जब तक हम अपनी ही रक्षा नहीं सकते तब तक हम दूसरों को हिन्दू सभ्यता सिखलाने का साहस कैसे कर सकते हैं ?

हिन्दू विश्वविद्यालय को चाहिये कि अपने यहाँ कुछ वृत्तियाँ जावा-के विद्यार्थियों के लिये रक्खे। जावा के हिन्दुओं को हमें ऐसी उत्ते-[illegible] चाहिये कि वह लोग यहाँ आकर हिन्दूधर्म और हिन्दू सभ्यता [illegible] करें। एक वह ज़माना था जब कि तक्षशिला, नालन्दा

और ओदन्तपुरी के प्राचीन विश्वविद्यालय संसार में हिन्दू सभ्यता का प्रकाश फैलाकर अज्ञानान्धकार दूर कर रहे थे और जगत के बड़े बड़े विद्वान् भारतवर्ष में आकर हमारे प्राचीन धर्म और सभ्यता का अध्ययन करते थे, लेकिन दुर्भाग्यवश आज वह दिन आ गया है, कि हम जेवानिवासी स्वजातीय हिन्दुओं की सभ्यता की रक्षा करने में असमर्थ हैं। हिन्दू धर्म का प्रचार करने के लिये हज़ारों ही धर्मप्रचारकों की आवश्यकता है। उपनिवेशोंसे भी हमें इस कार्य्य में सहायता—कम से कम आर्थिक सहायता तो—मिल ही सकती है। अब भी समय है, यदि हम काम करना चाहें तो अब भी बहुत कुछ हो सकता है। जब समय निकल गया तो फिर पीछे पश्चात्ताप करना पड़ेगा; लेकिन 'फिर पछताये क्या होत, जब चिड़ियाँ चुग गईं खेत'।

आज ब्रिटिश साम्राज्य का जो सम्मान संसार भर में हो रहा है, उसका कारण क्या है? संसार की राजनैतिक क्षितिज पर आज ब्रिटिश सरकार का नक्षत्र बड़े प्रकाश के साथ चमक रहा है, इसका सबब क्या है? इसका सबब यही है कि ब्रिटिश सरकार ने अपने उपनिवेशों को पहिले सहायता दी थी और अब उसके बदले में उपनिवेश उसे सहायता दे रहे हैं। भविष्य में भारत के अभ्युदयके लिये भी भारतीय उपनिवेशों की सहायता की बड़ी आवश्यकता होगी।

अभी तक हमने हिन्दूधर्म के प्रचार के विषय में लिखा है, इससे हमारा यह अभिप्राय न समझना चाहिये कि, सारे संसार को हिन्दू बनाने का हम स्वप्न देख रहे हैं। जिस प्रकार हम सारे संसार का ईसाई या मुसलमान होना असम्भव समझते हैं, उसी प्रकार हम सम्पूर्ण जगत को हिन्दू बनाने को भी असम्भव मानते हैं। हिन्दूधर्म के कट्टर पक्षपाती अथवा आर्य्यसमाजी इस विचार को भले ही निन्दनीय

समझें, लेकिन इसके लिये क्षमा माँगते हुये हम उनसे निवेदन करेंगे कि हम इस प्रश्न को दूसरी दृष्टि से देखते हैं। उन्नति के लिये पारस्परिक संघर्षण की बड़ी आवश्यकता है और पारस्परिक संघर्षण बिना स्वतंत्रता तथा भिन्नता के हो नहीं सकता। इसीलिये हम कहते हैं कि यदि मुसलमान लोग भी जावा में अपने सहधर्मियों में इस्लाम धर्मका प्रचार करें तो इससे हमारे हिन्दू धर्म की कोई हानि नहीं हो सकती। अगर अलीगढ़ का मुसलिम कालेज कुछ वज़ीफ़े जावा के मुसलमान तालिबइल्मों के लिये मुक़र्रर कर दे तो इससे हमारा कोई नुक़सान नहीं हो सकता, बल्कि फ़ायदा ही होगा। यदि प्रवासी हिन्दू और मुसलमान शिक्षित बन जावेंगे तो उनमें स्थायी मेल हो सकेगा, जो राष्ट्रीयता के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

भारत वर्ष से सहायताः—प्रवासी भारतीयों के भविष्य को आशामय बनाने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि हम लोग यथाशक्ति उनकी सहायता करें। फ़िजी, ट्रिनीडाड, जमेका, ब्रिटिश गायना और सुरीनाम इत्यादि उपनिवेशों के भारतीय हमारी ओर सहायता की आशा से टकटकी लगाये हुये हैं। क्या इस दशा में चुपचाप बैठे रहना हमारे लिये कलंककर और लज्जोत्पादक न होगा? मि. एण्डूज़ ने 'माडर्न रिव्यू' में India and Fiji शीर्षक एक बहुत अच्छा लेख लिखा है। इस लेख में उन्हों ने यह बतलाया है कि फ़िजी को भारत वर्ष से सहायता पहुँचाना अत्यन्त आवश्यक है। मि. एण्डूज़ ने जो बातें फ़िजी के विषय में लिखी हैं, वह अनेक

तो इससे सब भारतवासियों को बड़ी प्रसन्नता हुये थी। ऐसा प्रतीत होता था कि एक बड़े भारी संग्राम में विजय प्राप्त हुई है और एक अत्यन्त दुष्ट प्रथा का अन्त हो गया है। यह प्रसन्नता बिल्कुल स्वाभाविक थी। लेकिन इस विजय की प्रसन्नता में इस बात का डर था कि कहीं हम लोग इससे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्नों को न भूल जावें—कि भविष्य में प्रवासी भारतीयों की स्थिति के सुधारने के लिये क्या क्या प्रयत्न किये जाने चाहिये।

अगर इस समय कोई यह कहे कि हमने घोर आन्दोलन करके शर्तबंदी की प्रथा को उठवा दिया है, अब प्रवासी भारतीयों को अपनी सुध आप लेनी चाहि तो यह बड़े भारी अन्याय की बात होगी। इसके दो कारण हैं, पहिला तो यह कि हम लोगों ने इतने दिनों तक इस प्रथा का विरोध नहीं किया और अपने भाईयों को गुलामी में फँस कर देश से बाहिर जाने दिया। लगभग ८० वर्ष तक शर्तबन्दी की गुलामी जारी रही। क्या इसमें हमारा कुछ भी दोष नहीं है? अवश्यमेव इसमें हमारा भी बड़ा भारी दोष है, अगर हम पहिले से ही घोर आन्दोलन करते तो फिर क्या यह प्रथा इतने दिन तक जारी रह सकती थी?

अब हमारे प्रवासी भाई शर्तबन्दी गुलामी की वजह से बिल्कुल पतित हो गये हैं और उन्हें हमारी सहायता की बड़ी भारी ज़रूरत है। यह लोग अपनी दुराचारपूर्ण स्थिति से तभी बाहिर निकल सकते हैं, जब हम इनकी मदद करें। दूसरा कारण यह है कि अगर हमने अपने प्रवासी भाईयों को सहायता नहीं दी तो उनकी हालत पहिले से भी ज्यादा ख़राब हो जावेगी। क्या उनके दुराचारों से भारतके सिर कलङ्क नहीं लगेगा? जो विदेशी लोग हमारे इन प्रवासी भाईयोंके संसर्ग में आवेंगे वह यही ख्याल करेंगे कि भारतवासी ऐसे ही

गन्दे और दुराचारी होते हैं । क्या यह बात भारत के राष्ट्रीय सम्मान-पर आघात करनेवाली नहीं है ? अभी तक हम लोगोंने इस बात को नहीं सोचा है कि भारतवर्ष के बारे में विदेशी लोग क्या क्या ख्याल करते हैं ! थोड़े दिन हुये मिस्टर मैक्लीऔड साहब जो फ़िजी में एक गोरे व्यापारी हैं, औकलेण्ड गये थे। वहाँ से निकलनेवाले 'स्टार' नामक पत्र के सम्वाद दाता से उन्होंने भारतवासियों के विषयमें जो जो बातें कही थीं उन्हें हम पाठकों के सामने यहाँ पेश करते हैं और निवेदन करते हैं कि वह इन बातों पर विचार करके निश्चित करें कि अब हमारा क्या कर्तव्य है।

मिस्टर मैक्लीऔड साहब ने कहाथा "न्यूज़ीलेण्ड में जो शिक्षा परीक्षा ली जाती है, वह इतनी सादी और सरल होती है कि वह न्यूज़ीलेण्ड के लिये एक भयंकर वस्तु है। इस भयंकर खतरे को केवल वह लोग ही पूरी तरह समझ सकते हैं जिन्होंने विदेशियों द्वारा अन्य देशों को अधिकृत होते हुये देखा है। अत्यन्त ही खराब तरह के असंख्य हिन्दुस्तानी इस 'शिक्षा परीक्षा' को पास करसकते हैं। बस थोड़े से इशारे की देर है, जहाँ इन लोगों को थोड़ी भी प्रेरणा मिली कि यह फ़ौरन उसी तरह से न्यूज़ीलेण्ड में भरजावेंगे, जिस तरह कि वह दूसरी जगहों में भर गये हैं। मिसाल के लिये फिजी को ही लीजिये। फिजी में हर एक पेशे में, प्रत्येक व्यापार में और सभी तरह के भले बुरे धंधों में हिन्दुस्तानी ही हिन्दुस्तानी दीख पड़ते हैं। फिजी में हिन्दुस्तानी दूध बेचते हैं, वह प्लाण्टर हैं, खेती करते हैं, वह बिसाँत-गीरी करते हैं, वह बूट जूते बनाते हैं, वह दर्ज़ी हैं और वह फेरी लगाते हैं, अधिक क्या कहा जावे फिजी में हिन्दुस्तानी छोटे बड़े सभी काम करते हैं [illegible] अपनी जाति के पक्षपात के लिये बड़े प्रसिद्ध हैं, [illegible]ों में यह जातीय पक्षपात और भी ज्यादा

होता है। यह लोग एक दूसरे के लाभ के लिये काम करते हैं, और इस बात की कोशिश करते हैं कि हम अपने अन्य भाईयों को भी अपने पास बुला लें, जिससे उन्हें भी फ़ायदा पहुँचे। यह बात ध्यान देने योग्य है कि अगर न्यूज़ीलैण्ड में भारतवासी आवेंगे तो फ़िजी से ही आवेंगे; क्योंकि फ़िजी न्यूज़ लैण्ड के निकट ही है और फ़िजी में बहुत से हिन्दुस्तानी पाये भी जाते हैं।

अब प्रश्न यह होता है कि किस प्रकार के भारतवासी हमारे न्यूज़ीलैण्ड में भर जावेंगे? इसका उत्तर है "अत्यन्त नीच"। इण्डियन इमीग्रेशन आर्डीनेन्स के मुताबिक़ एक औरत, चार आदमियों की घरवाली होती है। इसका नतीजा यह होता है कि इन लोगों के नैतिक जीवन अत्यन्त भ्रष्ट हो जाते हैं। हम ईसाई लोगों के धर्मानुकूल विवाहसम्बन्धी नियम का तो उन्हें स्वप्न में भी ख्याल नहीं आता। इन लोगों की घरेलू आदतें इतनी गन्दी होती हैं कि उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। बीस चालीस स्त्री पुरुषों और बाल बच्चों का एक ही कमरे में खाना पीना और सोना यह तो एक बिल्कुल मामूली बात है। हिन्दुस्तानियों की निगाह में परस्त्री-गमन और असतीत्व में कोई दोष ही नहीं है। इसका परिणाम यह होता है कि छोटे छोटे बच्चे भी लड़कपन में ही गन्दी गन्दी और लज्जाजनक बातों से परिचित हो जाते हैं, और वह बड़ी आज़ादी के साथ और बिना किसी के रोके हुये ऐसे ऐसे विषयों की बात चीत करते हैं, जिनके बारे में बीस वर्ष का सामान्य औपनिवेशिक गोरा युवक बिल्कुल नहीं जानता। इन हज़ारों लाखों भारतवासियों के दिल में बस इस विचार के समाने की देर है कि न्यूज़ीलैण्ड रहने के लिये एक अच्छा निवासस्थान है, फिर क्या है थोड़े ही दिनों में यह लोग सचमुच शनैः शनैः लेकिन दृढ़तापूर्वक वहाँ बस जावेंगे।

मान लीजिये कि थोड़े बहुत भारतवासी न्यूज़ीलेण्ड में आ बसे। अब यह प्रश्न उठ खड़े होंगे कि 'इन हिन्दुस्तानियों के बालबच्चों को भी अनिवार्य्य शिक्षापरीक्षा देनी पड़ेगी या नहीं ? और क्या इन हिन्दुस्तानियों के बालक उन्हीं स्कूलों में पढ़ सकेंगे जिनमें कि यूरोपियनों के बालक पढ़ते हैं !'

अपने सुन्दर द्वीप न्यूज़ीलेण्ड में इस प्रकार की स्थिति की कल्पना करना एक ऐसे आदमी के लिये जिसने भारतवासियों को नागरिक की हैसियत में देखा है, अत्यन्त दुःखप्रद और मर्मभेदी है। उदाहरण के लिये फ़िजी को ही लीजिये। यदि आप फ़ौजदारी की अदालत के अभियुक्तों की सूची को देखेंगे तो आप को पता लगेगा कि ९० फ़ीसदी जुर्म भारतवासियों के द्वारा किये गये हैं। फ़िजी में कोढ़ियों के निवासस्थान में तीन सौ कोढ़ी हैं। इन कोढ़ियों में सबसे ज्यादा संख्या भारतवासियों की ही है। इस पर भी यह बात नहीं कही जा सकती कि फ़िजी में कुल तीन सौ ही कोढ़ी हैं। कम से कम इतने ही कोढ़ी फ़िजी में और होंगे। यदि न्यूज़ीलेण्ड भारतवासियों को अपने यहाँ निमंत्रित करेगा तो उसे यह एक दूसरा मनोहर दृश्य देखने को मिलेगा। यह बात बिल्कुल निश्चित ही है कि न्यूज़ीलेण्ड एक भी भारतवासी को अपने यहाँ नहीं बसा सकता न्यूज़ीलेण्ड को फ़ौरन ही ऐसे कड़े कड़े कानून बनाने चाहियें, जिसमें भारतवासी थोड़े दिनों के लिये भी न्यूज़ीलेण्ड में न आ सकें। इस समय यदि फ़िजी सरकार चाहे कि फ़िजी में गोरे लोग आकर बसें तो आप जानते हैं कि उसे क्या करना पड़ेगा ? अगर फ़िजी गवर्नमेण्ट ऐसा चाहे तो उसे हिन्दुस्तानियों को फ़िजी से निकाल देना पड़ेगा। लेकिन हिन्दुस्तानियों को फ़िजी से निकालने में जो खर्च पड़ेगा वह फ़िजी द्वीप समूह के मूल्य से भी अधिक होगा। लेकिन यह

सब हालत बीस वर्ष या इससे भी कम समय में हो गई है। फ़िजी इस समय चीन के एक नगर और भारतवर्ष का विचित्र मिश्रण बन गया है। यह मिश्रण चीन और भारत में भले ही अच्छा लगे, लेकिन हम न्यूज़ीलेण्ड वालों को चीनियों और हिंदुस्तानियों के इस अद्भुत संगम की ज़रूरत नहीं है।"

मिस्टर मैक्लीऑड के लेख से यह बात स्पष्टतया विदित हो जाती है कि शर्तबन्दी की वजह से भारतका कितना अपमान हुआ है। अब चूँ कि शर्तबन्दी की प्रथा बन्द हो गई है, और प्रवासी भारतीयों के जीवन सुधरने की आशा है, यदि हम इस अमूल्य अवसर से लाभ नहीं उठावेंगे तो हमारे लिये बड़ी शर्म की बात होगी। यही मौक़ा है कि हम प्रवासी भारतीयों के दुराचारों को दूर करने का उपाय करें। हमारे ही दोष से प्रवासी भारतवासियों की यह दुर्गति हुई है। हमने क्यों इतने दिनों तक शर्तबन्दी को जारी रहने दिया? यदि हम पन्द्रह बीस वर्ष पहिले ही कुली प्रथा के विरुद्ध घोर आन्दोलन करते तो यह प्रथा कब की उठ गई होती। शोक है हमारे स्वाभिमान पर कि हमने ८० वर्ष तक अपने भाईयों को शर्तबन्दी की गुलामी में फँसने दिया। अब मौक़ा आ गया है कि हम शर्तबन्दी से छूटे हुये अपने भाइयों का उद्धार करें। हम को आशा करनी चाहिये कि प्रवासी भारतीय स्त्री और पुरुष शीघ्र ही सदाचारी बन जावेंगे और आजकल जिस तरह उनका उदाहरण दुराचार के लिये दिया जाता है, वैसे ही भविष्य में सदाचार के लिये उनकी मिसाल दी जावेगी।

यह प्रश्न इतना कठिन नहीं है कि हम इसे हल न कर सकें। प्रकृति स्वयं रोगों को दूर करती है, चाहे यह रोग शारीरिक हों, मानसिक हों या नैतिक हों। लेकिन प्रकृति रोगों को दूर तभी कर

सकती हैं, जब कि परिस्थिति उसके कार्य के लिये अनुरूप बना दी जावे। अब यदि भविष्य में बहुत से अविवाहित जवान भारतीय मज़दूर फ़िजी में न पहुँचे, तो प्रकृति अवश्यमेव उस विषमता को दूर कर देगी, जो इस समय फ़िजी के भारतीय पुरुषों और स्त्रियों की संख्या में पाई जाती है। लड़कियाँ ज्यादा उत्पन्न होंगी, और फिर स्त्री पुरुषों की संख्या में इतना भयंकर अन्तर नहीं रहेगा। ऐसा पहिले भी कितनी ही जगहों में हुआ है, इसलिये बहुत सम्भव है कि फ़िजी में भी ऐसा ही हो।

इसके साथ ही साथ यह भी प्रयत्न करना चाहिये कि जहाँ तक हो सके, भारतीय मज़दूर शहरों के गन्दे मुहल्लों से दूर रहने के लिये उत्साहित किये जावें। उदाहरणार्थ कितने ही भारतीय मज़दूर फ़िजी की राजधानी सुवा में आकर दुराचारी हो जाते हैं। फ़िजी की 'कालोनियल शुगर रिफाइनिङ्ग कम्पनी' ने इस बारे में बड़ी आशा दिलाई थी। इस कम्पनी ने प्रतिज्ञा की थी कि हम बहुत सी ज़मीन भारतीय मज़दूरों को रहने के लिये देवेंगे, लेकिन अब हमने सुना है कि कम्पनी के इस उदार कार्य का फ़िजी के बहुत से यूरोपियनों ने घोर विरोध किया है।

फ़िजी के स्वतंत्र भारतीयों को जमीनें मिलनी चाहिये, जिससे वह वहाँ खेती करके अपनी गुज़र कर सकें। यह उनके लिये नैतिक जीवन और नैतिक मृत्यु का प्रश्न है। यदि फ़िजी के भारतीयों को, जो शर्तबन्दी से छुटे हैं, पट्टे पर सुविधाजनक नियमों के साथ भूमि नहीं मिलेगी तो फिर वह सदाचारी बन ही नहीं सकते। यदि हम लोग अपने अधिकारों के लिये बराबर आन्दोलन करते रहें, और सरकार पर इस बात का दबाव डालें कि जब तक फ़िजी की सी. ऐस. आर. कम्पनी अपनी प्रतिज्ञा को पूर्ण न करे तब तक फ़िजी को एक भी

कुली कदापि न भेजा जावे। सी. एस. आर. कम्पनी की इस प्रतिज्ञाका श्रीमान् वायसराय साहब ने भी अपने व्याख्यान में ज़िक्र किया था।

दूसरा प्रश्न विवाह के विषय में है। इस समय जो दुर्दशा हिन्दू विवाहों की उपनिवेशों में है, उसे पढ़कर हमारे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। यदि अभी इलाज नहीं किया गया तो यह रोग असाध्य हो जावेगा। यदि एक पीढ़ी तक यही वैवाहिक शिथिलता जारी रही, तो बस समझ लीजिये कि उपनिवेशों में हिन्दू विवाह पद्धतिका नामोनिशान भी नहीं रहेगा।

तीसरी बात यह है कि फ़िजी प्रवासी भारतीय बालकों का अत्यंत दुर्दशापूर्ण स्थिति में पालन पोषण हुआ है। न किसी ने इस बात की परवाह की है कि यह कौन कौन से दुर्गुण सीख रहे हैं, और न किसी ने इनके सुधार के लिये कुछ प्रयत्न किया है। इन्हों ने पाप, दुष्कर्म और जुआ खेलना इत्यादि दुर्गुण प्रारम्भ से ही सीखे हैं। इस में इन बिचारे बालकों का क्या दोष है? जो कुछ वह देखते हैं, उसी का वह अनुकरण करते हैं। जब कुली प्रथा के कारण उनके माता पिताओं के आचरण भ्रष्ट हो गये हैं तो फिर उनके संसर्ग में रहनेवाले बालक कैसे सदाचारी बन सकते हैं? उनके लिये कोई स्कूल नहीं, कोई पवित्र स्थान नहीं और कोई शिक्षक नहीं; अगर कुछ हैं तो वह ही कुली लेने हैं। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि फ़िजी के भारतीयों का भविष्य इन्हीं नन्हे नन्हे बालकों पर अवलम्बित है। इसलिये प्रवासी भारतीयों के नैतिक उद्धार के विषय में विचार करते हुये हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिये कि इन प्रवासी बालकोंमें किस प्रकार उत्तम शिक्षा का प्रचार किया जावे और किस तरह प्रत्येक बालक को शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा प्राप्त हो। चाहे फ़िजी की सरकार इस कार्य्य को कठिन समझे, लेकिन हमारी स—

में यह कठिन नहीं है। आजकल शकर का भाव बहुत तेज़ है, इस लिये शकर की कम्पनियाँ एक एक के चार चार कर रही हैं। यह भारतीय भाईयों के ही परिश्रम का फल है कि आज फ़िजी की कम्पनियाँ लाखों करोड़ों रुपये प्रतिवर्ष कमाती हैं। इस दशा में यह आशा करना अनुचित न होगा कि इस लाभ में से कुछ भाग उन मजूरों के बालकों की शिक्षा के लिये भी व्यय किया जावे, जो इस लाभ के मुख्य कारण हैं। अगर भारतीय बालकों की शिक्षा में अधिक रुपये व्यय किये जावेंगे तो उनके दुराचारों में कमी हो जावेगी और भविष्य में वह परिश्रमी तथा उद्योगी बन जावेंगे।

चौथी बात यह है कि जो भारतवासी फ़िजी में सदा के लिये बस गये हैं, वह अपनी रक्षा आप नहीं कर सकते, जब तक कि फ़िजी के शासन में उनको कुछ अधिकार न मिले। फ़िजी की सरकार ने इस विषय में एक पैर आगे बढ़ाया है और उसने एक प्रवासी भारतीय को नियमनिर्धारिणी सभा का सभासद बना लिया है। खेद की बात है कि यह महाशय शिक्षित नहीं हैं, इसलिये कौंसिल के कारोबार को जो अंग्रेजी में होता है, नहीं समझ सकते! इसी लिये हम कहते हैं कि फ़िजी के भारतियों में शिक्षा का प्रचार करना अत्यन्त आवश्यक है। जब तक ऐसा न होगा, तब तक नियमनिर्धारिणी सभा के लिये योग्य सभासद कहाँ से मिल सकता है? यद्यपि हमारा विश्वास है कि फ़िजी सरकार ने इन महाशय को सभासद बनाकर बड़ी भूल की है तथापि हम इस बातको स्वीकार करते हैं कि फ़िजी सरकार ने इनसे न्याय तो किया कि कोई भारतीय आदमी चुना तो सही। आशा [illegible] कि नियमानुसार होने पर इस कार्य्य के लिये योग्य आदमी मिल सकेंगे [illegible]

दो वर्ष हुये, जब फ़िजी सरकार ने सुवा नगर के निवासियों [illegible] वोट देने का अधिकार छीन लिया था। अब इस अधिकार को पु[illegible]

प्राप्त करना है। ब्रिटिश साम्राज्य में नागरिक के अधिकार प्राप्त करने के *लिये* हमें घोर आन्दोलन करना चाहिये।

इस लिये मुख्य मुख्य बातें यह हैं:—

(१) भारतवासियों का उपनिवेशों में निवास, (२) विवाह, (३) शिक्षा और (४) नागरिक के अधिकार।

अगर यह प्रश्न ठीक तरह से हल हो गये तो फिर आशा की जा सकती है कि *प्रवासी भारतीयों का भविष्य उज्ज्वल होगा। यदि इन* पर ध्यान नहीं दिया गया, और भारत वर्ष से सहायता नहीं दी गई तो सारा किया करायां काम पर पट हो जावेगा। लोगों को यह ख्याल न करना चाहिये कि फ़िजी प्रवासी भारतीयों की संख्या बहुत कम है, इस लिये उनकी ओर ध्यान देने की कोई आवश्यकता नहीं। फ़िजी में ५० हज़ार भारतीय ही, दुनियाँ के उन विदेशी आदमियों के सामने, जिन्हें भारत वर्ष देखने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ, और जो प्रशान्त महासागर में इधर से उधर यात्रा किया करते हैं, भारत वर्ष के प्रतिनिधिस्वरूप हैं। यह विदेशी लोग भारतीय सभ्यता का अन्दाज़ इन्हीं आदमियों को देखकर लगावेंगे।

प्रशान्त महासागर के द्वीप
और
प्रवासी भारतवासी

प्र*शान्त महासागर के द्वीपोंके और प्रवासी भारतीयों के भविष्य* में कुछ सम्बन्ध हो सकता है। कितने ही लोग इस बात की आशा करते हैं, कि प्रशान्त महासागर के अनेक द्वीप भविष्य

-लेकर सूर्यास्त तक बराबर परिश्रम कर सकते हैं और खाने के लिये सिर्फ़ आध सेर चाँवल माँगते हैं। अब तक गोरे लोग चूँकि मालिक बनकर रहे हैं, इन लोगों की कड़ी धूप में काम करने की योग्यता से स्वयं फ़ायदा उठाते रहे हैं और इनके परिश्रम से जो बड़े बड़े लाभ हुये हैं, उनको अपनी जेब में डालते रहे हैं। लेकिन यह स्थिति आकस्मिक है और इसका कोई सच्चा आधार नहीं है। राजनीति में थोड़ा सा परिवर्तन होने से अथवा किसी अदृष्ट आपत्ति से गोरे लोगों का लाभ जाता रहेगा। तब फिर क्या होगा? हम नहीं जानते तब क्या हालत होगी, लेकिन इतना हम अवश्य कहेंगे कि नवीन परिवर्तन होने पर यह सौभाग्य गोरे लोगों के हाथ शायद ही रहे।" *

यह बात बहुत सम्भव है कि भविष्य में प्रशान्त महासागर के द्वीपों के लिये पूर्वीय और पाश्चात्य जातियों के बीच में झगड़ा हो। प्रशान्त महासागर की परिस्थिति हमें बतलाती है कि भविष्य में इस के द्वीपों का गौरवर्ण जातियों के अधीन रहना अत्यत कठिन है। 'टाइम्स आफ़ इण्डिया' ने अपने २१ सितम्बर सन् १९१७ ई. के अग्रलेख में लिखा है "भारतवर्ष के जिन भागों में स्थान की अपेक्षा आबादी बहुत ज्यादा बढ़ गई है उन जगहों में आदमियों की संख्या कम करने के लिये, तथा हिन्दुस्तान के लिये प्रवासस्थान बनाने के लिये यह आवश्यक है कि भारतवासी देशसे बाहिर जावें। यह प्रवासस्थान भविष्य में देश के लिये बड़े लाभदायक होंगे। यह बात खास कर प्रशान्त महासागर के द्वीपों के लिये और भी ठीक है। इन सजल सफल द्वीपों को मजदूरों की आवश्यकता है। यह द्वीप भविष्य में उन लोगों के हाथों में जानेवाले हैं, जो इस समय दूसरोंके लिये कुछ दिनों के वास्ते मजदूरी करने पर रज़ामन्द हों। अगर भारतवासी

* देखिये Fiji of to day. पृष्ठ २६४-२६५

इन द्वीपों को नहीं लेंगे तो दूसरे ले लेंगे। हम नहीं चाहते कि यह द्वीप उन लोगों के हाथ में जावें, जो भविष्य में हमारे साथ स्पर्धा करें।"

मि. बर्टन अपनी पुस्तक के २६१ वें पृष्ठ में लिखते हैं "जापानियों की निगाह इन धनपूर्ण निर्जन द्वीपों की तरफ़ पड़े बिना नहीं रह सकती। जापान के शहरों की आबादी बहुत बढ़ गई है और वहाँ के पहाड़ों के निकट की भूमि बिल्कुल ऊसर है, इस लिये जापानियों की दृष्टि इन द्वीपों की ओर अवश्य पड़ेगी। जापान ने अपना पैर इस तरफ़ आगे बढ़ाया भी है। चीनी लोग भी जहाँ के लाखों आदमी दरिद्रतापूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं, इन अधबसे, ज़रखेज़ और उपजाऊ द्वीपों की ओर लालच की निगाह से देखेंगे। भारतवर्ष भी, जहाँ हर वक़्त प्लेग और अकाल का डेरा जमा रहता है, ख्याल करता है कि मुझे इन खाली द्वीपों में निवास करनेका कुछ अधिकार है। क्या हम भारतवासियों के इस अधिकार को अस्वीकृत कर सकते हैं?"

मि. ऐंड्रूज़ 'माडर्न रिव्यू' में लिखते हैं:—

"केवल फ़िजी के प्रवासी भारतवासी ही एक ऐसी जाति हैं, जो के उष्ण देशों से दक्षिणी समुद्र के द्वीपों में आकर खूब फले फूले। इन द्वीपों में बहुत से भारतीय बालक पैदा होते हैं और वह खूब न्दुरुस्त भी रहते हैं। मलेरिया का यहाँ नामोनिशान नहीं है और सरे रोगों से भी भारतवासी लगभग मुक्त ही हैं। मसलन् खसरे की मारी से हज़ारों ही आदिम निवासी कालके गाल में चले जाते हैं, फ़िजी के लगभग चौथाई जंगली इसी रोग के कारण इस दुनियाँ से ल बसे, लेकिन एक भी भारतवासी नहीं मरा। इसलिये यह बात निश्चित ही है कि भविष्य में केवल फ़िजी के ही नहीं, बल्कि महासागर के मध्य भाग के निवासी मुख्यतया हिन्दुस्तानी

ही होंगे, और भारतवासियों के वंशज प्रशान्त महासागर के एक सिरे से दूसरे सिरे तक पाये जावेंगे। इस का अर्थ यह न समझना चाहिये कि प्रशान्त महासागर के द्वीपों के आदिम निवासी जंगली लोग ज़बर्दस्ती मार डाले जावेंगे। बात असली यह है कि यह आदिम निवासी जंगली लोग अपने आप ही मर रहे हैं, और यह बिना जुती हुई भूमिवाले और महामारी रहित सुन्दर द्वीप निर्जन होते चले जा रहे हैं। आशा है कि फलने फूलने वाली वर्तमान भारतीय जाति में से नवीन जातियाँ उत्पन्न होंगी जो चारों ओर फैलकर पृथ्वीभर को सुशोभित करेंगी। भविष्य के लिये बीज इस समय बोये जा रहे हैं। अब यदि इस समय प्रारम्भ से ही उस भूमि को, जिस पर कि यह बीज उगेंगे, ठीक तरह से बीज उगाने योग्य बनाने के वास्ते यथाशक्ति प्रयत्न न किया गया तो यह कितनी अदूरदर्शितापूर्ण बात होगी ? यदि इस संकट के समय में अच्छी नीवँ नहीं रक्खी गई तो यह कितनी मूर्खता की बात होगी ? यदि इस समय थोड़ा सा भी प्रयत्न किया जावे तो भविष्य में वह सौगुना बल्कि हज़ार गुना होकर फल लावेगा।"

ब्रिटिश राजनीतिज्ञोंकी चतुरताः—प्रवासी भारतीयोंका भविष्य कुछ अंशों में ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की चतुरता पर भी निर्भर है। हमें देखना है कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञ किस ढङ्ग से भारतीय प्रवास के प्रश्नों को हल करते हैं। पिछले दिनों में कुछ राजनीतिज्ञों ने जो विचार प्रगट किये हैं, उनसे हमें कुछ कुछ आशा होने लगी है। अब तक पिछले अध्यायों में पाठकों के सामने जो बातें लेखक ने लिखी हैं, वह वास्तव में पाठकों को निराशाजनक और दुःखप्रद प्रतीत हुई होंगी। अपने भाइयों और भगिनियों की दुर्दशा का हाल पढ़कर जिसके हृदयपर चोट न लगे, वह 'नर नहीं, नरपशु है निरा और मृतक

समान है। ' लेकिन अब लेखक सहृदय पाठकोंका विशेष दिल दुखाना नहीं चाहता, उसे विश्वास है कि प्रवासी भारतीयों के शुभ दिन अब आनेवाले हैं। प्रवासी भाइयों और भगिनियों ने जो जो कष्ट पाये हैं उनका यदि कोई प्रतिभाशाली लेखक यथोचित वर्णन करे। उसे पढ़कर कड़ा हृदय भी पसीज सकता है। लेकिनः—

' संसार में किसका समय है, एकसा रहता सदा
हैं निशिदिवा सी घूमती, सर्वत्र विपदा सम्पदा '

अब प्रवासी भाइयों की विपद के दिन चले गये, उनकी निराशा-पूर्ण स्थिति अब दूर होने लगी है और उनके अन्धकारमय भाग्या-काश में आशा की ज्योति अब दीखने लगी है। आइये पाठक इस आशा की झलकके दर्शन करें।

आशा की झलक

बीती नहीं यद्यपि अभी तक है निराशा की निशा।
है किन्तु आशा भी कि होगी दीप्त फिर प्राची दिशा॥
महिमा तुह्मारी ही जगतमें धन्य आशे। धन्य है।
देखा नहीं कोई कहीं, अवलम्ब तुमसा अन्य है॥

२५ वर्ष पहिले प्रवासी भारतवासियों का भाग्याकाश बिल्कुल [अन्ध]कारपूर्ण था, और उस की ओर देखा भी नहीं जा सकता था। [ब]न्दी गुलामी की घनघोर घटा उसे चारों ओरसे घेरे हुई थी [और] ऐसा प्रतीत होता था कि कुलीप्रथा की कालिमा कभी नहीं [मिटेगी]। ऐसे समय में भी एक दिव्य दृष्टि प्राप्त महात्मा ने इस आकाश [की ओ]र देखकर कुछ आशाजनक उपदेश दिये थे। वह महात्मा

थे न्यायमूर्ति महादेव गोविन्द रानाडे। इन्हीं ने पहिले पहिल सन् १८९९ ई. में पूना की इण्डस्ट्रियल कान्फ्रेंस में 'भारतीय प्रवास' नामक एक उत्तम लेख पढ़ा था। परमेश्वर की कृपा से अब कुली प्रथा की कालिमा नष्ट हो चली है। चन्द्रोपम महात्मा गान्धीजी ने देशभक्ति, स्वार्थत्याग और सत्याग्रहरूपी किरणों से इस आकाश को इतना उज्ज्वल बना दिया है कि अब हमारी दृष्टि दूर तक पहुँच सकती है। स्वर्गीय राजऋषि गोखले ने भी प्रवासी भारतीयों के भविष्य को उज्ज्वल बनाने में बड़ी भारी सहायता दी थी। 'शर्तबन्दी गुलामी बन्द करानेका बीड़ा उन्हों ने ही उठाया था' और यह उन्हीं के प्रयत्न का फल है कि आज देश इस कलंककर प्रथासे मुक्त हो गया है। दक्षिण अफ्रिका में जाकर आप ने बड़ा उपयोगी काम किया था। मि. गान्धी को छोड़कर और किसी भारतीय नेता ने राजऋषि गोखले के बराबर प्रवासी भाइयोंका उपकार नहीं किया। कहा जाता है कि जब दक्षिण अफ्रिकामें सत्याग्रह का संग्राम शुरू हो गया था, और वहाँ की सरकार के उग्र आचरणों से कर्मवीर गान्धीके जेल जाने की आशंका थी, तब उस समय म. गोखले को दिनरात चैन नहीं पड़ता था उन दिनों में म. गोखले दिल्ली में थे। एक रात को लगभग दो बजे उनके कमरे में टहलने की आहट उनके एक प्रिय शिष्य को सुनाई पड़ी। उठकर शिष्य ने उनके कमरे में झाँक कर देखा कि वह टहल रहे हैं। उस समय उनका स्वास्थ्य बहुत खराब था। शिष्य ने उनसे आग्रह किया कि आप सो जाइये, बीमारी में इतनी व्यग्रता और प्रयास से हानि होने की सम्भावना है। महात्मा गोखले बोले "दक्षिण अफ्रिका में हिन्दुस्तानी इतनी यातना सह रहे हैं और गान्धी जेल जानेको हैं। यह कैसे सम्भव है कि मैं शान्तिसे बैठूं?"

इसमें कोई सन्देह नहीं कि महात्मा गोखले के आन्दोलन की वजह से प्रवासी भारतीयों को बड़ा उपकार हुआ था।

power to show their appreciation of this fact. It may be mentioned that the announcement of the splendid gift of £.100,000 by the Nizam of Hydarabad, for use in the campaign against German submarines was made in the heavy type in most of the Canadian papers."

अर्थात्–"महायुद्धने इस बातको अत्यन्त आवश्यक बना दिया है कि कनाडा की 'इमीग्रेशन नीति पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जावे।' अगले महीने में जब पार्लीमेण्ट की बैठक होगी, और जब कनाडा के प्रधान आ जावेंगे, तब बहुत सम्भव है कि इमीग्रेशन नीतिपर विचार किया जावे। अब निस्सन्देह उस ढङ्ग में, जिस ढङ्ग से कि कनेडियन लोग 'इण्डियन इमीग्रेशन' (भारतीय-प्रवेश) को देखा करते थे, पूर्ण परिवर्तन हो गया है। इस परिवर्तन का कारण महायुद्ध में भारतवर्ष की राजभक्ति और सहायता है। कनेडियन लोग भारत के इस कार्य की यथासम्भव प्रशंसा और कद्र करने में कोई कसर नहीं रक्खेंगे। हैद्राबाद के निज़ाम ने जो १ लाख पौण्डका दान ब्रिटिश सरकार को जर्मन पनडुब्बियोंके उपद्रव को रोकने के लिये दिया था, उसका समाचार कनाडा के लगभग सभी समाचार पत्रों में बड़े बड़े अक्षरों में छपा था।"

कुछ दिन हुये कनाडा इण्डियन लीग की ओर से मि. जे. ई. ड्रोचस और डाक्टर एल. ए. डेविस, आभ्यन्तरीण मंत्री डाक्टर रोची से मिलने के लिये ओटोवा गये थे। उन्हों ने मंत्री की सेवा में एक आवेदन पत्र पेश किया था कि "कनाडा में बसे हुये भारतवासियों को अपने बालबच्चों को यहाँ लाने की आज्ञा दे दी जावे। इसके लिये ... बनाया जावे, वैसेही भारतीय प्रवासी व्यापारी और ... की उपनिवेशों में प्रवेश करने की बाधायें दूर कर दी ... ब्रिटिश कोलम्बिया की सरकार से भारतवासियों के साथ समान

व्यवहार करने और कमसे कम उन्हें जापानियोंके समान अधिकार देनेके लिये सरकार की ओर से कहा जावे।"

मंत्री ने उत्तरदिया कि इस 'आवेदनपत्र' पर पूर्ण ध्यान दिया जावेगा।

परमात्मा करे कि कनाडा में जो विचारक्रान्ति अभी आरम्भ हुई है वह दिन पर दिन बढ़ती जावे, और साम्राज्य के संगठन-एकीकरण में सहायक हो।

अमेरीका के अनेक विद्वान् भी अब प्रवासी भारतीय छात्रों के साथ सहानुभूति प्रगट करने लगे हैं। अमेरीका में जो बिल भारतीयों के विरुद्ध बननेवाला था उसका विरोध केलीफ़ोर्निया के कितने ही मुख्य मुख्य पुरुषों ने किया था। आयोवा-विश्वविद्यालय के अधिष्ठाताओं ने निम्न लिखित तार राष्ट्रीय सभा को भेजा थाः—

"प्रिय महाशय,

हम लोग, जो कि आयोवा-राजकीय विश्वविद्यालय के अधिष्ठाता हैं, बड़े विनीत भाव से इमीग्रेशन बिल के ४७ वें नियम का घोर विरोध करते हैं, *क्यों कि यह भारतीय विद्यार्थियों के लिये विशेष* हानिकारक है। हमारी समझ में इस प्रास्ताविक बिल से भारतीय विद्यार्थियों का अमेरीका में प्रवेश करना अत्यन्त कठिन हो जायगा। यद्यपि ऊपर से यही ज्ञात होता है कि यह नियम जैसा कि एशिया की दूसरी जातियों के लिये है, वैसा ही भारतीय लोगों के लिये भी है, लेकिन भारतीय लोगों की स्थिति असामान्य है; क्यों कि वहाँ विदेशियों का राज्य है। इसलिये भारतीय विद्यार्थियों पर इस बिलका *जो बुरा प्रभाव पड़ेगा वह उस प्रभावसे भिन्न होगा,* जो कि अन्य जातियों के विद्यार्थियों पर पड़ेगा। हम इस बात का प्रतिपादन करते हैं कि जिस विद्यार्थी के पास अपने विद्यालय के प्रिन्सिपल या

अधिष्ठाता का प्रमाणपत्र हो वह संयुक्त राज्य में स्वतंत्रतापूर्वक प्रवेश कर सके। आशा है कि आप इस बात पर पूर्णतया ध्यान देंगे।"

भवदीय—

सी शोर	अधिष्ठाता	ग्रेजुएट विद्यालय
रेमंड	,,	प्रयोज्य विज्ञान विद्यालय
विलकाक्स	,,	स्थूलकला विद्यालय
गुयरे	,,	आयुर्वेदिक कालेज
वीन	,,	दन्तविज्ञान विद्यालय
डन	,,	कानून का विद्यालय
टीटर्स	,,	ओषधि विज्ञान विद्यालय

ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की सहानुभूति

महा युद्ध के आरंभ बाद ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने भारत के विषय में जो हृदयोद्गार निकाले हैं वह भी हमें आशा दिलाते हैं कि भविष्य प्रवासी भारतवासियों की दशा दिये अवश्य सुधरेगी। इन उद्गारों ी पढ़ते समय हमें इस बात पर ख्याल रखना चाहिये कि भारतीय वास के प्रश्नों का भारतकी राजनैतिक स्थिति से बड़ा गहरा सम्बन्ध । ज्यों ज्यों भारत की राजनैतिक स्थिति सुधरती जावेगी, त्यों ों उपनिवेशों में प्रवासी भारतीयों की भी स्थिति सुधरती जावेगी। व भारतवर्ष को साम्राज्य में उपनिवेशों के समान पद मिलेगा तभी रतीय प्रवास के प्रश्न हल होंगे। अभी थोड़े दिन हुये, श्रीमान् म्राट पंचम जार्ज ने अपनी एक वक्तृता में कहा था:—

"मुझे यह जानकर अत्यन्त सन्तोष हुआ है कि भारत वर्ष के प्रतिनिधि भी आपकी साम्राज्य-सभाके सभासद् हुये हैं, और उन्हें सभाके वादविवाद में भाग लेनेके पूरे पूरे अधिकार दिये गये हैं। इस सभा की वजह से, और पारस्परिक संसर्ग के कारण, भारतवर्ष और उपनिवेशों में एक दूसरे के प्रति अधिकाधिक सहानुभूति के भाव उत्पन्न होंगे, और आपस में समझौता होनेमें विशेष सुविधा होगी।"

सम्राटके प्रधान मंत्री मि. लायड जार्ज ने लन्दन के गिल्ड हाल में जो वक्तृता दी थी, वह भी बड़ी आशाजनक थी। आपने कहा था:—

"जर्मनी को भारत से बड़ी निराशा हुई है। उसने समझ रक्खा था कि भारत में सर्वत्र असन्तोष, विद्रोह और अराजकता फैल जायगी अतएव ब्रिटिश गवर्नमेण्ट को इस असन्तोष, विद्रोह और अराजकता को शमन करने के लिये अपनी सारी सेना वहीं रखनी पड़ेगी। पर उसे बेतरह निराश होना पड़ा। उसने देखा कि भारतवासियों ने ब्रिटिश साम्राज्य की सहायता बड़े ही उत्साह से की। भारत में राजभक्ति का समुद्र उमड़ उठा। अतएव मैं समझता हूँ कि इन भारतवासियों को यह कहने का अधिकार है कि आप ने हमारी राजभक्ति देख ली। अब आप ऐसा काम कीजिये, जिससे हमें यह न मालूम होवे कि हम आप की अधीन जाति हैं, किन्तु यह मालूम हो कि हम आप की हिस्सेदार—आंशिक अर्थ और अधिकार भोगी जाति हैं। इस विषय का निपटारा हमें वीरतासूचक राजनीतिज्ञता से करना चाहिये। सङ्कोचभाव और अनुदारता से तो शान्ति के समय में भी काम नहीं चलता, युद्ध के समय में तो यह बातें घातक ही समझनी चाहिये। जिस अँग्रेज़ जाति ने संसार को चकित कर देनेवाले साहस और वीरत्व से युद्धसम्बन्धी मामलों का सामना किया है, उसे उसी तरह शान्तिके समय की आवश्यकताओं का भी सामना करना चाहिये।"

मि. चेम्बरलेन ने, अपनी एक स्पीच में कहा थाः–

" भारत वर्ष शेष साम्राज्य के लिये लकड़ी चीरनेवाले और पानी भरनेवाले की सी स्थितिमें रहने से सन्तुष्ट नहीं होगा और न उसे इस स्थिति से सन्तुष्ट होना ही चाहिये। भारत के सर्वाङ्गपूर्ण विकास के लिये इस बात की आवश्यकता है कि उस के उद्योग धंधों की उन्नति हो, और ज्यों ज्यों क्रमानुसार उस की कारीगरी और मूलधन की उन्नति होती जावे त्यों त्यों वह माल तैयार करने और कच्चे मालके पैदा करने में अधिकाधिक भाग लेता जावे। "

लार्ड हार्डिञ्ज ने कहा था कि भविष्य में भारतवर्ष "True friend of the Empire, not a trusty dependent." 'साम्राज्य का सच्चा मित्र न कि एक विश्वसनीय सेवक' बनेगा।

मार्क्विस आफ़ क्रू ने कहा थाः—

" मेरे विचार में इस प्रकार के सम्मेलन में भारत और उपनिवेशों के निवासियों का एकत्रित होना एक ऐसा लक्षण है, जो इस बात को सूचित करता है कि वह एक दूसरे को समझने लगे हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि ज्यों ज्यों समय बीतता जावेगा त्यों त्यों वह एक दूसरे को और भी अधिक समझने लगेंगे और इसकी वजह से वह बाधायें नष्ट हो जावेंगी जो साम्राज्य के संगठनमें जाति, सम्प्रदाय और [illegible]ी के कारण उपस्थित हैं।"

डाक्टर कीथ लिखते हैं:—

साम्राज्य की एकताके लिये, यह बात अत्यन्त आवश्यक है कि उपनिवेशों की सरकारें बड़ी गम्भीरता के साथ उन उपायोंपर विचार करें, जिनसे ब्रिटिश इण्डिया के शिक्षित निवासी बिना किसी रोक-टोक के स्वतंत्रतापूर्वक उनके यहाँ प्रवेश कर सकें। हाँ इसके साथ-साथ औपनिवेशिक सरकारें इस बातपर भी ध्यान रख सकती हैं

कि हमारी अपनी जातीय एकता जो अत्यन्त आवश्यक है, नष्ट न होने पावे । इसके सिवाय जो रोकटोक उन ब्रिटिश इण्डियन लोगोंपर, जो कानूनन् उपनिवेशों के निवासी बन गये हैं, केवल जाति और रंग की वजहसे लगाई गई हैं, वह दूर कर दी जावें । "

इन उद्गारोंको पढ़कर कौन ऐसा होगा जो प्रसन्न न हो । हमें भी यह उद्गार आशाजनक दीख पड़ते हैं, लेकिन हम अपने पाठकों को एक चेतावनी देना चाहते हैं और वह यह है कि आप लोग केवल इन आशाओं के ही भरोसे न बैठे रहिये । युद्ध के समय आस्ट्रेलिया तथा कनाडा में भारतवासियों के लिये जो आदर भाव उत्पन्न हो गये हैं वह *स्थायी नहीं कहे जा सकते । युद्ध के बाद आदरका यह तूफ़ान बैठ* जावेगा । यदि हम इसी नवीन दृष्टिकोण के भरोसे हाथपर हाथ धरे बैठे रहे और यह समझते रहे कि यह 'नवीन दृष्टिकोण' ही हमारे सब प्रश्नों को हल कर देगा, तो बड़ी भारी भूल होगी । मि. ऐंड्रूज़ लिखते हैं:-

" It is quite possible that much of this new attitude of the masses will be a war sensation only, which may die down again when the war is over. " *

अर्थात्-"यह बहुत सम्भव है कि उपनिवेशों में सर्वसाधारण इस समय भारत को जिस नवीन दृष्टि से देखते हैं वह केवल युद्धकालीन एक भावोद्वेग ही हो और युद्ध के बाद उसका अन्त हो जावे ।"

हमें ऐण्ड्रूज़ साहब का अनुमान ठीक जँचता है । इस लिये हमारा *यह कर्तव्य है कि हम आन्दोलन करना न छोड़ें ।*

यदि हम ने आन्दोलन करना छोड़ दिया तो वह ब्रिटिश राजनीतिज्ञ भी, जो हमारी सहायता करना चाहते हैं, कुछ नहीं कर सकेंगे ।

---

* रिपोर्ट का ५९ वाँ पृष्ठ देखिये ।

भारत में जागृति–सब से अधिक आशा हमें इस बात से है कि सम्पूर्ण भारत अब जागृत हो गया है, और हम भारतवासियों का ध्यान अब भारतीय प्रवास के प्रश्नों की ओर आकर्षित हो गया है। अब तक जिस ढङ्ग से कुली प्रथा जारी रही है उस ढङ्ग से भविष्य में कोई प्रथा जारी नहीं रह सकती। शिक्षित भारतवासियों की आखें खुल गई हैं और अब वह लोग औपनिवेशक सरकारों की प्रत्येक चाल को बड़े ध्यानपूर्वक समझने का प्रयत्न करने लगे हैं। सौभाग्यवश महात्मा गांधीजी आज कल यहीं हैं।

हमें पूर्ण आशा करनी चाहिये कि अब हमारे देशवासी प्रवासी भाइयों के प्रति और भी अधिक सहानुभूति प्रगट करेंगे—कोरमकोर सहानुभूति ही नहीं, बल्कि उन्हें सहायता भी देंगे।

श्रीयुत अम्बिकाप्रसादजी वाजपेयी सम्पादक 'भारतमित्र', श्रीयुत टी. के. स्वामीनाथन सम्पादक 'इण्डियन ऐमीग्राण्ट' और श्रीयुत रामानन्दजी चटर्जी सम्पादक 'माडर्न रिव्यू' इन तीनों सम्पादकों ने जिस असाधारण योग्यता, अदम्य उत्साह और अनथक परिश्रम से प्रवासी भाइयों के लिये उद्योग किया है वह भी अत्यन्त आशाजनक है। सच तो यों है कि लेखक की यह पुस्तक इन तीनों महाशयों के भारतीय प्रवाससम्बन्धी विचारों का संग्रह है। 'मर्यादा', 'प्रताप', 'अभ्युदय' और 'सद्धर्मप्रचारक' भी भारतीय प्रवास के प्रश्नों को बड़ा महत्त्व देते रहे हैं। पाठकों को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि इन पत्रों ने दक्षिण अफ्रिका के सत्याग्रह के समय प्रवासी भारतीयों की बड़ी सहायता की थी। प्रवासी भाइयों को विश्वास रखना चाहिये कि अब भारत में ऐसी कोई कुली प्रथा जारी नहीं हो सकती, जो भारत के लिये और प्रवासी भारतवासियों के [illegible] और हानिकारक हो।

इन बातों पर ध्यान देते हुये यह कहना अनुचित न होगा कि अब प्रवासी भारतीयों के अच्छे दिन आ गये हैं । उनके भाग्याकाश में अब आशा की ज्योति चमकने लगी है, भारतीय प्रवास के प्रश्नों पर से अन्धकार अब दूर होने लगा है । ज्यों ही भारत में स्वराज्य-रूपी सूर्योदय होगा, त्योंही प्रवासी भारतियों का भविष्य भी अत्यन्त उज्वल हो जावेगा । इस सूर्य की किरणें अब निकलने ही वाली हैं । स्वराज्यरूपी भगवान् भुवनभास्कर की अग्रगामी उषारूपी राष्ट्रीय जागृति के अब दर्शन होने लगे हैं । इस उषा को सादर नमस्कार करते हुये हम यही प्रार्थना करते हैं कि हे परमात्मन् ! वह दिन शीघ्रही आवे, जब कि

सुलभ सभी को होगी शिक्षा
नहीं माँगनी होगी भिक्षा
फिर सारे व्यापार हमारे अपने ही करगत होंगे ।
उपनिवेश यमपुर न रहेंगे
यहाँ न हम अपमान सहेंगे
उनके वे उद्धत अधिवासी अपने आप प्रणत होंगे ॥
परमात्मन् ऐसा कब होगा !
जब होगा बस तब सब होगा
ब्रिटिश जाति का गौरव होगा उच्च हमारा सिर होगा ।
यह इङ्गलैण्ड और यह भारत
होंगे एक भाव में परिणत
दोनों के यश का दिगन्त में पुण्य पाठ फिर फिर होगा ।
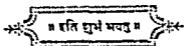
परिशिष्ट सं॰ १

उपनिवेशों में शिक्षा

उपनिवेशका नाम	कुल जनसंख्या	माल गुज़ारी	शिक्षा
फ़िजी	१५५,०००	२७९८४४ पौण्ड	यहाँ एक सरकारी और दो इमदादी स्कूल हैं। हाज़री का औसत ३६५ है । सन् १९१४ ई. में शिक्षा के लिये ३३१२ पौण्ड व्यय हुये यानी सैंकड़ा पीछे १-२ पौण्ड (१ पौण्ड ४ शिलिङ्ग) व्यय हुये ।
बारबेडोज़	१७१,०००	२१३,००० पौण्ड	यहाँ १६६ इमदादी स्कूल हैं। सन् १९१० ई. में १९२०८ पौण्ड शिक्षा के लिये व्यय हुये। यानी सैंकड़ा पीछे नौ पौण्ड व्यय हुये ।

नेवेशका नाम	कुल जनसंख्या	माल गुज़ारी	शिक्षा
ब्रिटिश गायना	२९०,०००	५६३,००० पौण्ड	यहाँ २२४ इमदादी मदर्से हैं। हाज़री का औसत २१५५५ है। मदर्सों को ८२९४ पौण्ड की सहायता दी गई यानी सैंकड़ा पीछे पाँच पौण्ड शिक्षा के लिये व्यय किये गये। यहाँ के स्कूलों में बग़ीचा लगाना और कृषि-विद्या ख़ास तौर पर पढ़ाई जाती है।
जमैका	८३१,०००	११६१,००० पौण्ड	यहाँ पर ६३८ इमदादी स्कूल हैं। हाज़री का औसत ६१६६९ है। ६०,५०३ पौण्ड की सहायता सरकार की ओर से मदर्सों को दी गई, यानी कुल मालगुज़ारी में ५½ पौण्ड फ़ी सैंकड़ा शिक्षा के लिये व्यय किये गये।
लीवार्ड्स	१२८,०००	१६४,००० पौण्ड	सरकारी और इमदादी मदर्सों में छात्रों की संख्या २४५७२ है। यहाँ पर ७ माध्यमिक शिक्षा के स्कूल हैं।

उपनिवेशका नाम	कुल जनसंख्या	माल गुज़ारी	शिक्षा
मोरीशस	३६९,०००	७२०,००० पौण्ड	सरकारी मद्र्सों की संख्या ६७ और इमदादी मद्र्सोंकी संख्या ९० है।
ट्रिनीडाड	३६८,०००	९४८,००० पौण्ड	यहाँ पर २१० इमदादी मद्र्से हैं, जिनमें छात्रों की हाज़री का औसत ४७ हज़ार है। शिक्षा के लिये ५१११९ पौण्ड यानी कुल मालगुज़ारी पर ५ पौण्ड फ़ी सैकड़ा व्यय किये गये। व्यावहारिक कृषि और पदार्थविज्ञान यह विषय लगभग सभी प्रारम्भिक पाठशालाओंमें पढ़ाये जाते हैं।

परिशिष्ट सं. २

प्रवासी भारतवासियों की संख्या

राजकीय उपनिवेश

उपनिवेशका नाम	भारतीयों की संख्या	उपनिवेशों की कुल जन संख्या
ब्रिटिश गायना	१२९३८९	२९९०४४
फ़ेडेरेटेड मलाया स्टेट्स	२१०,०००	१०३६९९९
फ़िजी	४४२२०	१४८८७१
गिलबर्ट द्वीप	३०१	३११२१
हांगकांग	३०४९	४६७७७७
जमैका	२०,०००	८३१३८२
मोरीशस	२५७६९७	३६८७९१
...यूज़ीलैण्ड	४६३	१०००,०००
...क्षिण रोडैसिया	२९१२	७७००००
...ट्स सैटिलमैण्ट्स	८२०५५	७१४९९९
...िडाड और टोबेगो	११७१००	३३३५५२
...ा	९११०	२८९३४१४
...ार		

अन्य उपनिवेशों में भारतीयों की संख्या

उपनिवेशका नाम	भारतीय लोगों की जनसंख्या
आस्ट्रेलिया	६६४४
कनेडा	—४५००
–(कोई कोई यह संख्या २५०० बतलाते हैं)–	
दक्षिणा आफ्रिका नेटाल १३३०३१ ट्रान्सवाल १००४८ केप कालोनी ६६०६ आरेंज फ्री स्टेट १०६	१४९७९१
विंदवार्ड और सेंट लूशिया	२५२३
ग्रेनेडा	२२६२
सीलोन (सिंहलद्वीप)	९०००००
ब्रिटिश पूर्व आफ्रिका	३०७१
मोमबासा	५३००
सिचेलीज्	४२३
बाहाबात	४
सिरालियोन	२४
बर बदीज्	१
उत्तर नाइंजीरिया	३०
ब्रिटिश हांडुराज	२००

सं० ३

के बन्दरगाहों से उपनिवेशों को गये—

मद्रास से गये			बम्बई और करांची से गये			कुल योग	जो उपनिवेशों से वापिस आये
ब्रिटिश उपनि.		योग					
मोरीशस	नेटाल सिचेलीज़ फ़िजी		मुम्बासा	अन्य स्थान	योग		
१४७६	५४५०	६९६६	८०३२	......	८०३२	२६५०८	७००६
२५९९	६५८५	१०१८४	४	......	४	२२४९८	१०६२३
१७८५	३३२९	५११४	१७३	६०	२३३	१५४१३	१२७५७
५१०	३९७८	४४८८	२५	......	२५	१३६६५	११६७३
६३५	८४९३	९११८	९७	८२	१३९	१५५३९	६३८१
......	९५९४	९५९४	४४८	६०	५०८	२११३५	६९४५
......	७८४२	७८४२	८८६	८२	१०३	२१००१	८१९७
......	५८३१	५८३१	३८३	११८	५०१	१५११७	६७७४
......	११३७	११३७	८०	३१	१११	११८४८	७११८
......	२९३७	२९३७	५३	११९	१७२	११६४४	६९०९
......	६५३७	६५३७	११७	३०६	५०३	१५४३९	५७८८

ब्रिटिश साम्राज्य की जनसंख्या

सम्पूर्ण ब्रिटिश साम्राज्य	४३३,५७४,००१
युनाइटेड किंगडम	४५,३६५,५९९
कनेडा	७,२०४,८३८
आस्ट्रेलिया	४,७७५,६१४
न्यूज़ीलेण्ड	१,०७०,६५२
दक्षिण अफ्रिका	५,९५८,४९९
न्यू फ़ाउण्डलेण्ड	२४१,६०७
मिश्र	११,२८७,३५९
सूदान	२,६००,०००
राजकीय उपनिवेश और रक्षित राज्य	४२,४३७,२९६
भारतवर्ष	३१२,६३२,५३७

भारत वर्ष की जनसंख्या का अधिकांश खेती से अपनी गुज़र करता है। भूमिकर अधिक होने से कितने ही किसानों को देश से बाहिर जाना पड़ता है, इसलिये यह जानना उपयोगी होगा कि विलायत में और भारत में सरकार की सम्पूर्ण आय का कितना भाग भूमिकर के रूपमें वसूल किया जाता है:—

	इङ्गलेण्ड (१९०५-१९०९)	भारत (१९०४-१९०८)
भूमि	.५ फ़ीसदी	२८.५ फ़ीसदी
आबकारी	२५.९ ,,	१२ ,,
चुंगी	२२.८ ,,	९.३ ,,
आमदनी पर टेक्स	२२.८ ,,	२.९ ,,

उपनिवेशों में

१५ वर्ष से ऊपर के भारतीयों की संख्या

नाम उपनिवेश	कुल संख्या	स्त्री	पुरुष
ब्रिटिश गायना	८७८२१	३४७३९	५३०८२
फिजी	५८८५७	८७८१	२००६२
जमैका	११९१२	४७७५	७१३७
नेटाल: गोरख	१४१९५४	२८३६८	११९६९६
मोरिशस	१५१८२९	७१८७३	८९९६६
ट्रिनिडाड और टोबेगो	४९१४८	१७९५९	३११८९

परिशिष्ट सं० ५

ग्रेट ब्रिटेन में भारतवासी

६० वर्ष से अधिक व्यतीत हुये जब कि दादाभाई नौरोजी तथा कामा एण्ड कम्पनी के कितने ही आदमी व्यापार के लिये विलायत को गये थे। अब भी कितने ही पारसी व्यापारी विलायत में निवास करते हैं। थोड़े से भारतवासी विलायत में बेरिस्टरी और डाक्टरी भी करते हैं। युद्ध के पहिले कितने ही धनाढ्य भारतीय सैर करने के लिये भी विलायत जाया करते थे। आई. ऐम. ऐस. की परीक्षा करके कितने ही भारतीय विलायत में बस भी गये हैं। विलायत भारतीयों में अधिकांश विद्यार्थी हैं। पिछले पचीस वर्ष में की संख्या पहिले की अपेक्षा दस या बारह गुनी हो गई है।

नाम स्थान	भारतीय विद्यार्थियों की संख्या
मिडिल टैम्पिल	१४५
लिंकन्स इन	१००
ग्रेज़ इन	७६
इनर टैम्पिल	५८
लन्दन	६००
ऐडिनवरा	१६०
कैम्ब्रिज	१००
आक्सफ़ोर्ड	७०
ग्लासगो	६२
डवलिन	५०
मैनचैस्टर	१५

इसके सिवाय बहुत से भारतीय छात्र बर्मिङ्ग हैम, लीड्स, शैफ़ील्ड, लिवरपूल, और दूसरी जगहों में रहते हैं। सन् १९०९ ई. में लार्ड मोरले ने 'इण्डिया आफ़िस कमेटी' की जाँच के बाद एक Information Bureau स्थापित किया था। मिस्टर टी डवल्यू आर्नोल्ड साहब इसके प्रधान बनाये गये थे। इस विभाग से लाभ बहुत कम होता है और विलायत के भारतीय विद्यार्थी इसे पुलिस के 'थाने' के नाम से पुकारते हैं। अनेक भारतीय छात्र 'किचनर की सेना' में सम्मिलित हो गये थे। महात्मा गान्धी जी ने बहुत से हिन्दुस्तानी विद्यार्थियों को उत्साहित करके घायलों की मरहमपट्टी करने के लिये 'फ़ील्ड ऐम्बूलैंस कोर्स' में सम्मिलित करवाया था। कर्नल आर. जे. बेकर साहब इसके मुखिया नियुक्त किये गये थे। इसमें कार्य्य करनेवाले छात्रों की संख्या २७२ थी। 'आफ़ीसर्स ट्रेनिङ्ग कोर्स' में भी सम्मिलित होने के लिये भारतीय छात्रों ने सरकार से प्रार्थना की थी, लेकिन इसका जवाब यह मिला कि "यह एक ऐसा प्रश्न है, जिस पर युद्ध के बाद ख्याल किया जावेगा।"

परिशिष्ट सं० ६

विदेशों में प्रवासी भारतीयों द्वारा संचालित पत्र

दक्षिण आफ्रिकाः—सन् १९०३ ई. में महात्मा गान्धी के प्रयत्न से *'इण्डियन ओपीनियन'* नामक समाचार पत्र जारी हुआ यह पहिले पहिले अँग्रेज़ी, गुजराती, हिन्दी और तैमिल में छपता था। श्रीयुत जयरामसिंह जी प्रभृति हिन्दी प्रेमी इसे विशेष सहायता देते थे। थोड़े दिनों के बाद 'हिन्दी' और 'तैमिल' के अंश निकाल दिये गये। सन् १९१४ ई. के दिसम्बर में इस पत्र का 'स्वर्णाङ्क' *निकला, जिसमें अँग्रेज़ी, गुजराती और तैमिल को स्थान दिया गया; लेकिन बिचारी हिन्दी को फटकार बता दी गई।* यह पत्र अब तक चल रहा है। दाक्षिण आफ्रिका में इसने जो कार्य किया है, वह अत्यन्त प्रशंसनीय है।

मि. अय्यर ने तैमिल भाषा का एक पत्र निकाला। यह दैनिक पत्र है।

मि. दादा ओसमान ने 'क्रेसेण्ट' नामक मासिक और मि. ऐम. सी. आंगलिया ने 'इण्डियन व्यू' नामक साप्ताहिक पत्र गुजराती

में निकाला है। इसके 'ऋण्यङ्क' बहुत ही अच्छे निकले हैं। श्रीयुत भल्लाजी, श्रीयुत भवानीदयालजी और श्रीयुत ऐस. आर. पत्तर बेरिस्टर. ऐट. ला. के इस देशभक्तिपूर्ण कार्य्य की जितनी प्रशंसा की जावे थोड़ी है। आर्थिक हानि सहते हुये भी भल्लाजी इस पत्र को बराबर चला रहे हैं। उनकी इस निस्वार्थ देश सेवा को परमात्मा सफल करे यही हमारी प्रार्थना है।

श्रीयुत. पी. सुब्रह्मण्य. अय्यर बड़ी योग्यतापूर्वक 'अफ्रिकन क्रोनीकाल' नामक पत्र दरबन से निकाल रहे हैं।

श्रीयुत भवानीदयालजीने 'हिन्दी' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकालने के लिये विज्ञापन दिया था। आशा है यह पत्र भी बहुत अच्छा निकलेगा।

फिजीः—'इण्डियन सैटलर' नामक मासिक पत्र अँग्रेज़ी, हिन्दी और उर्दू में निकलता है। इसके हिन्दी विभाग के सम्पादक स्वामी राममनोहरानन्द सरस्वती और अँग्रेज़ी विभाग के सम्पादक डाक्टर मणिलाल हैं।

मोरीशसः—यहां पर हिन्दी के तीन पत्रों का जन्म हुआ था; 'आर्य्य पत्रिका', 'ओरियंटल गजट' और 'हिन्दुस्तानी'। सम्भवतः पिछले दो अब भी प्रकाशित होते हैं। 'हिन्दुस्तानी' पत्र के सम्पादक डाक्टर मणिलाल भी रह चुके हैं।

अमेरीकाः—नालन्द क्लब बर्कले (केलीफ़ोर्निया) से 'हिन्दुस्तानी स्टूडेण्ट' नामक मासिक पत्र निकलता है। यह बड़ी योग्यतापूर्वक सम्पादित होता है। प्रवासी भारतीय छात्रों के लिये यह अत्यन्त उपयोगी कार्य्य कर रहा है।

कनाडाः—यहाँ से 'कनाडा एण्ड इण्डिया' नामक पत्र निकलता है।

लन्दनः—ठाकुर श्री जसपतसिंह जी सिसोदिया 'राजपूत हैराल्ड' पत्र बड़ी योग्यतापूर्वक निकाल रहे हैं।

परिशिष्ट सं० ७

दक्षिण अफ्रिका में सभा और समितियाँ

दक्षिण अफ्रिका में बहुत सी सभायें स्थापित हो गई हैं। इ
से कितनी ही तो थोड़ा बहुत काम करती हैं, लेकिन अधिक
नाम मात्र की सभायें हैं।

मारित्सबर्ग, फ्रेअर स्टेट, लेडी स्मिथ, पोर्ट ऐलीजबेथ और जोहा
सबर्ग में वेदधर्म सभायें हैं। यह प्रो. परमानन्दजी और स्वामी
शंकरानन्दजी की स्थापित की हुई हैं। यह सभायें आर्य्य समाज का
प्रचार करती हैं।

डरबन का 'ब्राह्मण मंडल' और पोर्ट ऐलीजबेथ की 'सत्सङ्ग
सनातन धर्म सभा' यह दोनों सनातन धर्मका प्रचार करती हैं। लेडी
स्मिथ में भी एक सनातन धर्मसभा है।

श्रीयुत भवानीदयाल जी की स्थापित की हुई 'हिन्दी प्रचारिणी
सभा' और 'इंडियन यंगमैन ऐसोसियेशन' जर्मिस्टन में अच्छा काम —
रही हैं। दर्बन में 'एक क्षत्रिय वंश सुधार सभा' है। ओवर पं
फ्रेअर स्टेट, स्प्रिङ्ग फील्ड और रायकोपिस में 'रामायण सभायें' हैं
मुसलमानों की भी कितनी ही सभायें हैं; उदाहरणार्थ 'हमीदिया
इसलामिक सुसाइटी', इत्यादि।

इनके अतिरिक्त तैमिल 'वेनी फिट सुसाइटी,' 'न्यू क्रीअर सभा' और
गुजराती सभा' इत्यादि अनेक सभायें हैं।

'हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के भी दो अधिवेशन बड़ी सफलतापूर्वक
चुके हैं।

आश्रम

फिनिक्स गान्धी आश्रम:—इसके पास सौ बीघा ज़मीन है और
ही घर हैं। इण्टर नेशनेल प्रेस भी यहीं है। यहीं से 'इण्डियन

ओपीनियन ' प्रकाशित होता है। यहाँ एक बड़ा पुस्तकालय है; खेती बाड़ी भी यहाँ होती है। इसकी लागत लगभग एक लाख रुपये है। इसकी स्थापना महात्मा गान्धी ने की थी।

मारीत्सवर्ग वैदिक आश्रमः—यह आश्रम योर्करोड में है। स्वामी शङ्करानन्दजी ने इसे स्थापित किया था। यहाँ एक छोटा सा पुस्तकालय भी है।

हिन्दी आश्रमः—इसके संस्थापक श्रीयुत भवानीदयालजी हैं। यहाँ एक हिन्दी विद्यालय और हिन्दी पुस्तकालय है; यहीं पर एक यंत्रालय की स्थापना की जावेगी और हिन्दी नामक पत्र निकाला जावेगा।

परिशिष्ट सं० ८

कुछ फुटकर बातें

बिहार और उड़ीसा प्रान्त के छोटे लाट माननीय सर. ई. ए. गेट साहब ने सन् १९११ ई. की मनुष्य गणना की रिपोर्ट में बहुत सी बातें ऐसी लिखी हैं, जो भारतीयों के जानने योग्य हैं:—

किस प्रान्त से कितने आदमियों ने प्रवास किया

मद्रास प्रान्त	६९३ हज़ार
बङ्गाल ,,	३२ ,,
बम्बई ,,	२० ,,
संयुक्त ,,	२९ ,,
बिहार और उड़ीसा	१५ ,,
पंजाब	१३ ,,
मैसूर	८ ,,

शेष मनुष्य अपनी जन्मभूमि का पता ठिकाना नहीं दे सके। इससे बोध होता है कि उन लोगों के पूर्वजों को स्वदेश त्यागे बहुत दिन हो गये हैं

हिन्दू लोगों की संख्या ८० फ़ीसदी और मुसलमानों की संख्या १० फ़ीसदी है।

ट्रिनीडाड में ३५ फ़ीसदी भारतीय हैं, ब्रिटिश गायना में ४३ फ़ीसदी, सुरीनाम में ३२ फ़ीसदी, जमैका में २ फ़ीसदी और फ़िजी में ३६ फ़ीसदी भारतीय हैं।

भारत में विदेशियों की संख्या

सन् १८९१ ई.	५२५५२१
सन् १९०१ ई.	६२७४३८
सन् १९११ ई.	६५०५६२

	सन् १९११		सन् १९०१
नेपाल	२८०२४८		२४३०३७
अफ़ग़ानिस्तान	९१६४०		११२५०२
ब्रिटिश आइल्स	१२२९१९		९६६५३
{ मर्द—	१०३४२५	{ मर्द—	८१९९०
{ औरत—	१९४९४	{ औरत—	१४६६३
जर्मनी	१८६०		१६९०
फ्रान्स	१४७८		१३५७
यूरोप के अन्य देश	५७११		४८८३
अफ्रिका	१०२७०		८२६३
अमेरिका	२७६०		२०६९
आस्ट्रेलिया	१२०७		८४१

परिशिष्ट सं० ९

उपनिवेशों के जो निवासी भारतवर्ष में उच्च पदों पर काम करते हैं:—

इण्डियन सिविल सर्विस १४

नोटः—इन चौदह आदमियों में तीन दक्षिण अफ्रिका के हैं, एक कनाड़ा का, पाँच आस्ट्रेलिया के और पाँच न्यूज़ीलेण्डके हैं। प्रान्तीय सिविल सर्विस में भी एक आस्ट्रेलियन है।

पुलिस विभाग	७	फ़ोरेस्टडिपार्टमेण्ट	४
पबलिक कार्य्यविभाग	५	चुंगी विभाग	२
कृषिविभाग	१	शिक्षाविभाग	६

नोटः—शिक्षा विभाग के इन ६ आदमियों में एक कनाडा का है, दो आस्ट्रेलिया के, और दो न्यूज़ीलेण्ड के हैं।

इण्डियन मेडीकल सर्विस १७

उपनिवेशों के निवासी, जो बड़ी बड़ी सरकारी नौकरी करते हैं, कुल ६७ हैं; जिनमें १० दक्षिण आफ्रिका के हैं, १६ कनाडा के हैं, २९ आस्ट्रेलिया के हैं और १२ न्यूज़ीलेण्ड के हैं।

परिशिष्ट सं० १०

सन् १८९१ ई. से सन् १९१२ ई.

तक कितने भारतवासी ट्रिनीडाड, ब्रिटिश गायना, डच गायना, जमैका और फ़िजी को गये, और कितने वहाँ से लौटे:—

नाम उपनिवेश	कितने गये	कितने लौटे
ट्रिनीडाड	५१९९१	१६२०८
ब्रिटिश गायना	६९५२१	३२७८१
डच गायना (१८७३-१९१३)	३१२०२	८८२३
जमैका	१२६५२	३४५०
फ़िजी	३३४८१	११५५३

उपसंहार

गुण गौरव ज्ञान गँवा करके, सुख शान्ति स्वतंत्रता खो चुके हैं।
धनहीन हैं दीन दुखी हैं महा, अपने भले भाग्य को रो चुके हैं।
बनके कुली काले, कुलीनता की, जग में लुटिया ही डुबो चुके हैं।
इससे बुरे होंगे प्रभो अब क्या, जितना बुरे होना था हो चुके हैं।

श्रीयुत 'सनेही'—

हा सैंकड़े पीछे यहां दस भी सुरक्षित जन नहीं।
हाँ चाह कुलियों की कहीं हो तो मिलेंगे सब कहीं!
हतभाग्य भारत, जो कभी गुरुभाव से पूजित रही।
करती भुवन में भृत्यता सन्तान अब तेरी वही।

श्रीयुत 'मैथिली शरणजी गुप्त'—

प्रिय पाठक गण,

आपने कष्ट सहन करके इस पुस्तक को आदि से अन्त तक पढ़ा है; आइये अब दो चार अन्तिम बातें और सुन लीजिये। आपने 'प्राचीन काल में भारतवासियों का प्रवास' शीर्षक अध्याय में अपने प्राचीन उपनिवेशों का हाल पढ़ा है। उनका वृत्तान्त जान कर हमें अपने प्राचीन गौरव का कुछ बोध होता है और अपनी वर्तमान स्थिति पर चार आँसू बहाने पड़ते हैं। यह वही भारतभूमि है, जिसके विषय में 'विष्णुपुराण' में लिखा है:—

गायन्ति देवाः किलगीतकानि।
धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गस्य च हेतुभूते।
भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

उसी भारत की इस समय संसार में क्या स्थिति है, यह भी आप ने समझ लिया है। 'आधुनिक काल में भारतीय प्रवास' शीर्षक अध्याय

(१) जब तक भारतवर्ष को साम्राज्य में उच्च पद नहीं मिलेगा तब तक भारतीय प्रवास के प्रश्न हल नहीं हो सकते ।

(२) जब तक भारतवासियों को देश में स्वराज्य नहीं मिलेगा तब तक साम्राज्य में उनका पद उच्च नहीं हो सकता और न प्रवासी हिन्दुस्तानियों की दुर्दशापूर्ण स्थिति दूर हो सकती है।

(३) षड्यंत्र और खून खच्चर से स्वराज्य नहीं मिल सकता स्वराज्य के लिये निर्भयता, अविश्रान्त परिश्रम, राष्ट्रीय एकता, आत्मावलम्बन, स्वार्थत्याग और अनथक आन्दोलन की आवश्यकता है ।

(४) जब तक हम में उपर्युक्त गुण नहीं आवेंगे तब तक हम राजनैतिक स्थिति ठीक नहीं हो सकती । 'सत्याग्रह' में उपर्युक्त सभी गुणों का समावेश होता है, इसलिये सत्याग्रही बनना ही हमारा सब से पहिला कर्तव्य है।

अब प्रश्न यह होता है कि हममें से कितने आदमी सत्याग्रही बनने को तैयार हैं ? हममें से ऐसे कितने हैं, जो अपनी सांसारिक उन्नति को लात मारकर देशसेवा के कण्टकाकीर्ण पथ पर चलने को उद्यत हों ? हम में से कौन कौन ऐसे हैं जो देशसेवारूपी यज्ञ में अपने स्वार्थ का बलिदान कर सकते हैं ?

हम में से कौन कौन ऐसे हैं जो दृढ़प्रतिज्ञ होकर "अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा । न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः" इस कथन को स्मरण करते हुये, अपने कार्य्य के बीच में आई हुई बाधाओं की अवहेलना कर सकते हैं ?

खेद के साथ कहना पड़ता है कि हम में 'आरम्भशूरों' की अधिकता है । हम लोगों में से–भारतीय युवकों में से–कितने ही ऐसे

हैं, जो अपने विद्यार्थी जीवन में तो बढ़ बढ़ कर बातें मारते रहते हैं कि हम विद्या पढ़कर देश की यह सेवा करेंगे, वह सेवा करेंगे, लेकिन विद्या पढ़ने के बाद उनका सारा उत्साह काफूर हो जाता है। बी. ए. पास करके यदि हम में से कोई तहसीलदार या नायब तहसीलदार हो जाता है तो फिर वह देशभक्ति को सदा के लिये नमस्कार कर देता है। डिपुटी कलक्टरों के लिये तो देशभक्ति ऐसी भयानक वस्तु है जैसी छोटे छोटे बच्चों के लिये 'हौआ'।

हम लोग स्वराज्य चाहते हैं, लेकिन क्या स्वराज्य बिना 'आत्म-त्याग' के मिल सकता है? यदि बिना 'आत्मत्याग' किये स्वराज्य मिल भी जावे तो वह कौड़ी काम का नहीं हो सकता। जब तक हम संसार को यह नहीं दिखला देंगे कि हमारे हृदय में अपने भाइयों के लिये प्रेम और सहानुभूति है, और उनके दुःखमोचनार्थ हम कष्ट भी सहन कर सकते हैं, तब तक हम 'पराधीन' ही बने रहेंगे।

जो आदमी आज आरकाटी द्वारा अपनी देशभगिनी को बहकाये जाते देखकर भी चुपचाप रह जाता है और उसके छुड़ाने का कुछ भी प्रयत्न नहीं करता, यदि वही आदमी कल 'प्लेटफार्म' पर खड़ा हुआ 'होमरूल और स्वराज्य' के गाने गावे और चिल्ला चिल्ला कर कहे—

"ऐ मेरी जान भारत, तेरे लिये यह सर हो
तेरे लिये ही जर हो, तेरे लिये जिगर हो"

तो उसके इस कार्य्य का क्या कोई प्रभाव पड़ सकता है? हमारी समझ में उसका यह कोरमकोर आडम्बर मात्र समझना चाहिये। ८० वर्ष तक शर्तबन्दी की गुलामी जारी रही और दुष्ट आरकाटी बराबर हमारे देश भाइयों और देश भगिनियों को हमारी आँखों के सामने बहका बहकाकर जहन्नुम (नरक) को भेजते रहे, पर हम नवयुवकों में से कितनों ने उनके बचाने का प्रयत्न किया!

बात असल में यह है कि हम लोगों में से अधिकां
करनेवाले हैं। डर तो हमारे हृदय में इतना समा गया है
कायर बन गये हैं। पुलिस को हम हौआ समझते हैं और
का आदमी हमारे लिये यमराज के दूत के समान है।
जी ने थाने में बुलाकर एक आध डाँट बतलाई तो फिर
पुश्त तक की देशभक्ति रफू चक्कर हो जाती है। जब
के विरुद्ध कोई राजद्रोह का कार्य्य नहीं करते, तो फिर ह
बात का होना चाहिये ?

हमारे कितने ही देशवासी ऐसे भी हैं, जो 'कुली प्रथा'
आन्दोलन करने के काम को भी राजद्रोह समझते थे! हम
हैं कि सरकार की नीति भी इस विषय में बड़ी डावाँडोल
युक्तप्रदेश के एक हाईस्कूल के हैड मास्टर पर इस के लिये
पड़ी थी कि उनके स्कूल के एक परीक्षापत्र में 'फ़िजी उ
इत्यादि के विषय में एक प्रश्न किया गया था!! नागपूर के 'म
नामक पत्र से कुली प्रथा के विषय में लेख लिखने की बजह से
नत माँगना, और 'प्रताप' कार्य्यालय की छपी हुई "कुली प्र
नामक पुस्तक का ज़ब्त करना, तथा कुली प्रथा के विरुद्ध आन्दो
करनेवालों पर कड़ी निगाह रखना यह बातें प्रगट करती हैं कि स
कार ने भी इस विषय में बुद्धिमत्ता से काम नहीं लिया। किसी किस
स्टेट ने भी इस विषय में सरकार की बराबरी की है। अभी भरतपु
स्टेट में शंकरलाल नामक एक विद्यार्थी स्कूल से इसलिये निकाल
दिया गया कि उसने तीन वर्ष पहिले कुली प्रथा के विरुद्ध विज्ञापन
छपवाकर बंटवाये थे।

हमसे कभी कभी सरकार कहती है कि

इस आक्षेप का उत्तर श्रीमती ऐनी बिसण्ट ने लखनऊ की कांग्रेस में बड़ी योग्यता के साथ दिया था। श्रीमती ने कहा था:—

"हम से कहा जाता है कि हम उपनिवेशों के प्रति द्वेषभाव न फैलावें। किन्तु मैं समझती हूँ कि इस बात का कहनेवाला ग़लत नतीजे से चलता है। क्या हमने ही औपनिवेशकों को भारत में आने से इस लिये रोक रक्खा है, क्यों कि वह उस भाषा को जिसे वह बिल्कुल नहीं जानते, बोल या लिख नहीं सकते ? इस देश ने अथवा आस्ट्रेलिया–किसने–ऐसा क़ानून पास किया था ? क्या हमने कहा है कि उत्तरीय अमेरीका या कनाडानिवासी भारत में उस समय तक दाखिल न हो सकेगा, जब तक वह सीधा इस देश में न आये—खासकर ऐसी अवस्था में जब कि कोई भी ऐसा जहाज़ नहीं जो बिना एक बन्दरगाह से दूसरे बन्दरगाह पर ठहरे यहाँ तक आ जा सके ? अथवा कनाडा ने भारतीयों के विरुद्ध ऐसे क़ानून की रचना की है ? क्या हमने कहा है कि कोई उपनिवेशवासी यहाँ अपने स्त्री और बालबच्चों से मिलने न पावेगा ? अथवा ब्रिटिश कोलम्बिया ने सिक्खों के सम्बन्ध में ऐसी बातें कही हैं ? क्या हमने ही बेरङ्ग लोगों पर हीनता का दोष लगाते हुये कहा है कि उनको वाणिज्य के लिये लैसंस लेना होगा, उन्हें प्रत्येक मर्द और औरतके पीछे तीन पौण्ड का कर देना पड़ेगा और यह कि उनके वैवाहिक सम्बन्ध ठीक नहीं हैं ? या दक्षिण आफ्रिका ने हमारे हिन्दुस्तानी भाइयों के साथ ऐसा किया है ? द्वेष की यह बात क्या है ? द्वेष भाव उपनिवेशों की ओर से पैदा किया गया है, भारत की ओर से नहीं। यह उपदेश उपनिवेशों को दिया जाना चाहिये, न कि भारत को।"

अस्तु, हमें निर्भय होकर अपने प्रवासी भाइयों के उद्धारार्थ प्रयत्न करना चाहिये। बड़े बड़े कवियों के आदर्श पद्यों को केवल याद कर

लेने से कुछ लाभ नहीं हो सकता, जब तक कि हम उनके अनुसार काम न करें। हम में से एक गाता है:—

"बुलबुल अगर हैं हम तो
यह है चमन हमारा
प्यारा वतन हमारा, प्यारा वतन हमारा।"

दूसरा कहता है:—

"पसे मुर्दन भी होगा, हस्र में ये ही बयाँ मेरा
मैं इस भारत की मिट्टी हूँ, है यह हिन्दोस्ताँ मेरा।"

तीसरा फ़र्माता है:—

"आत्मा हूँ मैं, बदल डालूँगा फौरन चोला
क्या बिगाड़ेगी अगर मेरी क़ज़ा आयेगी
ख़ून रोयेगी शमाँ पर मेरे मरने पै शफ़क़
ग़म मनाने के लिये काली घटा आयेगी"

वास्तव में यह पद्य बड़े उत्साहजनक हैं, लेकिन बात तभी है जब हम लोग जो इनका बार बार प्रयोग करते हैं, मौका पड़ने पर 'टाँय टाँय फ़िस ' न कर दें, बल्कि दृढ़तापूर्वक इन्हीं के अनुसार कार्य्य कर दिखावें।

एक बात और भी है, वह यह कि हम लोग अपनी शक्ति को भूले हुये हैं; हम नहीं जानते कि हम में क्या क्या सामर्थ्य है। हम लोगों का ऐसा विश्वास हो गया है कि हम कुछ नहीं कर सकते। वास्तव में यह बड़े खेद की बात है। मानवेल शार्प साहब ने जो एक मामूली क्लार्क थे विलायत में दासत्व प्रथा को उठा दिया तो फिर क्या हम लोग अपने देश के लिये कुछ भी नहीं कर सकते? बचपन में मानवेल शार्प साहब किसी जुलाहे के यहाँ काम करते थे, उसके पीछे आर्डिनेन्स आफ़िस में किरानी के पद पर नियुक्त हुये। जिस समय मानवेल शार्प साहब ने काम किया था उस समय अंग्रेज़ी

की स्वतंत्रता नाम मात्र थी। उन दिनों मनुष्य पकड़ पकड़ कर वेस्ट इण्डीज़ और दूसरे टापुओं को भेजे जाते थे। लन्दन और लिवरपूल के समाचार पत्रों में दासों के क्रय विक्रय के विज्ञापन छपते थे, तथा जो हबशी अपने स्वामी के अत्याचार से घबड़ाकर भाग जाता था, उसे पकड़ने के लिये विज्ञापन दिये जाते थे कि जो कोई उसे पकड़ेगा उसे इतने रुपये इनाम मिलेंगे। तात्पर्य यह कि दासों के क्रय विक्रय का व्यापार भलीभाँति से प्रचलित था। उसमें कोई रोकटोक न थी। ऐसी अवस्था में ग्रानवेल शार्प साहब इस घृणित प्रथा को जड़ से खोद डालने के लिये तन-मन-धन से लग गये थे। यद्यपि इनके हाथ में कोई अधिकार नहीं था, तो भी अपने साहस और पुरुषार्थ की वजह से वह सफलमनोरथ हुये। जहाँ कहीं आप सुन पाते कि कोई हबशी पकड़ा गया है तो आप वहाँ जाते और उसे छुड़ा लाते। समरसेट नामक एक हबशी के मुकद्दमे में यह बात निश्चित हो गई कि अब कोई भी क्रीतदास न बनाया जावे। इसका वृत्तान्त यों है कि एक बार एक व्यवसायी ने समरसेट नामक हबशी को इङ्गलैण्ड मेंही पकड़ लिया था। वह बहुत ही दुर्बल और बलहीन था। इस लिये व्यवसायी ने उसे निकम्मा जानकर छोड़ दिया। थोड़े दिनों में ही जब कि वह हबशी हृष्टपुष्ट हो गया तब व्यवसायी को फिर लालच ने घेरा और वह फिर उसके पकड़ने की चिन्ता में लगा। इस समाचार को सुनकर शार्प साहब अपनी रीति के अनुसार उस हबशी के पक्षपाती हो गये और न्यायालय में अभियोग उपस्थित किया। अभियोग में लार्ड मैन्सफील्ड ने यह फ़ैसला दिया कि इङ्गलैण्ड में कोई भी क्रीतदास नहीं रह सकता। बस इस पर समरसेट छोड़ दिया गया और इस न्याय की सहायता से शार्प साहब ने इङ्गलैण्ड में दासत्व प्रथा की जड़ को खोद फेंका।

भीमसेन ने अपने भाई महाराज युधिष्ठिर के लिये अनेक द्वीपोंको
को जीता था, और उनसे बहुत सा कर वसूल किया था ।

" स सर्वान् म्लेच्छनृपतीन् सागरद्वीपवासिनः
करमाहारयामास रत्नानि विविधानि च "

महाराज विक्रम के विषय में एक कवि ने लिखा है:—

" नौकालक्षचतुष्टयं विजयिनो यस्य प्रयाणेऽभवत्
सोयं विक्रमभूपतिर्विजयते नान्यो धरित्रीतले "

अर्थात्—" जिस महाराज विक्रम के दिग्विजय के समय चार लाख जहाज़ थे उस विक्रमादित्य की हमेशा विजय हो ।"

हमारा भारतवर्ष कोई साधारण देश नहीं है । आकार में यह ७ जर्मनी, या १० जापान, या १५ ग्रेटब्रिटेन के बराबर है । हमारी आबादी गत मर्दुम शुमारी में ३१ करोड़ ५१ लाख ५६ हज़ार २ सौ थी । हमारी संख्या रूस के निकाल देने पर समूचे यूरोप के बराब है । अफ्रिका महाद्वीप की जनसंख्या से हम तिगुने हैं, उत्तरी अ अधिक है । संयुक्तराज्य अमेरिका से हम उसके दूने रहते हैं । दक्षिणी अमेरिका के मिला लेने पर भी हम उसके

हमारा कर्तव्य है कि अब हम अपनी शक्ति और अपने देश के महत्व को समझें । प्रवासी भारतीयों की स्थिति को सुधारने के लिये यह भी आवश्यक है कि देश से कुछ निःस्वार्थ नेता कभी कभी फ़िजी, ट्रिनी डाड, जमैका इत्यादि में जाया करें । मि. गोखले के दक्षिण अफ्रि जाने से वहाँ के प्रवासी भारतीयों का बड़ा उपकार हुआ था । धर्मि नेताओं को भी चाहिये कि कभी कभी इन उपनिवेशों की यात्रा क सनातन धर्म महामण्डल के नेता श्रीयुत पं. दीनबन्धु जी (म के प्रसिद्ध नेता श्रीयुत स्वामी श्रद्धानन्द जी (मा जी) अगर कृपा करके जाया और फ़िजी को दो ए

पधारें तो बड़ी अच्छी बात हो । महाभारत के अनुशासन पर्व में लिखा है:—

" शका यवनकाम्बोजास्तातः क्षत्रियजातयः ।
वृषलत्वं परिगता ब्राह्मणानामदर्शनात् "

अर्थात्-" शक लोग, यूनान और कम्बोडिया के निवासी सब क्षत्रिय जातियों के हैं, लेकिन यह ब्राह्मणों के दर्शन न करनेसे जातिच्युत हो गये हैं । " प्रवासी भारतियों को सच्चे ब्राह्मणों के दर्शनों की बड़ी आवश्यकता है । निरक्षर भट्टाचार्य्यों के दर्शन तो उन्हें बहुत होते हैं, लेकिन राजऋषि गोखले और माननीय पं. मदन मोहनजी मालवीय जैसे ब्राह्मणों के दर्शन कभी नहीं होते ।

जो लोग प्रवासी भारतीयों का उद्धार करने के लिये उपनिवेशों को जाना चाहें, उनमें उत्कट देशप्रेम और सच्चा आत्माभिमान होना चाहिये । जिसमें यह दोनों गुण नहीं हैं वह पशु से भी बदतर है; क्योंकि कई जातियों के पशुओं में भी यह दोनों गुण पाये जाते हैं। उक्त दोनों गुणों से रहित क्षुद्र भैरव वाहनों को उपनिवेशों को जाने की आवश्यकता नहीं है । देखिये हमारे शासकों में कितना जातिअभिमान है । साधारण छोटे से यूरोपियन राष्ट्र का व्यक्ति भी जातीय अपमान सहन नहीं कर सकता । वस्तुतः यदि यूरोपियनों में जातीय अभिमान न होता तो पृथ्वी भर में वह इस प्रकार निःशङ्क चित्तसे नहीं घूम फिर सकते । अँग्रेज का एक छोटा बच्चा चाहे जहाँ हो, वह यह जानकर निश्चिन्त रहता है कि, हमारी ओर जो आँख उठाकर भी देखेगा उसे ब्रिटानियों के सामने जवाब देना पड़ेगा । एक अङ्गरेज कविने कहा है:—

This is the faith that the white man holds,
When he builds his home afar,
Freedom for ourselves, freedom for our sons,
And failing freedom, war !

प्रवासी भारतीयों के लिये यह बात आशाजनक है कि अब भारतवर्ष उनके कष्टों को सुनने और दूर करने के लिये सर्वदा उद्यत है। राजऋषि गोखले की तरह अब माननीय पंडित मदन मोहन जी मालवीय इत्यादि कितने ही भारतीय नेता प्रवासी भारतीयों के सच्चे शुभचिन्तक और सहायक बन गये हैं। महात्मा गान्धी और मि. सी॰ ऐफ़. ऐण्डूज़ के प्रताप से हज़ारों ही हिन्दुस्तानी अब विदेशों में गये हुये भाइयों से प्रेम करने लगे हैं। श्रीयुत पं. आम्बिका प्रसाद जी वाजपेयी, श्रीयुत रामानन्द जी चटर्जी ('माडर्न रिव्यू' के सम्पादक) और श्रीयुत टी. के. स्वामीनाथन इन महानुभावों ने प्रवासी भारतवासियों के लिये अत्यन्त प्रशंसनीय कार्य्य किये हैं। प्रवासी भारतीय इन के जन्मभर ऋणी रहेंगे। श्रीयुत पं. तोताराम सनाढ्य और भारत सेवक समिति के उद्योगी सभासद पं. वेङ्कटेशनारायण तिवारी ने भी जगह जागह 'कुली प्रथा' के बारे में व्याख्यान देकर प्रवासी भारतीयों के प्रति सर्व साधारणमें अच्छी सहानुभूति उत्पन्न करदी थी। मारवाड़ी ऐसोसियेशन (कलकत्ता) ने दो बार सरकार की सेवा में मैमोरियल भेजकर प्रवासी भाइयों का उपकार किया था। संयुक्त प्रान्त की काँग्रेस कमेटी भी इस बारे में कुछ न कुछ कार्य बराबर करती ही रही है। दो तीन बार वह इस विषय में सरकार की सेवा में प्रार्थनापत्र भेज चुकी है।

श्रीयुत डाक्टर रामविहारी टंडन (बरेली) और श्रीयुत नन्दनसिंह गुप्त (मथुरा) ने इस विषय में जो निस्स्वार्थ सेवा की है, वह स्मरणीय और आदरणीय है। स्वामी सत्यदेवजी के विज्ञापनों ने भी कितने ही ग्रामीण लोगों को आरकाटियों के फन्दे में फँसने से बचाया था। देश के अनेक समाचारपत्र और मासिक पत्र अब प्रवासी भारतीयों के विषय में लेख लिखने लगे हैं। मराठी के 'मरा-

राष्ट्र' (नागपुर) और 'केसरी' (पूना), और बंगाली के 'प्रवासी' और 'भारतवर्ष' में प्रवासी भारतवासियों के विषय में लेख निकला करते हैं।

हिन्दी पत्रों ने तो 'भारतीय प्रवास' के विषय को खूब अपनाया है। 'प्रताप' कभी भी 'प्रवासी भारतवासियों' को नहीं भूलता; इस विषय के 'प्रताप' जैसे ज़ोरदार लेख हमने बहुत कम पत्रों में देखे हैं। 'कुली प्रथा' नामक पुस्तक छाप कर 'प्रताप' ने अपनी सच्ची देशभक्ति और प्रवासी भारतीयों के प्रति प्रेम का परिचय दिया था। ऐण्डूज़ साहब की अँग्रेज़ी रिपोर्ट का हिन्दी अनुवाद सबसे पहिले 'सद्धर्म प्रचारक' में छपा था। इस पत्र ने 'सत्याग्रह' के संग्राम में बहुत अच्छी आर्थिक सहायता दी थी। 'अभ्युदय' ने भी प्रवासी भारतीयों के अभ्युदय के लिये अच्छा काम किया है।

हम आशा करते हैं कि भविष्य में 'पाटलिपुत्र,' 'बंगवासी,' 'कलकत्ता समाचार,' 'हिन्दी समाचार,' 'आनन्द,' 'भारतोदय' इत्यादि पत्र भी इस विषय में अच्छे अच्छे लेख लिखा करेंगे। मासिकपत्रों में भी प्रवासी भारतीयों के सम्बन्ध में लेख छपने चाहिये। 'सरस्वती' में दो चार लेख इस बारे में निकले थे; उदाहरणार्थ–रामनारायण शर्मा ऐल. ऐम. ऐस. के लेख और डच गायना के सर शीतल प्रसाद दुबे की संक्षिप्त जीवनी। लेकिन यह पर्य्याप्त नहीं हैं। यदि 'सरस्वती' में प्रति मास एक लेख प्रवासी-भारतीयों के सम्बन्ध में हो तो हिन्दी पाठकों को इससे प्रवासी भारतीयों के विषय में अच्छी जानकारी मिल सकती राजनीति न सही, उनके आचार, व्यवहार, धार्मिक स्थिति इत्यादि के विषय में तो 'सरस्वती' में लेख छप सकते हैं। 'मर्यादा,' 'नवजीवन,' 'ज्ञानशक्ति' और 'चित्रमय जगत्' को भी इस ओर ध्यान देना चाहिये। हम यह मानते हैं कि 'दक्षिण आफ्रिका' सम्बन्धी

विशेषाङ्क निकालकर 'मर्यादा' ने प्रवासी भारतीयों की अच्छी सहायता की थी, और कभी कभी वह इस विषय में लेख लिखती भी है, लेकिन 'मर्यादा' एक राजनैतिक पत्रिका है, इसलिये हम उससे बड़ी बड़ी आशायें कर सकते हैं।

अस्तु, यह तो हुई प्रवासी भारतवासियों की सहायता की बात, अब अन्त में प्रश्न यह होता है .'हम प्रवासी भारतवासियों की मदद के लिये सब से पहिले क्या काम करें ?'

इस का उत्तर यही है कि उपनिवेशों में शिक्षाप्रचार करने के लिये शिक्षक भेजना हमारा सब से पहिला कर्तव्य है। शिक्षा ही सब दुःखों को दूर करनेवाली है। प्रवासी भारतवासियों की सहायता करते समय हमें एक बात सदा ध्यान में रखनी चाहिये, वह यह कि जब तक हमें जन्मभूमि में ही स्वतंत्रता नहीं मिलेगी तब तक विदेशों में हमारी हालत कदापि नहीं सुधर सकती। जो जाति घर पर ही सैकड़ों कष्ट पाती है, वह विदेशों में सुख से कैसे रह सकती है ? सच तो यों है कि:—

"स्वराज्य ही सब कष्टों की रामबाण औषधि है।"

स्वर्गीय राजकवि दादाभाई नौरोजी ने १९०६ ई. की कांग्रेस में बहुत ठीक कहा था:—

"इन बुराइयों को दूर करने के लिये, स्वराज्य ही केवल एक मुख्य औषधि है। स्वराज्य पर ही हमारी आशा, शक्ति और महत्त्व निर्भर हैं। मैं नहीं जानता कि जो थोड़े दिन मेरी जीवनी के शेष रह गये हैं, उन में मुझे किस सौभाग्यपूर्ण अवसर के देखने का मौका मिले। यदि मैं अपने देश तथा देशबन्धुओं के लि

कोई प्रेम और भक्तिपूर्ण सन्देश दे सकता हूँ तो वह यही है कि 'आपस में मिले हुये रहो, बिना थके हुये बराबर उद्योग करते रहो और इस प्रकार स्वराज्य प्राप्त करो, जिस से कि लाखों आदमियों की, जो इस समय दरिद्रता, अकाल और प्लेग के कारण मृत्यु के मुख में जा रहे हैं, प्राणरक्षा हो; और करोड़ों आदमियों की जो इस समय भूखों मर रहे हैं, जान बचे और जिससे कि भारत वर्ष पाश्चात्य देशों की बड़ी बड़ी सभ्यतम जातियों के सामने वही उच्च पद प्राप्त करे, जो उसे प्राचीन काल में प्राप्त था।"

इसलिये आइये हम सब भारतवासी और प्रवासी भारतीय मिलकर भारतवर्ष के स्वराज्य के लिये अविश्रान्त उद्योग करें। यदि हमने तन-मन-धन से प्रयत्न किया तो परमात्मा अवश्य हमारी सहायता करेगा; क्यों कि

"दैवं पुरुषकारेण साध्यसिद्धिनिबन्धनम्।"

॥ वन्दे मातरम् ॥

इति

भारतीय प्रवास से सम्बन्ध रखनेवाली
मुख्य मुख्य घटनाओं का काल ।

सन् ईस्वीके दो सौ वर्ष पूर्व	सम्राट् अशोक के पुत्र महेन्द्रसिंह सिंहलद्वीप को गये ।
सन् ईस्वी के ५४३ वर्ष पूर्व	विजयसिंह ने सिंहलद्वीप को विजय किया ।
सन् ईस्वी के ७५ वर्ष पूर्व	सुमात्रा को भारतीयोंने अपना उपनिवेश बनाया ।
पहिली शताब्दी	जावा में भारतीयोंका प्रवास ।
पाँचवीं शताब्दी	कम्बोडिया में हिन्दू मत का ज़ोर शोर से प्रचार हुआ ।
सातवीं शताब्दी	श्रुतवर्मा के वंश का अधिकार कम्बोडिया पर रो जाता रहा ।
आठवीं शताब्दी	कम्बोडिया दो भागों में विभक्त हो गया, और उन दोनों भागों पर हिन्दू धर्मावलम्बी दो राजा राज्य करने लगे ।
नवीं शताब्दी	तृतीय जयवर्मा के समय में ख्मेर जाति अपनी उन्नति के उच्चतम शिखर को प्राप्त हुई ।
सन् ८०० से ९०० ईस्वी तक	बौद्ध शिल्पकला अपनी उन्नति के उच्चतम शिखर को प्राप्त हुई ।
सन् ९००	कम्बोडिया में अङ्कोर नामक नगर यशोवर्मा ने बसाया ।
सन् १४७८	जावा का हिन्दू राजा ब्रह्मविजय युद्ध में मारा गया और सारे द्वीप में मुसल्मानों का डंका बजने लगा ।
सन् १८३३	गुलामी का अन्त हुआ ।

सन् १८६३ — सैण्ट क्रोक्स नामक डेनमार्क के उपनिवेश को और सुरीनाम (डच गायना) को कुली भेजे जाने की स्वीकृति सरकार ने दी ।

सन् १८६६ और १८६७ — मोरीशस के लिये एक कमीशन फिर नियुक्त हुआ। वहाँ पर बीमारियों की वजह से बहुत से भारतीय मर गये थे । इन बीमारियों की जाँच करना इस कमीशन का काम था ।

सन् १८७० — ब्रिटिश गायनाके प्रवासी भारतीयोंकी जाँच करनेके लिये एक कमीशन नियुक्त किया गया ।

सन् १८७२ — मोरीसनके कुलियोंकी जाँच करनेके लिये एक कमीशन नियुक्त हुआ ।

सन् १८७८ — में फिजी को पहिले पहिल कुली भेजे गये । यह क्रम सन् १८८१ तक जारी रहा । फिर कुली भेजना बन्द कर दिया गया । तत्पश्चात सन् १८८५ ई. में फिर कुली भेजना प्रारम्भ किया गया ।

सन् १८९० — पूना की इण्डस्ट्रियल कान्फ्रेंस में महात्मा रानाडे ने Indian Foreign Emigration नामक महत्व-पूर्ण वक्तृता दी । भारतीय नेताओं में सबसे पहिले महात्मा रानडेनेही भारतीय प्रवास के प्रश्नों की ओर ध्यान दिया था ।

सन् १८९३ — महात्मा गान्धीजी दक्षिण अफ्रीका पहुँचे । भारत सरकार के पास दक्षिण अफ्रिका के गोरों का एक डेपूटेशन आया, जिसमें उन्होंने भविष्य में आनेवाले भारतीय मजदूरों पर २५ पौण्ड का कर लगाने का विचार प्रगट किया ।

सन् १८९५ — दक्षिण अफ्रिका में तीन पौण्ड का कर लगाया गया।

सन् १८९७ — महात्मा गान्धी का दूसरी बार दक्षिण अफ्रिका जाना। गोरों में जोश फैल जाना। महात्मा गान्धी जी को मारने के लिये ३००० गोरों का बन्दर गाह पर इकट्ठा होजाना और गले सड़े अंडों तथा अन्य वस्तुओं से महात्मा गान्धी को मारना।

सन् १८९९ — अँग्रेज़ बोअर युद्ध का प्रारम्भ होना। उसमें महात्मा गान्धी का अनेक भारतीयों के साथ अंग्रेज़ सरकार को मदद देना।

सन् १९०२ — बोअर युद्ध का शान्त हो जाना और भारतीयों प अत्याचारों का प्रारम्भ होना, ट्रान्सवाल इण्डियन ऐसो- सियेशन की स्थापना

सन् १९०३ — जोहान्सबर्ग इंडियन लोकेशन भारतीयों से छीन लिया गया।

सन् १९०६ — ट्रान्सवाल का एशियाटिक ऐक्ट पास हुआ।

सन् १९०७ — उपर्युक्त अपमानजनक क़ायदे को बादशाह की स्वीकृति मिली।

सन् १९०७ से १९११ तक — सत्याग्रह का संग्राम। ३५०० भारतीय जेल गये। महात्मा गान्धी दो बार जेल भेजे गये गये। बहुत से भारतीयों को दक्षिण अफ्रिका की सरकार ने देश निकाले का दण्ड दिया। नागापन और नारायण स्वामी ने सत्याग्रह के संग्राम में प्राण दिये।

सन् १९१० — माननीय गोखले के प्रयत्न से शर्तबन्दे मजदूरों का भारत से नेटाल को जाना बन्द हुआ। लार्ड सैण्डरसन की कुली प्रथा सम्बन्धी रिपोर्ट प्रकाशित हुई।

सन् १९१२ माननीय गोखले दक्षिण अफ्रिका को गये। सरकार ने कुलियों की दशा की जाँच करने के लिये मि. मैकनील और लाला चिम्मनलाल को नियुक्त किया। महात्मा गोखले ने कुली प्रथाको बन्द करने के लिये बड़े लाट की कौंसिल में प्रस्ताव किया। इस प्रस्ताव का समर्थन प्रत्येक भारतीय सदस्य ने किया। सरकार ने इस प्रस्ताव को अस्वीकृत किया।

सन् १९१३ *भारतीयों के विरुद्ध दक्षिण अफ्रिका में कायदा पास* हुआ जिससे भारतीय धर्म पर बड़ा आघात पहुँचा। सत्याग्रहका युद्ध पुनः प्रारम्भ हुआ। श्रीमती गान्धी, *श्रीमती डाक्टर मणिलाल, श्रीमती थम्बी नायडू और* श्रीमती भवानदीयाल इत्यादि अनेक भारतीय स्त्रियाँ सहर्ष जेलखाने गईं। २५००० मजदूरों की हड़ताल *तीन मास तक चली। महात्मा गाँधी, श्रीयुत भवा*नीदयाल, मि. पोलक तथा मि. केलनबेक को जेल का दण्ड मिला।

नवम्बर मास में श्रीमान् लार्ड हार्डिञ्जने मद्रास में अपनी वह प्रसिद्ध वक्तता दी, जिसके कारण दक्षिण अफ्रिका के झगड़े के तै होने में बड़ी सुविधा हुई।

सन् १९१४ *मि. ऐण्ड्रूज़ और मि. पियर्सन दक्षिण अफ्रिका पहुँचे।* इण्डियन कमीशन नियुक्त हुआ। दक्षिण अफ्रिका की पार्लामेण्ट की बैठक में ३ पौण्ड का कर रद्द हुआ। इण्डियन रिलीफ़ ऐक्ट पास हुआ। सत्याग्रह के संग्राम *में भारतीयों की विजय हुई।*

कोमागाटा मारू वेंकोवर पहुँचा। वहाँ इसके यात्रियों को उतरने की आज्ञा नहीं दी गई। २९ सितम्बर को यह कलकत्ते वापिस आया।

सन् १९१५ — मि. ऐण्ड्रूज़ और मि. पियर्सन शर्तबन्दे मजदूरों की दशा की जाँच करने के लिये फ़िजी को गये।
१५ अक्टूबर को लार्ड हार्डिंज ने कुली प्रथाके विरुद्ध अपना प्रसिद्ध खरीता भारतसचिव को भेजा।

सन् १९१६ — *श्रीमान् लार्ड हार्डिंज ने कुली प्रथा के अन्त का निश्चय किया।*

१२ मार्च सन् १८१७. — *को कुली प्रथा थोड़े दिनों के लिये बन्द करने का निश्चय हुआ।*

२७ मार्च सन् १९१७ — को प्रवासी भारतीयों के लिये एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना हुई, वह यह कि भारतीय स्त्रियों का एक डेपूटेशन श्रीमान् वायसराय के पास गया। ध्यान रहे कि यह पहिला ही अवसर था जब कि भारतीय स्त्रियोंने, विदेश में राष्ट्रीय गौरव की रक्षाके विचार से, वायसराय के पास जाकर निवेदन किया।

३० अप्रैल सन् १९१७ — मि. ऐण्ड्रूज़ फिज़ी को गये।

२५ मई सन् १९१७ — श्रीमान् वायसराय ने शर्तबन्दी की प्रथा को बन्द करनेका अन्तिम निश्चय किया।

सन् १९१७ — *'भारतरक्षा क़ानून' द्वारा कुली प्रथा का अन्त हुआ।*
नवीन कुली प्रथा के बनाने के लिये एक कमेटी विलायत में बैठी।
मि. ऐण्ड्रूज़ फ़िजी को दूसरी बार गये।

..८ — *विलायतमें 'कुलीप्रथा' के विरुद्ध मि. पोलक ने व्याख्यान दिये।*

विशेप वक्तव्य

प्रिय पाठकगण,

इस क्षुद्र पुस्तकके समाप्त करनेके बाद इसके तुच्छ लेखकको प्रसिद्ध भारत-हितैषी मि. सी. ऐफ. ऐण्ड्रूजके दर्शन करनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। मिस्टर ऐण्ड्रूजने कुलीप्रथाको उठवाकर भारतका जो उपकार किया है वह अकथनीय है। यह उन्हींकी कृपाका फल है कि यह पुस्तक इस रूपमें निकल रही है। जनवरी सन् १९१४ में इस पुस्तकके लेखकने 'माडर्न रिव्यू' में मिस्टर ऐण्ड्रूजका एक लेख पढ़ा था। इस लेखमें मि. ऐण्ड्रूजने लिखा था:—

"यदि हम इस प्रश्नका सामना ठीक तरहसे और न्यायके साथ करेंगे तो सम्पूर्ण सभ्य संसारकी दृष्टिमें हम आदरणीय होंगे। क्या हम सब मिलकर इस बातका प्रतिपादन करेंगे कि कुली प्रथा बन्द कर दी जावे? यदि हम इस बातके लिए तैयार हैं तो हम सबको एक साथ मिलकर काम करना चाहिये। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान और क्या ईसाई सबको एक स्वरसे यही कहना चाहिये कि कुली प्रथा बन्द कर दी जावे, फिर हमारी इस स्पष्ट और न्याययुक्त प्रार्थनाको कोई नहीं रोक सकता। हमें इस बातके लिये व्यक्तिगत स्वार्थको तिलांजलि देनी होगी और संसारको यह दिखाना होगा कि हम सिर्फ़ बातें ही नहीं करते, दृढ़तासे काम भी करते हैं। हममें हमें अन्य स्वार्थी लोगोंके साथ भी न्यायपूर्वक और यथोचित रीतिसे बर्ताव करना होगा। हमारा विरोध और प्रतिकार भी किया जावेगा भारतवासियोंके अन्तःकरण इस असह्य अन्यायसे विचलित हो गये हैं। परन्तु हम यह नहीं जानते कि हम क्या करें। चारों ओरसे आदमी चिल्ला रहे हैं 'हम क्या करें!' 'हम क्या करें!' आओ हम सब मिलकर शर्तबन्दीकी प्रथाको बन्द करें। यदि हम यह काम करेंगे तो हमारा यही काम उपनिवेशोंके स्वतंत्र भारतीयोंके आन्दोलनमें बहुत कुछ सहायता देगा।"

इन शब्दोंका इस पुस्तकके तुच्छ लेखकके हृदय पर बड़ा प्रभाव पड़ा। तत्पश्चात् पं. तोताराम जीसे जो कुछ सहायता मिली वह अकथनीय है। अभी मि. ऐण्ड्रूजसे प्रवासी भारतीयोंके विषयमें बहुतसी बातें ज्ञात हुईं। आस्ट्रेलियाके बारेमें भी कितनी ही उपयोगी बातोंका पता लगा। लेखकको सबसे अधिक हर्ष तब हुआ, जब उसने सुना कि आस्ट्रेलियाके शिक्षित यूरोपियन लोग अब भारतसे द्वेष नहीं करते। उनके हृदयमें भारतीयोंके प्रति सहानुभूति उत्पन्न हो गई है। हां वहाँ जो मजदूर दल है उसकी नीति इस विषय में बड़ी अनुदार रही है, परन्तु इसका कारण मुख्यतया आर्थिक चिन्ता ही है; जातिविद्वेष नहीं। कहा जाता है कि मजदूर दलवालोंने इङ्गलेण्डके भी 'टैरर' नामकी जातिके लोगोंको अपने देशमें नहीं उतरने दिया था। कुछ भी क्यों न हो, यह भी थोड़ी बात नहीं है कि आस्ट्रेलियाके शिक्षित यूरोपियन भारतीयोंके साथ सहानुभूति करने लगे हैं।

यह बातभी हमें माननी पड़ेगी कि हम भारतीयोंको आस्ट्रेलियाके विषयमें बहुतही कम ज्ञान है। हमको इस बातका पताही नहीं कि आस्ट्रेलियन कामनवेल्थकी पार्लमेण्टने सन १९०५ ई. में "इमीग्रेशन रेस्ट्रिक्शन ऐक्ट" (Immigration Restriction Act) में एक संशोधन किया था जिसका अभिप्राय यह था कि भारतवर्षके असली सौदागर यात्री और विद्यार्थी आस्ट्रेलियामें जाकर इस शर्तपर रह सकते हैं कि वह वहाँके स्थायी वाशिन्दे न बनें। जब मि. एण्ड्रूजने आस्ट्रेलियामें बड़े बड़े शिक्षित आदमियोंसे पूछा कि "यदि यहाँ भारतीय विद्यार्थी आकर पाँच या छः वर्ष तक अध्ययन करना चाहें तो क्या वह ऐसा करने पावेंगे?" इसका उत्तर मिला "हाँ, इसमें किसीको ऐतराज नहीं होगा। जब तक कि वह यहाँके स्थायी वाशिन्दे न बनना चाहें तब तक हमें कोई उज्र नहीं"

आस्ट्रेलियाका वृत्तान्त पढ़ते हुये, यदि पाठक उपर्युक्त बातोंपर ध्यान देंगे तो अच्छा हो।

यह बातभी बड़ी आनन्दजनक है कि भारत सरकार अब भारतीय प्रवासियोंके प्रति सहानुभूतिकी दृष्टिसे देखने लगी है। श्रीमान् लार्ड हार्डिंग्जने इस

सम्बन्धमें जो कुछ कार्य्य किया है उसे यहाँ बतलानेकी ज़रूरत नहीं । श्रीमान् लार्ड चैम्सफोर्डनेभी अभी इस विषयमें कुछ काम किया है जिसे अभी सर्व-साधारणके सामने प्रगट करनेकी आवश्यकता नहीं समझी गई ।

अन्तमें मैं मिस्टर ऐण्ड्रूज़से क्षमायाचना करता हूँ कि मुझसे इस पुस्तकमें उनके विषयमें कई बड़ी भारी भूलें हो गई हैं ।

पहिली भूल तो मुझसे यह हुई है कि मैंने यह लिख दिया है कि "अकस्मात् ९ जनवरी सन् १९१४ ई. को ऐण्ड्रूज़ साहबकी माँका देहांत विलायतमें होगया, इस लिये वह बहुत दिनों तक वहाँ (दक्षिण अफ्रिकामें) न ठहर सके" (द्वितीय खण्ड ६३ पृष्ठ) बात वास्तवमें यह थी कि पूज्य माताका देहान्त हो जाने परभी ऐड्रूज़ साहबने दक्षिण अफ्रिकामें प्रवासी भारतीयोंकी भलाईका काम बराबर जारी रक्खा था । जिन महिलाओंने प्रवासी भारतीयोंका उपकार किया था उनमें ऐण्ड्रूज़ साहबकी पूज्य स्वर्गीय माताका नामभी उल्लेखयोग्य है । जिस समय मि. ऐड्रूज़ दक्षिण अफ्रिका जानेवाले थे उनकी माँ बहुत बीमार थीं । ऐण्ड्रूज साहबने उनसे अफ्रिका जानेकी आज्ञा मांगी तो उन्होंने कहा था "Go and help the Indian cause and do not come back to me till your work is done" अर्थात् "जाओ और भारतवासियोंके कार्य्यमें सहायता करो, और जब तक तुम्हारा कार्य्य समाप्त न हो जावे तब तक मेरे पास वापिस मत आओ ।" भारतीय स्वतंत्रताके इतिहासमें यह वाक्य सुवर्ण अक्षरोंमें लिखे जाने योग्य है ।

धन्य माता ! धन्य ! ! तुम्हारी जैसी मानवजातिप्रेमी निःस्वार्थ महिला ही मि. ऐण्ड्रूज़ जैसे उदार हृदय पुत्रको उत्पन्न कर सकती है । प्रवासी भारतवासी तुम्हारे और तुम्हारे पुत्रके आजीवन कृतज्ञ रहेंगे । शर्तबन्दीकी गुलामीके बन्द करनेवालोंमें मि. ऐण्ड्रूज़की माताका नाम सदा आदरके साथ लिया जावेगा । जिस दिन आस्ट्रेलियामें मि. ऐण्ड्रूज़ अपनी पूज्य स्वर्गीय माताका जन्मदिन मना रहे थे उसी दिन उन्हें भारतसे यह तार मिला कि श्रीमान् वायसरायने कुली प्रथाके अन्तका दृढ़ निश्चय प्रगट कर दिया है । इस प्रकार परमात्माकी

कृपासे जिस दिन श्रीमान् ऐण्ड्रूज़ साहबकी माँका जन्मदिन था उसी दिन भारतवर्ष शर्तबन्दीकी गुलामीसे मुक्त हुआ।

दूसरी भूल मुझसे यह हुई है कि मैंने द्वितीय खण्डके ६१ वें पृष्ठमें लिखा है कि "गीतांजलिका अनुवाद करनेमें मि. ऐण्ड्रूज़ने सर रवीन्द्रनाथ ठाकुरको बड़ी सहायता दी थी।" वास्तवमें यह भूल बड़ी भारी हुई है। मि. ऐण्ड्रूज़ने हमारे कवि सम्राट्को अनुवाद करनेमें बिलकुल सहायता नहीं दी; हाँ प्रूफ़ संशोधन करनेमें अवश्य मदद दी है।

तीसरी भूल जो हुई है वह यह है कि मैंने लिखा है कि मि. ऐण्ड्रूज़ने यह सुनकर गान्धीजीसे यह कहलवा दिया था कि दक्षिण अफ्रिकाके गोरोंकी हड़तालके समय हम अपना आन्दोलन बन्द रक्खेंगे और सरकारका साथ देंगे। (द्वितीय खण्ड पृष्ठ ५४)

असली बात यह थी। जब गोरोंकी हड़ताल हुई थी उस समय सत्याग्रहका आन्दोलन खूब ज़ोरशोरके साथ चल रहा था। इस समय एक अँग्रेज़ी पत्रका सम्पादक महात्मा गान्धीजीके पास आया और उसने महात्मा गान्धीजीसे पूँछा "कहिये इस समय आप क्या करेंगे?" इसका उत्तर गान्धीजीने दिया "इस समय हम सरकारको तङ्ग नहीं करेंगे, जब तक कि सरकार गोरोंकी हड़तालके झगड़ेमें फँसी हुई है, हम अपना कार्य्य बन्द रक्खेंगे, परन्तु इस हड़तालके बन्द होतेही यदि हमारे कष्ट न दूर किये गये तो हम सत्याग्रहका संग्राम फिर प्रारम्भ कर देंगे"।

तब उस सम्पादकने पूँछा "क्या मैं इस बातको समाचारपत्रोंमें प्रकाशित कर दूँ?" मि. गान्धीने कहा "नहीं, इसे प्रकाशित मत करो।" तब एण्ड्रूज़ साहबने गान्धीजीसे प्रार्थना की कि आप इस बातको छापनेकी आज्ञा दे दीजिये; क्योंकि यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो लोग इसका कुछ का कुछ मतलब निकालेंगे और इस विषयमें बड़ी भ्रान्ति फैल जावेगी। मि. ऐण्ड्रूज़के आग्रहको गान्धीजीने मान लिया और इस बातके प्रकाशित करनेकी आ[illegible] देदी। इस बातके प्रकाशित होते ही यूरोपियन लोगोंकी श्रद्धा मह[illegible] गान्धीजीके प्रति बहुत बढ़ गई। दक्षिण अफ्रिकाके झगड़ेके तय होनेमें [illegible]

घटनाने बड़ी सहायता दी। यूनियन सरकारको तंग न करने और उसका साथ देनेका जो विचार था वह असलमें गान्धीजीका ही था, परन्तु वह इसे प्रकट करना अनावश्यक समझते थे। मिस्टर ऐण्ड्रूजने केवल यह कार्य्य किया कि इस विचारको समाचारपत्रोंमें प्रकाशित करनेकी आज्ञा महात्मा गान्धीजीसे ले ली।

मैं समझता हूँ कि इन उपर्युक्त भूलोंमें मैंने म० गान्धीजी और सर रवीन्द्रनाथ ठाकुरके प्रति भी अपराध किया है। मुझे आशा है कि इस पुस्तकके पाठक इन भूलोंको अवश्य सुधार लेंगे।

विनीत—लेखक,

ओ३म्

हिन्दी साहित्य भण्डार की पूर्तिका प्रयत्न

निज भाषा निज देश को, जिनहिं न कछु अभिमान।
सो जन मानव जोनिमें, जनमें व्यर्थ जहान॥

—श्री. पं. श्रीधरजी पाठक।

हिन्दीका हिन्दुस्थानमें घर घर पुण्य प्रचार हो।
इस आर्य्यावर्त पुनीतका शुभमय जयजयकार हो॥

—श्री पाण्डेय लोचनप्रसादजी शर्म्मा।

नवजीवन-ग्रन्थ-माला और नवजीवन-निबन्ध-माला

कौन है ऐसा मनुष्य जिसको अपने देश और अपनी भाषापर घमंड नहीं ? यदि कोई ऐसा मनुष्य है तो वह मनुष्य नहीं, पशु है। हमको अपने देश और अपनी भाषापर प्रेम रखना स्वाभाविक है। उसी भाषाप्रेम को पुष्ट करने के लिये, अपनी मातृभाषा देवी की आराधना के लिये, अपनी पूजनीय माता की सेवा के लिये

ने प्रयत्न करने का विचार किया है। वर्तमान समय में सौभाग्य
कई स्थानों पर ग्रन्थ प्रकाशन का कार्य्य हो रहा है। कई अच्छी
ग्रन्थमालायें प्रकाशित हो रही हैं, जिनके प्रकाशक साहित्यवृद्धि
की दृष्टि से प्रशंसनीय और अनुकरणीय कार्य कर रहे हैं। इतना
प्रयत्न होते हुये भी अभी हिन्दी भाषा में कई आवश्यक विषयों पर
ग्रन्थ प्रकाशित होने की बड़ी आवश्यकता है। कई विषयों में हिन्दी
का साहित्य सर्वथा ही शून्य है। यदि हम हिन्दी को राष्ट्र भाषा
बनाना चाहते हैं तो हमारा कर्तव्य है कि हम उसे सर्वांगपूर्ण करने
का प्रयत्न करें। दुःखका विषय है कि राष्ट्रीय भावों के प्रचारार्थ, राष्ट्री-
यता के तत्त्व और महत्त्व के प्रसारार्थ ग्रन्थ प्रकाशन,बड़ी उदासीनता के
साथ एक दो सज्जन ही कर रहे हैं। कुछ तो वर्तमान समय में राष्ट्रीय
ग्रन्थ प्रकाशन का काम ही कण्टकपूर्ण है और कुछ हिन्दी भाषा में ऐसे
ग्रन्थ लेखक भी इने गिने ही हैं। किन्तु इसका एक प्रधान कारण या
भी है कि ग्राहकों का सर्वथा अभाव है। हिन्दी साहित्य में कैसी भी अच्छी
पुस्तक प्रकाशित की जाय, उसके बिकने में वर्षों लग जाते हैं। कि
किसी समय तो लागत का प्राप्त हो जाना ही प्रकाशकगण अपना सौभा-
समझते हैं। ऐसा मराठी, गुजराती, बंगला आदि भारतकी अन्य
भाषाओं में नहीं है; वहाँ अच्छी पुस्तकों के २,४ संस्करण भी प्रकाशित
होते वर्षों नहीं लगते हैं। किन्तु हमारी हिन्दी की इससे सर्वथा भिन्न
दशा है। इस प्रधान कठिनाईये को अनुभव करते हुये भी केवल भवि-
ष्यकी आशा पर ही हम इस पवित्र प्रयत्न को आरंभ करते हैं। विज्ञान,
समाज, नीति, धर्म्म, शिक्षा, उपन्यास, नाटक, गल्प, इतिहास, जीवन-
चरित्र, काव्य, शिल्प, राजनीति आदि आदि साहित्य के प्रत्येक अंग-
पर पुस्तकें प्रकाशित करने की हमारी इच्छा है। राष्ट्रीयता हमारा
मूल मन्त्र है। कई प्रसिद्ध विद्वानों ने ग्रन्थ लिखने तथा विविधभाषा-

कोविदों ने अपूर्व अपूर्व ग्रन्थों के अनुवाद करनेका अभिवचन दिया है। हमारा मन्तव्य है कि चाहे पुस्तकें संख्या में १०,२० ही प्रकाशित हों, किन्तु होनी महत्त्वपूर्ण चाहिये। हमारी पुस्तकों के साइज़, टाइप, कागज़, जिल्द आदि सब दर्शनीय होंगे। अपने अपने विषय के मर्मज्ञ विद्वानों से ग्रन्थ लिखाकर प्रकाशित किये जायंगे। यदि हमारा उत्साह बढ़ाया गया तो आप देखेंगे कि कितनी शीघ्र हम कैसे कैसे बहुमूल्य ग्रन्थों का आप को दर्शन कराते हैं। "नवीन-ग्रन्थ-माला" के प्रत्येक ग्राहक को जो आठ आना भेज कर स्थायी ग्राहक बनेंगे "नवजीवन-निबन्ध-माला" की प्रत्येक पुस्तक बिना मूल्य भेंट की जायगी। प्रथम वृहद् राष्ट्रीय ग्रन्थ "प्रवासी भारतवासी" आप के हाथ में है। और भी कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे जा रहे हैं। जो शीघ्र ही प्रकाशित होंगे।

हमें आशा है कि आप स्थायी ग्राहक बनकर हमारे उत्साह को बढ़ावेंगे, जिससे कि हम आपके सम्मुख हिन्दी भाषा के ग्रन्थरत्न उपस्थित कर सकें।

विनयावनत,

व्यवस्थापक, **सरस्वती सदन.**